भागवत-परिचय

सत्-शास्त्र-प्रकाशन

भागवत-परिचय

सम्पादक :

सुदर्शनसिंह 'चक्र'

प्रकाशक

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा संस्थान

मथुरा–२८१००१

वसंत पञ्चमी सं० २०३८ वि०]　　प्रथम संस्करण ११००　　[मूल्य : १००/-

मुद्रक :

शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी

नवज्योती प्रेस, सेठ भीकचन्द मार्ग, मथुरा ।

अनुक्रमणिका

अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

आचार्य डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

संपादकीय संकलन

परिशिष्ट

चित्र-सूची

[सब तिरंगे चित्र]

इस ग्रन्थके सम्बन्धमें

श्रीमद्भागवतको लेकर अनेक शंकाएँ लोगों में प्रचलित हैं। बहुत लोगोंको यह महापुराण पीछे की रचना लगता है। कम को ही पता है कि इसके उद्धरण अपने ग्रन्थोंमें आदिशंकराचार्यजीने और उनके गुरु गोविन्दपादजी के भी गुरु श्री गौड़पादाचार्य ने भी लिये हैं।

श्रीमद्भागवतमें पाठान्तर भी कम नहीं हैं। इस श्रीभगवान के साक्षात् वाङ्मय विग्रह का भी सबके लिए, सकाम अनुष्ठानों के लिए भी कितना बड़ा उपयोग है, यह भी बहुत थोड़े लोगोंको पता है।

श्रीमद्भागवतकी श्लोक-गणना भी अबतक पूरी नहीं हुई थी। इस ग्रन्थमें किसके कितने श्लोक आये हैं यह तो अब तक गिना ही नहीं गया था।

इन सब बातों को ध्यानमें रखकर 'भागवत-परिचय' को एक सन्दर्भ ग्रन्थका रूप दिया गया है। इसमें भागवत के बाह्यरूप का परिचय है।

अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज का 'भागवत-दर्शन' उनकी रसमयी, भावमयी भागवतकथा का आस्वादन कराता है। लेकिन उसकी भूमिका अत्यन्त शोधपूर्ण, विद्वत्तापूर्ण विवेचन है। 'भागवत-परिचय' में वह पूरी भूमिका प्रारम्भमें ही ले ली गयी हैं।

वन्धुवर डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी भागवतके गम्भीर विद्वान् हैं। अनेक विषयोंके आचार्य हैं। उन्होंने कृपा करके अपनी भागवत सम्बन्धी वह पूरी सामग्री दे दी जो भागवत पर अपना डी-लिट् के लिए शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करते समय एकत्र की थी। उनके सहयोग के बिना यह ग्रन्थ अपूर्ण ही रहता।

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल अलीगढ़ विश्वविद्यालय के दीर्घकाल तक हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे हैं और शोध-छात्रोंका निर्देशन करते रहे हैं। मुझ पर स्नेह के कारण इन्होंने पर्याप्त श्रम किया सामग्री एकत्र करने में।

गम्भीर लेखोंसे पूर्ण इस ग्रन्थको बनाना नहीं था। इसे भागबतके प्रेमीजनों तथा भागवत पर शोध करने वाले छात्रोंके लिए आत्म-सन्दर्भ ग्रन्थका रूप देना था। इसमें कई विद्वानों ने मुझे सहयोग दिया। निर्दिष्ट विषय को अपनी विद्वत्ता से सरल-सुगम बनाया।

मैं हृदय से इन सब सहयोगी सम्मान्यजनोंका आभारी हूँ।

मुझे आशा है कि विद्वद्वर्ग को यह संकलन उपयोगी लगेगा।

इसमें जो चित्र जा रहे है, वे सगुण उपासकों के लिए प्रिय हों, आकर्षक हों, ध्यान-पूजन योग्य हों और शास्त्र वर्णित ढंग के हों, यही प्रयत्न रहा है।

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान
मथुरा–२८१००१
भागवत जयन्ती
सं० २०३८ वि०

विनम्र:—
सुदर्शनसिंह 'चक्र'

———

श्रीमद्भागवत महिमास्तोत्रम् ।

सर्वशास्त्राब्धिपीयूष ! सर्ववेदैकसत्फल ! ।
सर्वसिद्धान्तरत्नाढ्य ! सर्वलोकैकदृक्प्रद ! ।।
सर्वभागवतप्राण ! श्रीमद्भागवत ! प्रभो ! ।
कलिध्वान्तोदितादित्य ! श्रीकृष्णपरिवर्तित ! ।।
परमानन्दपाठाय प्रेमवर्ष्यक्षराय ते ।
सर्वदा सर्वसेव्याय श्रीकृष्णाय नमोऽस्तु मे ।।
मदेकबन्धो ! मत्सङ्गिन् ! मद्गुरो ! मन्महाधन ! ।
मन्निस्तारक ! मद्भाग्य-मदानन्द ! नमोऽस्तु ते ।।
असाधुसाधुतादायिन्नतिनीचोच्चताकर ! ।
हा न मुञ्च कदाचिन्मां प्रेम्णा हृत्कण्ठयोः स्फुर।।१।।

इति श्रीमत्सनातनगोस्वामि-विनिर्मित श्रीकृष्णलीलास्तवे श्रीमद्भागवतमहिमस्तोत्रं संपूर्णम् ।

-*-

हे श्रीमद्भागवतरूप महाप्रभो ! आप अपने में ही सभी शास्त्रों का समन्वय होने के कारण, समस्त शास्त्ररूप-समुद्रों के अमृतरूप हो ! समस्त वेदोंके मुख्य एवं सुन्दर फलस्वरूप हो ! सिद्धान्तरूपी समस्त सिद्धान्तों से युक्त हो ! सभीजनों के लिये केवल विशुद्ध भक्तिरूप नेत्रों को देने वाले हो ! अतः भगवद्भक्त मात्रके प्राणरूप हो ! कलिकालरूप अन्धकार को मिटाने के लिये सूर्यस्वरूप हो ! एवं श्रीकृष्ण के द्वारा परिवर्तित हो ! अर्थात् अपने धाम में प्रवेश करते समय श्रीउद्धवजी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की थी कि, प्रभो ! आपके विरह में भक्तों का क्या आधार होगा ? इस के उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा था कि, "मेरा जो तेज है, मैं उसको श्रीमद्भागवत में रखकर जाता हूँ", ऐसा कहते ही श्रीकृष्ण रूप से श्रीमद्भागवत में प्रविष्ट हो गये, अतः हे श्रीमद्भागवत ! आप उसी दिन से श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि रूप हो ! प्रमाणं यथा—"कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।। कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः । भा १।-४३ ४४"; "स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् । तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ।। पं० पु०, भा० म० ३।६१" । अतएव आपका पठन-पाठन परमानन्द-स्वरूप है, आपके प्रत्येक अक्षर प्रेम की वर्षा करने वाले हैं, अतएव आप सर्वदा सर्वजन द्वारा सेवन करने योग्य हो, अधिक क्या कहूँ ? आप तो साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूप हो, एवंगुणविशिष्ट आपके लिये मेरा बारंबार प्रणाम है; क्योंकि आप ही तो मेरे मुख्यबन्धु हो ! मेरे सङ्गी हो ! एवं सर्वत्र मेरे अज्ञान के निवर्तक होने के कारण, एवं भक्ति का मार्ग दिखाने के नाते, मेरे परमगुरु हो ! तथा पुरुषार्थ शिरोमणि होने के कारण, मेरे महान् धनस्वरूप हो ! मेरे भाग्यस्वरूप हो ! मेरे निस्तारक हो ! मेरे लिये आनन्दस्वरूप हो ! आपके लिए बारंबार नमस्कार है। और हे श्रीमद्भागवत ! आप असाधु-व्यक्तियों को भी साधुता देनेवाले हो ! एवं अतिनीच प्राणियों को भी उच्च पदपर पहुँचानेवाले हो ! हा प्रभो मेरी तो आपके श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि, आप मुझे किसी अवस्था में भी छोड़ना नहीं; अपितु, प्रीतिपूर्वक मेरे हृदय एवं कण्ठ में स्फूर्ति पाते रहिये ।।१।।
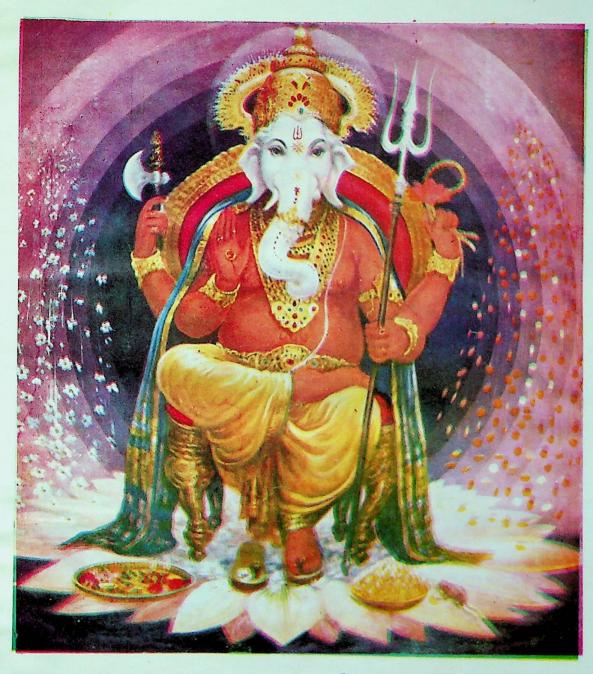
भगवान् महागणपति

अनन्तश्री
स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

[श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा संस्थानके अध्यक्ष]

नन्दनन्दन—वृषभानुनन्दिनी

श्रीमद्भागवतका रचना-काल

श्रीमद्भागवतके निर्माता और निर्माण-कालके सम्बन्धमें बहुत-सी शङ्काएँ उठायी जाती हैं। ये सब पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुयायी आधुनिक भारतीयोंके मस्तिष्ककी उपज हैं, जो प्रत्येक वस्तुको शास्त्रीय दृष्टिसे न देखकर केवल बाहरी प्रमाणोंके आधारपर ही देखना चाहते हैं। ऐसे ही लोगोंमें कुछ सज्जनोंने श्रीमद्भागवतको तेरहवीं शताब्दीकी रचना बतलाया है और इसका रचयिता बोपदेवको माना है। कुछने इसे और भी आधुनिक बतलाया है। एक सज्जनने तो यहाँतक कहा है कि श्रीमद्भागवतके रासलीलादि प्रसङ्ग तो सोलहवीं शताब्दीकी रचना हैं। परन्तु विचार करनेपर पता लगता हैं कि ये सब मत भ्रान्तिपूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण भगवान् व्यासकी रचना है और इसका रचना-काल पाँच हजार वर्षसे पहलेका है। श्रीमद्भागवत व्यासकृत है।-उसके रचना-कालके सम्बन्धमें कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। आशा है, इससे पाठकोंको संतोष होगा।

यह तो निश्चित हो चुका है कि बोपदेवका समय ईसाकी तेरहवीं शताब्दी है; क्योंकि देवगिरिके यादव राजा महादेवका राजत्वकाल सन् १२६० ई० से सन् १२७१ ई० तक माना गया है और सन् १२७१ ई० से सन् १३०९ ई० तक रामचन्द्र नामक राजा वहाँ रहे हैं। उनके समस्त करणाधिपति और मन्त्री थे हेमाद्रि और हेमाद्रिकी प्रसन्नताके लिए ही कविराज श्रीबोपदेवने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी। बोपदेवने कुल छब्बीस ग्रन्थोंकी रचना की थी—व्याकरणके दस, वैद्यकके नौ, तिथि-निर्णयका एक; साहित्यके तीन और भागवत-तत्त्वके तीन। भागवत-तत्त्वका वर्णन करनेके लिए उन्होंने जिन तीन ग्रन्थोंका निर्माण किया था, उनके नाम हैं—'परमहंसप्रिया', 'हरिलीलामृत' और 'मुक्ताफल'। इनमें-से 'हरिलीलामृत' और 'मुक्ताफल' छपे हुए हैं। 'मुक्ताफल' की टीकामें, जो कि हेमाद्रिके द्वारा ही रचित है, लिखा है कि बोपदेवने इन-इन ग्रन्थोंका निर्माण किया है।* 'हरिलीलामृत' का ही दूसरा नाम 'भागवतानुक्रमणिका' है। यदि बोपदेवने भागवतकी रचना की होती तो हेमाद्रि बोपदेवकृत ग्रन्थोंके प्रसङ्गमें उसकी भी चर्चा अवश्य करते। वास्तविक बात तो यह है कि जैसे श्रीधरस्वामीने प्रत्येक अध्यायका संग्रह एक-एक श्लोकमें किया है और जैसे 'भागवतमञ्जरी' नामक ग्रन्थमें संक्षेपमें सारे भागवतका सारांश दे दिया गया है, वैसे ही बोपदेवने 'हरिलीलामृत' में सम्पूर्ण भागवतका सारांश दे दिया है। उसीके दो-चार स्फुट श्लोकोंको पढ़कर कुछ लोगोंने धारणा बना ली कि श्रीमद्भागवत बोपदेवकी रचना है, जो कि उस ग्रन्थ और उसपर लिखी गयी हेमाद्रिकृत कैवल्यदीपिका टीकाको न देखनेसे ही हुई है। दूसरी बात यह है कि हेमाद्रिने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि'में तथा 'दानखण्ड'में भी भागवतके वचन उद्धृत किये हैं। यदि भागवत बोपदेवकृत होता तो धर्मनिर्णयके प्रसङ्गमें हेमाद्रि उसका उद्धरण नहीं देते। यह तो हुई बोपदेवके सम्बन्धकी बात। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवत बहुत ही प्राचीन ग्रन्थ है। उनमें-से कुछ थोड़े-से यहाँ लिखे जाते हैं।

१. द्वैतवाद अथवा स्वतन्त्रास्वतन्त्रवादके प्रसिद्ध आचार्य पूर्णप्रज्ञ अथवा आनन्दतीर्थ जो मध्वाचार्यके नामसे प्रसिद्ध

---

* यस्य व्याकरणे वरेण्यघटनाः स्फीताः प्रबन्धा दश
प्रख्याता नव वैद्यकेऽपि तिथिनिर्धारार्थमेकोऽद्भुतः।
साहित्ये त्रय एव भागवततत्त्वोक्तौ त्रयस्तस्य च
भूगीर्वाणशिरोमणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः॥

है, उनका जन्म ईसाकी बारहवीं शताब्दीके अन्तमें अर्थात् सन् ११९९ में हुआ था। बोपदेवका समय तेरहवीं शताब्दीका अन्तिम भाग है और मध्वाचार्यने श्रीमद्भागवतपर एक टीका लिखी है, जिसका नाम है— 'भागवत-तात्पर्य-निर्णय ।' यदि मध्वाचार्यसे पूर्व श्रीमद्भागवत विद्यमान न होता और प्रामाणिक ग्रन्थ न माना जाता तो वे उसपर टीका क्यों लिखते ? उन्होंने भागवतपर पहले-पहल टीका लिखी हो, ऐसी बात नहीं है। उनकी टीकामें अनेक प्राचीन टीकाकारोंके नाम हैं— जिनमें विद्वद्वर श्रीहनुमान्, आचार्य शंकर और चित्सुखाचार्यका भी निर्देश है। उन्होंने गीताकी टीकामें भी नारायणाष्टकाक्षरकल्पसे एक उद्धरण दिया है, जिसमें श्रीमद्भागवतको 'पञ्चम वेद' कहा गया है।

२. विशिष्टाद्वैत एवं श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्य श्रीरामानुजाचार्यने अपने वेदान्ततत्त्वसारमें श्रीमद्भागवतका नाम लेकर कई वचन उद्धृत किये हैं। इनका समय श्रीमध्वाचार्यजीसे भी बहुत पूर्व का है। इनका जन्म सन् १०१७ ई० में हुआ था। ग्यारहवीं शताब्दी ही इनका मुख्य कार्यकाल है। 'वेदस्तुति' (दशमस्कन्धका ८७ वाँ अध्याय) और 'एकादशस्कन्ध'के नामसे भी उन्होंने भागवतके वचन उद्धृत किये हैं।

३. बोपदेवके समकालीन हेमाद्रिने भागवतके टीकाकारके रूपमें श्रीधरस्वामीका नामोल्लेख किया है। श्रीधरस्वामीने विष्णुपुराणकी टीकामें चित्सुखाचार्यकी चर्चा की है। इस प्रकार बोपदेवसे प्राचीन श्रीधर और श्रीधरसे भी प्राचीन चित्सुखाचार्य सिद्ध होते हैं। शंकराचार्यके सम्प्रदायमें चित्सुखाचार्यजी तीसरे आचार्य माने जाते हैं। इनकी बनायी हुई 'चित्सुखी' अथवा 'तत्त्वप्रदीपिका' बहुत ही विख्यात है। इनके समयका निर्णय शंकराचार्यके समयपर निर्भर करता है। शांकर-सम्प्रदाय और मठोंकी आचार्य-परम्पराकी दृष्टिसे ईसासे चार-पाँच-सौ वर्ष पूर्व ही सिद्ध होता है। यदि आधुनिक अन्वेषकोंकी भाँति शंकराचार्यका समय पाँचवी-छठी अथवा सातवीं-आठवीं शताब्दी माना जाय तो भी चित्सुखाचार्यका समय नवीं शताब्दी सिद्ध होता है। उन्होंने भागवतपर टीका लिखी थी, जिसकी चर्चा मध्वाचार्य, श्रीधरस्वामी एवं विजयतीर्थ—सभी करते हैं। इससे भागवतका उस समय होना स्वयं ही सिद्ध है।

४. बनारसके क्वीन्स कालेजसे सम्बद्ध सरस्वती-भवन पुस्तकालयमें श्रीमद्भागवतकी एक प्राचीन प्रति सुरक्षित है। वह प्राचीन लिपिमें लिखी हुई है। महामहोपाध्याय पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदीने एक बंगीय विद्वान्से लेकर उसे बहुत दिनोंतक अपने पास रखा। सन् १९१६ ई० में युक्तप्रान्तीय सरकारने उसे मोल ले लिया। उसपर जो संवत् लिखा हुआ था, वह बारहवीं शताब्दीके लगभगका था। वर्णमालाके क्रम-विकासकी दृष्टिसे उसकी लिपि ठीक बारहवीं शताब्दीकी ही जान पड़ती है। स्व० महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराज एम. ए., भूतपूर्व प्रिन्सिपल, गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेजने ऐसा ही वक्तव्य दिया है, जो उसकी वर्णमालाके छाया चित्रसहित 'कल्याण'के 'कृष्णाङ्क' में छपा है। इसमें रासलीला आदि प्रसङ्गोंका पूरा वर्णन है। यह प्रति तबकी लिखी है, जब बोपदेवका जन्म भी नहीं हुआ था।

५. विद्यारण्यस्वामी, जिनका समय तेरहवीं शताब्दी निश्चित हो चुका है, उनके गुरु आत्मपुराणके रचयिता श्रीशंकरानन्दकी गीताकी अपनी टीका 'गीतातात्पर्यबोधिनी' में भागवतके बहुत-से—'बन्धो मोक्ष इति व्याख्या' आदि श्लोक उद्धृत करते हैं और लिखते हैं—'ये भागवान्के वचन हैं।' अवश्य ही वे बारहवीं शताब्दीमें विद्यमान् थे। यदि श्रीमद्भागवत उस समय लोकप्रिय नहीं होता तो वे उसका प्रमाण उद्धृत कैसे करते ? इससे सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवत उस समय प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था।

६. कश्मीरके प्रत्यभिज्ञा नामक सम्प्रदायके प्रधान आचार्य अभिनवगुप्तने, जो संस्कृत-साहित्य और

साम्प्रदायिकोंमें बड़े ही सम्मान और प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं, अपने मतकी स्थापनाके लिए गीतापर एक संक्षिप्त टीका लिखी है । गीताके चौदहवें अध्यायके आठवें श्लोककी व्याख्या करते समय उन्होंने श्रीमद्भागवतका नाम लेकर कई श्लोक उद्धृत किये हैं—कुछ दूसरे स्कन्धके हैं और एक ग्यारहवें स्कन्धका । यह व्याख्या छपी हुई मिलती है । आचार्य अभिनवगुप्तका समय दसवीं शताब्दी निश्चित है; क्योंकि उन्होंने 'बृहत् प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी'में स्वयं ही अपने समयका उल्लेख किया है ।* यह समय कश्मीर प्रदेशमें प्रचलित वर्ष-गणनाके अनुसार है । यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अभिनवगुप्ताचार्य शैव थे और श्रीमद्भागवत वैष्णव ग्रन्थ है । यदि भागवतका निर्माण थोड़े दिनोंका हुआ होता, अथवा वह अप्रामाणिक ग्रन्थ होता तो वे श्रीमद्भागवतका उद्धरण कदापि नहीं दे सकते थे । दूसरी बात यह कि यदि श्रीमद्भागवत दशम शताब्दीसे कुछ ही पूर्वका बना होता तो दशम शताब्दीमें उसका कश्मीर पहुँचना कठिन हो जाता । उन दिनों प्रेस तो थे नहीं और अभिनवगुप्ताचार्यका सम्प्रदाय भी भिन्न था; ऐसी अवस्थामें श्रीमद्भागवतका वहाँ पहुँचना उसकी प्राचीनता और सर्वप्रियताका उत्तम प्रमाण है ।

७. ईश्वरकृष्णविरचित 'सांख्यकारिका'पर माठराचार्यने एक टीका लिखी थी । ईस्वी सन् ५५९ और ५६९ के बीचमें उस टीकाका अनुवाद चीनी भाषामें हुआ । अनुवादक थे परमार्थ नामके बौद्ध पण्डित । विचार करनेपर मालूम होता है कि अनुवादके समयसे सौ-डेड़-सौ वर्ष पूर्व संस्कृतमें माठर-वृत्तिकी रचना हो चुकी होगी । उस वृत्तिमें श्रीमद्भागवतके पहले स्कन्धके छठे अध्यायका पैंतीसवाँ एवं आठवें अध्यायका बावनवाँ श्लोक उद्धृत है । इससे सिद्ध होता है कि सन् ५०० ई० के लगभग श्रीमद्भागवत विद्यमान था ।

८. श्रीशंकराचार्यके समयके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है । ईसाके पूर्व चार-पाँच-सौ वर्षसे लेकर ईसाकी सातवीं-आठवीं शताब्दीतक उनका समय माना जाता है । मठों और आचार्योंकी परम्परा आदिके विचारसे अधिकांश विद्वानोंने उन्हें ईसाके पूर्वका ही माना है । उन्होंने पद्मपुराणान्तर्गत 'वासुदेवसहस्र-नामावली'की टीकामें दो स्थानोंपर श्रीमद्भागवतका उल्लेख किया है । पहले शतकके पाँचवें नामपर वे लिखते हैं—'स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परः' इति भागवते (२.१०.७) । पहले शतकके पचपनवें नामपर भी उन्होंने 'पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा' इत्यादि श्लोक उद्धृत करके भागवतका नाम-निर्देश किया है । 'सर्व सिद्धान्तसंग्रह' एवं 'चतुर्दशमतविवेक' ग्रन्थमें उन्होंने लिखा है—'परमहंसधर्मो भागवते पुराणे कृष्णेनोद्धवायोपदिष्टः ।' अर्थात् परमहंसोंके धर्मका भागवतपुराणमें श्रीकृष्णने उद्धवको उपदेश किया है ।

इसके अतिरिक्त श्रीशंकराचार्यकृत 'गोविन्दाष्टक' नामका एक स्तोत्र है । उसके एक श्लोकमें कहा गया है कि माँ यशोदाने श्रीकृष्णको डाँटकर पूछा—'क्यों रे कन्हैया ! तूने मिट्टी खायी है ?' यशोदाकी डाँट सुनकर श्रीकृष्ण डर गये और उन्होंने मुँह खोल दिया । श्रीकृष्णके मुखमें यशोदाने चौदहों लोकोंके दर्शन किये ।* यह कथा श्रीमद्भागवतके मृत्तिका-भक्षणके ही आधारपर लिखी गयी है । इसके अतिरिक्त 'प्रबोध-सुधाकर' नामक ग्रन्थमें श्रीशंकराचार्यने भगवान् श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका वर्णन किया है । उसमें ब्रह्माका मोहित होना, बछड़ोंका चुराना, सबके रूपमें श्रीकृष्णका हो जाना, गौओंका प्रेम देखकर बलरामका चकित होना आदि वर्णन भागवतके

---

* इति नवतितमेऽस्मिन् वत्सरेऽन्त्ये युगांशे ।
तिथिशशिजलधिस्थे मार्गशीर्षावसाने ॥

* मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडनशैशवसंत्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालम् ।

अनुसार ही मिलता है। गोपियोंका वर्णन करते हुए उन्होंने जो उनकी तन्मयावस्थाका वर्णन किया है, वह केवल भागवतमें ही है और उन्होंने लिखा भी है कि ये व्यासके वचन हैं। शंकराचार्य और भागवतके श्लोकोंकी तुलना कीजिये—

'कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्'
(भागवत १०।३०।१५)

कापि च कृष्णायन्ती कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः।
अपिबत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायण प्राहः॥
(शंकराचार्य)

श्रीमद्भागवतके वचनको अक्षरशः लेकर आचार्यने स्पष्ट कह दिया कि यह व्यासकी उक्ति है। इससे भागवत व्यासकृत है, यह भी सिद्ध होता है और साथ ही भागवतकी शंकराचार्यसे प्राचीनता भी सिद्ध हो जाती है।

९. श्रीशंकराचार्यके गुरु गोविन्दपाद और उनके गुरु श्रीगौडपादाचार्य थे, यह सम्प्रदाय-परम्परा और इतिहाससे सिद्ध है। उन्होंने पञ्चीकरणकी व्याख्यामें लिखा है—'जगृहे पौरुषं रूपम्—इति भागवतमुपन्यस्तम्।' यह श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तीसरे अध्यायका पहला श्लोक है। गौडपादाचार्यका दूसरा ग्रन्थ है—'उत्तरगीता'की टीका। उसमें उन्होंने 'तदुक्तं भागवते' लिखकर दशम स्कन्धके चौदहवें अध्यायका चौथा श्लोक उद्धृत किया है। वह श्लोक निम्नलिखित है—

श्रेयःश्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
विलश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

केवल उद्धृत किया हो सो बात नहीं, 'माण्डूक्योपनिषद्'पर उन्होंने जो कारिकाएँ लिखी हैं, उनमें भी पूर्णरूपसे श्रीमद्भागवतका आश्रय लिया है। 'माण्डूक्यकारिका'के बहुत-से भाव भागवतके ही प्रसाद हैं। जो लोग ऐसा मानते है कि गौडपादकी कारिकाओंसे पीछे भागवत बना है और कारिकाओंसे भागवतमें भाव लिये गये हैं, वे अद्वैत-सम्प्रदायसे अनभिज्ञ हैं; क्योंकि सम्प्रदायमें व्यासके शिष्य शुकदेव और शुकदेवके शिष्य गौडपाद माने जाते हैं। इसलिए यही मानना सर्वथा युक्तियुक्त है कि गौडपादने कारिकामें भागवतका भाव लिया है।

१०. सन् ९५७ ई० से सन् १०३० ई० तक महमूद गजनवी भारतपर बार-बार आक्रमण करता रहा। उन दिनों एक मुसलमान अल्बेरूनीने भारतमें रहकर हिन्दू-धर्म और शास्त्रोंका अध्ययन किया और उसके आधारपर एक पुस्तक लिखी। उसके लिखनेका समय सन् १०३० ई० है। सन् १९१४ ई० में सचाऊ साहबने उसका अंग्रेजी अनुवाद किया और वह टबनर ग्रन्थमाला लन्दनसे प्रकाशित हुआ। अब उसका हिन्दी-अनुवाद भी हो चुका है। उससे सिद्ध होता है कि सन् १००० ई० के लगभग भारतमें विष्णुपरक श्रीमद्भागवत प्रसिद्ध था और उसकी गणना प्रामाणिक ग्रन्थोंमें थी।

११. राजशाही जिलेमें जमालगंज स्टेशनके पास तीन मीलपर पहाड़पुर नामक एक ग्राम है; जैसा कि खोजसे मालूम हुआ है, उसका नाम सोमपुर धर्मपाल बिहार है। सन् १९२७ ई० की खुदाईमें वहाँ बहुत-सी मूर्तियाँ, स्तूप और शासन-पत्र प्राप्त हुए हैं। उनके अनुसार वहाँ जितनी चीजें मिली हैं, सब पाँचवीं शतीकी हैं। उनमें श्रीराधाकृष्णकी युगलमूर्ति भी है। आधुनिक अन्वेषकोंका मत है कि श्रीमद्भागवतके पूर्व श्रीराधाकृष्णकी युगल-उपासना प्रचलित न थी, अन्यथा श्रीमद्भागवतमें राधाकी चर्चा भी अवश्य होती।* यदि उनकी यह बात थोड़ी

---

* आधुनिक ऐतिहासिकोंकी यह मान्यता सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि श्रीराधाकृष्णकी उपासना आधुनिक है, तथापि 'तुष्यतु दुर्जनः' न्यायसे उनके लिए ही उनका मत उद्धृत कर दिया गया है।

देरके लिए मान भी ली जाय तो भी पाँचवीं शतीमें राधाकृष्णकी मूर्तियोंका मिलना इस बातको सूचित करता है कि श्रीमद्भागवतकी रचना उससे पूर्व हो चुकी थी ।

१२. दिल्लीश्वर प्रसिद्ध हिन्दू नरपति महाराज पृथ्वीराजके दरबारी कवि और उनके मन्त्री चन्दबरदाईने, जिनकी प्रतिभा सन् ११९१ ई० में प्रसिद्ध हो चुकी थी, अपने 'पृथ्वीराजरासो' ग्रन्थमें परीक्षितके सर्पद्वारा डँसे जानेकी, भगवान्के दसों अवतारोंकी तथा श्रीकृष्णके भागवतोक्त चरित्रकी कथा कहते हुए स्पष्ट शब्दोंमें श्रीमद्भागवतका उल्लेख किया है—

'भाग्वत्त सुनहि जो इक्क चित्त, तौ सराप छुट्टय अक्रम ।'
····कीर (शुकदेव) परिषत्त (परीक्षित्) सम ।'
'लीला ललित मुरारकी सुख मुनि कहिय अपार ।'

चन्दबरदाई बोपदेवसे बहुत पहले हो चुके हैं। भागवतको बोपदेवकृत बतलानेवालोंमें-से कुछ लोगोंने बोपदेवको गीत-गोविन्दकार भक्तकवि जयदेवका भाई बतलाया है, जो सर्वथा असङ्गत बात है; क्योंकि जयदेव गौड़ेश्वर लक्ष्मणसेनके दरबारी कवि थे, जिन्हें सन् १११८ ई० में अधिकार मिला था और बोपदेव हुए हैं तेरहवीं शताब्दी में। चन्दबरदाईने भी अपने 'रासो' में जयदेव कविका उल्लेख किया है । इससे भी सिद्ध है, श्रीमद्भागवत बोपदेवसे बहुत पहले रचा गया है।

यहाँ जिन प्रमाणोंका उल्लेख किया है, वे बहुत ही थोड़े हैं। भारतके प्रायः सभी बड़े-बड़े विद्वान्, आचार्य और संतोंने श्रीमद्भागवतके प्रमाण उद्धृत करके अपनी-अपनी कृतियोंको गौरवान्वित किया है। इन प्रमाणोंसे इतनी बात तो बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि ईसाके पूर्व भी श्रीमद्भागवत विद्यमान था । जो लोग इसको आधुनिक ग्रन्थ कहते हैं. उनका मत कदापि ग्राह्य नहीं है ।

इतना सिद्ध हो जानेपर कि श्रीमद्भागवत महापुराण है और वह ईसासे बहुत पहले विद्यमान था, यह प्रश्न होता है कि अन्ततः इसकी रचना कब हुई । पद्मपुराणान्तर्गत भागवत-माहात्म्यमें श्रीमद्भागवतके तीन सप्ताहोंका वर्णन आता है—

१. भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमनके पश्चात् तीस वर्ष कलियुग बीत जानेपर भाद्रपद मासमें नवमी तिथिसे श्रीशुकदेवने परीक्षित्को कथा सुनाना प्रारम्भ किया था ।

२. उसके पश्चात् दो-सौ वर्ष और व्यतीत हो जानेपर, अर्थात् कलियुग संवत् २३० आषाढ़ शुक्ल नवमीसे गोकर्णने धुन्धुकारी कथा सुनायी थी ।

३. उसके पश्चात् तीस वर्ष और बीत जानेपर, अर्थात् कलियुग संवत् २६० में सनत्कुमारादिने यह कथा सुनायी थी । (देखिये भागवत-माहात्म्यका अध्याय ६)

इन प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम-गमनकी लीलाके पश्चात् तीस वर्षके भीतर ही भगवान् व्यासने महाभारत और श्रीमद्भावतका निर्माण करके अपने शिष्योंको पढ़ा दिया था ।

———

सबसे पूर्व अपूर्व

भगवान् नारायणने सृष्टिके प्रारम्भमें किंकर्तव्यविमूढ़ ब्रह्माको करुणावश इस ज्ञानप्रदीपका दान किया था (१२. १३. १९)। उन्होंने ही ब्रह्माके रूपसे नारदको, नारदके रूपसे व्यासको, व्यासके रूपसे शुकदेवको, और शुकदेवके रूपसे राजा परीक्षित्‌को यह अध्यात्मदीप दिया। प्रथम स्कन्धके द्वितीय अध्यायान्तर्गत तीसरे श्लोकमें श्रीमद्भागवतको और दशम स्कन्धके तृतीय अध्यायके २४वें श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णको 'अध्यात्मदीप' कहा गया है। इसका रहस्य यह है कि श्रीमद्भागवत और भगवान् श्रीकृष्ण अभिन्न हैं। इसीलिए भगवान्‌के प्रकाशक भी भगवान ही हैं। वे स्वयंप्रकाश और अपनी महिमामें प्रतिष्ठित हैं। जो-जो श्रीमद्भागवतका श्रवण एवं ग्रहण करता गया, वह-वह भगवान्‌से एक होता गया। इसीसे प्रत्येक वक्ता भगवत्स्वरूप है और यह प्रवचनरूप श्रीमद्भागवत भगवत्स्वरूप है। वक्ताके रूपमें आविर्भाव भगवान्‌की करुणा है। इसीलिए नारायणने तो करुणावश इसको प्रकाशित किया ही, उन-उन वक्ताओंके रूपमें भी करुणासे ही इसका प्रकाशन हुआ। आप देख सकेंगे कि श्रीमद्भागवतमें नारायणमें, ब्रह्मामें, नारदमें, व्यासमें और शुकदेवमें भी प्रवचनकी प्रवृत्ति केवल 'कारुण्यतः, कारुण्यात्, कारुणिकस्य'—करुणावश ही है। ठीक ही है, चित्तमें स्नेह या करुणाका उदय हुए बिना रहस्य प्रकाशित नहीं किया जाता।

स्वयं भगवान् ही मङ्गलमय, अचिन्त्य, अनन्त गुणोंको धारण करके शुकदेवके रूपमें प्रकट हुए हैं और गर्भमें ही ब्रह्मास्त्रसे दग्ध एवं अपने अनुग्रहसे उज्जीवित परीक्षित्‌को सर्वदाके लिए जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त कर रहे हैं। राजर्षि परीक्षित्‌को ब्रह्मनिर्वाणकी प्राप्ति हुई (देखिये, १२. ६. ५, १०, १३, 'प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणम्', 'ब्रह्मभूतो महायोगी', 'ब्रह्मभूतस्य राजर्षेः')। यद्यपि श्रीमद्भागवतके अनेक वक्ता तथा श्रोता हैं, तथापि मुख्य वक्ता और मुख्य श्रोता शुकदेव-परीक्षित ही हैं, क्योंकि ब्रह्माने सृष्टिके निर्माणके लिए, नारदने भक्ति-भावके विस्तारके लिए, व्यासने लोक-कल्याणके लिए श्रीमद्भागवतका श्रवण किया। शौनकादि ऋषियोंने दीर्घकालीन यज्ञमें अवकाशके समय कर्मपूर्तिके लिए श्रवण किया, परन्तु राजर्षि परीक्षित्‌ने केवल परमात्माके अनुभवके लिए श्रवण किया। उग्रश्रवामें बलरामजीके द्वारा स्थापित वक्तृत्व है अर्थात् उस समय भगवदावेश है। व्यास कलाकार हैं, नारद मानसावतार हैं, ब्रह्मा गुणावतार हैं। वे अपने-अपने कार्य पूर्ण करते हैं। शुकदेवजी केवल राजर्षि परीक्षित्‌के लिए, गजेन्द्रकी रक्षाके लिए हरिके समान, स्फूर्ति-अवतार हैं।

श्रीमद्भागवत-श्रवणके अनन्तर ब्रह्मा सृष्टिकर्ममें लग गये, नारद भक्तिभावके प्रचार-प्रसारमें लगे, व्यासजीने समाधि लगाकर श्रीकृष्ण-लीलाओंका अनुस्मरण किया और लोककल्याणके लिए भागवतका निर्माण किया। शौनकको श्रवणानन्दका अनुभव तो बहुत हुआ, परन्तु श्रवण गौण होनेके कारण केवल यज्ञ-फलकी समग्रता ही प्राप्त हुई, मोक्ष अथवा भगवल्लीलामें प्रवेश नहीं हुआ। परन्तु परीक्षित् बिना किसी व्यवधानके तत्काल श्रवणमात्रसे ही मुक्त हो गये। इसलिए श्रोताओंमें मुख्य परीक्षित् ही हैं। माहात्म्यमें उन्हें ही 'श्रवणसे मुक्ति का साक्षी' कहा गया है। बारहवें स्कन्धके अन्तमें संसार-सर्पसे दष्ट परीक्षित्‌की मुक्तिका अनुस्मरण है। श्रवणनिष्ठा भी उन्हींकी प्रसिद्ध है।

शुकदेव अवधूतशिरोमणि हैं। न तो नारायणके समान वैकुण्ठनाथ लक्ष्मीलालितपदारविन्द ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं और न ब्रह्माके समान सृष्टि-निर्माता। ये न वीणापाणि नारदके समान प्रचारक-प्रसारक हैं और न तो व्यासके समान लोकसंग्रही। ये तो अवधूतशिरोमणि हैं और इतने गूढ़भावसे रहते हैं कि देखनेमें मूढ़-से लगते हैं। इनके वर्णनमें कहा गया है कि शुकदेवजी महायोगी, समदर्शी, निर्विकल्प एवं ब्रह्मनिष्ठ थे। अविद्या-निद्रा उनके पास कभी फटकती नहीं। उन्हें स्त्री-पुरुषके भेदका ज्ञान ही नहीं था। वे उन्मत्त, मूक एवं जड़के समान विचरण करते थे। वे निवृत्तिनिरत, सबकी उपेक्षा करनेवाले, आत्माराम एवं मौनी थे। जब राजा परीक्षित् शाप होनेपर अपने साम्राज्यका परित्याग करके गंगातटपर ऋषियोंकी सभामें बैठ गये, तब भी वहाँ शुकदेवजी गुप्तरूपसे ही विराजमान थे। राजर्षि परीक्षितके प्रायोपवेश और प्रश्नके अनन्तर ही उन्होंने अपनेको प्रकट किया और उस समय प्रथम स्कन्धमें जो वर्णन है वह विशेष अनुसंधान करने योग्य है। जैसे किसी भक्तके सामने भगवान्‌के प्रकट होनेपर उनके सर्वांग-सौन्दर्यका निरूपण किया जाता है, इसी प्रकार वहाँ शुकदेवजीकी अड़तीस विशेषताओंका वर्णन है। ऐसे विशिष्ट पुरुषका वक्ता होना और भगवान्‌के अनुग्रहभाजन परीक्षित्‌का श्रोता होना—यह श्रीमद्भागवतकी एक ऐसी विशेषता एवं अपूर्वता है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

वक्ताओं एवं श्रोताओंकी परम्पराके अतिरिक्त यदि विषयकी गम्भीरतापर एक दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होता है कि यह तो अखिल श्रुतिसार शुकदेवजीकी स्वानुभूति एवं पुराणगुह्य है। यह मनोवृत्तियोंके गुप्त-से-गुप्त रहस्योंको प्रकट करनेवाला 'अध्यात्मदीप' है और सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानकी रश्मियोंको बिखेरनेवाला ज्ञानप्रदीप पुराणार्क है। इसमें शुद्धान्तःकरण पुरुषोंके लिए परमकल्याणकारी तत्त्ववस्तुका निरूपण है। साधनकी दृष्टिसे मोक्षाभिसंधिरहित निष्काम भगवदर्पित धर्म, जिसको समूचे भागवतमें 'भक्तियोग' अथवा 'भागवतधर्म' के नामसे कहा गया है, वर्णन है और ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिए सहस्र-सहस्र उपायों में सर्वश्रेष्ठ उपाय यह भक्तियोग ही है—

तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः।
यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः॥
(भा० ७. ७. २९)

साधन-भक्तिसे साध्यभक्ति अथवा प्रीतिकी प्राप्ति होती है और उसीसे परमात्माका सर्वत्र दर्शन और परात्मैकत्वदर्शन सम्पन्न होता है। भक्तिसे ब्रह्मज्ञान कैसे होता है—इसकी प्रक्रिया श्रीमद्भागवतमें देखिये—

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्‌गदं
प्रोत्कण्ठ उद्‌गायति रौति नृत्यति॥
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद् हस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः॥
तदा पुमान् मुक्त समस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्॥
अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः
शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम्।
तद् ब्रह्म निर्वाणसुखं विदुर्बुधा-
स्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम्॥
(७. ७. ३४–३७)

"जब भगवान्‌के लीलाशरीरोंसे किये हुए अद्भुत पराक्रम, उनके अनुभव, गुण और चरित्रोंको श्रवण करके अत्यन्त आनन्दके उद्रेकसे मनुष्यका रोम-रोम खिल उठता है, आँसुओंके मारे कण्ठ गद्‌गद् होता जाता है और वह संकोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है; जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागलकी तरह कभी हँसता है, कभी करुण क्रन्दन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्भावसे लोगोंकी वन्दना करने लगता है; जब वह भगवान्‌में ही तन्मय हो जाता है; बार-बार लम्बी साँस खींचता है और संकोच छोड़कर 'हरे ! जगत्पते!! नारायण !!!' कहकर पुकारने लगता है, तब भक्तियोगके प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावकी ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार—भगवन्मय हो जाता है । उस समय उसके जन्म-मृत्युके बीजोंका खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर लेता है । इस अशुभ संसारके दलदलमें फँसकर अशुभमय हो जानेवाले जीवके लिए भगवान्‌की यह प्राप्ति संसारके चक्करको मिटा देनेवाली है । इसी वस्तुको कोई विद्वान् 'ब्रह्म' और कोई 'निर्वाण-सुख' के रूपमें पहचानते हैं । इसलिए मित्रो ! तुमलोग अपने-अपने हृदयमें हृदयेश्वर भगवान्‌का भजन करो ।"

श्रीमद्भागवतकी अपूर्वता ही यह है कि इसमें ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसहित नैष्कर्म्यका निरूपण किया गया है । यह वैष्णवोंका धन है तो परमहंसोंके ज्ञानका निधान है । इसमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि ईश्वरकी भक्ति करनेसे जो-जो ईश्वरसे भिन्न प्रतीत होता है, उस-उससे वैराग्य और ईश्वरतत्त्वका अधिकाधिक अनुभव होता जाता है, अर्थात् वैराग्य पदार्थ-शोधनमें सहकारी है और ज्ञान अन्तरङ्ग है । इस प्रकार भक्ति अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग—दोनों साधनोंकी जननी है । जैसे भोजन करते समय प्रत्येक ग्रासके साथ-साथ तुष्टि, पुष्टि और क्षुधानिवृत्ति होती है, उसी प्रकार भक्तिका एक-एक भाव परमात्माके प्रति अनुरक्ति, संसारके प्रति विरक्ति और ब्रह्मानुभूतिका कारण बनता जाता है । यद्यपि उपनिषदोंमें भी भक्तिभावकी महिमाका स्पष्ट वर्णन है—'जिसके हृदयमें ईश्वर और गुरुके प्रति परमभक्ति होती है, उसी अधिकारी पुरुषके प्रति औपनिषद् अर्थ अपनेको प्रकाशित करते हैं—'यस्य देवे परा भक्तिः', 'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये', मन्त्रभागमें भी अनेक भक्तिभावके सूचक स्तुतिवाक्य हैं, तथापि इस परमहंस-संहिता में भक्तिभावकी अपूर्व महिमाका अपूर्व उल्लेख हुआ है; क्योंकि इसमें लौकिक वस्तुओंसे लेकर परमार्थ वस्तुकी उपलब्धितक भक्तिको साधन स्वीकार किया गया है—

> अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
> तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
> (भा० २. ३. १०)

"जो बुद्धिमान् पुरुष है—वह चाहे निष्काम हो, कामनाओंसे युक्त हो अथवा मोक्ष चाहता हो—उसे तो तीव्र भक्तियोगके द्वारा केवल पुरुषोत्तम भगवान्‌की ही आराधना करनी चाहिये ।"

केवल साधनके ही रूपमें नहीं, जब भक्ति स्वभावसिद्ध हो जाती है, तब वह अद्वेष आदि सद्‌गुणोंके समान तत्त्वज्ञानके अनन्तर भी जीवन्मुक्त महापुरुषके हृदयमें रहती है और जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखका आस्वादन कराती है । श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि जीवन्मुक्त तो अनेक होते हैं, परन्तु उनमें नारायण-परायण कोई-कोई होते हैं (६. १४. ५) । भक्ति भगवदाकार वृत्ति होनेके कारण प्रारब्धजन्य सुख-दुःखोंका भान नहीं होने देती, नवीन वासनाओं और दोषोंको आने नहीं देती, संसारमें होनेवाले राग-द्वेषको काटती है, संचित कर्मराशिको भगवान्‌की ओर उन्मुख करती है, क्रियमाण और आगामी कर्मको सुधारती है, वैराग्य और शमदमादि साधन-सम्पत्तिको बढ़ाती है । पदार्थ-शोधनमें

स्पष्टता लाती है और विद्याकी उत्पत्ति होकर अविद्याकी निवृत्ति होनेपर अन्ततः तृप्तिके रूपमें यावज्जीवन निवास करती है; इसी भक्तिरूप अपूर्वताके द्वारा धर्म, क्रियायोग, अष्टाङ्गयोग, बुद्धियोग आदि सभी साधनोंको परमात्माकी अनुभूतिमें सहायक बना देना और स्वर्गादि रूप फलकी ओर ले जानेवाली उनकी गतिको परमात्माकी ओर मोड़ देना—यह श्रीमद्भागवतकी अपनी विशेषता है।

ग्रन्थमें जहाँ-जहाँ भगवदवतारके प्रसङ्ग हैं, वे भी अपूर्व चमत्कारिणी रीतिसे भगवत्तत्त्वके ही बोधक हैं। वे आधिभौतिक एवं आधिदैविक रूपसे तो जनकल्याणकारी एवं अन्तःकरणशोधक हैं ही, आध्यात्मिक धरातलपर भी अविद्या एवं उसकी वंशपरम्पराके निवर्तक हैं। कर्दम, सुतपा, कश्यप, वसुदेव आदि जितने भी भगवान्‌के पिता-पदवाच्य हैं, वे शुद्ध सत्त्वात्मक शमादि सद्‌गुण-प्रधान शुद्ध मनके वाचक हैं और देवहूति, पृश्नि, अदिति, देवकी कौसल्या तीक्ष्ण एवं एकाग्र प्रज्ञाके उपलक्षण हैं। शिशुरूपमें भगवान्‌का जन्म ब्रह्मचैतन्यका वृत्त्यारूढ़ होना है। जैसे व्यवहारमें कोई भी कर्म अथवा ज्ञान इन्द्रियाँ ही नहीं करतीं, तत्तद् वृत्त्यारूढ़ चेतन ही कर्ता तथा ज्ञाता होता है, इसी प्रकार वृत्त्यारूढ़ चेतन ही अविद्या और उसके कार्यको नष्ट करता है, जब वह ब्रह्मरूप विषयसे अभिन्नरूपमें अपनेको जानता है। फिर तो वृत्ति अपने कारण अविद्याकी निवृत्तिके साथ-ही-साथ बाधित हो जाती है एवं ब्रह्मसे अभिन्न चेतन ज्यों-का-त्यों रह जाता है। इसीसे अवतार चेतनाके आविर्भाव और लीला-संवरणके वर्णन आते हैं। महाप्रलयमें भगवान्‌का नौकाविहार बीजविशिष्ट कारणोपाधिक चेतनका ही वर्णन है। समुद्र-मन्थनके प्रसङ्गमें देवताओंको सलाह देना, मन्दराचलको ले आना; कच्छपरूपसे धारण करना, मन्दराचलको ऊपर उठनेसे रोकना, वासुकिको पकड़कर स्वयं मन्थन करना, धन्वन्तरिके रूपमें अमृत कलश लेकर प्रकट होना, मोहिनीके रूपमें पिलाना और नारायणके रूपमें देवताओंको विजयी बनाना—यह सब अमृतरूप अमृतत्त्वकी प्राप्तिके ही साधन एवं साध्यरूप प्रमेयोंका विवरण है।

श्रीकृष्णावतारके प्रसङ्गमें भी देवकी-वसुदेवरूप शुद्ध प्रज्ञा एवं शुद्ध सत्त्वसे आविर्भूत गोकुलमें जाना और वहाँ यशोदा-नन्दको माता-पिताके रूपमें स्वीकृति देना इस बातका सूचक है कि भगवान्‌के माता एवं पिता वास्तविक नहीं होते, भावकी गाढ़ता एवं दृढ़ताके तारतम्यसे ही उनमें मातृत्वका एवं पितृत्वका उपचार होता है। अविद्या पूतना है, शकटासुर जड़वाद है, वकासुर दम्भ है, अघासुर पाप है, धेनुकासुर देहाध्यास है, कालियनाग भोगासक्तिरूप विष है—ये सब बातें ध्यान देनेयोग्य हैं। ये केवल मनगढ़न्त कहानियाँ नहीं हैं, भौतिकरूपसे ऐतिहासिक सत्य हैं, आधिभौतिक रूपसे देवासुर संग्रामके दैत्य हैं, आध्यात्मिक-रूपसे जीवके जीवनमें रहनेवाले विकार हैं। इनकी निवृत्ति स्वयंप्रकाश सर्वाधिष्ठान सामान्य-चेतनके द्वारा नहीं होती, वह तो इनका प्रकाशक ही है। इसलिए अवतार-चेतनकी आवश्यकता होती है। प्रयोजन पूर्ण हो जानेपर उनकी आवश्यकता नहीं रहती, इसलिए लीला-संवरण भी होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन पौराणिक कथाओंमें कितनी विलक्षण प्रक्रियासे भगवत्तत्त्वका रहस्य समझाया गया है।

भगवान् श्रीकृष्णकी जो चीरहरण आदि शृङ्गाररस-प्रधान लीलाएँ हैं, उनका भी एक अद्‌भुत भाव है। यह देखकर आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है कि ग्रामीणोंको, बाल-वृद्ध-स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाली आख्यायिकाओंके रूपमें गम्भीर तत्त्वका कितना रोचक निरूपण कर दिया है। चीरहरणका अर्थ आवरणभङ्ग है और रासलीलाका अर्थ अन्तःकरणकी शान्त एवं मुदित, लीन तथा गतिशील—सभी वृत्तियोंमें भगवत्तत्त्वका अनुपमरूपसे स्फुरित होना है। इस आध्यात्मिक हल्लीसक नृत्यका, जिसमें एक ही नट अनेक प्रकारसे अनेक-अनेक नटियोंके साथ नृत्य करता है, विलास एवं

विहार करता है, जिस ज्ञानसम्पन्न साधकको अनुभव होने लगता है, वह तत्त्वदर्शी हो जाता है एवं जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखका भाजन बनता है ।

श्रीकृष्णके पहले व्रजवासियोंका त्याग और फिर यदुवंशियोंका विध्वंस मुक्तिका स्वरूप प्रदर्शित करनेके लिए उनकी निरोधालीलाके ही अंग हैं । वे कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, कौरवादिरूप केवल क्लिष्ट वृत्तियोंका ही संहार नहीं करते प्रत्युत यदुवंशियोंके रूपमें जो सात्त्विक वृत्तियाँ हैं, उनका भी निरोध एवं बाध करते हैं, क्योंकि इनके बिना महानिर्वाणरूप कैवल्यमुक्तिका ठीक-ठीक प्रकाशन नहीं होता । मार्कण्डेयोपाख्यान भी नाम-रूपात्मक प्रपञ्चकी मायामात्रताका बोध करानेके लिए ही है । इस प्रकार यह बात सिद्ध हो जाती है कि आभास एवं निरोधके अद्वितीय अधिष्ठान भगवान् अथवा परमात्माके वस्तुस्वरूप आश्रय ब्रह्मका साक्षात्कार करानेके लिए श्रीमद्भागवतमें अपूर्व शैलीसे युक्तियाँ एवं उपपत्तियाँ निरूपित हुई हैं । इस बातमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि श्रीमद्भागवतके श्रवणमात्रसे ही तत्काल हृदयमें ईश्वरका आविर्भाव हो जाता है और वह सर्वथा रहता है ।

श्रीमद्भागवतकी इस अपूर्वतासे ही यह बात ध्यानमें आजाती है कि इसका रहस्य कितना गम्भीर है ।

श्रीमद्‌भागवतकी पञ्चपञ्चाध्यायी

१. रास पञ्चाध्यायी—दशमके २९ से ३३ अध्याय तक।

२. भक्ति पञ्चाध्यायी—तृतोय स्कन्ध कपिलोपाख्यान अध्याय २५ से २९ तक ।

३. अध्यात्म पञ्चाध्यायी—चतुर्थ स्कन्धके २५ से २९ अध्याय तक (पुरञ्जनोपाख्यान) ।

४. कर्म पञ्चाध्यायी—सप्तम स्कन्धके ११ से १५ अध्याय तक ।

५. ज्ञान पञ्चाध्यायी—पञ्चम स्कन्धके ९ से १३ अध्याय तक (जडभरतोपाख्यान) ।

—पुराणाचार्य पं० श्रीनाथजी शास्त्री

श्रीमद्भागवत महापुराण है

श्रीमद्भागवत संस्कृत वाङ्मयकी सर्वोत्कृष्ट परिणति है। उसके लक्ष्य, साधन और शैली महान् तथा विलक्षण हैं एवं उसका स्वरूप भी अत्यन्त गम्भीर, मधुर तथा प्रसादपूर्ण है। उसका अध्यात्म, उसका काव्य और उसकी समाज-संघटन-प्रणाली सम्पूर्ण संसारके लिए गौरवकी वस्तु है। जीवोंके परम कल्याणके लिए ही इस ग्रन्थरत्नका आविर्भाव हुआ है। यह भगवान्का साक्षात् स्वरूप है, प्रसाद है। उद्धवकी प्रार्थनासे भगवान्ने भागवतमें प्रवेश किया है। इसमें उन्होंने अपना विशेष तेज स्थापित किया है। वाङ्मयी मूर्ति धारण करके वे ही भागवतके रूपमें प्रकट हुए हैं। आज भी श्रद्धा-भक्ति और भावकी दृष्टिसे देखनेपर श्रीमद्भागवतके रूपमें साक्षात् भगवान्के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। भगवान् और श्रीमद्भागवतका आश्रयाश्रयिभाव सम्बन्ध है।

'भागवत' शब्दका अर्थ है—जो भगवान्के द्वारा प्रोक्त हो। श्रीमद्भागवतके अनेक प्रसङ्गोंमें भक्तके अर्थमें 'भागवत्' शब्दका प्रयोग हुआ है। भक्तके हृदयमें, दृष्टिमें, रोम-रोममें भगवान्का निवास है; भक्त केवल भगवान्की लिए है। उसके साध्य, साधन, जीवन एवं सब-कुछ भगवान्के हैं। ठीक वैसे ही श्रीमद्भागवतमें जो कुछ है, वह स्वयं जो कुछ है, सब भगवान्का ही है; सब भगवान् ही है। यह सब सत्य परम सत्य होनेपर भी आधुनिक मनोवृत्ति इसको 'भावुकता' कहती है। इसलिये भागवतकी रक्षाके लिए नहीं—क्योंकि वह तो स्वयं सुरक्षित है; तार्किकोंके समाधानके लिए नहीं—क्योंकि तर्कोंका अन्त नहीं है, भक्तजनोंके संतोषार्थ भागवतके सम्बन्धमें यहाँ कुछ बातें लिखी जाती हैं।

आर्यजातिमें सब प्रकारकी उन्नतिके लिए प्रायः दो प्रकारके शास्त्र स्वीकार किये गये हैं—श्रुति और स्मृति। इनके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड पुस्तक, पिण्डपुस्तक आदि भी शास्त्रोंके भेद हैं, जिनका वर्णन वेदके 'पञ्चनद्यः सरस्वती' मन्त्रमें आयाहै। श्रुति-शब्द नित्य होते हैं। सब युग, सब मन्वन्तर और सब कल्पोंमें उनकी आनुपूर्वी एक-सी ही रहती है। सृष्टिके प्रारम्भमें प्रणव, गायत्री और मन्त्रसंहिताके रूपमें उनका अनाहत नाद होता है। विशुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषिगण उनका श्रवण करते हैं और पीछे अपनी शिष्य-परम्परामें उन्हीं शब्दोंमें उनका विस्तार करते हैं। वेद शब्दशः एक ही होते हैं, देश और कालके व्यवधानसे उनमें अन्तर नहीं पड़ता। वे परमात्माके निःश्वसित शब्द हैं।

दूसरे प्रकारके शास्त्र 'स्मृति' कहलाते हैं।' मन्वादि स्मृति, महाभारतादि इतिहास, श्रीमद्भागवतादि महापुराण स्मृति-शास्त्रके अन्तर्गत हैं। महान् तपस्वी ऋषियोंके परम पवित्र अन्तःकरणमें भगवान्की प्रेरणासे इन भावोंका आविर्भाव हुआ करता है। ये शास्त्र भावरूपसे तो सर्वदा एक ही रहते हैं, परन्तु इनके शब्दोंकी आनुपूर्वी परिवर्तित होती रहती है। सृष्टिके प्रारम्भमें प्राचीन भावोंकी स्मृति होती है और स्मृतिके आधारपर रचे जानेके कारण वे 'स्मृतिशास्त्र' कहलाते हैं। यद्यपि पुराणोंमें ऐसे वचन भी मिलते हैं जिनमें श्रुतियोंके समान ही पुराणोंको शब्दरूपमें नित्य कहा गया है, तथापि पुराणोंके निर्माणका समय निर्दिष्ट होनेके कारण उन वचनोंका महत्व वर्णन करके उनकी वेद-समकक्ष प्रामाणिकताके समर्थक समझना चाहिए। जगत्के इतिहासमें उथल-पुथल और उलट-पलट होनेपर भी ये एक-सरीखे ही रहते हैं। इसीसे वेद, उपनिषद् और मनुसंहिता आदिमें स्पष्ट बतलाया गया है कि जैसे भगवान्के निःश्वाससे ऋग्वेद-यजुर्वेद आदि प्रकट हुए हैं, वैसे ही इतिहास-पुराण भी प्रकट हुए हैं।

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम् ।'

(वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषद् ४ ११.५)

'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् ।'

(छान्दोग्योपनिषद् ७.१.२)

इनके अतिरिक्त संहिताभागमें भी अनेक स्थानोंपर पुराणोंका उल्लेख मिलता है। गोपथब्राह्मणमें और अथर्ववेदमें ब्राह्मण-ग्रन्थोंके साथ ही पुराणोंका वर्णन आता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदोंमें आये हुए 'पुराण' शब्दका अर्थ ब्राह्मणग्रन्थ नहीं है। वेदोंकी ही भाँति पुराण भी भगवान्के निःश्वास हैं और वे इन्हीं भावोंको लेकर प्रत्येक कल्पके प्रारम्भमें प्रकट हुआ करते हैं।

उच्च ज्ञानसम्पन्न ऋषि-मुनियोंके लिए वेदोंका अर्थ अत्यन्त स्पष्ट है—परन्तु साधारण लोगोंके लिए वह अत्यन्त दुरूह है और उसकी भाषा भी साधारण भाषासे विलक्षण ही है। इसलिये सर्वसाधारणको वेदोंका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वेदोंके एक ऐसे भाष्यकी आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा सर्वसाधारण अपने लक्ष्य-लक्षण आदिको पहचान सकें। वेदोंके उपबृंहणके लिए इतिहास और पुराण साधन माने गये है।

'इतिहासपुराणभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।'

तीन गुण, तीन भाव और त्रिविध अधिकारियोंके भेदसे वेदोंके अर्थ भी तीन प्रकारके होते हैं। अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भावोंको प्रकट करनेके लिए एक ही मन्त्रमें तीन प्रकारके अर्थ भरे रहते हैं। न केवल वेद ही, संसारकी समस्त वस्तुएँ त्रिविध भावसे व्याप्त हैं। 'नेत्र' शब्दके उच्चारणसे अधिभूत भावमें रूप-तन्मात्रा इन्द्रियका ग्रहण होता है। साधकके भूमि-भेदके अनुसार उसे 'नेत्र' शब्दके उच्चारणसे भिन्न-भिन्न भावोंकी अनुभूति होती है। ठीक इसी सिद्धान्तके अनुसार पुराणोंमें भी वेदमन्त्रोंसे तीनों प्रकारकी शैलीमें वर्णन भी किया गया है। पुराणसंहितामें कहा गया है कि शास्त्रोंमें तीन प्रकारकी भाषा होती है—'समाधि भाषा', 'परकीया भाषा' और 'लौकिक भाषा'। 'समाधि भाषा' उसको कहते हैं, जिसमें समाधिगम्य विषयोंका बिना रूपक आदिकी सहायताके स्पष्टरूपमें वर्णन किया गया हो—जैसे जीव, ईश्वर, प्रकृति आदिके स्वरूपका वर्णन। समाधिगम्य विषयोंका ही जब रूपक अथवा लौकिक विषयोंके समान वर्णन किया जाता है, तब उसको 'लौकिकी भाषा' कहते हैं—जैसे ब्रह्माका अपनी कन्यापर मुग्ध होना, ब्रह्मा और विष्णुका शिवलिङ्गका ओर-छोर नहीं पाना आदि। 'परकीया भाषा' उसको कहते हैं, जिसके द्वारा धर्म-संस्थापनके लिए किसी भी लोक, कल्प अथवा व्यक्तिकी यथार्थ कथा कही गयी हो। इन्हीं तीनों भाषाओंके द्वारा पुराण वेदगत अर्थोंका वर्णन करते हैं।

उपर्युक्त विवरणसे यह सिद्ध होता है कि वेद और उनके भाष्यस्वरूप पुराण अनादि और नित्य हैं। ये सृष्टि एवं प्रलयके पूर्व और पश्चात् भी विद्यमान् रहते हैं। इसलिये इनके निर्माणकालके सम्बन्धमें जो अनुसधान होता है, वह यदि ब्रह्माण्डके विस्तार और दैवी राज्यपर दृष्टि रखकर नहीं किया गया तो सर्वथा अपूर्ण रहेगा और उसके द्वारा भ्रमकी ही विशेष वृद्धि होगी। शास्त्रोंकी अनादिता स्वीकार करते हुए भी वेदोंके अतिरिक्त जिनकी आनुपूर्वी नित्य नहीं है, उन स्मृतिरूप शास्त्रोंके प्रकट होनेका समय अनुसंधान करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। फिर भी दो बातोंका स्मरण तो निरन्तर रखना ही चाहिए—एक तो दिव्य शरीरवाले सिद्ध ऋषियोंकी आयु भी सामान्य पुरुषोंकी भाँति सौ-पचास वर्षकी मान ली जायगी तो भी ठीक-ठीक ग्रन्थ-निर्माणका समय नहीं मालूम हो सकेगा और यदि उन ग्रन्थोंमें लिखे हुए समयको अप्रामाणिक मानेंगे तो भी उनके समय-निर्णयसे विशेष लाभ न हो सकेगा। जिसपर झूठा होनेका सन्देह है, उसकी

प्राचीनता जानकर भी उसके अनुसार आचरण करनेमें हिचकिचाहट होगी।

प्रत्येक द्वापरयुगके अन्तमें भगवान् विष्णु व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं। मनुष्योंको अल्पबुद्धि, अल्पशक्ति और अल्पायु जानकर वेदोंके चार भाग कर देते हैं। व्यासका 'व्यास' नाम ही इसलिये पड़ा है कि वे वेदोंका विभाजन करते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक द्वापरमें भिन्न-भिन्न व्यास हुआ करते हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा सत्यवतीके गर्भमें उत्पन्न होनेवाले भगवान् कृष्णद्वैपायन ही व्यास हुए हैं (वि० पु० ३.३)। वर्तमान समयमें वेदोंका जो स्वरूप उपलब्ध है, वह इन्हीं वेद-व्यासके द्वारा संगृहीत है। महाभारत और अठारह पुराणोंके कर्त्ता-स्मर्त्ता भी ये ही वेदव्यास हैं। अठारह पुराणोंके नाम प्रायः प्रत्येक पुराणमें आते हैं। वे निम्नलिखित हैं—ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीय पुराण, मार्कण्डेयपुराण, पद्मपुराण आग्नेयपुराण. भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण और ब्रह्माण्डपुराण। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से पुराण और उपपुराण प्राप्त होते हैं। कई पुराण तो दो-दो प्राप्त होते हैं। स्कन्दपुराण एक संहितात्मक है और दूसरा खण्डात्मक है। दोनों ही व्यासकृत हैं। एक पुराण है, एक उपपुराण। वैसे ही श्रीमद्भागवत भी दो प्रकारके प्राप्त होते हैं—एक भागवत और दूसरा देवीभागवत। इनमें-से महापुराणान्तर्गत कौन-सा भागवत है, यह विचारणीय प्रश्न है। देवीभागवतके पक्षमें पाँच बातें कही जाती हैं—

१. महाभारत-निर्माणके पूर्व ही अष्टादश पुराणोंकी रचना हो चुकी थी, ऐसा वर्णन मिलता है*। भागवतकी रचना महाभारतके पश्चात् हुई. जैसा कि भागवतमें लिखा है। तब भागवत व्यासरचित होनेपर भी महापुराण कैसे हो सकता है?

२. श्रीमद्भागवतके टीकाकारोंने भागवतके स्वरूपका निर्णय करनेके लिए प्रथम श्लोककी व्याख्यामें जो वचन उद्धृत किये हैं, वे देवीभागवतपर पूर्णतः घट जाते हैं और श्रीमद्भागवतपर नहीं घटते। इसलिये देवीभागवत ही 'भागवत' शब्दका वाच्यार्थ है।

३. मत्स्यपुराणमें जहाँ पुराणोंके दानका प्रसङ्ग आया है, वहाँ भागवतके साथ हेमसिंहके दानकी भी आज्ञा है। सिंहके साथ देवीभागवतका ही साक्षात् सम्बन्ध है. श्रीमद्भागवतका नहीं। इसलिए भी वेदीभागवत ही भागवत है।

४. वेदव्यासरचित महाभारत, विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण आदि पुराणोंमें जैसे द्राक्षापाक, कैशिकी वृत्ति और सरल भाषाका प्रयोग हुआ है वैसा देवीभागवतमें तो है; परन्तु श्रीमद्भागवतमें ठीक उसके विपरीत नारिकेलपाक, आरभटी आदि वृत्ति और कठोर भाषाका प्रयोग हुआ है। इसलिये श्रीमद्भागवत किसी अन्यकी रचना है और देवीभागवत वेदव्यासकी।

५. ईसाकी तेरहवीं शतीमें वैद्यवर केशवके पुत्र, श्रीधनेश मिश्रजीके शिष्य, देवगिरिनरेश महाराज महादेवके सभापण्डित पण्डितराज श्रीबोपदेवने राजमन्त्री श्रीहेमाद्रिको संतुष्ट करनेके लिए श्रीमद्भागवतकी रचना की। यह सर्वथा स्वतन्त्र उनकी रचना है, इसे महापुराणोंमें स्थान नहीं मिलना चाहिये। इसका खण्डन हो जानेपर देवीभागवत स्वतः ही महापुराण सिद्ध हो जाता है।

---

* अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदूपबृंहितम्॥
(स्कं० पु०)

अष्टादशपुराणानि अष्टौ व्याकरणानि च।
ज्ञात्वा सत्यवतीसूनुश्चक्रे भारतसंहिताम्॥
(म० पु०)

अब इन आपत्तियोंपर क्रमशः विचार किया जाता है।

१. वर्तमान कालमें जो अष्टादश पर्वका महाभारत उपलब्ध होता है, यह भगवान् व्यासके बनाये हुए महाभारतका संक्षिप्त रूप है। भगवान् व्यासने पहले सौ पर्वोंका महाभारत बनाया था। पूर्ण हो जानेपर उन्होंने ऐसा सोचा कि वेद और ब्रह्मसूत्रोंमें द्विजेतरोंका अधिकार नहीं है—विचार करके मैंने इस सौ पर्ववाली संहिताका निर्माण स्त्री, शूद्र और ब्राह्मण-बन्धुओंके लिए किया था। परन्तु यह इतनी बृहत् और गम्भीर हो गयी कि सम्भव है उनके लिए उपयोगी न हो। इसलिये व्यासदेवने अपने दो शिष्य जैमिनि और वैशम्पायनको बुलाकर कहा कि 'तुम इस सौ पर्वके महाभारतका अठारह पर्वके महाभारतके रूपमें संक्षेप कर दो।'

'एतत् पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।
ततस्तु सूतपुत्रेण रोमहर्षणिना पुरा॥
कथितं नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टदशैव तु।'

जैमिनिकृत महाभारतका केवल 'जैमिनीयाश्वमेध' ही प्रचलित है। शेष भाग सुलभ नहीं है। वैशम्पायनकृत महाभारत ही आजकल उपलब्ध होता है। 'समासो भारतस्यायम्' इस उक्तिसे तो यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। अष्टादश पर्ववाले महाभारतके पूर्व अष्टादश पुराणोंका निर्माण हो चुका था, परन्तु सौ पर्ववाले महाभारतके पूर्व नहीं। इसलिये जहाँ पुराणोंके महाभारतसे पूर्व निर्माणका वर्णन आता है, वहाँ अष्टादश पर्ववाले महाभारतसे और जहाँ पश्चात्का वर्णन आता है, वहाँ अठारह पर्ववालेसे—ऐसा समझना चाहिए। सच्ची बात तो यह है कि महाभारत और पुराण एक ही व्यक्तिके बनाये हुए हैं, इसलिये उनमें पूर्वापरभावकी कल्पना ही ठीक नहीं है। गीतामें ब्रह्मसूत्रोंका उल्लेख और ब्रह्मसूत्रोंमें गीताका, पुराणोंमें महाभारतका और महाभारतमें पुराणोंका उल्लेख इस बातका अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है कि ये सब एक काल और एक व्यक्तिके लिखे हुए हैं। पहलेके बने होनेपर भी मार्कण्डेय, अग्नि आदि पुराणोंमें महाभारतका सुनाया जाना और महाभारतमें जनमेजयकी कथा आना, ये दोनों ही इस बातके सूचक हैं कि यज्ञके पहले ही परीक्षित्को श्रीमद्भागवत सुनाया जा चुका था। जनमेजयके यज्ञका वर्णन करनेवाले महाभारतकी चर्चा है। जनमेजयके यज्ञमें सुनाया जानेवाला महाभारत श्रीमद्भागवतके पहले बना था, यह कल्पना किसी प्रकार सुसंगत नहीं है। इसलिये ऐसा मानना चाहिए कि भगवान् व्यासने पहले सौ पर्ववाले महाभारतकी रचना की, उसके बादमें सत्रह पुराणोंकी। परन्तु उनके निर्माणसे जब संतोष नहीं हुआ, तब नारदके उपदेशसे श्रीमद्भागवतकी रचना की। प्रत्येक पुराणमें अठारहों पुराणोंके नाम आये हैं बात ध्यानमें रख लेनेपर फिर यह प्रश्न ही नहीं रह जाता कि पहले किस ग्रन्थका निर्माण हुआ है। संशोधन, परिवर्तन, परिवर्द्धन, एक दूसरेका मिलान बहुत दिनोंतक स्वयं व्यास ही करते रहे। इसलिये श्रीमद्भागवतमें जो यह वर्णन आया है कि यह महाभारतके पीछे बना है—यह सत्य है; परन्तु इस महाभारतके पूर्व बननेके कारण वह अष्टादश महापुराणोंके अन्तर्गत ही है। यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि 'भागवत' शब्दकी व्युत्पत्ति दोनों ही प्रकारसे हो सकती है—'भगवत्या इदम्' और 'भगवता इदम्'। इससे ठीक-ठीक अर्थ निकल जानेपर भी 'भागवत' शब्दके 'देवी' शब्द लगानेका कोई प्रयोजन नहीं मालूम पड़ता। विशेषण लगानेसे उलटे यह बात सिद्ध होती है कि पुराण-प्रसिद्ध भागवत-शब्दार्थ 'श्रीमद्भागवत' है और 'देवीभागवत' उससे पृथक् और पीछेका है।

२. श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित लक्षण पुराणोंमें मिलते हैं—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद् भागवतमिष्यते॥
(पद्मपुराण)

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः।
हयग्रीवब्रह्मविद्या च यत्र वृत्रवधस्तथा॥
गायत्र्या च समारम्भस्तद् वै भागवतं विदुः।
(स्कन्दपुराण)

अम्बरीषशुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।।
(मत्स्यपुराण)

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः ।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः ।।
पुराणानां साररूपः साक्षाद् भगवतोदितः ।
द्वादशस्कन्धसंयुक्तः शतविच्छेदसंयुतः ।।
(गरुडपुराण)

"जिस पुराणमें गायत्रीके द्वारा धर्मके विस्तार, वृत्रासुरके वधका वर्णन हो, उसका नाम 'भागवत' है ।"

"बारह स्कन्ध; अठारहहजार श्लोकवाला ग्रन्थ—जिसमें हयग्रीवचरित्र, ब्रह्मविद्या, वृत्रासुरवधका वर्णन है और गायत्रीसे जिसका प्रारम्भ हुआ है—उसका नाम 'भागवत' है ।"*

'हे अम्बरीष ! यदि तुम्हारी इच्छा है कि मैं संसारसे मुक्त हो जाऊँ तो तुम प्रतिदिन शुकोक्त भागवतका श्रवण करो, अथवा अपने-आप ही पठन करो ।'

'यह ब्रह्मसूत्रोंका अर्थ है, महाभारतका तात्पर्यनिर्णय है, गायत्रीका भाष्य है और समस्त वेदोंके अर्थको धारण करनेवाला है । समस्त पुराणोंका साररूप है, साक्षात् श्रीशुकदेवजीके द्वारा कहा गया है; इसमें सौ विश्राम हैं, अठारह हजार श्लोकोंका यह श्रीमद्भागवत नामका ग्रन्थ है ।'

ये सब-के-सब लक्षण श्रीमद्भागवतमें घट जाते हैं । श्रीमद्भागवतके पहले और अन्तिम श्लोकमें गायत्रीका सार आ गया है । केवल इतने ही प्रमाण नहीं; नारदीय महापुराणमें जहाँ सभी पुराणोंकी अनुक्रमणिका लिखी गयी है, वहाँ श्रीमद्भागवतकी अनुक्रमणिका पूर्ण रूपसे प्राप्त होती है । यथा—

विरिञ्चे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत् कृतम् ।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेदसम्मितम् ।।
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम् ।
सुरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः ।।
भगवानेव विप्रेन्द्र विश्वरूपी समाहितः ।
तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमे ।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ।।
—इत्यादि

न केवल नारदीय पुराणमें बल्कि अन्यान्य पुराणोंमें भी बहुत स्पष्ट वर्णन आया है—

दशसप्तपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
नाप्तवान् मनसस्तोषं भारतेनापि भामिनि ।।
चकार संहितमेतां श्रीमद्भागवतीं पराम् ।
—पद्मपुराण

'सत्यवतीनन्दन व्यासने महाभारत और सत्रह पुराणोंकी रचना की, फिर भी उन्हें शान्ति न मिली; तब उन्होंने श्रीमद्भागवतकी रचना की ।'

पद्मपुराणमें श्रीमद्भागवत-माहात्म्यके प्रसङ्गमें ऐसा वर्णन आता है कि जब भागवतकी कथा होने लगी, तब वेद, वेदान्त, मन्त्र, तन्त्र, संहिता, सत्रहों पुराण और हजारों ग्रन्थ उपस्थित हुए, जैसा कि निम्न श्लोकसे प्रकट होता है—

वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राणि संहिताः ।
दशसप्तपुराणानि सहस्राणि तदाऽऽययुः ।।
(श्रीभा० मा० ३.१५)

यदि श्रीमद्भागवत अठारहवाँ पुराण न होता तो यहाँ सत्रह पुराणोंके आनेकी बात नहीं लिखी जाती ।

---

* श्रीमद्भागवतके प्रथम पद्यमें ही गायत्रीका पूरा वर्णन है । सवितुः=जन्माद्यस्य यतः । देवस्य=स्वराट् । वरेण्यं भर्गः=धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकम् । धियो यो नः इत्यादि=तेने ब्रह्म हृदा आदि । धीमहि=धीमहि । अन्तमें भी है ।

अठारहवेंकी अनुपस्थितिसे यह निश्चित होता है कि वह श्रीमद्भागवत ही है, जिसकी कथा हो रही है। इसलिये पद्मपुराणके—

पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।
यत्र प्रतिपदं विष्णुर्गीयते बहुधर्षिभिः॥
इति संकल्प्य मनसा श्रीमद्भागवतं परम्।
जन्माद्यस्य यतश्चेति धीमह्यन्तमुपावदन्॥

इन वचनोंके अनुसार तो और किसी पुराणकी शङ्का ही नहीं उठती; और वास्तवमें यही महापुराण है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

३. श्रीमद्भावतके प्रसङ्गमें कहा गया है—

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम्।
पौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम्॥
(मत्स्यपुराण)

इसका भाव है कि सोनेके सिंहासनपर स्थापित करके श्रीमद्भागवतका दान करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है। मूलमें 'हेमसिंह' शब्द है, 'सिंहासन' शब्द नहीं है। इससे कई लोग सोचते हैं कि देवीका वाहन सिंह है, इसलिये यहाँ सिंहके सम्बन्धसे देवीभागवतका ही ग्रहण होना चाहिये। परन्तु 'सिंह' शब्दसे यहाँ सिंहासन लेना ही उपयुक्त है; क्योंकि किसी भी पुराणके पीठको सिंहासन कहा जाता है। यदि यह बात न मानी जाय तो शास्त्रोंमें भगवान्‌के सिंहवाहनका भी वर्णन आया है। अत्रिप्रोक्त कारिकाग्रन्थ एवं वैशम्पायनप्रोक्त कारिकाग्रन्थमें भगवानके दस अर्चावतारोंके लिए दस प्रकारके वाहनोंका वर्णन आया है, जिसमें दूसरा वाहन सिंह है। पाञ्चरात्रागम एवं भृगुप्रोक्त वैखानस दैविक यज्ञाधिकारके उत्सवपटलमें विष्णुभगवान्‌के हंस, सिंह, हनुमान्, शेष, गरुड़, दन्तावल, रथ, अश्व, शिविका और पुष्पक—इन दस वाहनोंका वर्णन प्राप्त होता है।* इसलिए 'हेमसिंह' शब्द देखकर ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिए कि यह लक्षण श्रीमद्भागवतका नहीं, देवीभागवतका है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके बारहवें स्कन्धके अन्तिम अध्यायमें भी हेमसिंहपर स्थापित करके श्रीमद्भागवतके दानका वर्णन आता है।

४. भाषातत्त्वकोविद आचार्योंने पाक, वृत्ति, शय्या, रीति आदिके अनेक लक्षण बतलाये हैं, जिनका विस्तारभयसे यहाँ वर्णन नहीं किया जाता। संक्षेपसे इतना ही समझ लेना चाहिये कि जहाँ शृङ्गार एवं करुण-रसका अत्यन्त कोमल संदर्भके द्वारा वर्णन किया जाय, वहाँ 'कैशिकी वृत्ति' होती है; जहाँ रौद्र और वीभत्स-रस अत्यन्त प्रौढ़ संदर्भके द्वारा प्रतिपादित हों, वहाँ 'आरभटी वृत्ति' होती है। जहाँ अत्यन्त कोमलता अथवा अत्यन्त प्रौढ़ताका आश्रय न लेकर किंचित् सुकुमार संदर्भके द्वारा हास्य, शान्त और अद्भुत रसोंका वर्णन होता है, वहाँ 'भारती वृत्ति' होती है और जहाँ किंचित् प्रौढ़ताको लेकर साधारणतः वीर और भयानक-रसका वर्णन होता है, वहाँ भी 'भारती वृत्ति' होती है। इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण वर्णनमें 'मध्यम कैशिकी' और 'मध्यम आरभटी' का प्रयोग होता है। ये वृत्तियाँ अर्थ और शब्द—दोनोंकी अपेक्षासे होती हैं; परन्तु वैदर्भी, गौडी, पञ्चाली आदि रीतियाँ केवल शब्दगुणाश्रित होती हैं। उन्हें अर्थविशेषकी अपेक्षा नहीं होती। केवल संदर्भकी अन्योन्य-मैत्रीका नाम 'शय्या' है। पाक दो प्रकार के होते हैं—एक 'द्राक्षापाक' और दूसरा 'नारिकेलपाक'। जिसमें बाहर और भीतर—सर्वत्र रसकी परिस्फूर्ति होती हो, उसका नामं 'द्राक्षापाक' है और जिसके भीतर रस अत्यन्त गूढ़रूपसे रहता हो, उसको 'नारिकेलपाक' कहते हैं।

वेदव्यास साक्षात् भगवान् हैं। जो लोग शास्त्र और भावुकताकी दृष्टिसे न देखकर केवल तर्क-बुद्धिसे विचार करते हैं, वे लोग भी व्यासदेवको लोकोत्तर कवि तो मानते ही हैं। जिन्होंने निखिल वेदोंका विभाजन किया, इतिहास और पुराणोंका प्रणयन किया, जिन्होंने सारे जगत्‌के सामने शब्दब्रह्म और परब्रह्मका स्वरूप रख दिया

* अथ विष्णोर्वाहनानि व्याख्यास्यामः—प्रथमे हंसो द्वितीये सिंहस्तृतीये ह्याञ्जनेयश्चतुर्थे फणीन्द्रः पञ्चमे वैनतेयष्षष्ठे दन्तावलस्सप्तमे रथोऽष्टमे तुरंगमो नवमे शिविका दशमे पुष्पकमिति।

श्रीकृष्ण - चक्रधर

वे ही भगवान् व्यास यदि अनेकविध भाषाओंमें, अनेक ग्रन्थोंमें, अनेक प्रकारकी वृत्ति, रीति और कलाका प्रयोग करें तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? एक ओर उपाख्यानोंके द्वारा गूढ़-से-गूढ़ तत्त्वको प्रकाशित कर देना और दूसरी ओर बड़े-बड़े विद्वानोंके लिए भी दुरूह ब्रह्मसूत्रोंका निर्माण कर देना, यह उन्हींकी प्रतिभाका काम है। 'व्यास-शिक्षा'में सरल शब्दोंद्वारा अपना भाव प्रकट कर देना और महाभारतके कूट श्लोकोंको गणेशके लिए भी दुर्गम बना देना, ऐसा परस्परविरुद्ध कार्य भगवान् व्यासके अतिरिक्त और कौन कर सकता है? अन्य पुराणों और भागवतकी भाषामें जो भेद है, वह उनकी और भी महिमा प्रकट करता है। वास्तवमें तो ब्रह्मसूत्र और भागवतकी भाषामें इतना साम्य है कि कई स्थलोंपर तो अनेकों सूत्र ज्यों-के-त्यों भागवतमें मिलते हैं। चैतन्यमहाप्रभुने श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसूत्रोंका भाष्य मानकर, जैसा कि गरुड़पुराणमें लिखा है, और किसी भाष्यकी रचना नहीं की। इसलिये केवल भाषाकी भिन्नतासे भागवतको अन्यकर्तृक मानना उचित नहीं है.

केवल वेदव्यासके ही ग्रन्थोंमें भाषाकी भिन्नता हो, ऐसी बात नहीं; अबतक जितने भी संस्कृत-साहित्यमें विलक्षण प्रतिभासम्पन्न पुरुष हुए हैं, सबने समय-समयपर भिन्न-भिन्न प्रकारकी भाषाओंमें अपने भाव प्रकट किये हैं। तत्त्वबोध, आत्मबोध, विवेकचूड़ामणि, अपरोक्षानुभूति, प्रबोधसुधाकर आदि सरल ग्रन्थोंके लिखनेवाले आचार्य शंकर ब्रह्मसूत्रोंके भाष्यमें ऐसी कठिन भाषा लिख सकते हैं, साधारण लोग इसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। परन्तु यही उनकी विशेषता है कि सरल-से-सरल और कठिन-से-कठिन भाषापर उनका एक-सा आधिपत्य है। उदाहरणके लिए—

"जन्मजरामरणशोकाद्यनेकानर्थात्मकः प्रतिक्षण-मन्यथास्वभावो मायामरीच्युदकगन्धर्वनगरादि-वद्दृष्टनष्टस्वरूपत्वादवसाने च वृक्षवदभावात्मकः कदलीस्तम्भवन्निःसारोऽनेकशतपाखण्डबुद्धिविकल्पा-स्पदस्तत्त्वाविजिज्ञासुभिः अनिर्धारितेदंतत्त्वो वेदान्तनिर्धारितपरब्रह्ममूलसारोऽविद्याकामकर्माव्य-क्तबीजप्रभवोऽपरब्रह्मविज्ञानक्रियाशक्तिद्वयात्मकहिर-ण्यगर्भांकुरः सर्वप्राणिलिङ्गभेदस्कन्धस्तृष्णाजलावसे-कोद्भूतदर्पो बुद्धीन्द्रियविषयप्रवालांकुरः श्रुतिस्मृति-न्यायविद्योपदेशपलाशो यज्ञदानतप आद्यनेकक्रियासु-पुष्प" इत्यादि। (क० उ० २.३.१ शांकरभाष्य)

इसके विपरीत—

दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥
(विवेकचूड़ामणि)

इन दोनों उद्धरणोंकी भाषा देखकर कोई भी विद्वान् नहीं कह सकता कि ये एक ही व्यक्तिकी कृतियाँ हैं। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी ही है, ये दोनों भगवान् शंकराचार्यकी कृति हैं। ऐसे ही मधुसूदन सरस्वती, विद्यारण्य स्वामी, हर्ष मिश्र, वाचस्पति मिश्र आदिके ग्रन्थोंमें भी भाषाभेद देखा जाता है। आचार्योंकी तो बात ही क्या, महाकवि कालिदासकी कृति रघुवंश और मेघदूतमें भाषाका ऐसा विलक्षण भेद है कि देखकर चकित रह जाना पड़ता है—'क्व सूर्यप्रभवो वंशः' और 'कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः' में जो भाषावैचित्र्य है, उसको केवल काव्य-कला-कुशल ही समझ सकते हैं। कालिदासकी ही कृति नलोदयमें 'रसारसारसारसा' 'पिकोपिकोपिकोपिको' आदि उक्तियाँ अपनी विचित्र वैदग्धीसे पाठकके चित्तको चमत्कृत कर देती हैं। यह कविका भूषण है। भगवान् व्यासकी कृतियोंमें केवल वृत्ति-भेद, पाक-भेद आदि देखकर कर्तृ-भेदकी कल्पना किसी भी प्रकार न्यायोचित नहीं।

५. श्रीमद्भागवतका रचना-काल बोपदेवसे बहुत पहले है और इसके रचयिता स्वयं भगवान् वेदव्यासजी हैं—इस बातको हमने यहीं स्वतन्त्र रूपमें भली-भाँति सिद्ध किया है। पाठक उसे ध्यानपूर्वक पढ़ लें।

श्रीमद्भागवत व्यासकृत महापुराण है—इसी बातको सिद्ध करनेके लिए उपर्युक्त बातें लिखी गयी हैं, न कि देवीभागवतके खण्डनके लिए; क्योंकि देवीभागवत भी एक बहुत सम्मान्य पुराण है और वह भी प्रामाणिक ही है।

卐

प्रतिपादन-शैली

वर्णनकी दृष्टिसे श्रीमद्भागवतका चार प्रकारसे विभाजन किया जा सकता है—घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक। घटनात्मक भागमें एक तो भगवान्‌की लीला है और दूसरा साधारण चरित्र। साधारण चरित्र तीन भागोंमें विभक्त है—इतिहास, भविष्य और उपाख्यान। इतिहासके दो प्रयोजन हैं—एक तो किसी उपदेश, स्तुति अथवा गीताका उपक्रम या उपसंहार करना और दूसरा कोई विशेष शिक्षा देना। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें सूत-शौनक, व्यास-नारद, परीक्षित्-शुकदेव, दूसरे स्कन्धमें ब्रह्मा-नारद और इसी प्रकार प्रायः सभी स्कन्धोंमें कथा-विशेषका उपक्रम करनेके लिए अनेक व्यक्तियोंका वर्णन है। प्रथम स्कन्धमें भीष्मकी कथा केवल उनकी स्तुतिका उल्लेख करनेके लिए आयी है। ऐसे ही गीतोंके प्रसंगमें भी देख सकते हैं। मनु, उनके वंश और वंशानुचरितका वर्णन सद्धर्मकी शिक्षा देनेके लिए ही आता है—ऐसा श्रीमद्भागवतका सिद्धान्त है—'मन्वन्तराणि सद्धर्मः। (२, १०. ४)। इसके अन्तर्गत देव-दानव, मनुष्य, पशु-पक्षी, सबके चरित्र आ जाते हैं। भागवतके बारहवें स्कन्धमें वेद-विभाजनके प्रसंगमें उनके अध्ययन करनेवाले अनेक ऋषियोंका वर्णन ग्रन्थके उपसंहारके लिए हुआ है। भगवानकी लीला और साधारण चरित्र दोनों ही सत्य हैं—इतिहास हैं।

श्रीमद्भागवतमें भविष्यका भी वर्णन आता है। साधारण योगी और ज्योतिषी भी भविष्यकी बातें जान लिया करते हैं। पुराणोंके निर्माता महर्षि व्यास तो विशिष्ट पुरुष हैं। उन्हें प्रकृतिकी तहमें छिपे हुए संस्कारोंका प्रत्यक्षवत् ज्ञान है। कुछ लोग पुराणोंमें भविष्य, परिस्थिति और वंशोंका वर्णन पढ़कर ऐसा समझने लगते हैं कि इनमें जिन-जिन घटनाओं और व्यक्तियोंका वर्णन हुआ है; उनके पश्चात् इस ग्रन्थका निर्माण हुआ है। परन्तु उनकी यह समझ ऋषि-प्रतिभाकी महत्ता न जाननेके कारण ही है। पुराणोंमें वर्तमानकाल के गुरुण्ड आदि राजाओं और भविष्यमें होनेवाली वंशपरम्परा तथा कल्कि-अवतार आदिका उल्लेख है। यदि आगेके लोग ऐसा मानने लगें कि इन व्यक्तियोंके होनेके पश्चात् पुराणोंका निर्माण हुआ है तो उनका निर्णय कितना भ्रमपूर्ण तथा उपहासास्पद होगा? इसलिये उन भविष्यकी वंशावलियोंके समान ही सत्य मानना चाहिये।

परम तत्वका ज्ञान प्राप्त करानेके लिए और जन्म-मृत्युरूप संसारसे मुक्तिका मार्ग बतानेके लिए रूपकके द्वारा भी आध्यात्मिक तत्त्वका वर्णन होता है। पहले एक कहानी-सी कह दी जाती है। सरल बुद्धिके पुरुषोंको वह याद हो जाती है। पीछे उसके पात्रों और कृत्योंका स्पष्टीकरण कर दिया जाता है कि ये पात्र स्थूल जगत्‌के नहीं, मानसिक हैं और इनके द्वारा यह ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसे रूपकोंको 'उपाख्यान' कहते हैं। श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें 'पुरञ्जनोपाख्यान' और पञ्चम स्कन्धमें 'भवाटवी-उपाख्यान'का वर्णन हुआ है। उनके द्वारा जो विशेष तत्त्व लक्षित कराया गया है, उसका वहाँ निर्देश कर दिया है। वर्तमानकालके कुछ बुद्धिमान् पुरुष पुराणोंकी सब कथाओंको ही रूपक अथवा उपन्यास सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। वे यथाकथञ्चित् आध्यात्मिक पात्रोंके रूपमें उनकी संगति भी लगा लेते हैं और कहते हैं कि इसका यही अर्थ ठीक है, दूसरा नहीं। तटस्थ दृष्टिसे विचार करनेपर ऐसा निश्चय होता है कि इन कथाओंको सर्वथा रूपक अथवा उपन्यास कह देना बड़े साहसकी बात है। त्रेताके राम-रावण, अयोध्या-लंका और द्वापरके कृष्ण-

कंस, कौरव-पाण्डवोंको यदि रूपक मान लिया जाय तो भारतीय इतिहास और प्राचीन मर्यादाका लोप ही हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास एवं पुराणोंकी रचनाशैली इतनी महान् है कि बुद्धिमान् पुरुष चाहे तो उनका दूसरा अर्थ भी कर सकता है, परन्तु इस बातको भगवान् व्यासके काव्य कौशलकी महिमा समझनी चाहिये। उनकी दिव्यदृष्टिसे पुराणोंके आध्यात्मिक पहलू भी छिपे नहीं रहे होंगे। परन्तु ये घटनाएँ भौतिक नहीं हैं, यह प्रवाद तो सर्वथा असत्य है। श्रीमद्भागवतमें जहाँ उपाख्यानोंका वर्णन हुआ है, वहाँ उसका स्पष्टीकरण भी कर दिया गया है कि यह रूपक है। जहाँ रूपक नहीं है, वहाँ रूपककी चर्चा भी नहीं है। इसलिये वे इतिहास हैं।

श्रीमद्भागवतका दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग उपदेशात्मक है। उपदेशोंको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—साधारण और विशेष। साधारण उपदेशोंमें उन अंशोंको लेना चाहिये जिनमें साधु-महात्माओंने, मित्रोंने, गुरुजनोंने और सगे-सम्बन्धियोंने उपदेश किये हैं। श्रीमद्भागवतके प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक संवादमें ऐसे उपदेश मिलते हैं, जिनके अनुसार आचरण करनेसे जीव अपना परम कल्याण प्राप्त कर सकता है। सभी उपदेशोंका सार है—विषयोंकी आसक्ति छोड़कर अपने कर्तव्य-कर्मका अनुष्ठान करते हुए भगवान्‌का स्मरण करते रहना। आजकल संसारमें जितने दयालु महापुरुष हुए हैं, उन्होंने एक स्वरसे यह बात कही है। श्रीमद्भागवतमें जगह-जगह तरह-तरहसे यही बात दोहरायी गयी है। ज्योतिषचक्रका वर्णन करके, भूगोलका वर्णन करके और अनेक राजा-प्रजाओंका वर्णन करके यही बात चित्तमें बैठानेकी चेष्टा की गयी है कि जीव-जीवनकी पूर्णता केवल भगवान्‌को प्राप्त करनेमें ही है! चाहे इस बातको थोड़ेमें समझ लिया जाय और चाहे समस्त शास्त्रोंको कण्ठस्थ करके समझा जाय, समझना यही पड़ेगा; बिना समझे निस्तार नहीं है।

विशेष उपदेशके रूपमें श्रीमद्भागवतके अनेक अंशोंका नाम लिया जा सकता है। उनके भी कुछ विभाग किये जा सकते हैं—जैसे गीतारूपसे हंसगीता, कपिलगीता और उद्धवके प्रति भगवान्‌के उपदेश आदि; प्रकरणसे चतुःश्लोकी, सप्तश्लोकी भागवत आदि; दीक्षारूपसे ध्रुवके प्रति नारदके उपदेश आदि; क्रियारूपसे युधिष्ठिरके यज्ञमें श्रीराम-कृष्णके द्वारा अतिथियोंका पाद-प्रक्षालन आदि और भी विशेष उपदेशके मानसिक आदि भेद हो सकते हैं। उन सबका श्रीमद्भागवतमें वर्णन है। श्रीमद्भागवत वैष्णवोंकी परम सम्पत्ति है और परमहंसोंके सर्वोच्च ज्ञानका इसमें प्रकाश हुआ है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि इसके सुननेकी इच्छामात्रसे तत्क्षण हृदयमें आकर भगवान् बैठ जाते हैं। श्रीमद्भागवतकी सबसे बड़ी विशेषता है—'यस्मिन् ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्' जिनमें ज्ञान; वैराग्य और भक्तिसे युक्त नैष्कर्म्यका आविष्कार किया गया है। और ग्रन्थोंमें जिस नैष्कर्म्यका वर्णन है, वह ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे रहित है; परन्तु इसका नैष्कर्म्य उनके सहित है। यही इसकी अपेक्षा अपूर्वता है। श्रीमद्भागवतने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है—'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते।' भगवद्भक्तिरहित ज्ञानकी सर्वोच्च स्थिति नैष्कर्म्य भी शोभायमान नहीं होती।' अर्थात् ज्ञानकी शोभा इसीमें है कि वह भक्तियुक्त हो। जो लोग भक्तिरहित ज्ञान-सम्पादन करते हैं, उनकी निन्दा भी स्थान-स्थानपर मिलती है।

श्रीमद्भागवतमें जहाँ ज्ञानका प्रसङ्ग आया है—तीसरे, चौथे, सातवें, ग्यारहवें, और बारहवें स्कन्धोंमें, वहाँ बड़ी युक्ति और अनुभवकी भाषामें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंके अभिमानियोंसे विलक्षण, समस्त वृत्तियोंसे परे निर्गुण ब्रह्मतत्त्वका विवेचन हुआ है। रज्जु-सर्प, स्वप्न, गन्धर्वनगर आदिकी उपमाओंसे जगत्‌की असत्यताका भी निरूपण हुआ है और अहंग्रह उपासनाको भी बड़ा ऊँचा स्थान दिया गया है। ज्ञानके अन्तरङ्ग

साधनोंमें श्रवण मनन, निदिध्यासनको विशेष स्थान देनेपर भी 'तत्रोपायसहस्राणाम्' कहकर भक्तिको ही मुख्य माना गया है। इसका कारण यह है कि ज्ञानका आविर्भाव होनेके लिए शुद्ध अन्तःकरण की आवश्यकता होती है। बिना शुद्ध अन्तःकरण हुए श्रवण किये हुए तत्त्व हृदयमें प्रवेश नहीं करते और उनका मनन भी नहीं होता। अन्तःकरणकी शुद्धिका अर्थ है—समस्त कामनाओंका अभाव अर्थात् पूर्णनिष्कामता। यह तभी सम्भव है, जब सारे कर्म भगवदर्थ होने लगें, आत्मोपलब्धि अथवा भगवत्प्राप्तिकी कामनामें सारी कामनाएँ समा जायँ। इसलिये भगवत्-कामरूप भक्ति अन्य समस्त कामनाओंको नष्ट करनेवाली होनेके कारण अन्तःकरणशुद्धिका प्रधान साधन है, ऐसा समझना चाहिए। निरवलम्ब निष्कामता टिकाऊ नहीं हो सकती। निष्काम होनेके लिए एक महान् उद्देश्य और बलिष्ठ आधारकी आवश्यकता है, जो कि भगवान्के अतिरिक्त कोई हो नहीं सकता। इसलिये ज्ञानके प्रकरणों में ऐसा उपदेश प्राप्त होता है कि भगवान् का आश्रय लेकर, आत्मशुद्धि करते हुए आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करो।

श्रीमद्भागवतमें भक्तिका केवल साधनके रूपमें ही वर्णन किया गया हो, ऐसी बात नहीं है। कई स्थानोंपर तो ज्ञान और मुक्तिसे भी बढ़कर भक्तिको बतलाया गया है। पञ्चम स्कन्धके छठे अध्यायके अठारहवें श्लोकमें आया है—'मुक्ति ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम्— अर्थात् भगवान् मुक्ति तो देते हैं, परन्तु भक्ति नहीं देते।' तात्पर्य यह कि भक्ति मुक्तिसे भी बड़ी है। भगवान्के सेवाप्रिय भक्तोंका वर्णन करते हुए कहा गया है कि सार्ष्टि, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति भगवान्के देनेपर भी भक्त लोग नहीं लेते; वे केवल भगवान्की सेवा ही करना चाहते हैं। (३, २४. १३) तीसरे स्कन्धमें भगवान् कपिलने अपनी माता देवहूतिसे कहा है कि 'ऊँची श्रेणीके संत मुझसे एक होना नहीं चाहते; वे मेरी सेवा करते हैं, मेरी आज्ञाओंका पालन करते हैं और आपसमें मेरी लीला कहा-सुना करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तोंको मैं दर्शन देता हूँ, उनसे बातें करता हूँ और उनका सेवक बन जाता हूँ।' इन वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि भक्ति स्वयं साध्य और फलरूप भी है।

अद्वैतसिद्धिकार श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने 'भक्तिरसायन' में साध्य-साधनरूप भक्तिकी संगति अधिकारी भेदसे लगायी है। वे कहते हैं कि साधन-भक्तिका अनुष्ठान तो सभीको करना पड़ता है। साधन-भक्तिका अनुष्ठान करनेपर अधिकारी-भेद प्रकट हो जाता है। दो प्रकारके अधिकारी होते है—एक तो कोमल हृदयके और दूसरे कठोर हृदयके। कोमल हृदयके अधिकारी वे हैं, जो भगवान्की लीला, दयालुता, सुहृदता आदिका वर्णन सुनकर द्रवित हो जाते हैं, उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगते हैं, गला रुँध जाता है और शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। ऐसे अधिकारियोंके जीवनमें साधन-भक्तिके फलस्वरूप साध्य भक्तिका उदय होता है और भागवत ११.३.३१ के शब्दोंमें 'भक्त्या संजातया भक्त्या'—अर्थात् भक्तिकी साधनासे प्रेमाभक्तिका उदय होनेपर वे परमात्माको प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं और सर्वदा, सर्वत्र और सर्वरूपमें उन्हें भगवान्के ही दर्शन होने लगते हैं। जो कठोर हृदयके अधिकारी हैं, वे साधन-भक्तिका अनुष्ठान करके धीरे-धीरे आत्मशुद्धि सम्पादन करते हैं और पश्चात् श्रवण-मनन-निदिध्यासनके द्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं। उनकी दृष्टिमें शरीर और संसारका अस्तित्व नहीं रहता, वे विशुद्ध चेतनके रूपमें सर्वदाके लिए स्थित हो जाते हैं।

वास्तविक दृष्टिसे ज्ञान और भक्तिमें कोई अन्तर नहीं है। शास्त्रमें कहा है कि भक्तिकी पराकाष्ठा 'ज्ञान' है और ज्ञानकी पराकाष्ठा 'भक्ति'। जहाँ भक्तिसे ज्ञानको श्रेष्ठ बतलाते हैं, वहाँ भक्तिका अर्थ साधन-भक्ति है और जहाँ ज्ञानसे भक्तिको श्रेष्ठ बतलाते हैं, वहाँ ज्ञानका अर्थ परोक्षज्ञान है। पराभक्ति और परमज्ञान दोनों एक ही वस्तु हैं। रुचिभेदके कारण नामभेद हो गया है। कोई

किसी नामको पसंद करता है, कोई किसीको। श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर भक्ति और ज्ञानके साधनोंका वर्णन हुआ है। भगवान्के स्वरूप, गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण; उनके श्रीविग्रहको अपने सामने साक्षात् अनुभव करते हुए पादसेवन, अर्चन और वन्दन; उनके सान्निध्यका अनुभव करते हुए उनके सख्य-दास्य आदिका सम्बन्ध-स्थापन और सम्पूर्ण भावसे उनके प्रति आत्मसमर्पण—यह नवधा भक्ति है। श्रीमद्भागवतमें इस नवधा भक्तिके लक्षण और उदाहरण बहुत-से स्थानोंमें पाये जाते हैं। निर्गुण भक्तियोगका लक्षण करते हुए कहा गया है कि भगवान्का वर्णन सुनकर चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ इस प्रकार भगवान्को विषय करने लगें, जैसे गङ्गाजीकी धारा अखण्डरूपसे समुद्रमें गिरती है। यह स्मरणकी अविच्छिन्नता ही 'निर्गुण भक्ति' है। ज्ञानका लक्षण करते हुए कहा गया है कि जब अपनी अनुभूतिसे ऐसा निश्चय हो जाय कि यह भाव और अभावरूप समस्त कार्य कारणात्मक जगत् अविद्याके कारण ही आत्मामें प्रविभासित हो रहा है, वास्तवमें इसकी कोई सत्ता नहीं है, केवल आत्मा-ही-आत्मा है, तब उसको ब्रह्मदर्शन समझना चाहिये। और भी कहा है कि जो वस्तु अन्वय और व्यतिरेककी दृष्टिसे सर्वथा अबोध है, उसीको ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। आत्माके अज्ञानका इतना ही रूप है कि केवल आत्मतत्त्वमें विकल्पकी सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है। इस ज्ञानकी उपलब्धि अमानित्व आदि साधन और तत्त्वविचारके द्वारा होती है। जब ज्ञान और भक्ति-दोनोंपर ही विचार करते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि दोनोंकी ही दृष्टियाँ जगत्की आसक्ति और चिन्तन छोड़कर केवल परमात्मामें लीन हो जानेके पक्षमें हैं। परमात्माका स्वरूप सगुण है कि निर्गुण, निराकार है कि साकार—यह भेद परमात्माके पास पहुँचनेपर खुल जाता है। जो लोग विषयोंकी आसक्ति और चिन्तन न छोड़कर परमात्माके चिन्तन और स्मरणकी चेष्टा नहीं करते और परमात्माके स्वरूपको सगुण अथवा निर्गुण सिद्ध करनेका प्रयत्न किया करते हैं, वे केवल कल्पना-लोकमें बुद्धिकी सीमाके भीतर ही चक्कर काट रहे हैं। परमात्माका स्मरण रहनेसे स्वयं उसके स्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है, चाहे वह स्वरूप सगुण हो अथवा निर्गुण।

ज्ञान और भक्ति दोनों ही अन्तरङ्ग भाव हैं। इसलिये वे अन्तरङ्गमें रहनेवाले परमात्माका साक्षात् स्पर्श करते हैं। इन्द्रियोंसे परे मन, मनसे परे बुद्धि और बुद्धिसे परे परमात्मा है—ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है। जो साधन जितना अन्तरङ्ग होगा, वह उतना ही भगवान्के निकट होगा। इस दृष्टिसे इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले कर्म ज्ञान अथवा भक्तिके सहायक होकर परमात्माकी प्राप्तिके साधन होते हैं। वे स्वयं साक्षात् परमात्माकी प्राप्तिके साधन नहीं हैं। चाहे स्वाध्याय, आचार्य-सेवन आदि कर्मोंके द्वारा ज्ञानकी साधना की जाय, अथवा कर्तव्यपालन, पूजा-पाठ आदिके द्वारा भक्तियोगकी साधना की जाय—कर्म इन्हींका साधन होगा। जहाँ निष्काम कर्मयोगका निष्ठाके रूपमें वर्णन आया है, वहाँ निष्कामताकी ही प्रधानता है। इसलिये वह निष्कामता भक्तियोगके ही अन्तर्गत है; क्योंकि भगवदर्थ कर्म ही निष्काम कर्म है। कर्म प्रायः तीन प्रकारके होते हैं—निष्काम, सकाम और निरर्थक। निरर्थक कर्म निरर्थक ही हैं; उनका कहीं भी उपयोग नहीं है। सकाम कर्म दो प्रकारके होते हैं—शास्त्रानुकूल और शास्त्र प्रतिकूल। शास्त्र प्रतिकूल कर्म कुछ दिनोंके बाद इस लोकमें सफल हो सकते हैं, परन्तु आगे चलकर उनके फलस्वरूप आसुरी योनि और नरककी प्राप्ति निश्चित है। शास्त्रके अनुकूल जो सकाम कर्म होते हैं, उनसे इस लोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है; परन्तु भगवत्प्राप्ति नहीं होती। भगवत्प्राप्ति होती है निष्काम कर्मसे, जो कि सर्वदा सात्त्विक और शास्त्रानुकूल ही होते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवदर्थ कर्मको ही निष्काम कर्म माना गया है। भगवान्से रहित कर्म किसी कामके नहीं। श्रीमद्भागवतमें तो भगवान्के लिए होनेवाले कर्मोंको कर्म ही नहीं माना गया है, उन्हें 'निर्गुण' कहा गया है। वे भक्तिके ही अन्तर्गत हैं, स्वयं भक्ति ही हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञानयोग और भक्तियोगमें सहायक नाना प्रकारके योग और

उनके फलोंका वर्णन हुआ है, जो श्रीमद्भागवतके मूलमें ही देखनेयोग्य है। इन सब साधनोंसे सर्वसाधारणके लिए अधिकार भेदसे रहित सर्वकालोपयोगी भगवान्‌के नामका जितना सुन्दर वर्णन हुआ है, वह श्रीमद्भागवतके छठे और ग्यारहवें स्कन्धमें देखना चाहिये और उसका विशेषरूपसे आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि कलियुगमें यही एक ऐसी क्रिया है, जिसके द्वारा सब लोग भगवान्‌का प्रेम-प्रसाद और साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीमद्भागवतका तीसरा महत्त्वपूर्ण अंश स्तुत्यात्मक है। स्तुतिका साधारण अर्थ है—प्रशंसा। ऐसा कहा जाता है कि स्तुतियोंमें अर्थवादका होना अनिवार्य है; परन्तु यह बात उन्हीं स्तुतियोंके बारेमें लागू है, जो परमात्माके अतिरिक्त और किसी देवता और मनुष्य आदिकी हैं। देवता एवं मनुष्य आदिके गुण, प्रभाव, शक्ति, कर्म आदि सीमित होते हैं; इसलिये उन्हें प्रसन्न करनेके लिए जब उनका वर्णन आता है, तब बढ़ा-चढ़ाकर उनकी स्तुति की जाती है। और तो क्या, उन्हें 'ईश्वर' कह दिया जाता है। वे अपनी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते हैं और स्तुति करनेवालेको वरदान, पुरस्कार आदि देते हैं। परन्तु भगवान्‌के गुणोंकी कोई सीमा नहीं है। उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, चरित्र आदि सभी अनन्त हैं। उनका पूरा-पूरा वर्णन तो कोई करेगा ही क्या, अंशमात्र भी वर्णन नहीं कर सकता। जब भगवान्‌की शक्ति, क्रिया और स्वरूपका अंशमात्र भी वर्णन नहीं हो सकता, तब उनका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो भला कोई कर ही कैसे सकता है? इसलिये भगवान्‌के गुणोंकी दृष्टिसे भगवान्‌की स्तुति करनेवाले यही कहकर चुप हो जाते हैं कि 'आपकी स्तुति नहीं की जा सकती।' फिर भी स्तुति है और भक्तोंकी दृष्टिसे होती है—'नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिणः।' (भा० १.१८.२३)

कल्पना कीजिये कि कोई नन्हा-सा बच्चा है। उससे मनोरञ्जनके लिए कोई प्रश्न करता है—'तुम्हारे पिता कितने बड़े हैं?' इसके उत्तरमें वह अपने दोनों हाथ उठाकर थोड़ा उछल पड़ता है और कहता है—'इत्ते बड़े!' उससे पूछा जाता है—'समुद्रमें कितना पानी है?' वह अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार जितना बड़ा बता सकता है, बतलाता है। उससे अधिक बड़प्पन प्रकट करनेका कोई साधन उसके पास है ही नहीं। तब क्या वास्तवमें उसके पिता उतने ही बड़े हैं और समुद्रमें उतना ही पानी है? वास्तवमें बालकने जितना बतलाया, उससे वे बहुत बड़े हैं। परन्तु बालककी इस चेष्टासे गुरुजन प्रसन्न ही होते हैं और बालकको भी प्रसन्नता होती है। ठीक ऐसी ही बात भगवान्‌के सम्बन्धमें भी है। जिसकी बुद्धि ऐश्वर्य-माधुर्य आदि सद्‌गुणोंकी जितनी ऊँची कल्पना कर सकती है, जितना महान् आकलन कर सकती है, जिसकी वाणी जितने अधिक गम्भीर भावोंको अभिव्यक्त कर सकती है, वह उतना ही भगवान्‌के स्वरूप एवं गुणोंको सोचता एवं वर्णन करता है। भगवान् सस्नेह अपने नन्हें-से शिशुकी उड़ान और तोतली बोली देख-सुनकर प्रसन्न होते रहते हैं और बालक भी अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उनका चिन्तन और वर्णन करके संतोषकी साँस लेता और शान्तिका अनुभव करता है। इसलिये भगवान्‌के गुणोंकी अपेक्षा न्यून होनेपर भी भक्तकी दृष्टिमें वह भगवान्‌की स्तुति है, इसमें संदेह नहीं। साथ ही यह बात भी स्मरण रखने-योग्य है कि भगवान्‌के सम्बन्धमें जो कुछ सोचा जाता है और जो कुछ कहा जाता है, वह भगवान्‌का ही आंशिक वर्णन होनेके कारण सर्वथा सत्य है; क्योंकि भगवान् सर्वरूप हैं। स्तुति करने से नाम, गुण, रूप, लीला आदिका स्मरण होता है, धीरे-धीरे स्तुति करनेवालोंके चित्तमें वह गाढ़ हो जाता है और अन्ततः उसीसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसीसे मनुष्यके जीवनमें भगवान्‌की स्तुति बहुत ही उपयोगी है और एक ऊँची साधना है।

श्रीमद्भागवतमें स्तुतियोंका बड़ा विस्तार है। प्रायः सभी स्तुतियाँ भगवान्‌की हैं। कुछ एक-दो दूसरे देवताओंकी भी हैं। श्रीमद्भागवतमें दूसरे देवताओंका तिरस्कार नहीं किया गया है। उसमें एकेश्वरवादके साथ

ही बहुदेववादके लिए भी स्थान है। परन्तु अन्य देवताओंकी स्तुति उनकी प्रधानताके लिए नहीं की गयी है, बल्कि उनके द्वारा भगवान्‌की महिमाका वर्णन करनेके लिए ही की गयी है। जैसे द्वितीय स्कन्धके पाँचवें अध्यायमें देवर्षि नारद ब्रह्माकी स्तुति करते हैं; परन्तु उसका प्रयोजन यह है कि ब्रह्मासे भी उत्कृष्ट तत्त्वका ज्ञान हो जाय। सातवें स्कन्धके तीसरे अध्यायमें हिरण्यकशिपुने ब्रह्माको ही 'ईश्वर' कहकर उनकी स्तुति की है; परन्तु सम्पूर्ण सातवें स्कन्धका तात्पर्य ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ भगवान्‌को बतानेमें है। श्रीमद्भागवतमें अमुक कामना हो तो अमुक देवताकी पूजा करनी चाहिये—ऐसा कहकर अन्तमें बतलाया है कि निष्काम, सकाम और मोक्षकाम—सब प्रकारके लोगोंको भगवान्‌की ही पूजा करनी चाहिए (२.३.१०)। इसलिये और देवताओंकी स्तुतियाँ भी देवतापरक नहीं, भगवत्परक ही हैं।

भगवान्‌की स्तुतियाँ भी प्रायः दो प्रकारकी हैं—एक सकाम और दूसरी निष्काम। सकाम स्तुतियोंके भी अनेक भेद हैं—कारागारसे मुक्त होनेके लिए, क्रोध शान्त करनेके लिए, दुःखसे छूटनेके लिए—अनेक प्रकारकी स्तुतियाँ हैं। निष्काम स्तुतियोंके भी दो भेद हैं—एक तो वह जिनमें तत्त्वज्ञानकी प्रधानता है और दूसरी वह जिनमें साधनाकी प्रधानता है। वेदस्तुति आदिके प्रसङ्ग तत्त्ववर्णन-प्रधान हैं और पृथु, प्रह्लाद, ध्रुव, अम्बरीष, ब्रह्मा आदिकी स्तुतियाँ साधन-प्रधान हैं। तत्त्ववर्णन-प्रधान स्तुतियाँ सारे जगत्‌का, वाणीका, विचारोंका, स्तुति करनेवालोंका भगवान्‌में पर्यवसान करके स्वयं भी उसीमें पर्यवसित हो जाती हैं (देखिये वेदस्तुतिका अन्तिम श्लोक)। साधन-प्रधान स्तुतियोंमें आत्म-साक्षात्कार और मुक्तिका भी निषेध करके कहते हैं—'हमें सत्सङ्ग, लीलाके श्रवण-कीर्तन और भक्त-चरित्रमें इतना आनन्द आता है कि उतना स्वरूप-स्थितिमें भी नहीं आता' (ध्रुवस्तुति)। 'हमें दस हजार कान दे दो कि हम तुम्हारी कथा सुना करें' (पृथुस्तुति)। इन सभी स्तुतियोंसे आत्मशुद्धि होती है, भगवत्तत्त्वका ज्ञान होता है, साधनमें और भगवान्‌के स्वरूपमें निष्ठा होती है। श्रीमद्भागवतोक्त स्तुतियोंकी महिमा उनके भाव और विचारपूर्वक स्वाध्यायसे ही अनुभवमें आ सकती है।

श्रीमद्भागवतका चौथा भाग गीतात्मक है। यहाँ गीतात्मक शब्दसे तात्पर्य गीतासे नहीं, गीतसे है। 'गीता' मुख्यतः भगवान् श्रीकृष्ण और गौणतः उनके भिन्न-भिन्न अवतारोंद्वारा जगत्‌के कल्याणके लिए अर्जुन, उद्धव आदि अन्तरङ्ग भक्तोंको दिये गये उपदेश हैं और वे श्रीमद्भागवतके उपदेशात्मक भागके अन्तर्गत हैं—जैसे कपिलगीता, हंसगीता आदि। 'गीत' शब्दका अर्थ है—गायन। जब अन्तरात्मा अपनी व्यथा, अन्तर्वेदना और अनुभूतिको अपने अंदर संवरण नहीं कर पाती, धैर्यका बाँध टूट जाता है, तब अपने-आप ही, किसीको सुनानेके लिए नहीं, जो उद्गार निकलते हैं, उनका नाम 'गीत' है। वह संसारकी कटुताके अनुभवसे, ज्ञानसे, विरहसे, प्रेमसे, प्रेम करनेकी इच्छासे, विरहकी सम्भावनासे अथवा अन्य कारणोंसे भी हृदयसे निकल पड़ता है—एकान्तमें भी और लोगोंके सामने भी, किसीकी अपेक्षा न करके भी और किसीको सम्बोधित करके भी; परन्तु ऐसे प्रसङ्ग बहुत थोड़े होते हैं। श्रीमद्भागवतमें ऐसे प्रसङ्ग बहुत थोड़े हैं और जितने हैं, उनमें अधिकांश गोपियोंके ही हैं और वे प्रेमके, विरहके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उन्हें पढ़कर एक बार पत्थरका हृदय भी पिघल सकता है। गोपियोंके गीत पाँच हैं, द्वारकाकी श्रीकृष्ण-पत्नियोंका एक है, पिङ्गलाका एक है और भिक्षु ब्राह्मणका एक। पहले छः दशम स्कन्धमें हैं और शेष दो ग्यारहवें स्कन्धमें। और भी दो-एक हैं—जैसे ऐलगीत आदि।

पिङ्गलाका गीत निर्वेद-गीत है। संसारकी कटुताके अनुभवसे उसके हृदयमें जो व्यथा हुई थी, वह उसमें फूटी पड़ती है—

'मेरे मनने मुझे जीत लिया। मैं ऐसे पुरुषोंसे प्रेम करना चाहती थी जो प्रेम कर नहीं सकते, स्वयं अस्तित्वहीन हैं। धन्य है मेरे मोहका विस्तार! मेरी मूर्खताकी हद है। मेरे प्रियतम परमात्मा

निरन्तर मेरे पास रहते हैं और मेरी अभिलाषाओंको पूर्ण करना चाहते हैं, परन्तु मैं मूर्खतावश तुच्छ पुरुषोंकी सेवा करती रही। मैं निन्दित वृत्तिसे जीवन बिताकर अपने-आपको दुष्ट पुरुषोंके हाथ बेचती रही। इस दुष्ट शरीरके प्रति इतना मोह? इस मल-मूत्रपूर्ण अपवित्र शरीरके साथ इतनी आसक्ति? मैं ही इस गाँवमें सबसे गयी-बीती हूँ। अपने-आपको प्रेमीपर निछावर कर देनेवाले भगवान्‌के अतिरिक्त दूसरेसे प्रेम! इससे बढ़कर और मूढ़ता क्या होगी? भगवान् ही मेरे प्रियतम हैं—मेरी आत्मा हैं। उन्हें छोड़कर औरोंके हाथ अपनेको बेचना, यह मेरा ही काम था। उन लोगोंने मुझे क्या दिया? वे स्वयं मृत्युके ग्रास हैं। अच्छा हुआ, भगवान्‌ने कृपा करके मुझे निर्वेद तो दिया। अब मैं समझ गयी। अब उनके चरणोंकी शरण लेकर मैं उन्हीं अनन्त प्रेम सागर भगवान्‌में विहार करूँगी।' (भाग० ११.८)

दूसरा गीत है—एक ब्राह्मण भिक्षुका। वह सात्त्विक और सदाचारी होनेपर भी लोगोंसे अपमानित और सताया हुआ था। वह लोगोंसे अपमानित होनेके समय भी गाया करता था—

'सुख-दुःखके हेतु कोई मनुष्य, देवता अथवा ग्रह आदि नहीं हैं; केवल मन ही कारण है। वही संसार-चक्रकी धुरी है। उसीके आधारपर अच्छी-बुरी सृष्टि होती है। आत्मा तो असङ्ग है, उसका कोई स्पर्श नहीं कर सकता। मन सचेष्ट होता है—उसे अपना स्वरूप मान लेनेपर आत्मा बद्ध-सा हो जाता है। सब कर्म-धर्म, यम-नियम, अध्ययन-दान मनोनिग्रहके लिए हैं। इसके शान्त हो जानेपर सर्वत्र शान्ति है। जिसका मन शान्त नहीं, उसकी क्रियाका कोई उपयोग नहीं; जिसका मन शान्त है, उसपर क्रियाका कोई प्रभाव नहीं। सब इन्द्रियाँ मनके वशमें हैं। मनको जीत लिया तो सबको जीत लिया। उसको न जीतकर जगत्‌के शत्रुओंको जीतना मूर्खता है शत्रुओंका स्रष्टा मन है। मनने ही शरीरको अपना माना; शरीरके रूपमें मन ही है, वही भटक रहा है—भौतिक पदार्थ भौतिक शरीरको ही दुःख पहुँचा सकते हैं—पहुँचायें; अपने ही दाँतसे जीभ कट जाय तो क्रोध किसपर करें? यदि देवता ही दुःख देते हों तो दे लें, वे केवल अपने विकारको ही प्रभावित कर सकते हैं। आत्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं, फिर कौन किसको कैसे दुःख दे? सम्पूर्ण आत्मा ही है।' (भाग० ११.२३)

प्रेमोन्माद केवल वियोगमें ही नहीं होता, संयोगमें भी होता है। श्रीकृष्णके साथ रहनेवाली, श्रीकृष्णसे विहार करनेवाली द्वारकाकी श्रीकृष्ण-पत्नियोंका चित्त उनकी लीलामें इतना तन्मय हो जाता है कि उन्हें स्मरण ही नहीं रहता कि हम श्रीकृष्णके पास हैं। एक ही समय उन्हें कभी दिनकी प्रतीति होती है, कभी रातकी। वे न जाने क्या-क्या बोल रही हैं—

'हे पक्षी! तू इस समय इस नीरव निशीथमें क्यों जाग रहा है? इस विलापका क्या अर्थ है? क्या श्रीकृष्णकी मुसकान और चितवनने तुझपर भी जादू डाल दिया है? ऐ चकवी! तू आँखें बंद करके किसको प्रणय-आमन्त्रण दे रही है? क्या तू भी हमारे समान ही श्रीकृष्णके चरणोंपर समर्पित पुष्पोंकी माला पहनना चाहती है? समुद्र! तू क्यों गरज रहा है? तुम्हारी इस दिग्दिगन्तको प्रतिध्वनित कर देनेवाली ध्वनिका क्या तात्पर्य है? क्या श्रीकृष्णने हमारी ही भाँति तुम्हारा भी कुछ छीन लिया है? चन्द्रमा! तेरी क्या दशा हो रही है? आज रजनीको तू अपने करोंसे रंग उँड़ेलकर क्यों नहीं रंग देता? क्या तू भी श्रीकृष्णकी मीठी-मीठी बातोंमें आकर अपना सर्वस्व खो चुका है? हे मलयानिल! हमने तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया, फिर तुम हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गका स्पर्श करके हृदयको गुदगुदा रहे हो? उसे तो यों ही श्रीकृष्णकी तिरछी चितवनने टूक-टूक कर दिया है। घनश्यामके समान श्यामल मेघ! तू तो उनका सखा है न? उनका ध्यान करते-करते ही तो तू ऐसा हो गया है। ये बूंदें नहीं, तेरे प्रेमके आँसू हैं। अब क्यों रोता है? उनसे प्रेम करनेका फल भोग रहा है क्या? पर्वत! तुम्हारे इस गम्भीर मौन और अचञ्चल स्थिरताका यही अर्थ है न कि तुम हमारी ही भाँति अपने शिखरोंपर

उनके चरणोंका स्पर्श चाहते हो? नदियो! क्या तुम वियोगिनी हो? अवश्य, अवश्य। तभी तो तुम हमारी ही भाँति कृश हो रही हो। हंस! आओ, आओ, तुम्हारा स्वागत है। इस आसनपर बैठो, दूध पियो। कहो उनका कुशल-मङ्गल अच्छे तो हैं? वे क्या कभी हमारा स्मरण करते हैं? हम वहाँ नहीं जायेंगी। क्या वे हमारे पास नहीं आयेंगे?' (भाग० १०.९०)

देवियो! धन्य है तुम्हारी तन्मयता! तभी तो तुम्हें श्रीकृष्णपत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

गोपियोंका हृदय अनिर्वचनीय है। वह प्रेममय है, श्रीकृष्णमय है, अमृतमय है। उनका हृदय, उनका प्रेम, उनके भावका अमृतमय स्रोत कभी-कभी स्वयं वाणीके द्वारा बाहर निकल आता है। वे जब बोलना चाहती हैं, तब बोला नहीं जाता जब मौन रहना चाहती हैं, तब बोल जाती हैं। उनके दिव्य भावोंका तनिक दर्शन तो करें—

'हे सखी! जब सायंकाल होता है, गौएँ व्रजमें आने लगती हैं, उनके पीछे-पीछे ग्वाल बालोंके साथ बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण और बलराम वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं, तब उनकी प्रेमभरी चितवनका रस जो लेता है, उसीका जीवन सफल है, उसीकी आँखें धन्य हैं। कितना विचित्र वेष रहता है उनका—आमके बौर, कोमल-कोमल पत्ते, पुष्पोंके गुच्छ और उसपर कमलकी माला! ग्वाल-बालोंके बीचमें गान करते हुए वे श्रेष्ठ नटके समान मालूम पड़ते हैं। गोपियो! जिस वंशीकी ध्वनि सुनकर बावलियोंको रोमाञ्च हो आता है—उनमें कमल खिल जाते हैं, वृक्षोंसे आँसू बहने लगते हैं—उनसे मदको धारा बहने लगती है, उस बाँसुरीने कौन-सी तपस्या की है? उलटे वह तो गोपियोंका हक—श्रीकृष्णके अधरोंकी सुधा पी जाती है; परन्तु हो-न-हो उसका कोई महान् पुण्य अवश्य है। जब श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हैं, तब उसीके स्वरमें ताल मिलाकर मोर नाचने लगते हैं, जंगली जीव अपना स्वभाव छोड़कर प्रेम-मुग्ध हो जाते हैं; उनके चरणचिह्नोंसे चर्चित वृन्दावन समस्त पृथिवीका यशो-विस्तार कर रहा है। जब श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हैं, तब हरिनियाँ अपने पतियोंके साथ प्रेमभरी चितवनसे उनका विचित्र वेष देखकर सम्मान करती हैं, वे पशु होनेपर भी धन्य हैं। उनका मधुमय संगीत और अनूप रूप राशि देख-सुनकर स्वर्गीय देवियाँ सुध-बुध खो बैठती हैं, मूर्च्छित हो जाती हैं। गौएँ कान खड़े करके उस अमृतका पान करती हैं। बछड़े मुँहमें लिये हुए दूधको न उगल पाते हैं और न निगल ही सकते हैं; उनके हृदयमें होते हैं—श्रीकृष्ण और आँखोंमें आँसू। वनके पक्षी लतावेष्टित तरुओंकी रुचिर शाखाओंपर बैठे-बैठे आँखें बंद करके मूक होकर श्रीकृष्णकी बाँसुरी सुना करते हैं, नदियाँ कमलोंके उपहारके साथ उनके चरणोंका स्पर्श करती हैं, मेघ बिन्दुओंसे पुष्प-वर्षा करता हुआ उनका छत्र बन जाता है, गोवर्द्धन आनन्दो-द्रेकसे फूलकर उनकी सेवा करता है, चर अचर हो जाते हैं और अचर चर हो जाते हैं। धन्य है श्रीकृष्णकी लीला! चलो हम भी देखें। (भाग० १०.२१)

'नन्दनन्दन! तुम्हारे जन्मसे व्रजकी बड़ी उन्नति हुई। लक्ष्मी इसकी सेवा करती हैं, परन्तु हम—जिनका जीवन-प्राण-सब कुछ तुम्हारे लिये है, तुम्हें इधर-उधर ढूँढ़ती हुई भटक रही हैं। प्रियतम! तनिक देखो तो सही, तुम्हारी प्रेमभरी चितवनने हमें बिना दामकी दासी बना लिया। अब उसीके कारण हम दु-खी हो रही हैं, क्या यह अपराध नहीं है? तुमने तो बार-बार हमारी रक्षा की है। जगत्की रक्षा करनेके लिए ही तुमने अवतार भी लिया है। अपने प्रेमियोंको अभय देनेवाले प्रभो! अपने कर-कमलोंको एक बार, केवल एक बार हमारे सिरपर रख दो। तुम्हारी मधुर मुसकानसे ही प्रेमियोंका मान-मर्दन हो जाता है, हम तो तुम्हारी सेविका हैं। आओ हमारे पास आओ; एक बार अपना सुन्दर मुखड़ा दिखा दो। हमारा हृदय तुम्हारी प्राप्तिकी अभिलाषासे विकल हो रहा है, उसपर अपने चरण-कमल रखकर शान्त कर दो। तुम्हारी मीठी-मीठी बातें सुनकर हम मोहित हो गयी हैं, अपने अधरामृतसे हमें सराबोर कर दो। अबतक तुम्हारी

चर्चाके बलपर ही हमने जीवन धारण किया है, परन्तु अब रहा नहीं जाता। तुम्हारी मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन और विचित्र विहार बार-बार मनमें आते हैं। वे एकान्तककी हृदयस्पर्शी बातें बार-बार मनको क्षुब्ध कर रही हैं। तुम्हारी एक-एक चेष्टाने हमारे मनको विवश कर दिया है। अब हमारे वक्षःस्थलपर अपने चरण रखो, अपने अधरामृतका दान करो। दिनमें तुम्हें एक पल भी न देख सकनेपर अनेकों युगका समय जान पड़ता है, देखते समय पलकका गिरना भी अखरता है। हम तुम्हारे संगीतसे मोहित होकर जंगलमें आयीं और अब हमें छोड़कर चले गये। यह कहाँका न्याय है? हमारा मन मोहित है और तुम्हारा अवतार संसारके कल्याणके लिए हुआ है। क्या हमारी व्यथा मिटानेके लिए तुम थोड़ा-सा त्याग भी न करोगे? हमारा चित्त घूम रहा है। हम तो अपने कठोर वक्षःस्थलपर तुम्हारे चरणोंको रखते हुए भी डरती हैं और तुम रातके समय जंगलमें घूम रहे हो; कहीं कंकड़-पत्थर गड़ जांय तो? सखे! तुम नेक समझते भी नहीं कि हमारा जीवन तुम्हारे हाथोंमें है!' (भाग० १०.३१)

गोपियोंके गीतमें जो रस है, वह अनुवादमें कभी आ नहीं सकता और जब संकोचसे अनुवाद किया जाय, तबका तो कहना ही क्या है। इसलिये उनके गीतोंका आनन्द, उनके प्रेमकी अनुभूति मूलमें ही प्राप्त करनेयोग्य है। यहाँ तो केवल नाममात्रका उद्धरण दे दिया गया है।

श्रीमद्भागवत घटना, उपदेश, स्तुति और गीत—चारों ही रूपमें चारों वेदोंके समान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह वेद-शास्त्रोंका साररूप है और फल है, इसका आस्वादन ही इसकी महिमाको यत्किंचित् व्यक्त कर सकता है। वास्तवमें इसकी महिमा अनिर्वचनीय है।

———

प्रतिपाद्य-तत्त्व

श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य स्वयं परमात्मा हैं। परमात्माके नामके सम्बन्धमें कोई विशेष आग्रह नहीं है, चाहे कोई 'ब्रह्म' कह लें और चाहे 'भगवान्' कह लें। भगवान्का स्वरूप क्या है? भागवतके अनुसार इसका उत्तर देना थोड़ा कठिन है। श्रीमद्भागवत पूर्ण ग्रन्थ है, उसमें भगवान्के विविध स्वरूपोंका वर्णन हुआ है। निर्विशेष-सविशेष, निराकार-साकार—जो जैसा अधिकारी हो, वह भगवान्का वैसा ही रूप भागवतमें प्राप्त कर सकता है। वास्तवमें भगवान् सर्वस्वरूप हैं, उन्हें सब रूपोंसे प्राप्त किया जा सकता है! ऐसा होनेपर भी श्रीमद्भागवतमें एक विशेष वर्णन शैलो है। उसके अनुसार विचार करनेपर और ग्रन्थोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवतकी असाधारण विशेषता प्रकट होती है।

आश्रयतत्त्व

श्रीमद्भागवतमें दस विषयोंका वर्णन आता है। अन्य सब बातें उन्हींके अन्तर्गत आ जाती हैं। सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—ये ही दस विषय श्रीमद्भागवतमें वर्णित हुए हैं। इनमें प्रधान है—आश्रय। 'आश्रय' शब्दका अर्थ जीवोंके शरण लेनेयोग्य भगवान् अथवा व्यक्त-अव्यक्त, आभास और निरोधका अधिष्ठान निरपेक्ष साक्षी ब्रह्म है। इसी आश्रय तत्त्वकी उपलब्धिके लिए अन्य नौ विषयोंका वर्णन हुआ है। सर्ग-विसर्ग आदिके वर्णनद्वारा भगवानकी अनन्त महिमा और ब्रह्मके स्वरूपका बोध कराकर अविद्याको निवृत्त कर देना ही श्रीमद्भागवतका उद्देश्य है।

यों तो श्रीमद्भागवतके प्रत्येक स्कन्धमें ही आश्रयका निरूपण किया गया है, तथापि सगुण-साकाररूप आश्रयका दशम स्कन्धमें और निर्गुण-निराकाररूप आश्रयका बारहवें स्कन्धमें विशेष वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवतके अनुसार आश्रयका स्वरूप क्या है, यह विवेचन करनेके पूर्व भारतीय सनातनधर्मानुगत सम्प्रदायाचार्योंके द्वारा निर्णीत आश्रय-स्वरूपका विचार कर लेना आवश्यक है।

अद्वैतसम्प्रदायके प्रधान आचार्य भगवान् शंकर कहते हैं—

'अतश्चान्यतरलिङ्गपरिग्रहेऽपि समस्तविशेषरहितं निर्विकल्पमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं न तद्विपरीतम्। सर्वत्र हि ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनपरेषु वाक्येषु 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इत्येवमादिषु अपास्त-समस्तविशेषमेव ब्रह्म उपदिश्यते।'

(शारीरकभाष्य ३.२.११)

'सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारके वर्णन मिलनेपर भी समस्त विशेषण और विकल्पोंसे रहित निर्गुण स्वरूप ही स्वीकार करना चाहिये, सगुण नहीं; क्योंकि उपनिषदोंमें जहाँ-कहीं ब्रह्मका स्वरूप बतलाया गया है अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय आदि निर्विशेष ही बतलाया गया है।'

विशिष्टाद्वैतके प्रधान आचार्य श्रीरामानुज शंकराचार्यके ठीक विपरीत ब्रह्मको निर्गुण न मानकर सगुण ही मानते हैं—

'अत्रेदं तत्त्वं चिदचिद्वस्तुशरीरतया तत्प्रकारं ब्रह्मैव सर्वथा सर्वशब्दाभिधेयम्। तत् कदाचित् स्वशरीरतयापि पृथग्व्यापदेशानर्हसूक्ष्मदशापन्नचिद-चिद्वस्तुशरीरं तत्कारणावस्थं ब्रह्म। कदाचिच्च

विभक्तनामरूपव्यवहारार्हस्थूलदशापन्नचिदचिद्वस्तु-शरीरं तच्च कार्यावस्थमिति कारणात् परस्माद् ब्रह्मणः कार्यरूपं जगदनन्यत् ।'

(श्रीभाष्य २.१.१४.)

'इस विषयमें तत्त्व इस प्रकार—ब्रह्म ही सदा 'सर्व' शब्दका वाच्य है; क्योंकि चित् और जड़ उसीके शरीर या प्रकारमात्र हैं। उसकी कभी कारणावस्था होती है और कभी कार्यावस्था। कारण अवस्थामें वह सूक्ष्मदशापन्न होता है, नाम-रूपरहित जीव और जड़ उसका शरीर होता है। और कार्यावस्थामें वह (ब्रह्म) स्थूलदशापन्न होता है, नाम-रूपके भेदके साथ विभिन्न जीव और जड़ उसके शरीर होते हैं; क्योंकि परब्रह्मसे उसका कार्य जगत् भिन्न नहीं है।'

अब देखिये श्रीमद्भागवत। यों तो इसमें सभी बातें आश्रय तत्त्वके निरूपणके लिए ही हैं; फिर भी दो स्थानोंपर, अर्थात् द्वितीय स्कन्धमें दसवें अध्यायमें और बारहवें स्कन्धके सातवें अध्यायमें आश्रय तत्त्वका साक्षात् लक्षण लिखा गया है—

आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते॥
योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः॥
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः॥

(२,१०.७-९)

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः॥

(१२.७.१९)

"सृष्टि और प्रलय अथवा विषय-प्रतीति एवं उसका अभाव—दोनों ही जिसके द्वारा प्रकाशित होते हैं, वह परब्रह्म ही 'आश्रय' अर्थात् 'अधिष्ठान' है; उसीको 'परमात्मा' कहते हैं। जो आध्यात्मिक पुरुष है, वही 'आधिदैविक' है; जो उन दोनोंको पृथक्-पृथक् करनेवाला है, वह 'आधिभौतिक पुरुष' है। एकके न होनेपर दूसरेकी उपलब्धि नहीं होती। ये तीनों सापेक्ष हैं। इन तीनोंके भाव और अभावको जो जानता है, वह अपेक्षाहीन साक्षी 'आश्रय' है।....जीवकी जगत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंके अभिमानी विश्व, तैजस् और प्राज्ञके मायामय रूपोंमें जिसका व्यतिरेक और अन्वय होता है, वह संसार-दशा और उसके बाधका अधिष्ठान ब्रह्म ही 'आश्रय' है।"

श्रीमद्भागवतकी चतुःश्लोकी में जिस परमतत्त्वका वर्णन किया गया है, वह आश्रय तत्त्व ही है (देखिये-२.९)। और भी अनेकों स्थानोंमें कारणात्मक और अपर, द्रष्टा एवं दृश्यका निषेध करके जिस तत्त्वका वर्णन् किया गया है, वह ब्रह्मतत्त्व ही है। बारहवें स्कन्धमें चार प्रकारके प्रलयोंका वर्णन आया है। ग्यारहवें स्कन्धमें स्थान-स्थान-पर मुक्ति और बन्धनसे परे जिस तत्त्वका उपदेश किया गया है, वह आश्रय ही है। गीतामें परा-अपरा प्रकृति, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, क्षर-अक्षर और प्रकृति-पुरुषसे परे जिस तत्त्वका वर्णन हुआ है, वही 'पुरुषोत्तम' श्रीमद्भागवतका आश्रय-तत्त्व है। वह ब्रह्म भी है, भगवान् भी है और जीवकी बुद्धिमें आनेवाले ब्रह्म तथा भगवान्‌से अत्यन्त परे, सर्वथा अचिन्त्य और अनिर्वचनीय भी।

आश्रय तत्त्वका लक्षण बतलानेके लिए ऊपर जिन श्लोकोंका उल्लेख किया गया है, उनमें तीन बातोंकी प्रधानता है—अधिष्ठानता, साक्षिता, निरपेक्षता। सृष्टि और प्रलय, भाव और अभाव-दोनोंसे वह परे है और दोनोंमें है। उसीसे इन दोनोंकी सत्ता है। उसके बिना ये नहीं रह सकते और इनके बिना भी वह रहता है। आध्यात्मिक पुरुषका अर्थ है—नेत्रादि इन्द्रियोंके अभिमानी जीव; आधिदैविक पुरुषका अर्थ है—नेत्रादि इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेवता; आधिभौतिक पुरुषका अर्थ है—नेत्रगोलक आदिवाला स्थूल शरीर। ये तीनों सापेक्ष हैं। यदि इनमें-से एक न रहे, तो शेष दो व्यर्थ हो जायँगे। दृश्यके बिना दर्शन और द्रष्टा अपना काम नहीं कर सकते, दर्शनके

बिना दृश्यकी दृश्यता और द्रष्टाका द्रष्टृत्व दोनों ही लुप्त हो जाते हैं। यदि द्रष्टा ही न हो, तब तो दर्शन और दृश्यकी कल्पना ही नहीं हो सकती। इसलिये ये सब सापेक्ष और बाधित हैं। इन तीनोंके भाव और अभावको देखनेवाला आत्मा इनका निरपेक्ष साक्षी है। जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें विश्व, तैजस प्राज्ञके रूपमें उनका अनुभव करनेवाला और समाधि अवस्थामें उनसे परे रहनेवाला आत्मा ही 'आश्रय ब्रह्म' है।

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि आश्रय तत्त्वकी इस व्याख्यासे ब्रह्म ही आश्रय तत्त्व सिद्ध होता है, भगवान् श्रीकृष्ण नहीं। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण और ब्रह्म दो नहीं, एक ही हैं। ब्रह्मसूत्रके ब्रह्म, गीताके पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण एक ही परम वस्तु हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
(१.२.११)

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मनमखिलात्मानाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥
(१०.१४.५५)

भाव यह कि तत्त्वेत्ता लोग एक ही अद्वितीय ज्ञान-स्वरूप तत्त्वको 'ब्रह्म', 'परमात्मा' और 'भगवान्' कहते हैं। श्रीकृष्ण ही जगत्के असंख्य जीवों के एकमात्र आत्मा हैं। जगत्के कल्याणके लिए वे आत्ममायासे शरीर-धारीकी भाँति प्रतीत होते हैं।

वास्तवमें भगवान्में शरीर और शरीरीका भेद नहीं होता। जीव अपने शरीरसे पृथक् होता है; शरीर उसका ग्रहण किया हुआ है और वह उसे छोड़ सकता है; परन्तु भगवान्का शरीर जड़ नहीं, चिन्मय होता है। उसमें हेय-उपादेयका भेद नहीं होता; वह सम्पूर्णतः आत्मा ही है। शरीरकी ही भाँति भगवान्के जो गुण होते हैं, वे भी आत्मस्वरूपभूत और अप्राकृत हैं, इसलिये वे उनका त्याग नहीं कर सकते। एक बात बड़ी विलक्षण है कि भगवान्के शरीर और गुण जीवोंकी ही दृष्टिमें होते हैं, भगवान्की दृष्टिमें नहीं। भगवान् तो निजस्वरूपमें, समत्वमें ही स्थित रहते हैं; क्योंकि वहाँ तो गुण-गुणीका भेद है ही नहीं। भगवान्के इसी स्वरूपकी ओर सभी आचार्योंका लक्ष्य है। उनकी वर्णनशैली विभिन्न होनेके कारण कहीं-कहीं परस्पर विरोध प्रतीत होता है; परन्तु विचार-दृष्टिसे देखनेपर आश्रयस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णमें सबका समन्वय हो जाता है। भगवान्के ये स्वरूपभूत अचिन्त्य गुण उनकी नित्य शक्ति ह्लादिनीके ही प्रकाश हैं। ह्लादिनी शक्ति ही श्रीराधिकाजी हैं, जो भगवान्से सर्वथा अभिन्न हैं। इस दृष्टिसे श्रीराधाकृष्णको भी आश्रय तत्व कहना ठीक ही है। इसी दशम तत्व आश्रय तत्वको विशुद्ध रूपमें जानने और प्राप्त करनेके लिए शेष नौ तत्वों—सर्ग, विसर्ग आदिका वर्णन किया जाता है।* अब इस बातपर विचार किया जायगा कि सर्ग, विसर्ग आदिका स्वरूप क्या है और इनके द्वारा आश्रय उपलब्धि कैसे होती है।

सर्ग

'सर्ग' का अर्थ है सृष्टि। सृष्टिके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मत उपलब्ध होते हैं। यह जगत् क्या है, और पहले-पहले इसकी उत्पत्ति कैसे हुई—इसके सम्बन्धमें वेदोंमें, उपनिषदोंमें, दर्शनोंमें और पुराणोंमें अनेकों प्रकारकी प्रक्रिया मिलती है। श्रीमद्भागवतमें भी कई प्रकारसे सृष्टिका वर्णन आया है। आस्तिक सिद्धान्तोंके ग्रन्थोंमें आश्रय एवं आधाररूपसे परमात्माको तो सभीने स्वीकार किया है, परन्तु सृष्टि-क्रममें कुछ-न-कुछ मतभेद सभी रखते हैं। यहाँ उन मतभेदोंकी गणना भी कठिन है, सबका वर्णन तो दूर रहा।

---

* दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥
(श्रीभा० २.१०.२)

इस विषयके तीन मतवाद बहुत प्रसिद्ध हैं—आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद। न्याय और वैशेषिक दर्शनोंमें परमाणुके रूपमें चार भूत, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन—ये नित्य द्रव्य माने गये हैं। इनके अतिरिक्त गुण, कर्म, समान्य, विशेष आदि पदार्थ भी हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें अनेक जीवात्माओंसे विलक्षण परमात्मा निमित्त बनकर बिखरे हुए परमाणुओंको संयुक्त करने लगता है। परमाणुओंके संयोगका आरम्भ होनेपर ही सृष्टि होती है, इसलिये इस मतका नाम 'आरम्भवाद' है। जो लोग परमाणुओंके संयोगमें ईश्वरको निमित मानते हैं, वे 'सेश्वर' हैं और जो नहीं मानते, वे 'निरीश्वर'। सनातनधर्मके शास्त्रोंमें सेश्वर न्याय और वैशेषिक ही स्वीकृत हुए हैं और वही युक्तियुक्त भी हैं।

सेश्वर सांख्य अथवा योगदर्शन विभिन्न परमाणुओंको सृष्टिका कारण न मानकर त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको ही मानता है और भगवान्‌के द्वारा प्रकृतिके क्षुब्ध किये जानेपर त्रिगुणका विकास मानता है। त्रिगुणके परिणामसे ही सृष्टि होती है, ऐसी इसकी मान्यता है। कोई-कोई परिणाममें ईश्वरको निमित्त मानते हैं और कोई परिणत होना प्रकृतिका स्वभाव ही मानते हैं, जो परिणामको प्रकृतिका स्वभाव मानते हैं। वे पुरुष-विशेषके रूपमें ईश्वरको उदासीन और असङ्ग मानते हैं, अथवा नहीं मानते। श्रीमध्वाचार्य परमात्मासे प्रकृतिको सर्वथा भिन्न मानते हैं, इसलिये वे भी प्रकृतिको ही जगत्‌का कारण मानते हैं। श्रीरामानुजाचार्य प्रकृति, जीव और ईश्वर—इन तीन तत्त्वोंको मानते हुए भी सबको 'ब्रह्म' ही कहते हैं; इसलिये उनके मतमें ब्रह्म ही अंश विशेषमें प्रकृतिरूपसे परिणत होता है और वही जगत् बनता है। इसलिये परिणामवादके दो रूप हुए—एक तो गुण-परिणामवाद और दूसरा ब्रह्म-परिणामवाद। ब्रह्ममें परिणाम होनेसे वह विकारी हो जायगा, इस आपत्तिका निराकरण करनेके लिए श्रीवल्लभाचार्यने 'अविकृत परिणामवाद' माना है।

बहुत-से आचार्य—जिनमें शंकराचार्य प्रधान हैं—ब्रह्मसे पृथक् परमाणु, प्रकृति और उनके कार्यकी सत्ता नहीं स्वीकार करते। वे न आरम्भवाद मानते हैं और न तो परिणामवाद मानते हैं न उनके मतमें सृष्टिकी व्यवस्था केवल विवर्तवादसे लगती है। सत्य वस्तुमें वास्तविक परिवर्तनको 'परिणाम' कहते हैं और वास्तविक होनेपर भी भ्रमसे दीख पड़नेवाले परिणामको 'विवर्त' कहते हैं। उनके मतमें इस सृष्टिका दीखना 'विवर्त' है। उस विवर्तको 'माया' कहते हैं। यह माया वास्तवमें कोई तत्त्व नहीं है। जिनकी दृष्टिमें सृष्टि सत्य है, उनको क्रमशः जगत्‌की उत्पत्तिका तत्त्व बतलाते हुए वे प्रकृतितक ले जाते हैं और एक अद्वितीय चित्स्वरूपमें प्रकृतिको असत् बतलाकर एकमात्र सद्‌वस्तुकी प्रतिष्ठा करते हैं। उनके सिद्धान्तमें सृष्टि आदिका वर्णन केवल दृष्टिसे अपवादके द्वारा परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके उसी स्वरूपमें स्थित होनेके लिए है। एक बार जगत्‌का अध्यारोप हो जानेके पश्चात् चाहे उसका परिणाम जिस प्रकारसे माना जाय, विवर्तवादियोंको कोई आपत्ति नहीं है; केवल इन सबका अपवाद होकर स्वरूपकी उपलब्धि होनी चाहिये। उनका तात्पर्य सृष्टि-वर्णनसे नहीं है। श्रीनिम्बार्काचार्यने दृष्टिभेदसे सभी प्रकारके सिद्धान्तोंको सम्भव माना है।

इन मतोंके अतिरिक्त और भी बहुत-से मत हैं, जिसके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें सृष्टि तत्त्वका निरूपण होता है। पूर्वमीमांसक और व्यावहारिक दृष्टिसे वेदान्ती भी जीवोंके अदृष्टको ही सृष्टिका हेतु स्वीकार करते हैं। कालकी क्रीड़ा, दैवकी इच्छा, ईश्वरका रमण और बहुत-से कारण सृष्टिके हेतु बतलाये जाते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक-जगत्‌में सृष्टिके सम्बन्धमें और विशेषकर अतीन्द्रिय पदार्थोंके सम्बन्धमें अबतक कोई सिद्धान्त निश्चित नहीं हुआ है। पहले वे भी अनेक पदार्थोंके संयोगसे सृष्टि मानते थे, पीछे एक पदार्थके विकाससे स्वीकार करने लगे हैं। अभी यन्त्र-प्रत्यक्ष न होनेके कारण वे यह निर्णय देनेमें असमर्थ हैं कि जगत्‌के मूलमें रहनेवाला एक तत्त्व चेतन है या जड़। परन्तु भारतीय ऋषि-मुनियोंने अपनी योगदृष्टिसे, अनुभवसे इस बातको निश्चितरूपसे जान लिया

है कि सृष्टिके मूलमें केवल चित् है और चिद् वस्तुके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

श्रीमद्भागवतके सृष्टि तत्त्वका वर्णन विभिन्न प्रकारसे आता है। 'सर्गका' लक्षण करते हुए कहा गया है—

भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः।
ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्·······················।।
(२.१०.३)

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ।।
(१२.७.११)

"परमात्माके द्वारा साम्यावस्था प्रकृतिमें क्षोभ होनेपर गुणोंकी विषमता, महत्तत्त्व, त्रिविध अहंकार, तन्मात्रा, इन्द्रिय और पञ्चभूतोंकी सृष्टि होना 'सर्ग' है।"

अव्यक्तसे व्यक्त होना, एकसे अनेक होना, निराकारसे साकार होना, सूक्ष्मका स्थूल होना 'सृष्टि' है। यह परिणाम प्रकृतिका है। श्रीमद्भागवतके अनेक स्थानोंमें माया और प्रकृतिको एकार्थक बतलाया है, अनेक स्थानोंमें भगवान्‌की इच्छाको ही 'प्रकृति' कहा है। प्रकृति, जीव और विविध कार्योंके रूपसे स्वयं भगवान् ही प्रकट होते हैं। इनमें वे प्रविष्ट न होनेपर भी प्रविष्टकी भाँति प्रतीत होते हैं; वे स्वयं ही अपने-आपकी, अपने-आपसे ही सृष्टि करते हैं। वे ही स्रष्टा, सृज्य और सृष्टि हैं। उनके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। दीख पड़नेवाली विभिन्नता मायिक एवं असत् है। जैसे स्वप्नमें कुछ न होनेपर भी बहुत कुछ दीखता है, वैसे ही दृश्य न होनेपर भी दर्शन हो रहा है। इस प्रकारके अनेकों वचन श्रीमद्भागवतको अभिमत मालूम पड़ते हैं। तीसरे स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायमें परमाणुओंके संयोगसे भी सृष्टिका वर्णन मिलता है।

इन विभिन्नताओंका तात्पर्य क्या है—सृष्टि-वर्णन अथवा सृष्टिके मूलमें स्थित तत्त्वका दर्शन? इस विषयपर जब हम विचार करते हैं तो बहुत ही स्पष्ट मालूम होता है कि बुद्धि जिन पहलुओंको लेकर सृष्टिपर विचार कर सकती है, सृष्टिके सम्बन्धसे जितनी दृष्टियाँ सम्भव हैं, उन सबके आधारपर विचार करके ऋषि-मुनियोंने सबकी अन्तिम गति 'भगवान्'को ही बतलाया है। सृष्टिक्रमको अनादि माना जाता है। सृष्टिके बाद प्रलय और प्रलयके बाद सृष्टि—यह परम्परा अनादिकालसे चल रही है। तमोगुणकी प्रधानतासे प्रलय होता है और रजोगुणकी प्रधानतासे सृष्टि। जीवोंके कर्मकी दृष्टिसे सृष्टिके चार हेतु कहे जा सकते हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। करुणा सागर भगवान् प्रलयकालीन अज्ञानकी घोर निद्रामें सोते हुए जीवोंको इसलिये जगाते हैं कि वे कर्म करके पुरुषार्थ-साधन करें। पुरुषार्थोंमें सर्वश्रेष्ठ मोक्ष ही है; अतः मोक्षके लिए ही, संसारसे मुक्त होनेके लिए ही संसारकी सृष्टि हुई है—ऐसा सिद्धान्त होता है।

दूसरी दृष्टि—भावकी दृष्टि—भक्तकी दृष्टि। इस दृष्टिसे भगवान् क्रीड़ा करनेके लिए, रमणके लिए सृष्टि करते हैं—'स एकाकी नारमत ततो द्वितीय मसृजत', 'स रन्तुमैच्छत्' इत्यादि श्रुतियाँ इस दृष्टिमें प्रमाण हैं। भगवान् जीवों और जगत्‌का निर्माणकरके उनके साथ क्रीड़ा करते हैं, यह चराचर जगत् उनकी लीला है। भक्तकी इस दृष्टिमें कर्म और तज्जन्य सुख-दुःखका अस्तित्व नहीं है। कर्म और उसके फल भी लीलामात्र हैं। इस दृढ़ निश्चयपर स्थित होकर भक्त प्रतिक्षण भगवान्‌की लीलाओंका दर्शन करता रहता है और सभी परिस्थितियोंमें अपने प्रियतमके स्मरणमें मस्त रहता है।

ज्ञानकी दृष्टिसे भी यह प्रतीतिमात्र जगत् प्रतिक्षण अपने भावाभावके साक्षी चिन्मात्र अधिष्ठानका बोध कराया करता है। वृत्तिकी गाढ़ता होनेपर तो प्रतीति भी नहीं होती, केवल निजस्वरूप ही रहता है। इसी निजस्वरूपकी पहचानके लिए सृष्टिक्रमोंका वर्णन है, चाहे किसी भी क्रमसे पहचाना जाय। इसके अतिरिक्त विभिन्न कल्पोंके भेदसे भी सृष्टि वर्णनमें भिन्नता पायी जाती है। कभी आकाशसे, कभी तेजसे, कभी जलसे

और कभी प्रकृतिसे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। उन सभी कल्पोंको ध्यानमें रखकर विभिन्न प्रकारके वर्णन आते हैं। सृष्टिक्रमका वर्णन श्रीमद्भागवतके दूसरे, तीसरे स्कन्धोंमें विस्तारके साथ हुआ है—जो कि उपनिषद्, गीता और मनुस्मृति आदिसे मिलता-जुलता ही है।

विसर्ग

प्रकृतिके गुण वैषम्यसे जो विराट् सृष्टि होती है, उसका नाम 'सर्ग' है। विराट्के एक अण्डमें ब्रह्माके द्वारा जो व्यष्टि सृष्टि अथवा विविध सृष्टि होती है, उसका नाम 'विसर्ग' है। जिस प्रकार सर्गके आधार, सर्गके उपादान, सर्गके निमित्त एवं सर्गके रूपमें, सर्गके परे और सर्गाभावमें भी परमात्माका दर्शन करके जीव कृतकृत्य होता है, वैसे ही विसर्ग भी परमात्माकी अनुभति प्राप्त करनेके लिए ही हैं। 'सर्ग' महान् है और 'विसर्ग' अल्प। एक ब्रह्माण्डको अपना शरीर माननेवाले रजोगुणके अधिष्ठातृदेवता ब्रह्मा हंसरूपी परमात्माके आधारपर विद्यारूपी सरस्वतीके सहारे चारों वेदोंके ज्ञानका आश्रय लेकर जीवोंके प्राक्तन कर्मका स्मरण करते हैं और उन कर्मोंके अनुसार नाना प्रकारके भोगायतन और कर्मायतन शरीरोंका निर्माण करते हैं। पहले-पहल उन्हें भी सृष्टिके सम्बन्धमें कुछ स्मरण नहीं होता। वे सृष्टिके मूलका अन्वेषण करते हैं, फिर भगवान्की प्रेरणासे तप करते हैं। सर्गके आश्रय भगवान्का साक्षात्कार होता है, तब वे 'यथापूर्वमकल्पयत्' सृष्टि करते हैं।

ब्रह्माकी सृष्टि मानसिक ही होती है। वे शरीर-संयोगपूर्वक बैजी सृष्टि नहीं करते। इसलिये उनकी सृष्टिमें विविधताके कारण होते हैं जीवोंके पूर्वजन्मके विविध कर्म। ब्रह्मा भगवत्प्राप्त ज्ञानसे उन्हें जानकर उनके अनुसार सृष्टि करते हैं। ब्रह्माके साथ ही और भी बहुत-से मरीचि, कश्यप, मनु आदि आधिकारिक पुरुष होते हैं, जिन्हें मानसिक सृष्टि करनेका अधिकार होता है। यही कारण है कि कश्यपसे देव-दैत्य, पशु-पक्षी, स्थावर-जङ्गम—सब प्रकारकी सृष्टि होती है। निरुक्तके अनुसार 'कश्यप'का अर्थ है—'पश्यक'—देखनेवाला, देखनेमात्रसे सृष्टि करनेवाला। श्रुतियोंमें मानसिक सृष्टिका वर्णन होता है—

'मनसा साधु पश्यति।' 'मानसाः प्रजा असृजन्त॥'

'मनसे परोक्ष कर्मोंको भी देख लेता है।' 'मनसे ही प्रजाकी सृष्टि होती है।' महाभारतमें भी कहा गया है—

> प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवासृजत् प्रभुः।
> तथैव देवानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे॥
> आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाक्षयाव्यया।
> सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा॥

"सर्वसमर्थ भगवान् ब्रह्माने मनसे ही यह सारी सृष्टि की। ऋषियोंने भी तपस्याके बलसे पहले-पहल मानसी ही सृष्टि की थी। आदिदेव ब्रह्माके द्वारा जो वेदमूल अक्षय, अव्यय और धर्मानुकूल सृष्टि हुई, उसका नाम 'सृष्टि' हुआ।"

विष्णुपुराणमें सृष्टिके कई स्तर बतलाये गये हैं। एक तो अज्ञानयुक्त प्रकाश ही 'स्थावर सृष्टि' है, जिसमें केवल अन्नमय कोषका विशेष विकास है और दूसरे कोष अविकसित हैं। दूसरी सृष्टि स्वेदज, अण्डज तथा जरायुज पशुओंकी है—जिनमें क्रमशः प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोषका यत्किञ्चित् विकास हुआ है। उनके अन्तःकरणमें ज्ञानका लक्ष्य नहीं है। उनके लिए धर्माधर्मका बन्धन नहीं है, इसलिये वे प्राकृतिक रूपसे ही अभिमानी हैं। तीसरी सृष्टि देवताओंकी है, जो भोग-विलासमें ही विशेष प्रीति रखते हैं। यह सब-की-सब 'असाधक सृष्टि' हैं। इसके बाद मनुष्योंकी सृष्टि हुई, जो कि साधक और कर्मप्रवण है। यह सब ब्रह्माकी 'मानसी सृष्टि' है।

श्रीमद्भागवतमें श्रीब्रह्माकी मानसी सृष्टिका वर्णन है, यथा—
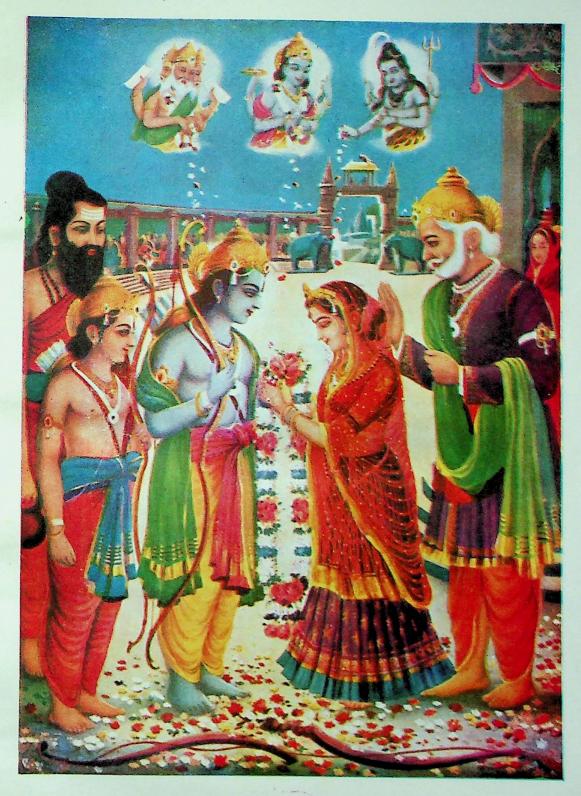
श्रीसीता - राम - विवाह

'भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यांस्तदासृजत् ।'
(३.१२.३)

और भी—

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ।
(३.१२.२१)—इत्यादि

मनुस्मृतिमें वर्णन आता है कि ब्रह्माके पुत्रोंने और भी मानसी सृष्टि की, जिससे देवता, दैत्य, महर्षि आदिकी उत्पत्ति हुई । कालक्रमसे, युगपरिवर्तनसे, तपःशक्ति क्षीण हो जानेके कारण आगे चलकर मानसी सृष्टिका होना बंद हो गया, केवल मैथुनी सृष्टि रह गयी। फिर भी समय-समयपर ऐसे तपःसिद्ध योगी पुरुष होते रहे, जिनके द्वारा मानसी, चाक्षुषी आदि सृष्टि होती रही । समष्टि तमोगुणके उद्रेकसे अब ऐसा समय आ गया है कि लोग इस बातपर विश्वास करनेमें हिचकिचाने लगे हैं कि बिना स्त्री-पुरुषके संयोगके भी सृष्टि हो सकती है। यह सृष्टि तत्त्वपर संयम न करनेका फल है ।

आर्य-शास्त्रोंके अनुसार सृष्टिके सात स्तर निश्चित होते हैं—

१. मानसी सृष्टि, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है ।

२. ऐसी सृष्टि, जिसमें स्त्री-पुरुष आदिके लिङ्गभेद न हों ।

३. एक ही शरीरमें स्त्री-पुरुष दोनोंकी सृष्टि ।

४. स्त्री-पुरुष पृथक्-पृथक् रहकर भी अपनी मानसिक शक्तिके द्वारा संतान उत्पन्न करें । आजके विज्ञान शास्त्रके अनुसार भी चिन्तन शक्तिकी महिमा छिपी नहीं है। केवल मानसिक शक्तिसे मेज हिलायी जा सकती है, दूसरोंकी आँखें बंद की जा सकती हैं, पक्षी उड़ते हुए दिखाये जा सकते हैं। मानसिक शक्तिके बलसे गर्भाधान भी कराया जा सकता है, यह बात पाश्चात्य वैज्ञानिक भी विज्ञानकी दृष्टिसे असम्भव नहीं मानते। भगवान् व्यासकी मानसिक प्रेरणा और दृष्टिपातसे धृतराष्ट्र, पाण्डु, एवं विदुरकी उत्पत्ति हुई थी तथा देवताओंकी मानसिक प्रेरणासे कुन्तीके द्वारा पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई थी ।

५. यज्ञावशिष्ट हविष्य अथवा अभिमन्त्रित चरुके द्वारा सृष्टि ।

६. काल-क्रमसे उपर्युक्त शक्तियोंका ह्रास हो जानेसे केवल स्त्री-पुरुष-संयोगसे होनेवाली सृष्टि ।

७. ब्रह्मचर्य, सदाचार, संयम आदिके अभावसे पुरुष एवं स्त्रियोंका शक्तिहीन होना तथा उनके संयोगके फलस्वरूप अवाञ्छित सृष्टिकी वृद्धि ।

इस प्रकारसे ह्रास होते-होते मानसी सृष्टिकी श्रेणी आती है और आगे चलकर नपुंसकता और वन्ध्यात्व ही शेष रह जाता है। पुराणोंमें और श्रीमद्भागवतमें जो नाना प्रकारकी सृष्टियोंका वर्णन आता है, उनके प्रति अविश्वास न करके विचार-दृष्टिसे देखना चाहिये और एक-एक व्यक्तिके जो बहुत-बहुत पुत्रोंका वर्णन आता है, उसकी भी संगति लगानी चाहिए ।

श्रीमद्भागवतमें विसर्गका बड़ा ही विस्तृत और विज्ञानानुमोदित वर्णन हुआ है। विसर्गका लक्षण वर्णन करते हुए गया है—

विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥ (२.१०.३)

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम् ॥
(१२.७.१२)

"ब्रह्माकी सृष्टिका नाम 'विसर्ग' है। ब्रह्माके द्वारा जीवोंकी वासनाके अनुसार जो एक बीजसे दूसरे बीजका होना—चराचरकी सृष्टि है, वही 'विसर्ग' है। वासना-विशिष्ट सृष्टिका नाम 'विसर्ग' है ।"

यह विसर्ग भगवान्के सर्वोत्कृष्ट शक्ति- और सर्वोत्कृष्ट क्रियाका बोधक है। जगत्की प्रत्येक विचित्रता भगवान्के

कौशलका स्मरण कराती है और क्रीड़ा देख-देखकर भक्त मुग्ध होता रहता है। श्रीमद्भागवतमें विसर्ग-तत्त्वका वर्णन इसलिये हुआ है कि लोग विसर्गके द्वारा आश्रयभूत भगवान्‌को ढूँढ़ निकालें और प्राप्त करें।

स्थान

आश्रयस्वरूप परमात्मामें विवर्त अथवा परिणामके द्वारा महत्तत्त्वादिको विराट्के अन्तर्गत एक ब्रह्माण्डकी सृष्टि किस प्रकार होती है—इन दोनों बातोंका वर्णन सर्ग और विसर्गके द्वारा किया जाता है। 'सर्ग' सामान्य सृष्टि है और 'विसर्ग' विशेष। जैसे एक ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है, वैसे ही असंख्य कोटि ब्रह्माण्डोंकी भी सृष्टि होती है। सृष्टि वर्णनके पश्चात् उसकी स्थितिका वर्णन होना चाहिये। 'स्थिति' शब्दका तात्पर्य है कि किन मर्यादाओंके पालनसे ब्रह्माण्ड स्थिर है, एक ब्रह्माण्डमें कितने लोक हैं और उनमें कौन-कौन-सी मर्यादाएँ हैं, लोकोंका विस्तार कितना है और उनका धारण किस प्रकार होता है—इन सब बातोंका विचार। इस विचारसे भगवान्‌की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। वे ही समस्त लोकोंके धारक, मर्यादा प्रवर्त्तक और संरक्षक हैं—केवल एक ब्रह्माण्डान्तर्गत लोकोंके ही नहीं, असंख्य ब्रह्माण्डान्तर्गत लोकोंके। इसीसे श्रीमद्भागवतमें स्थितिका लक्षण करते हुए कहा गया है—"स्थितिर्वैकुण्ठविजयः, (२-१०.४) अर्थात् भगवान्‌की सर्वश्रेष्ठताका ख्यापन ही 'स्थिति' है।"

मनुष्यकी दृष्टि अत्यन्त स्थूल है। वह अपने आस-पासके कुछ स्थूल स्थानोंको ही देख पाता है। सूक्ष्म जगत्‌के सम्बन्धमें साधारण मनुष्यकी जिज्ञासा बहुत बड़ी है। वह बहुत दूर-से-दूर स्थानों और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुओंको जाननेकी इच्छा करता है। इच्छाके वश होकर आधुनिक मनुष्योंने पृथिवीके कुछ अंशोंकी खोज की है। अभीतक स्थूल पृथिवीकी भी खोज पूरी नहीं हुई है। अनेकों जंगल, रेगिस्तान, पर्वतोंकी चोटी और समुद्रके तल ऐसे पड़े हैं, जिनकी खोज न अबतक हो सकी है और न आगे निकट भविष्यमें होनेकी कुछ सम्भावना ही दीखती है। ऐसी अधूरी दृष्टिवाले लोग जब हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंके द्वारा वर्णित लोक-लोकान्तर और अनेकविध समुद्र एवं पृथिवी-स्तरोंका वर्णन सुनते हैं, तब उनकी बुद्धि चकित हो जाती है और वे सहसा उनके अस्तित्वपर विश्वास करनेको तैयार नहीं होते। अनेकों वर्षोंतक योग साधना करके विशिष्ट शक्ति सम्पन्न होकर ऋषि-मुनियोंने जिन सूक्ष्म तत्त्वों और स्थानोंका अनुभव प्राप्त किया था, वह केवल कुछ वर्षोंतक ग्रन्थ पढ़नेवालों और जड़ यन्त्रोंपर सर्वथा विश्वास करने-वालोंको कैसे प्राप्त हो सकता है?

योगदर्शनमें चतुर्दश लोकोंके ज्ञानकी प्रक्रिया बतलाते हुए कहा गया है कि सूर्यमें संयम करनेसे चतुर्दश भुवनोंका ज्ञान होता है। चतुर्दश लोकोंकी संख्या करते हुए भाष्यकार भगवान् व्यासने भूर्लोक, भुवर्लोक, पाँच प्रकारके स्वर्लोक, माहेन्द्र स्वर्ग, प्राजापत्य स्वर्ग और तीन प्रकारके ब्राह्म स्वर्गका वर्णन किया है। पृथिवीसे नीचे तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, पाताल—इन सात लोकोंका वर्णन आया है। ये ही ब्रह्माण्डके चौदह भुवन हैं। इन नीचेके लोकोंको 'विलस्वर्ग' कहते हैं। इनमें ऊपरके लोकोंसे भी अधिक विषय-भोग करनेका अवसर है। इनमें दैत्य, दानव और सर्प—जो कि आसुरी प्रकृतिके हैं—अपनी इच्छाके अनुसार भोग भोगते हैं। श्रीमद्भागतमें पाँचवें स्कन्धके चौबीसवें अध्यायमें इनका वर्णन है। ऊपरके लोकोंमें पृथिवी, जिसमें हमलोग रहते हैं और अन्तरिक्षलोक जिसको 'भुवर्लोक' भी कहते हैं—ये दोनों 'भौमस्वर्ग' कहलाते हैं। इसके ऊपर पाँच लोक दिव्य स्वर्ग हैं, जिनका वर्णन अभी किया गया है। स्वर्लोक 'माहेन्द्र स्वर्ग' है, महर्लोक 'प्राजापत्य स्वर्ग' है और जनलोक, तपोलोक एवं सत्यलोक 'ब्राह्म स्वर्ग' हैं। इन लोकोंमें क्रमशः सात्त्विक और सात्त्विकताका उत्कर्ष होता जाता है। भूर्लोक और भुवर्लोकके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, नक्षत्र, पृथिवी आदि सब स्थूल लोक हैं। (देखिये, पाँचवें स्कन्धका बीसवाँ अध्याय)

भूर्लोकके सात विभाग हैं। उन्हें अलग-अलग द्वीपके नामसे, कहा गया है। भूर्लोकका अर्थ केवल पृथिवी ही

नहीं है, उसके अन्तर्गत बहुत-से सूक्ष्म और अदृश्य लोक भी हैं। इसलिये उन द्वीपोंको और उनके चारों ओर रहनेवाले समुद्रोंको स्थूल जलमय समुद्र नहीं मानना चाहिये। वे सब वातावरण हैं। एक द्वीपके ऊपर समुद्र, फिर द्वीप, फिर समुद्र—इस क्रमसे सात द्वीप और सात समुद्र स्थित हैं। उन सात द्वीपोंके नाम ये हैं—जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाल्मलिद्वीप और पुष्करद्वीप। इन द्वीपोंको क्रमशः लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र और उदकसमुद्र घेरे हुए हैं। एककी अपेक्षा दूसरेका परिणाम बड़ा होता गया है। ये सब द्वीप और समुद्र सुमेरुके आधारपर स्थित हैं। सुमेरु पर्वत स्थूल नहीं, दिव्य है—इस बातका वर्णन मत्स्यपुराणके एक सौ तेरहवें अध्यायमें आता है।* उसीकी शक्ति-रज्जुमें बँधकर यह सब-के-सब सूक्ष्म लोक स्थित रहते हैं।

सुमेरुकी दिव्यतासे ही उसके आश्रयसे रहनेवाले लोक और समुद्रोंकी भी दिव्यता सिद्ध हो जाती है। आकाशमें अनेकों प्रकारके वायुमण्डल हुआ करते हैं। इस पृथिवीके ऊपर उड़नेपर थोड़ी ही दूर बाद ऐसा वायुमण्डल प्राप्त होता है, जिसमें विमान नहीं उड़ सकते। यह तो पृथिवी-तत्त्व-प्रधान लोकका वायुमण्डल है। जो लोक केवल जल-तत्त्व-प्रधान अथवा अग्नि-तत्त्व-प्रधान है, उसके वायुमण्डलमें बहुत अन्तर होना निश्चित ही है। ऋषियोंने समाहित बुद्धिसे उन सब स्तरोंका अनुभव करके उनका नामकरण किया है। उन सबके बीचमें 'जम्बूद्वीप' स्थित है। आजकल जितनी पृथिवी स्थूल दृष्टिसे उपलब्ध होती है, वह जम्बूद्वीपके ही अन्तर्गत है। इसका प्रमाण यह है कि समस्त पृथिवी क्षारसमुद्रसे ही परिवेष्टित है। बल्कि यह सम्पूर्ण पृथिवी जम्बूद्वीपका एक अंश है। जम्बूद्वीपमें नौ खण्ड, अर्थात् नौ वर्ष हैं, उनमें-से एक भारतवर्ष और शेष देवलोकके ही भेद हैं—

'तत्रापि भारतमेव वर्ष कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति।'

(श्रीमद्भा० ५.१७.११)

"अर्थात्—जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है, दूसरे आठ वर्ष स्वर्गसे लौटे हुए लोगोंके लिए शेष पुण्यका उपभोग करनेके स्थान हैं। उनका नाम 'भौमस्वर्ग' है।" पाँचवें स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें वर्णन हुआ है कि केवल इस भारतवर्षमें ही पाप-पुण्यादिके भेद हैं और यहीं उनका फल भी मिलता है।

इन विचारोंसे यह सिद्ध हुआ कि एक ब्रह्माण्डमें चौदह लोक हैं, उनमें भूर्लोक एक लोक है। भूर्लोकमें सात द्वीप हैं और उनमें जम्बूद्वीप एक वर्षका नाम 'भारतवर्ष' है। मनुष्योंके रहनेयोग्य केवल भारतवर्ष ही है। दूसरे वर्षोंका वर्णन देवलोकोंके समान प्राप्त होता है—

यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्॥
स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः।
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः॥
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै।
कृतत्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना॥

(विष्णु पुराण २.२.५३-५५)

'जम्बूद्वीपके किम्पुरुषादि आठ वर्षोंमें शोक, श्रम, उद्वेग और क्षुधाका भय आदि नहीं है। वहाँकी प्रजा स्वस्थ, निरातङ्क और सुखी है। उसकी आयु दस-बारह हजार वर्षकी होती है। उनमें वर्षा कभी नहीं होती, पार्थिव जलसे काम चलता है। उनमें सतयुग एवं त्रेता आदिके रूपमें युगभेद भी नहीं है।'

इससे सिद्ध होता है कि भारतवर्षके अतिरिक्त पृथिवीके दूसरे भाग स्थूल नहीं हैं। जितने देश अथवा द्वीप उपलब्ध होते हैं, वे सब भारतवर्षके ही अन्तर्गत हैं। वर्तमान कालमें एशिया, अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका

* मेरुस्तुशुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः।

आदि उनका नाम हो गया है सही; परन्तु है वे सब भारतवर्षके ही प्रदेश विशेष। उनके नाम 'विष्णुपुराण'में गिनाये हैं—

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान् निशामय।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥
(विष्णु पुराण २.३.६-७)

'भारतवर्षके नौ भाग हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण—इन आठोंके अतिरिक्त नवाँ यह भारत द्वीप है। यह चारों ओरसे समुद्रसे घिरा हुआ है।'

मत्स्यपुराणमें भी ठीक इसी आशयका श्लोक मिलता है—

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान् निबोधत।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः॥
(अध्याय ११४)

'इस भारतवर्षके नौ भेद हैं। उनमें हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीतक फैला हुआ, समुद्रसे घिरा हुआ यह भारतद्वीप है।'

इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि आजकल जितनी पृथिवी उपलब्ध होती है, उसका नाम 'भारतवर्ष' है और आजकल जिसको 'हिन्दुस्तान' कहा जाता है, वह भारतवर्षका एक द्वीपमात्र है। काल-क्रमसे दूसरे द्वीपोंके वे नाम, जो शास्त्रोंमें लिखे हुए हैं, बदल गये। वहाँकी भाषा परिवर्तित हो गयी। ब्राह्मण, वेद आदिका प्रचार न होनेसे वे हमसे दूर पड़ गये और शास्त्रोंमें जो उनके इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण आदि नाम लिखे हैं, वे नाम भी आज आश्चर्यजनक हो गये हैं। भारतवर्षके नौ खण्डोंमें यही खण्ड सर्वप्रधान है। इसलिये इसका दूसरा नाम न रखकर भारतवर्षके हृदयभूत इस द्वीपको भी 'भारत' ही कहा है। जैसे भूर्लोकका विस्तार बहुत बड़ा होनेपर भी कहीं-कहीं इस पृथिवीको ही 'भूर्लोक' कह देते हैं, वैसे ही समस्त मृत्युलोकका नाम भारतवर्ष होनेपर भी इस प्रधान द्वीपको ही कहीं-कहीं 'भारतवर्ष' कह देते हैं। यह इस भूमिकी महान् महिमाका द्योतक है।

इन द्वीपोंके अतिरिक्त आठ उपद्वीप भी हैं—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लङ्का। इनमेंसे सिंहल और लङ्का दोके नाम वही हैं, परन्तु शेष के नाम बदल गये हैं। श्रीमद्भागवत महापुराणमें इन सबका वर्णन है; भारतद्वीपकी नदियों, पर्वतों और भौगोलिक स्थितिका सम्पूर्ण चित्रण है। भूगोल और इतिहासके प्रेमियोंको उनका अन्वेषण करके प्राचीन शास्त्रोंकी सत्यताका अनुभव करना चाहिये। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भौगोलिक स्थितिमें निरन्तर परिवर्तन हुआ करता है। हजारों वर्ष पहले जहाँ बड़े-बड़े पर्वत थे, वहाँ आज समुद्र हो गये हैं। पुरातत्त्वके अनुसंधानकर्त्ताओंने पर्वतके ऊँचे टीलोंपर जल-जन्तुओंकी हड्डियाँ प्राप्त करके ऐसा अनुमान किया है कि पहले यहाँ समुद्र था। लोगोंके देखते-देखते बहुत-से द्वीप समुद्रमें विलीन हो गये और बहुत-से जलमय प्रदेश लोगोंके रहनेवाले रहनेयोग्य स्थान हो गये। इन परिवर्तनोंको देखते हुए यदि पौराणिक भूगोल और वर्तमान भूगोलमें कुछ अन्तर भी मिले तो पुराणोंकी कपोल कल्पना नहीं समझना चाहिये, बल्कि उनकी प्रामाणिकता स्वीकार करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें तीन प्रकारकी स्थितियोंका वर्णन आया है—पृथिवीलोककी स्थिति, ऊर्ध्वलोककी स्थिति और अधोलोककी स्थिति। पृथिवीलोकमें चार प्रकारके स्थान हैं—मनुष्यलोक, नरकलोक, प्रेतलोक, और पितृलोक। मनुष्यलोकमें चार प्रकारके शरीर होते हैं—उद्भिज्ज शरीर (वनस्पति), स्वेदज शरीर (खटमल

आदि), अण्डज शरीर (चींटी, पक्षी आदि) और जरायुज शरीर (पशु, मनुष्य)। ये सब मनुष्यलोकमें रहते हैं। इस लोककी मर्यादा शास्त्रोंमें निश्चित की गयी है। सब अपनी-अपनी मर्यादाका पालन करते हुए स्थित रहते हैं। लवणसमुद्रके तटपर भारतवर्षके आग्नेय कोणपर निम्न स्तरमें नरकका स्थान है, जो कि इन आँखोंसे देखा नहीं जा सकता। वे एक प्रकारके जेल हैं। पापोंका फल भोगनेके लिए वहाँ जीव जाते हैं। उनका शरीर 'यातना शरीर' कहा जाता है। पृथिवीसे ऊपर अन्तरिक्षमें थोड़ी दूरतक प्रेतलोक है, जिसमें मृत्युके अनन्तर अनेक प्रकारकी वासनाओंसे जकड़े हुए जीव वासना-शरीर ग्रहण करके निवास करते हैं। पितृलोक पुण्यात्माओंका स्थान है; उसमें कुछ नित्य पितर भी रहते हैं; इन सबकी मर्यादा सुनिश्चित है। ऊर्ध्वलोकोंमें ज्योतिश्चक्रसे लेकर ब्रह्म-लोकपर्यन्तकी मर्यादा भी शास्त्रद्वारा सुनिश्चित है और अधोलोकोंमें तलसे लेकर पातालतककी। ये सब मर्यादाएँ भगवदिच्छासे ही निर्मित हुई हैं। श्रीमद्भागवतमें आया है कि पृथिवीके जितने विभाग हैं, वे सब सूर्यके द्वारा ही विभक्त होते हैं (५.२०.४५)। सूर्यकी किरणोंका जहाँतक विस्तार है और चन्द्रमाकी किरणें जहाँतक पहुँच सकती हैं, उस प्रदेशका नाम 'पृथिवी' है—वह चाहे समुन्द्र, नदी, पर्वत आदि किसी रूपमें क्यों न हो ?* वास्तवमें बात यह है कि पञ्चीकरण-प्रक्रियाके अनुसार पृथिवी-तत्त्व-प्रधान वायुमण्डलको 'पृथिवी' कहते हैं और जल-तत्त्व-प्रधान वायुमण्डलको 'समुद्र' कहते हैं। इसी दृष्टिसे पृथिवीकी लम्बाई-चौड़ाई पचास करोड़ योजनकी कही गयी है और सात प्रकारके विभिन्न समुद्रोंका वर्णन भी इसी दृष्टिसे आया है। वर्तमान पृथिवीकी मध्यरेखा, अर्थात् व्यास आठ हजार मील, अर्थात् एक हजार योजन है। गोल पदार्थके घनफल निकालनेकी रीतिसे यदि पृथिवीका परिमाण निकाला जाय तो वह पचास कोटि योजन होगा। यह एक दूसरी ही पद्धति है। पृथिवी आदि ग्रहोंका सम्बन्ध प्राचीन और अर्वाचीन शास्त्रोंका प्रायः एक-सा ही है और वैज्ञानिकोंने अबतक इस दिशामें कोई निश्चित मार्ग निकाला भी नहीं है। इसलिये इस विषयमें उनके अनिश्चित मतके साथ शास्त्रीय मतकी तुलना न करके शास्त्रीय वर्णनको ही प्रमाणिक मानना चाहिए।

प्राकृत सृष्टि (सर्ग) और ब्रह्माण्डान्तर्गत विविध सृष्टि (विसर्ग) जिस प्रकार भगवान्की महिमाको प्रकट करने-वाली हैं, वैसे ही एक ब्रह्माण्ड और असंख्य ब्रह्माण्डोंकी स्थिति भी भगवान्की अद्भुत धारण-शक्ति अथवा आधार-शक्तिको प्रकट करती है। प्रत्येक लोकमें कर्तव्य-अकर्तव्य, उनके सुफल-कुफल और महान् नियन्त्रणको देखकर सहृदय पुरुष नियन्त्रण करनेवाले भगवान्के चरणोंपर निछावर हो जाता है। इस नियन्त्रण और न्यायके साथ ही भगवान्की दया भी पूर्णतः रहती है। इसीलिये स्थिति अथवा मर्यादाका वर्णन करके पोषण, अर्थात् भगवान्के अनुग्रहका वर्णन करना प्रासङ्गिक हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—'पोषणं तदनुग्रहः।' (२.१०.४) पोषण अर्थात् भगवान्की अहैतुकी और सर्वतोमुखी दया।'

पोषण

श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें मनुष्य, देवता और दैत्य—तीनोंपर ही भगवान्के अहैतुक अनुग्रहका दिग्दर्शन कराया गया है। मनुष्योंमें अजामिल महान् दुराचारी और पापिष्ठ था। उसने जान-बूझकर भगवान्का नाम भी नहीं लिया, मरते समय अपने पुत्रको पुकारा; फिर भी भगवान्ने उसपर महान् अनुग्रह किया और उसको सद्गति प्रदान की। देवताओंमें इन्द्रके द्वारा गुरुका अपमान और विश्वरूप ब्राह्मणका वध भी हो गया था; परन्तु भगवान्ने उनको अपना लिया। दैत्योंमें वृत्रासुर बड़ा ही भयंकर था। वह हाथी-समेत इन्द्रको निगल

---

* रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते ।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥
(विष्णु पुराण २.७.३)

गया; फिर भी भगवान्ने उसे अपना लिया। इन आख्यानोंसे यह सिद्ध होता है कि भगवान् जाति-पाँति धर्म-कर्म और आचार-विचारपर दृष्टि न डालकर सारे जगत्को एक समान अपनानेके लिए उद्यत हैं। उद्यत ही क्यों, सबको अपनाये हुए हैं। यह सारा जगत् भगवान्की गोदमें है और उनकी दयाके अनन्त समुद्रमें डूब-उतरा रहा है। सर्वत्र दया-ही-दयाका साम्राज्य है। चाहे कोई भी हो, कैसा भी क्यों न हो, वह भगवन्की अनन्त दयाका स्मरण करके सर्वदाके लिए आनन्दमें निमग्न हो सकता है। परमात्माकी इस दयाके स्मरण करानेवाले अनेकों चरित्र श्रीमद्भागवतमें हैं। पढ़-सुनकर आश्रय-स्वरूप भगवान्की दयामें निमग्न होकर सभी अपने जीवनको कृतार्थ कर सकते हैं।

ऊति

प्रश्न यह होता है कि भगवान्की इतनी दया है और जगत्के जीव क्षुद्र सुखोंके लिए विषयोंमें भटक रहे हैं—इसका कारण क्या है ? भगवान् अपनी दयासे इन जीवोंकी रक्षा क्यों नहीं करते ? इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए श्रीमद्भागवतमें 'ऊति'का वर्णन आया है। 'ऊति' शब्दका अर्थ है—कर्मवासना 'ऊतयः कर्मवासनाः' (२.१०.४) अर्थात् कर्म-बन्धनके कारण ही जीव भगवान्को भूल गया है और एक शरीरसे दूसरे शरीरमें, एक लोकसे दूसरे लोकमें, एक कर्मसे दूसरे कर्ममें और एक संकल्पसे दूसरे संकल्पमें भटकता रहता है। उसका विश्वास हो गया है कि मैं अमुक कर्म करके सुखी हो सकूँगा। इसी विश्वासके कारण वह अपने अंदर, बाहर और चारों ओर रहनेवाली परम-निधि भगवान्की दयाको भूल रहा है। वासनाओंके कारण प्रिय-अप्रिय, राग-द्वेष और शुभ-अशुभमें पड़कर मन नाना प्रकारकी वाञ्छित गतियोंमें आ-जा रहा है। यह सत्य है कि इन वासनाओंके कारण ही जीव दुःखी हो रहा है। फिर भी इन वासनाओंका वर्णन इसलिये किया जाता है कि जीव इनकी दुःखरूपताको पहचाने और इन्हें छोड़कर परमात्मकी अनन्त दयाका स्मरण करके उन्हें प्राप्त करे।

वासना दो प्रकारकी होती हैं—एक 'शुभ' और दूसरी 'अशुभ'। महापुरुषोंकी कृपासे शुभ वासना होती है और उनके द्वेषोंसे अशुभ। वैकुण्ठके द्वारपाल जय-विजयको सनकादिकोंके द्वेषसे अशुभ वासना हुई और बहुत जन्मोंतक उन्हें भगवान्की दयासे वञ्चित रहना पड़ा। यद्यपि उनपर भी भगवान्का अनुग्रह था और भगवान् बार-बार अवतार लेकर उन्हें वासनाओंसे मुक्त करते रहे; परन्तु उनका जीवन बहुत दिनोंतक नीरस ही रहा और उन्हें बहुत विलम्बसे भगवत्कृपाकी अनुभूति हुई; इसके विपरीत प्रह्लादको गर्भमें ही सत्सङ्ग और भगवान्के परम भक्त नारदकी कृपा प्राप्त हुई। तत्क्षण हीं भगवत्कृपाका अनुभव प्राप्त करके वे कृतकृत्य हो गये। इसलिये कर्म-वासनाओंका त्याग करके सद्गुण और सदाचारके अनुसार अपने जीवनका निर्माण करते हुए भगवत्कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। जिन सद्गुण और सदाचारोंके द्वारा कर्म-वासनाओंका त्याग और सद्वासनाओंका ग्रहण होता है, उनका वर्णन सातवें स्कन्धके अन्तिम पाँच अध्यायोंमें हुआ है।

मन्वन्तर

यदि शीघ्र-से-शीघ्र महापुरुषोंकी कृपा प्राप्त करके भगवान्की अनन्त दयाका अनुभव न कर लिया जायगा तो एक-दो जन्म नहीं, एक-दो युग नहीं, इतने समयतक संसारमें भटकना पड़ेगा कि वर्षोंके द्वारा उसका हिसाब नहीं बताया जा सकता; मन्वन्तर भी उसके सामने बहुत थोड़े हैं। भटकनेके समयका हिसाब लगानेके लिए 'मन्वतर' एक साधन है और साथ ही प्रत्येक समय अपने सहायकोंके साथ सद्धर्मका पालन और विस्तार करनेके लिए कुछ आधिकारिक पुरुष नियुक्त रहते हैं। अतः किसी भी समय धर्म-पालनकी प्रेरणा प्राप्त हो सकती है, यह सूचित करनेके लिए मन्वन्तरका वर्णन आता है। कितने वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है ? मनुष्य-वर्षोंके हिसाबसे ४३,२०,००० वर्षोंकी एक 'चतुर्युगी' होती है। इकहत्तर चतुर्युगीका एक 'मन्वन्तर' होता है। चौदह मन्वन्तरका एक 'कल्प' होता है। यह कल्प ब्रह्माका एक दिन है।

इतनी ही ही बड़ी उनकी एक रात्रि होती है। इस हिसाबसे जब ब्रह्मा सौ वर्षके हो जाते हैं, तब उनकी आयु पूरी हो जाती है। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु बदल जाते हैं; इस श्वेतवाराहकल्पमें स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष नामके छः मनु व्यतीत हो चुके हैं; सातवें वैवस्वत मनु वर्तमान हैं। आगे सात मनु और होनेवाले हैं; उनके नाम हैं—सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। प्रत्येक मनुके समयमें विशेष-विशेष देवता, उनके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान्‌के अवतार हुआ करते हैं। इन सबका वर्णन श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर आता है। वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान्‌का वामनावतार मन्वतरावतार है। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज-सप्तर्षि हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभुगण देवता हैं। पुरन्दर नामके इन्द्र हैं। वैवश्वत मनुके दस पुत्र हैं—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि। इसी प्रकार पृथक्-पृथक् प्रत्येक मनु अपने शासनकालमें सद्धर्मकी रक्षा और प्रचार करते हैं और इनके पुत्र, ऋषि, देवता आदि स्थान-स्थानपर गुप्तरूपसे रहकर धार्मिकोंकी सहायता करते हैं, अधिकारी पुरुषोंके सामने प्रकट होते हैं और उनके उद्धारका साधन भी बतलाते हैं। इसीसे श्रीमद्भागवतमें मन्वन्तरकी व्याख्या 'सद्धर्म' शब्दसे की गयी है।

समयकी गणना करनेकी इस महान् पद्धतिको देखकर बहुत-से लोग चकरा जाते हैं और वे ऐसा मान बैठते हैं कि इतना समय हुआ नहीं है; परन्तु समयके सम्बन्धमें इतनी विशाल कल्पना कर ली गयी है। उन्हें समझना चाहिये कि मन्वन्तरोंकी गणनाके अनुसार इस कल्पकी पृथिवीकी जितनी आयु है, उतनी ही आयु वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे भी है। इस कल्पके चौदह मन्वन्तरोंमें-से सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है, जो कि पृथिवीकी तहों और परतोंकी जाँचसे भी ठीक सिद्ध होता है। भारतीय शास्त्रोंकी परम्परा जबसे प्राप्त होती है, तबसे मन्वन्तरकी गणनाका यही क्रम है। ब्रह्माके एक दिनका जो हिसाब गीतामें लिखा हुआ है, वही हिसाब और वही श्लोक शाकल्यसंहिता, निरुक्त, महाभारत, समस्त पुराण और ज्योतिषके ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। मनुका जैसा चरित्र भारतीय ग्रन्थोंमें वर्णित हुआ है, दूसरे देशोंमें वैसे ही चरित्रवाले दूसरे व्यक्तियोंका वर्णन मिलता है। जैसे वैवस्वत मनु प्रलयके समय वनस्पतियोंके समस्त बीज और सप्तर्षियोंको लेकर एक नावपर बैठ जाते हैं (देखिये अष्टम स्कन्धके अन्तिम दो अध्याय) और वह नाव हिमालयकी चोटीसे बाँध दी जाती है। शतपथ-ब्राह्मणमें इसका वर्णन मिलता है। बाइबिलमें भी ठीक वैसी ही कथाका उल्लेख है। नोआ नामके व्यक्ति प्रलयके समय पृथिवीके समस्त बीजोंको लेकर नावपर सवार हो जाते हैं और उनकी नाव पहाड़की चोटीसे बाँध दी जाती है। प्रलयका जल घट जानेपर फिर उन्हींके द्वारा सृष्टि होती है और वे बहुत दिनोंतक जीवित रहते हैं। न केवल बाइबिलमें, अपितु विभिन्न जातियोंके अन्यान्य धर्म-ग्रन्थोंमें भी इस प्रकारकी कथाएँ प्राप्त होती हैं।

ईशानुकथा

एक मन्वन्तरके बाद दूसरा मन्वन्तर और एक कल्पके बाद दूसरा कल्प, इस प्रकार सृष्टिकी परम्परा चलती रहती है। सृष्टिके बाद प्रलय और प्रलयके बाद सृष्टि, यह क्रम अनादिकालसे चल रहा है और प्रवाहरूपसे नित्य है। यदि जीव भगवान्‌का आश्रय लेकर इस प्रवाह-परम्परासे ऊपर न उठ जाय तो उसे भटकते ही रहना पड़ेगा। इसीसे श्रीमद्भागवतमें 'ईशानुकथा'का वर्णन आता है। भगवान् और भगवान्‌के भक्तोंके अनेक आख्यानोंसे युक्त चरित्रको 'ईशानुकथा' कहते हैं। हिन्दू-धर्मग्रन्थोंमें यह बात एक स्वरसे स्वीकार की गयी है कि जगत्‌की रक्षा करनेके लिए स्वयं भगवान् समय-समयपर अवतार ग्रहण किया करते हैं। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें कुन्तीकी स्तुतिमें और दशम स्कन्धकी गर्भस्तुतिमें भगवान्‌के अवतारके अनेकों कारण और उनके समर्थनमें

अनेकों युक्तियाँ दी गयी हैं। श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर अवतारोंकी सूची, उनके चरित्र और महिमाका वर्णन किया गया है। यह बात सर्वथा बुद्धिग्राह्य जान पड़ती है कि अपने भक्तोंके आग्रहसे परम दयालु, सर्व-शक्तिमान् परमात्मा अवतार ग्रहण करें और ऐसी लीला करें, जिसको गाकर, स्मरण करके संसारके नाना प्रपञ्चोंमें उलझे हुए जीव मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर सकें। अवतारके अनेकों भेद बतलाये गये हैं—जैसे अंशावतार, गुणावतार, व्यूहावतार, अर्चावतार, आवेशावतार, स्फूर्ति-अवतार आदि। इनमें श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान्, अवतारी पुरुष हैं। इनके चरित्र-श्रवणसे किस प्रकार अन्तःकरण शुद्ध होता है; ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी किस प्रकार प्राप्ति होती है—इसका वर्णन श्रीमद्भागवतके प्रायः सभी स्कन्धोंमें है।

जो प्रेमी भक्त अपने सम्पूर्ण हृदयसे भगवान्का चिन्तन करते हैं, उनका हृदय, जीवन और प्रत्येक क्रिया भगवन्मय हो जाती है; उनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तु भगवान्का स्मरण करानेवाली होती है। इसीसे 'नारद-भक्तिसूत्र'में कहा गया है, 'भगवान और भगवान्के भक्तमें भेद नहीं होता; क्योंकि वे तन्मय होते हैं।' योगदर्शनमें चित्त निरोध करनेके लिए राग-द्वेष-रहित पुरुषोंके ध्यानका विधान है। महापुरुषोंके चरित्रसे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि संसारमें रहकर किस प्रकारसे ऊपर उठना चाहिये और भगवान्को प्राप्त करना चाहिये। इसलिए श्रीमद्भागवतमें ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि भक्तोंके चरित्रका वर्णन हुआ है।

अवतार भगवान् और उनके नित्य पार्षद-दोनोंके ही होते हैं। सर्वव्यापक, निराकार एकरस परमात्माके लिए कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ वह पहलेसे ही विद्यमान् न हो। इसलिये 'अवतार' शब्दका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा कहीं-से-कहीं आता-जाता है, अथवा ऊपरसे नीचे उतरता है। यह तो एक विनोदकी भाषा है। 'अवतार' शब्दका अर्थ है अव्यक्तरूपसे विराजमान परमात्माका व्यक्त हो जाना, यहीं छिपे हुए परमात्माका प्रकट हो जाना। जगत्में जो कुछ जगत् है, वह परमात्माका ही रूप है; इसलिये परमात्मा व्यक्त होनेपर भी अव्यक्त है और प्रकट होनेपर भी गुप्त है। जब जगत्के जीव इस रूपमें परमात्माको न पहचानकर अत्याचार-अनाचार आदि करने लगते हैं, तब जगत्की सुव्यवस्था करनेके लिए एक महान् शक्तिकी आवश्यकता होती है और उस शक्तिके रूपमें स्वयं परमात्मा ही अवतीर्ण होते हैं।

यह जगत् परमात्माकी शक्ति-विशेषका ही प्रकाशमात्र है। शास्त्रोंके अनुसार परमात्मामें सोलह कलाएँ हैं। उनमें-से एक कलाका प्रकाश उद्भिज्ज योनिमें है, वे अन्नमयकोष-प्रधान हैं। दो कलाओंका प्रकाश स्वेदज योनिमें है, वे प्राणमय कोष-प्रधान हैं। तीन कलाओंका प्रकाश अण्डज योनिमें है, वे मनोमय कोष प्रधान हैं। चार कलाओंका प्रकाश जरायुज पशुओंमें है, वे विज्ञानमय कोष-प्रधान हैं। पाँच कलाओंका प्रकाश जरायुज मनुष्योंमें है, वे आनन्दमय कोष-प्रधान हैं। छःसे आठ कलाओं-तकका प्रकाश उन महात्माओंमें होता है, जो कोष सम्बन्धी संवेदनोंसे ऊपर उठे हुए हैं। मानव-शरीरमें आठ कलाओंसे अधिक शक्ति धारण करनेकी क्षमता नहीं है। इससे अधिक शक्तिकी स्फूर्ति जहाँ होती है, वहाँ शरीर दिव्य उपादानोंसे ही बनता है और उसका नाम 'अवतार' होता है। नौसे पन्द्रह कलातकका प्रकाश 'अंशावतार'के नामसे अभिहित होता है और सोलह कलाका अवतार 'पूर्णावतार' कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं। भगवान्की दयालुता और सर्वशक्तिमत्ताको दृष्टिमें रखते हुए यही बात युक्तियुक्त जचती है कि भगवान् अपने भक्तोंकी रक्षा और आवश्यकता-पूर्तिके लिए अवश्य ही अवतार धारण करते हैं।

ऋक्संहिता (१.२२.१७) में वामनावतारका स्पष्ट वर्णन मिलता है—'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' इत्यादि। इसके बादवाले मन्त्रमें भी 'त्रीणि

यह बात होती है—पदके वाच्यार्थका ठीक-ठीक ज्ञान होनेपर, लक्ष्यार्थका इङ्गित समझ लेनेपर। फिर तो भागवतके घट, पट, मठ आदि शब्दोंके अर्थके रूपमें भी भगवान् श्रीकृष्णकी ही उपलब्धि होती है और भागवतमें कहीं भी किसी हेयांशका प्रकरण नहीं मिलता। यही बात भागवतको 'रस' कहकर सूचित की गयी है।

ऐसी स्थितिमें श्रीमद्भागवतके अमुक प्रकरणमें ही भगवान् श्रीकृष्णकी लीला है, यह कहना नहीं बनता। भागवतका सब कुछ श्रीकृष्णकी ही लीला है। उसका प्रकाश कहीं व्यक्तरूपसे है और कहीं अव्यक्तरूपसे। जहाँ अव्यक्तरूपसे है, वहाँ भी सहृदय लोगोंके लिए संकेत विद्यमान् है। ऋषि मनुष्य, पशु, पक्षी, दैत्य, देवता और सभी पदार्थोंको स्थान-स्थानपर भगवत्स्वरूप बतलाकर भावुक भक्त और तत्त्वज्ञके लिए इस बातका स्पष्ट संकेत कर दिया गया है कि जहाँ, जिस रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण अपना ऐश्वर्य गुप्त रखकर विहार कर रहे हैं, वहाँ भी उन्हें पहचान जायँ।

भगवान्की लीलाओंमें यदि लीलाके लिए ही सरस, सरसतर और सरसतमका लीलाभेद किया जाय तो कहना पड़ेगा कि दशम स्कन्धमें वर्णित लीला अत्यन्त सरसतम है। इस विषयको स्पष्टरूपसे समझनेके लिए लीला और चरित्रका सूक्ष्म अन्तर जान लेना भी आवश्यक है। चरित्रका एक उद्देश्य होता है। उसमें कर्तृत्वका भी कुछ-न-कुछ अंश रहता ही है, चाहे वह बाधितानुवृत्तिसे ही क्यों न हो! चरित्रमें चाहे कर्ताकी भावनासे जगत्के हितका उद्देश्य समाविष्ट रहता है; परन्तु लीला भगवान्की मौज है। वह केवल लीलाके लिए है। अबतक ऐसा कोई माईका लाल नहीं हुआ, जो अन्तर्यामीके समान भगवान्के हृद्गत संकल्पको जानकर यह कह दे कि उन्होंने इस उद्देश्यसे, इस प्रयोजनसे यह लीला की है। वे कर्ता होकर भी अकर्ता और भोक्ता होकर भी अभोक्ता हैं। इसीसे लोग लीलाका प्रयोजन सोचने जाकर लीलाका स्वरूप भूल जाते हैं और उन्हें अपने-जैसा ही मानव-चरित्र सूझने लगता है। भगवान्की लीला हो रही है; वह सहज है, स्वाभाविक है। उनमें न उद्देश्य है, न प्रेरणा है, न भूत-भविष्यत्का विभाग है और न तो वर्तमानकी ही वहाँतक पहुँच है। जो उसे जानेंगे, मानेंगे, उसका रस लेंगे, भगवान्से एक हो जायँगे। यदि कोई उनकी लीलाओंको भी प्रयोजनसे प्रेरित, कर्म-बन्धनसे विजड़ित, कर्तृत्व और भोक्तृत्वसे मर्यादित समझनेकी भूल करेंगे, वे स्वयं स्वरूपसे च्युत होकर जगज्जालमें जकड़ जायँगे। भगवान्की लीला अनादि है, अनन्त है, एकरस है, स्वरूप है, उसमें न क्रिया है, न संकल्प है, न स्पन्दन है, न प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तुरीय आदिका भेद है; वह लीला है, इसलिये ज्यों-की-त्यों लीला है।

भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित एक-एक लीला किसी-न-किसी रूपमें भगवान्की भगवत्ता प्रकाशित करती है। यद्यपि उनके होनेका उद्देश्य ऐसा करना नहीं है, वे तो सहज स्वाभाविक रूपसे ही होती रहती हैं, फिर भी यह भगवत्ताका प्रकाश भक्तोंको स्पष्ट दीख पड़ता है और वे उसका रस भी लेते हैं। यह बात तनिक ध्यानसे दशम स्कन्धका पारायण करनेपर स्वयं अनुभवमें आ जाती है। दैत्योंके उद्धारमें जो ऐश्वर्य व्यक्त होता है; वह बहुत स्पष्ट है; फिर भी हम उसे ऐश्वर्य न मानकर माधुर्य ही मानते हैं। इसका कारण यह है कि जिनके संकल्पमात्रसे ही अखिल ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि और संहार सम्पन्न होते हैं, उनके लिए किसी दैत्यको मारनेमें युद्ध करनेकी बात ऐश्वर्यसूचक नहीं होती। पूतनाका विष पी लेना उनके लिए कोई कठिन बात नहीं है। चतुर्भुजरूपमें प्रकट होना भी उनके वात्सल्यका ही उदाहरण है। वे जो कुछ करते हैं, नहीं करते, सब खेल है, स्वाभाविक है। इसी दृष्टिसे हम एक बार उनकी लीलाका स्वाध्याय करें।

जो सर्वस्वरूप है, उसका एक रूपमें और एक कालमें प्रकट होना ऐश्वर्यकी अभिव्यक्ति और गोपन-दोनों ही हैं। अंशभूत ब्रह्माको मोहित करना, बाणासुरके युद्धमें शिवको पराजित करनेके लिए अस्त्र-प्रयोग करना और अपने सौन्दर्यसे महाविष्णुको भी आकर्षित करके उनके द्वारा अपनेको बुलवानेका उद्योग करना, इस बातका प्रत्यक्ष

प्रलय चार प्रकारके होते हैं—नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक प्रलय। नित्य प्रलयके दो अर्थ हैं—एक तो जगत्में जो निरन्तर क्षय हो रहा है, प्रलय है और दूसरा निद्राके समय जब सारी सृष्टि उसका नाम 'नित्य अज्ञानमें विलीन हो जाती है, किसी भी विशेष भावका अनुभव नहीं होता, उसको 'नित्य प्रलय' कहते हैं। 'नैमित्तिक प्रलय' भी दो प्रकारका होता है—एक आंशिक और दूसरा पूर्ण नैमित्तिक प्रलय। एक मन्वन्तर समाप्त होनेपर, अथवा कभी-कभी भगवान्की इच्छासे मन्वन्तरके बीचमें ही जब समस्त पृथिवी जलमग्न हो जाती है और भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि भी विच्छिन्न हो जाते हैं, परन्तु महर्लोक आदि ज्यों-के-त्यों रहते हैं, तब 'आंशिक प्रलय' होता है और जब एक कल्पके अन्तमें ब्रह्माका दिन पूरा होनेपर वे अपनी की हुई सृष्टिको लेकर घोर निद्रामें सो जाते हैं, तब 'पूर्ण नैमित्तिक प्रलय' होता है। 'प्राकृत प्रलय' उसको कहते हैं, जिसमें ब्रह्माकी आयु (उनके मानसे सौ वर्ष) पूरी हो जाती है और यह ब्रह्माण्ड सर्वथा प्रकृतिमें विलीन हो जाता है। "आत्यन्तिक प्रलय'का कोई समय नहीं है। साधनचतुष्टय-सम्पन्न होकर श्रवण-मनन-निदिध्यासनरूप अन्तरङ्ग साधन करके जीव जब अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करता है, तब इस संसारका 'आत्यन्तिक प्रलय' हो जाता है। इन सब प्रलयोंका वर्णन श्रीमद्भागवतमें बारहवें स्कन्धमें विशदरूपसे हुआ है। इन सब विविध प्रकारके प्रलयोंके चिन्तनसे जगत्के नाना नाम और रूपोंका अभाव ध्यानमें आ जाता है; फिर भाव और अभाव दोनोंके आश्रयस्वरूप भगवान्की उपलब्धि हो जाती है।

प्रायः सभी पुराणोंमें प्रलयका वर्णन हुआ है और उनमें स्थूल दृष्टिसे कुछ थोड़ा-थोड़ा भेद भी प्रतीत होता है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर सबकी एकता सिद्ध हो जाती है। दर्शनमें भी प्रलयका अस्तित्व स्वीकार किया गया है। प्राचीन नैयायिकोंने 'खण्डप्रलय' और 'महाप्रलय' दो प्रकारके प्रलय माने हैं। वे जन्यद्रव्यके अधिकरणमात्रके अभावको 'महाप्रलय' कहते हैं। नव्य नैयायिकोंने केवल 'खण्डप्रलय'का अस्तित्व स्वीकार किया है। उनके मतमें जन्यभावके अधिकरणका अभाव सम्भव नहीं है। सांख्यवादी प्रकृतिमें दो प्रकारके परिणाम मानते हैं—'स्वरूप-परिणाम' और दूसरा 'विरूप-परिणाम'। सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण जब स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं—सत्त्व सत्त्वमें, रज रजमें, तम तममें—तब प्रलय हो जाता है; और जब वे विकृत होते हैं, उनमें वैषम्य होता है, तब विरूप-परिणामके कारण सृष्टि होती है। इन मतवादोंके अनुसार, यद्यपि सृष्टि और प्रलयका ठीक-ठीक समय निर्णय नहीं किया जा सकता, तथापि ये प्रलयका अस्तित्व स्वीकार करते हैं—इसमें कोई मतभेद नहीं है। इन्होंने केवल भौतिक दृष्टिसे ही जगत्के सृष्टि-प्रलयपर विचार किया है। जब इस स्थूल जगत्से तटस्थ होकर आध्यात्मिक और आधिदैविक दृष्टिसे विचार करते हैं, तब भौतिक जगत्की पोल खुल जाती है और इसकी एक-एक क्रिया और प्रतिक्रियाका पता चल जाता है। इसीसे प्रकृति और परमाणुके आधारपर विचार करनेवाले वैज्ञानिकों और दार्शनिकोंको प्रलय होगा, इतना तो मालूम हो जाता है; परन्तु कब होगा—यह ठीक-ठीक मालूम नहीं होता। पौराणिकोंकी योगदृष्टिसे प्रतिक्षण होनेवाला नित्यप्रलय और आगे होनेवाले प्रलय एवं महाप्रलय ओझल नहीं रहते। इसलिये वे उनके निश्चित समयका निर्देश करते हैं।

मुक्ति

आत्यन्तिक प्रलयका अर्थ है—'मुक्ति'। जैसे प्रलय और महाप्रलय प्रकृतिमें स्वभावसे ही होते रहते हैं, वैसे आत्यन्तिक प्रलय नहीं होता। यह भगवत्तत्त्वज्ञानसे अभिन्न भगवत्प्रेम प्राप्त होनेपर, अथवा भगवत्प्रेमसे अभिन्न भगवत्तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेपर ही मिल सकता है। भगवान् विज्ञानानन्दघन हैं। उनके प्राप्त होनेपर ही जीवके पुरुषार्थकी समाप्ति होती है। सभी जीव एक साथ मुक्त नहीं हो सकते, परन्तु मुक्त होनेमें समयका

व्यवधान भी नहीं है। जो जिस देशमें है, जिस अवस्थामें है, जिस समयमें है, जिस रूपमें है, वह वहीं, वैसे ही सदाके लिए संसारसे मुक्त हो सकता है। उसके लिए संसारका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है और उसे फिर पुनर्जन्मके चक्रमें नहीं भटकना पड़ता है। वेदान्तकी दृष्टिसे मुक्ति केवल एक प्रकारकी है—'कैवल्य-मुक्ति'। इसके प्राप्त होनेका उपाय है—अनेक प्रकारके नाम और रूपोंको उत्पन्न करके उनकी कामनासे भटकनेवाली अविद्याका नाश। 'कैवल्य-मुक्ति' केवल अविद्याके नाशसे ही प्राप्त होती है। अथवा अविद्याका नाश ही 'मुक्ति' है। अविद्याका नाश होता है परा विद्या अथवा परम ज्ञानसे; ज्ञानका उदय होता है अन्तःकरणकी शुद्धिसे; अन्तःकरणकी शुद्धि निष्काम कर्म, उपासना आदिसे प्राप्त होती है। ज्ञानका उदय भगवत्कृपासे हो, चाहे श्रवण-मननादि अन्तरङ्ग साधनोंके अनुष्ठानसे, कैवल्य मुक्तिके लिए ज्ञान-सम्पादन करना ही पड़ेगा। श्रीमद्भागवतमें मुक्तिका लक्षण है—'मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः। (२.१०.६) 'अपने अज्ञानकल्पित असत्य रूपको छोड़कर अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थिति ही मुक्ति है।' इस लक्षणका निर्वाह 'कैवल्य मुक्ति'में ठीक-ठीक हो जाता है।

जगत्में 'यह मैं हूँ' और 'यह भिन्न है'—इस प्रकारका व्यवहार अनादिकालसे चल रहा है; परन्तु 'मैं' क्या है, इसका यथार्थ बोध बहुत ही थोड़े लोगोंको होता है। अधिकांश लोग 'यह' (बुद्धि, मन, इन्द्रिय आदि) को ही 'मैं' समझते हैं और उसी समझ अथवा अज्ञानके अनुसार अपनेको मूर्ख, बुद्धिमान्, सुखी-दुःखी और छोटा-बड़ा मानते हैं। इसी भ्रान्तिके कारण वे सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीरके साथ बँधे रहते हैं और उनकी समस्त वासनाएँ इन्हींको लेकर होती हैं। उनका प्रलय होता है, तब वे अपना प्रलय मानने लगते हैं और जब उनकी सृष्टि होने लगती है, तब अपनी सृष्टि। इसी भ्रान्तिके कारण वे अनादिकालसे भटक रहे हैं और जबतक इस 'यह' अर्थात् इदं-पदवाच्य अन्यथारूपको छोड़ेंगे नहीं—इससे अत्यन्त पृथक् स्थित अपने वास्तविक स्वरूप आत्मामें स्थित नहीं होंगे, तबतक भटकते रहेंगे। यह बड़ी विलक्षण बात है कि जब 'यह'से 'मैं'को पृथक् कर लिया जाता है और उसके वास्तविक स्वरूपकी अनुभूति हो जाती है, तब 'यह'के लिए स्थान नहीं रहता, अर्थात् संसारका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। इसीका नाम 'कैवल्य मुक्ति' है। यह कैवल्य मुक्ति किसी भी शारीरिक या मानसिक क्रियाका फल नहीं है; यह उनसे उत्पन्न विकृत, संस्कृत, प्राप्त और नष्ट नहीं की जा सकती। यह वास्तवमें नित्य प्राप्त है, इसलिये नित्य प्राप्तिके ज्ञानमात्रसे मुक्ति सिद्ध हो जाती है।

श्रीमद्भागवतमें पाँच प्रकारकी मुक्ति स्वीकार की गयी है। उनके नाम ये हैं—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। भगवान्के नित्य चिन्मय धाममें रहना 'सालोक्य मुक्ति' है, भगवान्के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना 'सार्ष्टि मुक्ति' है, भगवान्के समीप रहना 'सामीप्य मुक्ति' है, भगवान्के समान रूप प्राप्त कर लेना 'सारूप्य मुक्ति' है—और भगवान्में मिल जाना, उनके चरणोंमें समा जाना 'सायुज्य मुक्ति' है। श्रीमद्भागवतमें इन पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंके अनेकों उदाहरण हैं। भगवान्से जिसका सम्बन्ध हो गया, चाहे किसी भी भावसे क्यों न हुआ हो, उसको कोई-न-कोई मुक्ति प्राप्त हो ही जाती है। परन्तु जो भगवान्के सच्चे और ऊँचे प्रेमी होते हैं, वे इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंमें-से कोई नहीं चाहते; वे केवल भगवान्की सेवा करना चाहते हैं। यहाँतक कि भगवान् उन्हें मुक्ति देते हैं, तब भी वे उसे स्वीकार नहीं करते। मुक्तिसे भी ऊँचा भगवान्का प्रेम है, यह बात श्रीमद्भागवतमें अनेक स्थानोंमें कही गयी है।

न्याय और वैशेषिक—दर्शनोंमें प्रमाण-प्रमेयादि षोडश द्रव्य, अथवा सप्त पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे एकविंशति प्रकारके दुःखोंका ध्वंस होकर 'मुक्ति' सिद्ध होती है—ऐसा स्वीकार किया गया है। सांख्यदर्शनमें प्रकृति और पुरुषके विवेकसे पुरुषका अपने असङ्ग रूपमें स्थित हो जाना ही 'मुक्ति' है, ऐसा कहा गया है। योगदर्शनमें विवेकके

ये सब रागके ही तो लक्षण हैं। हाँ, ये लक्षण हैं, जिनका कभी-कभी व्यभिचार भी होता है। परन्तु वैराग्य? यह तो सभी लीलाओंमें है, जो प्रेमवश यशोदाकी साँटी सहता था, गोपियोंके नचानेसे नाचता था, उनके सामने हाथ जोड़ता था, मान-मनौती करता था, वही मथुरा जाकर एक बार लौटातक नहीं, इसे हम राग कहें या विराग? जिस राज्यका नाम सुनकर बड़े-बड़े योगी-यति अपनी तपस्या छोड़ बैठते हैं, वही राज्य कंसकी मृत्युके बाद श्रीकृष्णके चरणोंपर लोटता था। युधिष्ठिरने अपना साम्राज्य क्या श्रीकृष्णके चरणोंपर निछावर नहीं किया था? परन्तु उनकी ओर न ताककर उग्रसेन और धर्मराजके यहाँ सेवाका कार्य करना क्या अखण्ड वैराग्यका चिह्न नहीं है? सोलह हजार पत्नियाँ उनपर कामदेवका बाण चलाती और वे अविचल भावसे स्वरूपमें स्थित रहते, क्या यह अखण्ड वैराग्य नहीं? 'पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः।' (श्रीभा० १०.६१.४) पुत्रोंकी बहुत बड़ी संख्या थी। श्रीकृष्ण सबको प्यार करते थे। परन्तु ऋषियोंके शापसे उन्होंने किसी एककी भी रक्षा नहीं की। सोनेकी द्वारका पलक-मारते जलमें डूब गयी। वे सब कुछ कर सकते थे, किन्तु कुछ भी नहीं किया। यह लीला वैराग्य-प्रदर्शनके लिए नहीं की गयी, अखण्ड वैराग्यकी सहज लीला है यह! हाँ, तो श्रीकृष्णमें राग भी है, वैराग्य भी है। वे दोनोंके ही अधिष्ठान तो हैं ही, अध्यास भी है। रज्जुमें अध्यस्त सर्प प्रतीतिकालमें भी क्या रज्जुसे पृथक् है? वे भगवान् तो हैं ही, 'भगवान्' शब्दकी और उसके अर्थकी सीमाके बाहर भी हैं और यह बात उनकी प्रत्येक लीलासे प्रकट होती है।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी यह सर्वशब्दार्थशून्य सर्वस्वरूपता स्थान-स्थानपर उनके मुखसे तथा उनके अन्तरङ्ग भक्तोंके मुखसे प्रकट हुई है। एक-दो उद्धरण देखिये। उद्धवजी कहते हैं—

> दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्
> स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च।
> विनाच्युताद् वस्तु तरां न वाच्यं
> स एव सर्वं परमार्थभूतः॥
>
> (१०.४६.४३)

'जो कुछ देखा या सुना जाता है—वह चाहे भूतसे सम्बन्ध रखता हो, वर्तमानसे अथवा भविष्यसे, स्थावर हो या जङ्गम, महान् हो अथवा अल्प—ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जो भगवान् श्रीकृष्णसे पृथक् हो! श्रीकृष्णके अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कह सकें। वास्तवमें सब वही है, परमार्थ-सत्य हैं।'

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंसे कहते हैं—

> अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः।
> भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः॥
> एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः।
> उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे॥
>
> (१०.८२.४६-४७)

'प्यारी गोपियो! जैसे घट-पट आदि जितने भी भौतिक पदार्थ हैं, उनमें पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ही ओत-प्रोत हो रहे हैं—वैसे ही जितने पदार्थ हैं—उनके पहले-पीछे, बीचमें, बाहर और भीतर केवल मैं-ही-मैं हूँ, मेरे अतिरिक्त उनका अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार सभी प्राणियोंके शरीरमें ये ही पाँचों भूत कारणरूपसे स्थित हैं और आत्मा भोक्ताके रूपसे, अथवा जीवके रूपसे स्थित है, परन्तु मैं इन दोनोंसे परे अविनाशी सत्य हूँ। सच पूछो तो ये दोनों मेरे ही अंदर प्रतीत हो रहे हैं।'

भगवान् श्रीकृष्ण ही उद्धवसे कहते हैं—

> मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
> अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥
>
> (११.१३.२४)

पदा विचक्रमे विष्णुः का उल्लेख है। शतपथ-ब्राह्मणमें इसकी पूरी आख्यायिका ही दी गयी है। वहाँ लिखा है—'देवता और दैत्योंने आपसमें विवाद किया और दैत्योंने सारी पृथिवीपर अधिकार जमा लिया। जब वे उसे आपसमें बाँटने लगे, तब देवता भी वामन विष्णुको आगे करके गये और बोले—'हमें भी पृथिवीका हिस्सा दो।' दैत्योंने विष्णुको वामन देखकर उनकी हँसी उड़ाते हुए कहा—'ये विष्णु जितनी दूरमें सो जायँ, उतनी पृथिवी हम तुम्हें देंगे।' इसके बाद देवताओंने विष्णुको वेदमन्त्रोंसे सुरक्षित किया और विष्णुके द्वारा समस्त पृथिवीपर अधिकार कर लिया। (शतपथ-ब्राह्मण १.२.५.७)।

तैत्तिरीय आरण्यक (१.२३.१) और शतपथब्राह्मण (७.३.३५)में कूर्मावतारका वर्णन है। शतपथब्राह्मण (१.८१.२१०)में मत्स्यावतारका वर्णन है। तैत्तिरीय संहिता (७.१.५१), तैत्तिरीय ब्राह्मण (१.१.३.५) और शतपथब्राह्मणमें भी वराह-अवतारका सुन्दर वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मणमें परशुरामावतारकी, छान्दोग्योपनिषद् (३.१७) तथा तैत्तिरीय आरण्यक (१०.१६)में देवकीनन्दन वासुदेव श्रीकृष्णकी कथा है। इन अवतारोंके अतिरिक्त विष्णु, रुद्र, सूर्य, शक्ति आदि देवताओंका भी वेदोंमें बहुत ही विस्तृत वर्णन है। जो लोग वेदोंमें अवतार और देवताओंका वर्णन स्वीकार नहीं करते, वे अनभिज्ञता और पक्षपातके कारण ही वैसा करते हैं। महाभारत और वाल्मीकीय रामायणमें अवतारोंके पुष्कल प्रसङ्ग हैं। हिन्दू शास्त्रोंको मान्यता देकर किसी प्रकार अवतारोंका अपलाप नहीं किया जा सकता। जैन और बौद्धधर्मके ग्रन्थोंमें भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और अवतारोंके उपासकोंका वर्णन आता है। ईसाके तीन सौ वर्ष पूर्व रचित 'ललित-विस्तर'में तथा उससे भी पूर्व रचित पाली भाषाके ग्रन्थोंमें इन साम्प्रदायिक उपासकोंकी चर्चा है। महात्मा बुद्ध और पारसनाथसे भी इनकी भेंट हुई है। अनाम और कंबोडियासे जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनसे भी सिद्ध होता है कि ईसासे बहुत पूर्व उन उपद्वीपोंमें ब्रह्मा, शिव आदिकी उपासना पूर्णरूपसे प्रचलित थी।

इन अवतारोंके द्वारा क्या-क्या शिक्षा प्राप्त होती है, यह विवेचन करनेका अवसर नहीं है। एक-एक अवतारके नामसे जिन पुराणोंकी रचना हुई है, उनमें उस शिक्षाका विशेष विवरण है। मत्स्यपुराणमें मत्स्यभगवान्ने वैवस्वत मनुको, कूर्मपुराणमें कूर्मभगवान्ने देवताओंको, वराहपुराणमें वराहभगवान्ने पृथिवीको, नृसिंहपुराणमें नृसिंहभगवान्ने प्रह्लादको, वामनपुराणमें वामनभगवान्ने बलिको और इसी प्रकार अन्यान्य अवतारोंमें भी भगवान्ने अपने विभिन्न भक्तोंको उपदेश किया है। इन योनियोंमें, जिन्हें 'निम्न' कहा जाता है, अवतार-ग्रहण करके भगवान्ने इस बातकी शिक्षा दी है कि 'किसी भी योनिको हीन नहीं समझना चाहिये, मेरे लिए सब समान हैं।' जल, स्थल और आकाशमें रहनेवाले सभी प्राणी भगवान्के सजातीय और उनकी अभिव्यक्तिके स्थान हैं, ऐसा समझकर प्रत्येक प्राणीका आदर-सम्मान करना चाहिये और सबके रूपमें परमात्माका दर्शन करके आश्रयस्वरूप भगवान्की दयाका स्मरण करके मुग्ध होते रहना चाहिये।

निरोध

परमात्माके अतिरिक्त जो कुछ स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् दीख रहा है, उसकी अन्तिम गति प्रलय है। अवतार ले-लेकर भगवान् उसकी विपरीत गतिका निरोध तो करते ही रहते हैं; परन्तु जब तमोगुण अधिक बढ़ जाता है, तब भगवान् नवीन रूपसे सात्त्विक सृष्टि करनेके लिए इस जगत्का प्रलय कर दिया करते हैं। भगवान् अवतार ग्रहण करके दुष्ट दैत्योंका नाश करते हैं; कंस आदिको साक्षात् और कर्ण, जरासंध आदिको अपनी शक्ति अर्जुन, भीम आदिके द्वारा नष्ट करते हैं। इसका नाम भी 'निरोध' है। श्रीमद्भागवतमें 'निरोध' और 'संस्था'के नामसे प्रलयका भी वर्णन हुआ है। उसका लक्षण किया गया है कि परमात्मा जब अपनी शक्तियोंके साथ सो जाता है, तब सारे जगत्का निरोध, अर्थात् प्रलय हो जाता है।

प्रमाण है कि वे ऐश्वर्यमें इनसे बढ़े हुए हैं। फिर भी इस लीलासे तो उनकी मधुरता ही प्रकट होती है। अनेक बछड़ों, ग्वाल-बालों और अन्तमें आवरणसहित अनेक ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि कर देना, उनके रूपमें परिणत हो जाना इस बातकी स्पष्ट सूचना है कि ब्रह्माकी सृष्टि-शक्ति उनका ही एक अंश है। वरुणके द्वारा पूजा, इन्द्र द्वारा अभिषेक और रासलीलाके प्रसङ्गमें चराचर विजयी कामदेवका पराजय भी ऐश्वर्यके साथ ही उसका गोपन भी लिये हुए है। उनकी लीलामें यह कैसी विचित्रता है कि जो गोपियाँ कुछ ही क्षण पहले कह रही थीं कि 'आपके चरणोंकी धूलि लक्ष्मीके लिए भी वाञ्छनीय हैं; वे ही उनकी मधुरतासे सराबोर होकर कहने लगी कि 'यहाँ उस कामीने अपनी प्रेयसीको कंधेपर ढोया होगा!' जो प्रलयके समय रुद्रशक्तिके रूपमें सारे जगत्को भस्म कर डालते हैं, वे ही प्रभु यदि कंसके धोबीको अपने हाथसे मारते हैं तो यह बात समझमें नहीं आती कि वे इस लीलाके द्वारा ऐश्वर्यका प्रकाशन कर रहे हैं अथवा गोपन। अपनी दृष्टिमें तो अवश्य ही यह मधुर-से-मधुर ऐश्वर्य-गोपन-लीला है। विष्णुशक्तिकी प्रधानता व्यक्त करनेके लिए तो इतनी अधिक लीलाएँ हुई हैं, जिनकी गणना भी कठिन है; परन्तु इस रूपमें अपनेको व्यक्त करना भी छोटे रूपका ही अभिनय है। सम्राट् यदि मन्त्री, सेनापति अथवा सिपाहीका अभिनय करता है तो यह उसकी मौजके अतिरिक्त और क्या है? क्या इन्द्रकी वर्षासे ब्रजको बचानेके लिए सात दिनतक गोवर्धनको उठाये रखनेकी आवश्यकता थी? इस प्रकार प्रत्येक लीलामें अन्तरङ्गभावसे प्रवेश करनेपर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐश्वर्य और उसके अभावके एकमात्र अधिष्ठान हैं—भगवान् श्रीकृष्ण; उनके लिए सब समान है; चाहे जो कुछ करें या न करें। यह बात युधिष्ठिरके वचनोंसे और भी स्पष्ट हो जाती है—

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः॥

(श्रीभा० १०.७४.४)

'जैसे उदय अथवा अस्तके कारण सूर्यके तेजमें घटती या बढ़ती नहीं होती, वैसे ही किसी भी प्रकारके कर्मोंसे न तो आपका उल्लास होता है और न ह्रास ही; क्योंकि आप सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदसे रहित स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं।'

इसका अर्थ यह नहीं कि ऐश्वर्य और अनैश्वर्य दोनोंके अधिष्ठान भगवान् श्रीकृष्णका धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तवमें धर्मके अनुष्ठान और उसके अभाव भी भगवान् श्रीकृष्णमें ही हैं। उनकी लीलामें स्थान-स्थानपर धर्मकी अभिव्यक्ति हुई है। उनकी दिनचर्या ही देखिये, जागनेसे लेकर सोनेतक धर्मके काममें ही लगे हुए हैं। वे यज्ञ करते थे, दान करते थे, कुब्जा-जैसी स्त्रियोंका भी दयावश उद्धार करते थे, लोगोंको कैदसे, अत्याचारसे छुड़ाते थे और धर्मघातियोंका संहार करते थे। उनकी यह लीला आज भी चल रही है—एक शब्दमें वे समग्र धर्मके कर्ता, वक्ता और और अनुष्ठाता थे। परन्तु यह सब क्या है? इसके लिए वे किसी मर्यादामें बद्ध हैं, अथवा स्वाभाविक लीलाके अनुसार ही यह सब कुछ होता है? मनुष्य तो यही चाहेगा कि वे भी हमारी तरह मर्यादामें बँधे रहें और हमारी बुद्धिके अनुसार चलें। विचारहीन मनुष्य जीवधर्म और भगवद्धर्मका भेद नहीं कर सकता। भगवान्की तो बात ही अलग रही, मनुष्य तो अपनेसे उन्नत स्तरके मनुष्योंका ही धर्म नहीं समझ सकता। देवधर्म, पितृधर्म अथवा गन्धर्वधर्म आदिको ही समझनेवाले कितने लोग हैं? ऐसा होनेपर भी भगवान्की लीलामें जो धर्मका सहज प्रकाश होता है, वह माधुर्यका गोपन करनेके लिए, ऐश्वर्यको छिपाकर उनकी साधारणता प्रकट करनेके लिए ही।

उनके धर्म-पालनपर दृष्टि डालकर कोई कृतार्थ हो जाय—इसकी तो बात ही क्या, जो उनका नाम लेते हैं, वे भी धार्मिकोंके सिरमौर हो जाते हैं। भगवान्की लीलासे जिस यशका स्वाभाविक विस्तार होता है, उसको गाकर, सुनकर, स्मरण कर अबतक कितने लोग कृतार्थ हो गये और आगे कृतार्थ होंगे—इसकी गणना

नहीं की जा सकती। वेद-शास्त्र, ऋषि-मुनि गाते-गाते थक गये। ग्वालिनोंने इतना गाया कि 'उद्गायती-नामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद् ध्वनिः। (श्रीभा० १०.४६.४६)' उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णपर कलङ्क भी लगा कि उन्होंने स्यमन्तक मणि छीन ली। उनके कुछ अन्तरङ्ग लोग भी अनमने-से हो गये। आज भी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामें कलङ्कका आरोप करनेवालोंकी कमी नहीं है। उन्होंने यशकी भाँति अपयशको भी स्वीकार किया। वे यश और अपयशदोनोंके ही आश्रय हैं, अधिष्ठान हैं। दोनोंसे अतीत हैं और दोनों उनके स्वरूप हैं। इसीसे वे भगवत्ताविशिष्ट और भगवत्तासे परे भगवान् हैं।

भगवान्‌की सौन्दर्य-लीला और लक्ष्मी-लीला भी ध्यान देनेयोग्य है। सुन्दर तो इतने कि 'भूषणभूषणाङ्गम्' (श्रीभा० ३.२.१२)—उनके शरीरकी ज्योतिसे आभूषण भी चमक उठते।' 'विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः' (श्रीभा० ३.२.१२)—वे अपने शरीर सौन्दर्यसे स्वयं विस्मित, चकित हो जाते।' जिसने एक बार प्रेमसे उनकी ओर देखा, उसीपर निछावर हो गये। धूलि-धूसरित भी और चतुर्भुज भी, सबके अन्तर्यामी भी और सबके नेत्रोंके विषय भी। परन्तु इस सौन्दर्यकी भीषणता भी प्रकट हो जाती है। मथुराकी रङ्गभूमिमें स्त्रियोंने जिसे कामदेवके रूपमें देखा, कंसने उसको मृत्युके रूपमें। (१०.४३.१७) यशोदा जिसको गोदमें लेकर चूम रही थीं, उसीके विराट् रूपको देखकर थर-थर काँपने लगीं। अर्जुन जिसे देखनेके लिए लालायित था, उसीको देखकर काँपने लगा। वे मृत्यु और अमृतदोनों हैं। काल और कालातीत वस्तुका यही स्वरूप है। लक्ष्मीको लीजिये, वे भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर सुनहली रेखाके रूपमें सदा विराजमान रहती हैं। जिस दिनसे भगवान् व्रजमें आये, उसी दिनसे वह लक्ष्मीकी लीला-भूमि हो गयी। वे सर्वात्मना भगवान्‌की चरण-रज और वृन्दावनधामकी उपासना करती हैं; परन्तु जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण सुदामाका चिउड़ा खाने लगते हैं, वे काँप उठती है। भगवान्‌की एक ठिठोलीसे लक्ष्मी (रुक्मिणी)की जो दुर्दशा हुई थी, वह दशम स्कन्धमें पाठ करने-योग्य है। श्रीकृष्णके लिए लक्ष्मी उनकी प्राणप्रिया है, और कुछ भी नहीं। वे लक्ष्मीके प्राणेश्वर और उनके स्पर्शसे भी दूर हैं। सौन्दर्य और सौन्दर्यका अभाव, लक्ष्मी और लक्ष्मीका अभाव, दोनों ही श्रीकृष्णमें एकरस हैं; वे दोनोंके ही अधिष्ठान हैं।

ज्ञानकी चर्चा व्यर्थ है, श्रीकृष्णका ज्ञान अखण्ड है, अबाधित है। सनत्कुमारके जिस प्रश्नका उत्तर स्वयं ब्रह्मा भी न दे सके, उसका समाधान श्रीकृष्णने किया। पूरा ग्यारहवाँ स्कन्ध पढ़ जाइये, ज्ञानकी एकरस धारा मिलेगी। ज्ञान तो उनका स्वरूप ही है। परन्तु अज्ञान कहाँ है ? यशोदासे पूछिये, उनका भोला बालक कितना अज्ञानी है। वह तलवारसे अपना हाथ काट सकता है, जलमें अपनेको डुबा सकता है, कहीं आगका अङ्गार उठाकर अपनेको जला सकता है। गोपियोंसे पूछिये, कोई ज्ञानी भी उसके घर इतना ऊधम मचा सकता है ? हद ही गयी—'मेहनादीनि वास्तौ'। कहीं ज्ञानी भी ऊखलसे बाँधे जा सकते हैं ? यह तो बचपनकी बात है। अच्छा, जाने दीजिये। क्या श्रीकृष्ण यह नहीं समझते थे कि स्यमन्तक मणि शतधन्वाके पास नहीं, अक्रूरके पास है ? फिर उन्होंने उसका कपड़ा-लत्ता क्यों ढूँढा ? क्या उन्हें इस बातका पता नहीं चला कि शाल्व जिस वसुदेवको मार रहा है, वह एक जादूका खेल है ? फिर मूर्च्छित क्यों हो गये ? हाँ, तो यह लीला है। कहनेमें, समझनेमें आनेवाले सारे ज्ञान और अज्ञान श्रीकृष्णमें ही हैं। वे ही दोनोंके अधिष्ठान हैं। उनकी लीलासे दोनों ही व्यक्त होते हैं। उनमें दोनों ही अव्यक्त रहते हैं। वह एक लीला है और लीला है। वह कर्ता और कार्यके भेदसे रहित है।

तनिक वैराग्यकी बात भी कह लें। श्रीकृष्ण रागी थे। कौन कहता है कि नहीं थे ? माखनचोरी, ऊखल-बन्धन, चीरहरण, रासलीला, द्वारकाके ऐश्वर्यका भोग—

साथ ही 'मुक्ति'के लिए समाधिकी आवश्यकता स्वीकृत हुई है। भक्तिदर्शनोंमें भगवत्कृपाको ही 'मुक्ति'का हेतु माना गया है। पूर्वमीमांसा-दर्शन स्वर्गके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी 'मुक्ति' स्वीकार नहीं करता। वेदान्त-दर्शनकी व्याख्या भक्ति और ज्ञानदोनोंके ही पक्षमें हुई है; परन्तु कैवल्य मुक्तिके सम्बन्धमें दोनोंका ही यह निश्चित मत है कि वह तत्त्वज्ञानसे ही प्राप्त होती है, चाहे तत्त्वज्ञान भगवत्कृपासे प्राप्त हो, अथवा श्रवण आदि साधनोंसे।

मुक्तिके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवत एक विशेषता रखता है। इसमें पूर्वमीमांसाके मतके अतिरिक्त और सब दर्शनोंके सिद्धान्त एवं साधनोंका निर्देश हुआ है। उन सबका सामञ्जस्य भी है, समन्वय भी है और उसके परे भी एक स्थिति बतलायी गयी है। साधकको इस विचारमें नहीं पड़ना चाहिये कि कौन-सी मुक्ति वाञ्छनीय है। इस झगड़ेमें भी नहीं पड़ना चाहिये कि मुक्तिका क्या स्वरूप है। उसे तो केवल अपना साधन ही करते जाना चाहिये। सर्वश्रेष्ठ मुक्तिका यही स्वरूप है कि कुछ चाहा न जाय, कोई कामना न रहे—'नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् (११.३५.२५)—परम निरपेक्षता ही सर्वश्रेष्ठ निःश्रेयस है।' जो मुक्ति चाहता है, उसकी मुक्तिमें उसका चाहना ही आवरण है; उस चाहनाको छोड़ देनेपर मुक्ति स्वतःसिद्ध है। यही मुक्ति वास्तविक मुक्ति है।

सर्गसे लेकर प्रलय-पर्यन्त संसारका विस्तार है। उसके बीचमें अनेकों प्रकारके बाधक और साधक कर्म हैं, समय है, देश है और वस्तु है; इनके भाव और अभाव भी उसीमें सम्मिलित हैं। इनकी विरोधिनी मुक्ति है। परन्तु चाहे कहने ही भरकी क्यों न हो, मुक्ति उनकी विरोधिनी है सही। बन्धन और मुक्ति, ये द्वन्द्व न होनेपर भी एक द्वन्द्व हैं; इनके आश्रय हैं साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण; उन्हें चाहे 'ब्रह्म' कहिये, चाहे 'परमात्मा'। इसी दशम तत्त्वका निरूपण करनेके लिए उपर्युक्त सर्ग, विसर्ग आदिका लक्षण किया गया है।

प्रतिपाद्य तत्त्व

दूसरे पुराणोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवतकी यह महान् विशेषता है कि इसके प्रतिपाद्य आश्रयस्वरूप परमात्मा या भगवान् ही हैं। कोषोक्त लक्षणके अनुसार पुराणके जो सर्ग, विसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—पाँच लक्षण हैं, वे केवल उन्हीं पुराणोंपर लागू होते हैं, जिनके प्रतिपाद्य वे ही पाँच विषय हैं। श्रीमद्भागवतमें पाँच या दस विषयोंका प्रतिपादन नहीं, वे तो लक्षणमात्र हैं; केवल एकमात्र आश्रयस्वरूप भगवान्का ही प्रतिपादन है। भगवान्के साथ श्रीमद्भागवत-ग्रन्थका प्रतिपादक-प्रतिपाद्यभाव-सम्बन्ध है। श्रीमद्भागवतके प्रत्येक पदके प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

मधुर ब्रह्म

सर्वान्तर्यामी, सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका भागवतके साथ क्या सम्बन्ध है—यह बात पद्मपुराणवाले माहात्म्यमें तीन प्रकारसे बतलायी गयी है। एक तो यह कि श्रीमद्भागवत क्षीरसागर है और भगवान् श्रीकृष्ण इसके पद-पद, अक्षर-अक्षरमें अव्यक्त अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं—'तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्।' दूसरी यह कि श्रीमद्भागवत भी भगवान् श्रीकृष्णके समान ही अनिर्वचनीय महिमा-सम्पन्न है—'गौरवेण इदं महत्।' अनिर्वचनीय महिमा सबसे अतीत होती है। वक्ता वचन और वाच्यका भेद उसमें नहीं हुआ करता। अनिर्वचनीय वस्तु 'इदम्' पदसे निर्वचनीय कारणस्वरूपभूत ही होती है। तीसरी बात यह है कि श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णकी ही मूर्ति है—तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।' इन तीनों सम्बन्धोंपर विचार करनेसे जान पड़ता है कि भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप भागवतान्तर्यामी, भागवतातीत और भागवतरूप है। इस दृष्टिसे श्रीमद्भागवतके पद-पदमें, अक्षर-अक्षरमें भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात्कार होता है। अवश्य ही यह बात केवल पदज्ञानसे नहीं होती, इसके लिए पर्याय शब्दोंसे कोई सहायता नहीं मिलती;

श्रीराम - दरबार
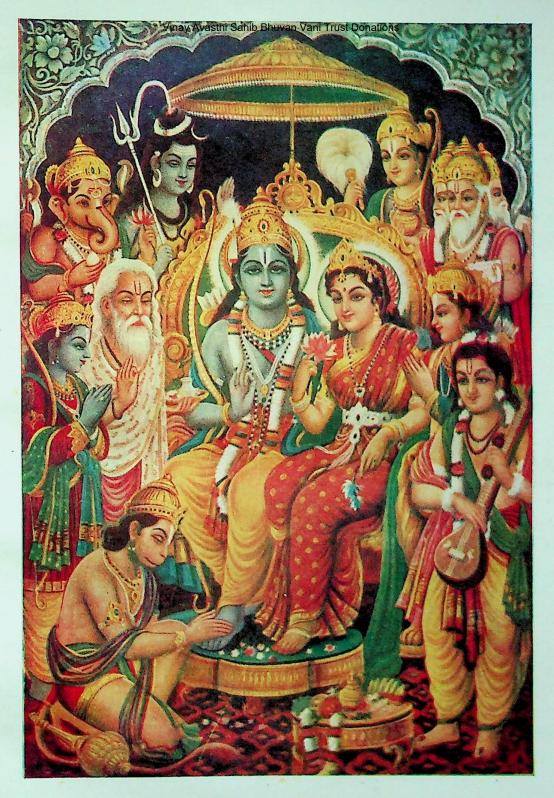
'सनकादि ऋषियो ! तुम लोग तत्त्वदृष्टिसे यों समझो कि मनसे वाणीसे, दृष्टिसे तथा दूसरी इन्द्रियोंसे भी जो कुछ प्रतीत होता है, वह सब मैं-ही-मैं हूँ; मुझसे भिन्न और कोई वस्तु है ही नहीं ।'

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपपर विचार करनेसे जान पड़ता है कि स्थूल-सूक्ष्म, साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण विशेष तो क्या, सभी पदोंका वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ श्रीकृष्णस्वरूप ही है । उनके दर्शन-ध्यानके लिए मनको चाहे दूसरे लोकमें ले जाँय, चाहे इस लोकमें रखें—सर्वदा-सर्वथा उनका दर्शन-ध्यान सम्भव है, क्योंकि सर्वत्र-सर्वदा और सर्वथा वे ही हैं । श्रीमद्भागवत इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्णताका प्रतिपादन करता है और उन्हींमें समा जाता है । श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण हैं, श्रीद्भागवत श्रीकृष्णमें है और वास्तव में श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्ण एक अनिर्वचनीय वस्तु तथा सर्वथा अभिन्न हैं । श्रीमद्भागवतको जानना श्रीकृष्णको जानना है और श्रीकृष्णको जानना श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्णके सम्बन्धका नहीं, स्वरूपका ज्ञान ही अपेक्षित है और यह भी एक लीला है ।

मोर-मुकुट

स्वप्न और जाग्रत्की प्रशान्त संधिमें बाँसुरीकी स्वरलहरीके साथ ठुमक-ठुमककर पादविन्यास करते हुए उन्होंने प्रवेश किया । स्थितिमें गति, एकतामें अनेकता एवं शान्तिमें एक मधुर कान्तिका सञ्चार हीं हो गया । वह अनन्त शान्ति, वह रहस्यरस और वह एकरस ज्ञानका अनन्त पारावार न जाने कहाँ अन्तर्हित—दृष्टिके एकान्तमें विलीन हो गया ? न जाने कहाँ ? नहीं, नहीं, यह तो भूल थी । वह प्रत्यक्ष आँखोंके सामने अमूर्तसे मूर्त होकर, नकारसे साकार होकर और निर्गुणसे अनन्त दिव्यगुणसम्पन्न होकर अपनी रसभरी चितवनसे मुझे अपने साथ रमण करने—खेलनेका प्रणयाह्वान करने लगा ।

अब मैंने देखा । हमारी चार आँखें परन्तु यह क्या ? एक क्षणमें ही मेरी आँखें लज्जा से अवनत क्यों हो गयीं ? बात ऐसी ही थी । मैं अपराधी था । सचमुच जब प्राप्त करनेवाले और प्राप्त करने योग्य वस्तुके भेद से रहित उस विचित्र वस्तुकी प्राप्ति इस प्रकार स्वयं ही हो गयी, तब मैं चकित-सा रह गया । सहसा विश्वास न कर सका । एक हलकी-सी अवहेलना हो ही गयी । परन्तु दूसरे ही क्षण सँभल गया । ऐसा सँभला, ऐसा सँभला, मानो ज्ञानवान् होनेके पश्चात् 'वासुदेवः सर्वमिति' की ही तत्त्वतः अनुभूति हो गयी हो । एक महान् प्रकाश फैल गया और मानो उसने कहा भी—'अब उनके साथ रमण होगा । अबतक आनन्दका उपभोग तुम कर रहे थे, भले ही वह भोक्तृत्वहीन रहा हो । परन्तु अब ? अब तो तुम्हारा उपभोग होगा । अब रासक्रीड़ा होगी ।' मैंने भाष्य कर लिया—"वास्तवमें प्रेम या आनन्द भोग अथवा भोक्तृत्वहीन भोग (मोक्ष)में नहीं है, वह तो उनका भोग्य हो जाने में ही है । इसीको तो 'प्रेमा भक्ति' कहते हैं ।"

उस प्रकाशमें मैंने क्या देखा ? हाँ, अवश्य कुछ देखा तो था । वही मेरे प्राणप्यारे श्यामसुन्दर बाँसुरी बजाते हुए ठुमक रहे थे । चरणोंकी किंकिणी 'रुनझुन'की उल्लासपूर्ण ध्वनिसे चिदाकाशको मुखरित कर रही थी । पीताम्बर फहरा रहा था, परन्तु उसका मुँह पीछेकी ओर था । सुन्दर अलकावलीसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी, परन्तु उनमें-से एक भी मेरी ओर नहीं आरहा था । ऐसा क्यों ? वे स्वयं मेरी ओर आ रहे थे, मैंने विस्मित होकर एक बार उस अनूप रूपराशिका सर्वाङ्ग देखना चाहा, परन्तु देख न सका । बीचमें ही मुस्कुराकर उन्होंने आँखोंको विवश कर दिया । वे एकटक वहीं लग गयीं । न आगे बढ़ीं न पीछे हटीं । न चढ़ीं और न उतरी । न जाने कितना समय बीत गया । गजबकी मुस्कुराहट थी ! अजब जादू !! .

अब मुझे ध्यान आया । भगवान् स्वयं मेरे सामने खड़े-खड़े मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे हैं । अरे ! अब तक

मैंने उनका कुछ स्वागत-सत्कार नहीं किया ? अर्घ्य-पाद्यतक न दिया ! हाँ, हुआ तो ऐसा ही। परन्तु यह क्या ? उन्होंने स्वयं अपने हाथों स्वागत-सत्कारका आयोजन कर लिया है, ऐसा ही जान पड़ता है। प्रकृतिके आत्यन्तिक लयके पश्चात् यह नूतन प्रकृति कहाँसे आयी ? हाँ, हाँ, यही इनकी दिव्य प्रकृति है। यह चिन्मय है, इनकी लीलाकी सहकारिणी है। हाँ, इसमें तो सजीव स्फूर्ति है, नवीन ही जागृति है और भरा हुआ है दिव्य जीवन। इसका स्वागत भी अपूर्व है।

अब मैंने उस ओर दृष्टि डाली। हाँ तो पैरोंके तले हरे-हरे दिव्य दूर्वादलके कालीन बिछे हुए हैं। तारामण्डित गगनका बड़ा-सा वितान तना हुआ है। सफेद चाँदनीकी ठंडी और उजली रोशनीसे पत्ते-पत्ते में जगमग ज्योति झिलमिला रही है। अधखिली कलियोंका सौरभ लेकर हवा पंखा झल रही है। वृक्षोंने अपने रसभरे फलोंसे झुकी हुई कलियाँ सामने कर दी हैं। परन्तु वे, वे तो बस पूर्ववत् बाँसुरीके रसीले रन्ध्रोंसे राग-अनुरागके समुद्र उँड़ेलनेमें लगे हैं। मैं चकित होकर केवल देख रहा था।

मैंने स्तुति करनेकी ठानी। परन्तु मेरे 'ठानने' का क्या महत्व ? भ्रमरों ने अपनी गुञ्जारको उनके वेणुनादसे मिलाकर गुन-गुनाना प्रारम्भ किया। कोयलोंने अपनी कुहू-कुहूकी मञ्जुल ध्वनि निछावर कर दी। थोड़े-से साँवले बादलोंने तबलोंकी तरह मन्द-मन्द ताल भरनेकी चेष्टा की; परन्तु दो-चार क्षणमें ही वे कुछ नन्ही-नन्ही सफेद बूँदोंके रूपमें 'रस' बनकर चरण पखारने आ गये। अबतक झुण्ड-के-झुण्ड मयूर आकर थिरकने लगे थे।

अब वे घिर गये। चारों ओर मयूरका दल अपने पङ्ख फैलाकर नाच रहा था और बीचमें श्यामसुन्दर अबाध गतिसे पैंजनीमें स्वरसाम्य रखते हुए बाँसुरी बजानेमें तल्लीन थे। मैं अनुभव कर रहा था उनके लाल-लाल अधरोंसे निकलकर अणु-अणु, परमाणु-परमाणुमें मस्ती भर देने वाले मोहन-मन्त्रका ! हाँ तो सब मुग्ध थे; सब-के-सब अनुरागभरे रागकी धारामें बह गये थे। किसीको तन-बदनकी सुध नहीं थी। सुध रखनेवाला मन ही नहीं था। हाँ, वे, बस वे, सबकी ओर देखते हुए भी मुझे ही देख रहे थे। बिना जतनके ही मेरे रोम-रोमसे बही वेणुके आरोह अवरोह-क्रमसे मूर्च्छित स्वरलहरी प्रवाहित हो रही थी। शरीर, प्राण, हृदय और आत्मा सब-के-सब उस रागके अनुरागमें रँगकर किसी अनिर्वचनीय रसमें डूब गये थे। सबकी आँखें मोहनके मुख-कमलपर निर्निमेष लग रही थीं। बहुत समय बीत गया होगा; परन्तु वहाँ समय था ही कहाँ ?

अच्छा, एकाएक मुरली-ध्वनि बंद हो गयी। ऐं, ऐसा क्यों हुआ ? परन्तु हुआ ? परन्तु हुआ ऐसा ही। जबतक सबकी आँखें खुलें, होश सँभले, तबतक उन्होंने झपटकर एक मयूरके गिरे हुए पिच्छको अपने कर-कमलोंसे उठाकर सिरपर लगा लिया, सबकी आँखोंमें आँसू आ गये, सभीका हृदय पिघल गया। सबके हृदयने एक स्वरसे कहा—

"प्रियतम ! तुम्हारा प्रेम अनन्त है। तुम्हारी रसिकता अनिर्वचनीय है। आजसे तुम 'मोर-मुकुटधारी' हुए।" उन्होंने मुस्कुराकर आँखोंके इशारेसे स्वीकृति दी।

उसी समय उनके पास कई ग्वाल-बाल आते हुए दीख पड़े और वे उनमें मिलकर खेलते-कूदते दूसरी ओर निकल गये।

अब मुझे मालूम हुआ कि वास्तवमें यह जाग्रत-स्वप्नकी संधि वृन्दावन है और इसमें वे लीला करते हैं।

क्या महाभारतके श्रीकृष्ण दूसरे हैं ?

श्रीमद्भागवतमें इस बातकी स्पष्ट घोषणा की गयी है कि 'एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। (१.३.२८)—अर्थात् दूसरे अवतार अंशावतार एवं कलावतार हैं, परन्तु श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात् भगवान् हैं।' तात्पर्य यह है कि और जितने अवतार होते हैं, वे भगवान्‌के अंशमात्र या कलात्मक होते हैं; परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण

स्वयं परिपूर्णतम हैं। चाहे जिस दृष्टिसे विचार किया जाय, भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण ही सिद्ध होंगे; क्योंकि वे पूर्ण हैं। पूर्णताका अर्थ क्या है, किन उपपत्तियोंसे पूर्णताका निश्चय करना चाहिये, यह विचारणीय प्रश्न है। जगत्में जितनी वस्तुएँ हैं, उनकी एक सीमा निर्धारित है। जिसका अंश हो सकता है, उसकी सीमाका भी अनुमान लगाया जा सकता है। एक कण हमें प्राप्त है, यह कण किसी विशेष वस्तुका करोड़वाँ हिस्सा है। अब वह वस्तु कितनी बड़ी है, यह जानना हो तो इस कणको करोड़गुना कर सकते हैं; यही उस वस्तुका परिणाम है। परन्तु जो वस्तु अनन्त है, उसका न तो कोई अंश होता है और न कोई परिमाण ही। भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त हैं, उनकी सत्ता अनन्त है, उनका ज्ञान अनन्त है, उनका आनन्द अनन्त है; वे परिपूर्ण एकरस सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। जगत्के समस्त ज्ञान, सत्ता और आनन्दका परिच्छेद है; परन्तु उनकी सत्ता, ज्ञान और आनन्दका परिच्छेद नहीं है। वे पूर्ण हैं।

जगत्के सभी पदार्थ शक्ति, क्रिया आदिके सम्बन्धसे एक-एक विशेषता रखते हैं। उन सब विशेषताओंको यदि एकत्र कर लिया जाय तो वह विशेषताका एक समुद्र बन जायगा। वह विशेषताओंका समुद्र अपने आश्रय भगवान् श्रीकृष्णके सामने एक बिन्दुके समान भी नहीं है। जगत्की समग्र शक्ति, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र लक्ष्मी (सौन्दर्य, माधुर्य एवं सम्पत्ति), समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्य भगवान् श्रीकृष्णमें ही निवास करते हैं। इनकी पूर्णता केवल भगवान् श्रीकृष्णमें ही है।

भगवान् श्रीकृष्णमें तीनों प्रकारकी पूर्णता प्रत्यक्ष रूपमें पायी जाती है। वे आध्यात्मिकतामें परिपूर्ण हैं। उनका ज्ञान अनन्त है। स्थान-स्थानपर उन्होंने अर्जुन-उद्धव आदि भक्तोंको जो उपदेश किया है और जगत्में वे जिस प्रकार निर्द्वन्द्व वीरभावसे रहे हैं, वह सर्ववादि-सम्मत है। भगवान्में आधिदैविक शक्ति भी पूर्णरूपसे प्रकट है। उन्होंने बाल-लीलासे लेकर परमधाम-गमन-पर्यन्त जितने कार्य किये हैं, सबसे आधिदैविक जगत्का सम्बन्ध रहा है और उपासनाकी दृष्टिसे वे सर्वथा पूर्ण हुए है तथा दूसरोंको पूर्ण बनानेके लिए हुए हैं। आधिभौतिक दृष्टिसे श्रीकृष्णका शरीर सर्वथा परिपूर्ण है। यद्यपि भगवान्का शरीर पञ्चभूत-निर्मित नहीं होता, तथापि यदि भौतिक दृष्टिसे विचार करना ही हो तो कहा जा सकता है कि उतना सुन्दर, उतना बलिष्ठ, उतना सुगठित शरीर सृष्टिके प्रारम्भसे आजतक न किसीका हुआ और न आगे होनेकी सम्भावना है। श्रीमद्भागवतमें कंसकी रङ्गशालामें जानेपर श्रीकृष्णके शरीरका जो वर्णन हुआ है, वह श्रीकृष्णके शरीरकी पूर्णताका द्योतक है। वहाँ ऐसा वर्णन आता है कि श्रीकृष्ण पहलवानोंको वज्रके समान दीख रहे थे और स्त्रियोंको कामदेवके समान। बड़े-बड़े लोग उन्हें श्रेष्ठ पुरुषकी भाँति देख रहे थे और पितामाताकी दृष्टिमें वे नन्हें-से शिशु मालूम पड़ रहे थे। ग्वालोंकी दृष्टिमें वे अपने आत्मीय थे और दुष्टोंकी दृष्टिमें शासक; कंस उन्हें मृत्युके रूपमें देख रहा था और योगी-लोग परम-तत्त्वके रूपमें; अज्ञानीलोग उनके विराट् शरीरको देखकर भयभीत हो रहे थे और प्रेमी भक्त अपने प्रभुके रूपमें देखकर कृतार्थ हो रहे थे (भा० १०.४३.१७)। इस प्रकार उनके शरीरकी पूर्णता केकारण सबलोग उनका दर्शन विभिन्न रूपोंमें करते थे। केवल शारीरिक पूर्णता ही नहीं, उनके जीवनमें कर्मकी पूर्णता भी प्रत्यक्षरूपसे दृष्टिगोचर होती है। साधु-परित्राण, दैत्योंका संहार, धर्मकी स्थापना, अधर्मका नाश—इनना ही क्यों, समष्टिके हितके लिए जिन कर्मोंकी आवश्यकता थी, श्रीकृष्णके जीवनमें उन सबकी पूर्णता पायी जाती है।

अंशावतार और पूर्णावतारके कर्ममें थोड़ा अन्तर होता है। अंशावतारका कर्म एक देश, एक काल, एक परिस्थिति और कभी-कभी तो एक व्यक्तिके लिए हितकर होता है; परन्तु पूर्णावतारका कर्म सब देश, सब काल, सब परिस्थिति और सब व्यक्तियोंके लिए हितकर होता है। उदाहरणके लिए परशुराम और बुद्धके चरित्र ले सकते हैं। क्षत्रियोंका संहार उस समय आवश्यक था;

परन्तु वह सर्वदा आवश्यक नहीं हो सकता। बुद्धके समय ईश्वरकी भी उपेक्षा करके अहिंसाका प्रचार करना अनिवार्य हो गया था; परन्तु वह सर्वदाके लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। परन्तु मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्णके कार्य-कलाप सब देश और सब समयके लिए एक-सरीखे उपयोगी हैं। उनका कार्य समष्टिके सार्वकालिक हितको ध्यानमें रखकर होता है।

भगवान्में सांसारिक जीवोंके समान कोई इच्छा नहीं होती। वे सर्वदा अपने स्वरूपमें रमण किया करते हैं; उनकी दृष्टिमें कोई दूसरा है ही नहीं, सब कुछ अपना ही पसारा है—अपनी ही लीला है। उनमें इच्छा उत्पन्न करती है, भक्तोंकी इच्छा। जब भक्त लोग जगत्की रक्षाके लिए उन्हें पुकारते हैं, जब बहुत-से भक्त भगवान्को, उनकी लीलाको प्रकटरूपसे देखना चाहते हैं और स्वयं उनकी लीलामें सम्मिलित होकर उसका आनन्द लेना चाहते हैं, और भगवान्की प्रत्यक्ष सेवा करके अपने जीवनको सफल करना चाहते हैं, तब भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंकी अभिलाषाके अनुसार उनके बीचमें आते हैं और उनकी एक-एक लालसा पूर्ण करते हैं। जगत्का कल्याण ही भगवान्का अवतार है। भक्तोंकी लालसा ही भगवान्की लीला है। भक्त भगवान्से चाहे जो करा ले—हँसा ले, नचा ले, माखनचोरी करवा ले, चीरहरण करवा ले, रासलीला करवा ले, रथ हँकवा ले, पैर धुलवा ले—सब कुछ करनेको वे निरन्तर प्रस्तुत रहते हैं। वे स्वयं इच्छाहीन हैं, भक्तकी इच्छा ही उनकी इच्छा है।

भगवान् श्रीकृष्ण एक भी हैं अनेक भी हैं। वे ही गोलोकमें रहकर गोपियोंके साथ विहार करते हैं, वे ही वैकुण्ठमें रहकर सारे जगत्की रक्षा करते हैं, वे ही नर-नारायणके रूपमें रहकर अपनी तपस्याके बलसे संसारको धारण करते हैं, वे ही महाविष्णुके रूपमें भी हैं और उनके श्वेत-कृष्ण केशोंके रूपमें अवतीर्ण भी होते हैं; वे एक हैं, फिर भी भक्तोंकी भावनासे अनेक हो जाते हैं। वे अपनी दृष्टिमें एक हैं, भक्तोंकी दृष्टिमें अनेक। श्रीमद्भागवतमें जिन श्रीकृष्णका वर्णन हुआ है, वे परिपूर्णतम श्रीकृष्ण हैं; इसलिये उनमें सबका समावेश है। इसलिये अमुक श्रीकृष्ण मेरे हैं और अमुक श्रीकृष्ण मेरे नहीं हैं—इस प्रकारकी भेद-बुद्धि करनेवाले भगवान्के वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं; क्योंकि जो भगवान्के सच्चे प्रेमी हैं, उन्हें तो सभी रूपोंमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णका ही दर्शन होता है, उनकी दृष्टिमें तो दूसरेकी सत्ता ही नहीं है।

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें एक प्रकारकी भ्रान्त धारणा और भी सुनी जाती है। कुछ लोग श्रीकृष्णकी केवल कर्म-लीलाको ही प्रधानता देते हैं और उनकी उपासना-लीला अथवा प्रेम-लीलाको गौण कर देते अथवा अस्वीकार कर देते हैं। उनकी बुद्धिमें कर्मकी वासना इतनी बलवती हो गयी है कि उसके सामने वे प्रेमकी लीलाओंको भूल ही जाते हैं, अथवा उड़ा देनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे लोगोंने श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेममयी वृन्दावनकी चिन्मयी लीलाओंका रहस्य न समझकर उसको अद्भुतकर्मी श्रीकृष्णके जीवनमें उचित नहीं समझा और ऐसी कल्पना कर ली कि जिन ग्रन्थोंमें ऐसी लीलाओंका वर्णन है, उन ग्रन्थोंके श्रीकृष्ण दूसरे हैं और महाभारतके वीर श्रीकृष्ण दूसरे। उन्होंने यहाँतक धृष्टताकी कि वृन्दावनवाले श्रीकृष्णकी महाभारतके श्रीकृष्णसे सर्वथा पृथक् होनेकी घोषणा कर दी। यह महाभारतके अध्यन और अनुशीलनके अभावका ही परिणाम है। महाभारतके अनेक स्थानोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी वृन्दावनकी लीलाओंका उल्लेख है।

महाभारतके सभापर्वमें जहाँ द्रौपदीके वस्त्राकर्षणका उल्लेख किया गया है, वहाँ बड़े स्पष्ट शब्दोंमें द्रौपदीकी प्रार्थना मिलती है—'गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।' अर्थात् 'हे गोविन्द! द्वारकामें रहनेवाले श्रीकृष्ण! हे गोपीजनोंके प्रियतम। आओ, हमारी रक्षा करो।' यहाँ यह बात स्मरण रखने-योग्य है कि द्रौपदी भगवान् श्रीकृष्णकी अन्तरङ्ग भक्ता थी और उनकी अन्तरङ्ग लीलाओंसे परिचित थी। गोपियोंके साथ

भगवान्‌का जो सम्बन्ध है, उसके द्वारा भगवान्‌को पुकारना इस बातका सूचक है कि भगवान् इस नामसे शीघ्र प्रसन्न होते है। 'गोपीजनप्रिय' सम्बोधन मथुरावासी अथवा द्वारकावासी भगवान् के लिए तभी प्रयुक्त हो सकता है, जब वे पहले गोकुल और वृन्दावन में रहे हों एवं गोपियों के साथ उनका विशेष प्रेम-सम्बन्ध रहा हो। इस एक सम्बोधन से ही भगवान् की ब्रज में की हुई समस्त लीलाओं की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

महाभारत के अन्याय स्थलों में भी श्रीकृष्ण की बाललीला का वर्णन है। शिशुपालने श्रीकृष्ण की निन्दा करते समय और भीष्मपितामहने दुर्योधन के प्रति श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन करते समय उनकी बाललीलाओं की चर्चा की है। यहाँ उन सबका उद्धरण न देकर केवल द्रोणपर्वके कुछ श्लोक उद्‌धृत किये जाते है, जो कि संजयसे धृतराष्ट्रने कहे हैं—

शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य संजय।
कृतवान् यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान् क्वचित्॥
गोकुले वर्द्धमानेन बालेनैव महात्मना।
विख्यापितं बलं बाह्वोस्त्रिषु लोकेषु संजय॥
उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम्॥
दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम्।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह॥
प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम।
मुरं चामरसंकाशमवधीत् पुष्करेक्षणः॥
तथा कंसो महातेजा जरासंघेन पालितः।
विक्रमेणैव कृष्णैन सगणः पातितो रणे॥
सुनामा नरविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः।
भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान॥
बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनामित्रघातिना।
तरस्वी समरे दग्धः ससैन्य शूरसेनराट्॥
चेदिराजं च विक्रान्त राजसेनापतिं बली।
अर्घ्ये विवदमानं च जघान पशुवत्तदा॥
यच्च तन्महदाश्चर्य सभायां मम संजय।
कृतवान् पुण्ड़रीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति॥

इन श्लोकोंका अर्थ बहुत स्पष्ट है। इनमें गोकुल मथुरा और हस्तिनापुरकी लीलाओंका स्पष्ट उल्लेख है। महाभारतके अतिरिक्त अग्निपुराण, विष्णुपुराण, पद्मपुराण आदि समस्त पुराणग्रन्थोंमें जहाँ-जहाँ भगवान्‌की लीलाका वर्णन हुआ है, सर्वत्र एक ही कृष्णका वर्णन है।

श्रीमद्भागवतके कृष्ण दूसरे हैं और महाभारतके दूसरे—यह कहने वालोंके चित्तमें ऐसी बात बैठी हुई है, अथवा वे यह कहना चाहते हैं कि श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष नहीं हैं। श्रीमद्भागवतके कविने अपनी भावनाके अनुरूप श्रीकृष्णका चित्रण किया है और महाभारतके कविने अपनी भावनाको वे काव्य, नाटक और उपन्यास पात्रोंके समान इन पौराणिक व्यक्तियोंको भी कल्पित मानते हैं और कल्पनाके आदर्शके भेदसे श्रीकृष्णको दो व्यक्ति मान लेते हैं। बहुत जोर देनेपर और प्रमाणित करनेपर वे इतना तो मान लेते हैं कि इतिहासमें श्रीकृष्ण-अर्जुन आदि नामके व्यक्ति हुए हैं, परन्तु उनके चरित्रको सर्वथा अपनी-अपनी भावनाके अनुरूप कल्पित मानते हैं। उनकी यह धारणा भारतीय ऐतिहासिक पद्धतिके सर्वथा विपरीत होनेके कारण कदापि आदरणीय नहीं है। अभी भारतवर्ष में आज भी ऐसे लोग है, जो अपनेको श्रीकृष्ण और युधिष्ठरका बंशज कहकर गौरवान्वित अनुभव करते हैं। गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन, नन्दगाँव, मथुरा, द्वारका, कुरुक्षेत्र आदि ऐसे अनेकों स्थान हैं, जहाँ परम्परासे श्रीकृष्ण आदिके अनेकों कर्मोके स्थल विशेष सुनिश्चित हैं। पाँच हजार वर्षके भीतरके जितने प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, उनमें उन स्थानोंकी और उनमें होनेवाले व्यक्तियोंकी ऐतिहासिकता एक स्वरसे

स्वीकारकी गयी है । क्या संसारके इतिहासमें केवल काव्य अथवा उपन्यासके बलपर किसी भी स्थान अथवा व्यक्तिकी पूजा हुई है ? भारतीय पुराणोंमें जिन-जिन स्थानोंकी कथा है, वे आज भी प्रायः ज्यों-के-त्यों मिलते हैं, और अनेक शिलालेखों, स्तूपों और ताम्रशासनों द्वारा उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। यदि महाभारत-युद्ध ही ऐतिहासिक नहीं है, तो श्रीकृष्णका सारथ्य और उनका गीतोपदेश क्या महत्त्व रखता है ? एक बात बड़ी स्पष्टताके साथ कही जा सकती है—वह यह कि महाभारत और श्रीमद्भागवतमें जब बहुत ही स्पष्ट रूपसे लिखा है कि यह ऐतिहासिक घटना है, तब उनकी इस उक्तिको न मानकर उनके एक अंशके बलपर किसीको मनमानी कल्पना करनेका क्या अधिकार है ? यदि उन्हें मानते हैं तो पूर्ण रूपसे मानें और जैसे उनमें श्रीकृष्णको ऐतिहासिक, उनके चरित्रको सत्य एवं गोकुल तथा कुरुक्षेत्रके श्रीकृष्णको एक बतलाया गया है, वैसा ही स्वीकार करें; अपनी बुद्धिके भ्रमको शास्त्र-ग्रन्थोंपर न डालकर अपने ही पास रखें, शास्त्रमर्यादाको अक्षुण्ण चलने दें, उसपर अनुचित आघात न करें। शास्त्रग्रन्थोंके आधारपर इस कल्पनाके लिए तनिक भी अवसर नहीं है कि ये सब ऐतिहासिक घटनाएँ नहीं हैं।

श्रीकृष्णके भक्तोंकी अनेक श्रेणियाँ होती हैं। वे अपनी भूमिका, स्थिति और भावनाके अनुसार श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाओंसे प्रेम करते हैं और विशेष करके अपनी रुचिके अनुकूल लीलाओंका ही श्रवणकीर्तन करते है। इनके अनेक भेद होनेपर भी मुख्यतः इनकी पाँच प्रकारकी आसक्तियाँ देखी जाती हैं—शान्तासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति और कान्तासक्ति। ब्रजमें विशेष करके तीन आसक्तियोंका प्रकाश हुआ है—ग्वाल-बालोंमें सख्यासक्ति, नन्द-यशोदा आदिमें वात्सल्यासक्ति और गोपियोंमें कान्तासक्ति। वात्सल्यासक्तिकी लीला गृह-लीला है। माता-पिता घरपर रहकर अपने बच्चेसे प्यार करते हैं, उसकी देखभाल करते हैं और बाहर जानेपर उसके लिए चिन्तित रहते हैं। उसे ही सुख पहुँचानेके लिए अनेकों प्रकारकी तैयारी करते रहते है। सखाओं के साथ होने वाली लीला वनकी लीला है और प्रातः-कालसे लेकर सायंकाल तक ग्वाल-बाल श्रीकृष्णके साथ रहते हैं, उनके साथ हँसते हैं, खाते, खेलते-कूदते हैं, समानताका व्यवहार करते हैं और सब-कुछ भूलकर उन्हींके प्रेममें मग्न रहते हैं। कान्तासक्तिवती गोपियोंके साथ होने वाली लीला निकुञ्जलीला है और यह बड़ी ही गोपनीय हैं। औरोंकी तो बात ही क्या, वात्सल्यासक्ति रखने वाले माता-पिताको भी इस रहस्य-लीलाका पता नहीं चलता और कुछ अन्तरङ्ग सखाओंको छोड़कर दूसरे ग्वालबाल भी इस अन्तरङ्ग लीलाको नहीं जानते। श्रीमद्भागवतमें इन त्रिविध लीलाओंका वर्णन है और इन तीनों प्रकारके भाव रखनेवाले उनका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके भावोंमें लीन हो जाते हैं और अपने जीवनको सफल एवं कृतकृत्य अनुभव करते हैं।

जिनके जीवनका उद्देश्य केवल भौतिक उन्नति हैं, जो शारीरिक जीवन और सुखभोगको ही सब कुछ समझते हैं जिन्होंने सहृदयताके साथ मानवहृदयका अध्ययन नहीं किया है, जिन्होंने आध्यात्मिक शान्तिके मूलमन्त्र इस प्रेम-रहस्यका ज्ञान नहीं प्राप्त किया है—दूसरे शब्दोंमें जो साधक नहीं हैं; जिन्हें जगत्के भोगोंसे वैराग्य नहीं है, जो अभी भगवत्कृपाके अनुभवसे वञ्चित हैं, वे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति होनेवाले सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भावके रसको न कल्पना ही कर सकते हैं और न तो अनुभव ही। श्रीमद्भागवत भागवतोंका, परमहंसोंका, सिद्ध-साधकोंका ग्रन्थ है। इसकी मधुर और प्रेमपूर्ण लीलाओंको केवल वे ही समझ सकते है और केवल वे ही समझ सकते है।

श्रीमद्भागवतमें सख्य, वात्सल्य और माधुर्यरसकी लीलाओंका वर्णन हुआ है। समस्त ब्रह्माण्डोंके एक-

मात्र अधिपति, समस्त यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता भगवान् श्रीकृष्ण प्रेम-परवश होकर किस प्रकार ग्वालोंके साथ खेलते है, उनके साथ गौएँ चराते हैं खेलमें उनसे हार जाते है और उन्हें पीठपर ढोते हैं—इन सब बातोंका बड़ा ही मधुर और हृदयको मुग्ध कर देने वाला वर्णन हुआ है। वे ही परात्पर ब्रह्म, अखिललोकमहेश्वर, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण किस प्रकार अपनी माताकी गोदमें बालोचित क्रीड़ा करते हैं, भूखे होकर दूध पीना चाहते है, डाँटनेपर डरते, रोते हैं और ऊखलमें बँध जाते हैं—इन सब बातोंका इतना सुन्दर, इतना मोहक वर्णन हुआ है कि पढ़-सुनकर भगवान्की परम दयालुता और परम प्रेमिल स्वभावके अनन्त समुद्रमें हृदय डूबने-उतराने लगता है। इन लीलाओंके बीच-बीचमें पूतना, तृणावर्त, बकासुर, अघासुर आदि असुरोंके वधसे रसकी अभिवृद्धि ही होती है, न्यूनता नहीं आती। भगवान्की ये लीलाएँ भी ऐश्वर्यसूचक नहीं, भगवान्की दयालुताकी ही सूचक हैं; क्योंकि संकल्पमात्रसे निखिल जगत्की सृष्टि और संहारकर सकनेवाले प्रभुके लिए किसी दैत्यको मार देना ऐश्वर्यका कार्य नहीं हो सकता; इसके विपरीत उनका कल्याण करनेके लिए उन्हें अपने हाथोंसे मारना प्रभुके दयामय स्वभावका ही परिचायक है। जो लोग भगवान्को भगवान् नहीं मानते, वे भी उनकी सख्य-वात्सल्यमयी लीलाओंको पढ़कर स्तम्भित हो जाते हैं और उनका हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रहता।

प्रेम, आनन्द एवं रसस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण इतने कोमल एवं मधुर हैं कि वे अपने प्रेमीके हृदयमें किसी लालसाकी स्फूर्ति होनेके पहले ही उसको पूर्ण कर दिया करते हैं। वे इस बातके लिए निरन्तर सजग रहते हैं और अपने प्रेमीके हृदय-मन्दिरमें ही ज्योतिके रूपमें जगमगाते हैं कि कहीं उसे किसी वस्तुका अभाव न खटक जाय, उसे अपनेमें और मुझसे अपूर्णताका भाव न हो जाय। यही कारण है कि वे चौबीसों घण्टे अपने प्रेमीके हृदयमें, प्राणोंमें और नेत्रोंमें निवास करते है; एक क्षणके लिए भी उसे छोड़कर कहीं नहीं जाते। यही उनका नियम है और यही सत्य है। फिर भी जब हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण उन गोपियोंको—जिनका जीवन श्रीकृष्णके लिए था और वे इस बातको जानते थे, स्वीकार भी करते थे—छोड़कर मथुरा चले गये और फिर कभी नहीं लौटे, तो एकाएक चित्तमें एक प्रश्न उठता है कि क्या वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंका परित्याग ही कर दिया? और यदि यह बात सत्य है तो क्या श्रीकृष्ण-जैसे परम प्रेमी पुरुषोत्तमके चरित्रमें यह बात उपालम्भके योग नहीं है? है, और अवश्य है। यही बात असह्य होनेके कारण अनेक वैष्णावाचार्योंने ऐसी मान्यता करली कि श्रीकृष्ण वृन्दावनको छोड़कर एक पग भी कहीं बाहर नहीं गये, अक्रूरके साथ उन्होंने केवल अपना एक प्रकाश-विशेष भेज दिया। कुछ लोगोंकी ऐसी मान्यता है—और वे श्रीमद्भागवतके श्लोकोंसे ऐसा अर्थ भी निकालते हैं कि—श्रीकृष्ण गये तो सही, परन्तु नन्दबाबाके साथ ही लौट आये और मथुरामें अपना एक प्रकाश-विशेष छोड़ आये। किसी-किसी पुराणमें श्रीकृष्णके पुनः वृन्दावन आनेका वर्णन भी मिलता है। भगवान्के परम उदार स्वभावको देखते हुए ये सभी बातें ठीक जँचती हैं और ठीक हैं भी।

विचारणीय प्रश्न यह है कि भगवान्की नित्यलीलामें विहार करनेवाली गोपियाँ क्या जगत्में इसलिये अवतीर्ण हुई थी कि भगवान् नित्य उनके साथ संयोगकी लीला किया करें ओर केवल इतनेमें ही उनके अवतारका प्रयोजन पूर्ण हो जाय? भगवान्की लीला, धाम और उनकी सहचरी शक्तियाँ इसलिये अवतीर्ण हुई थीं कि संसारमें भूले हुए जीव यह बात सीखें कि भगवान्के साथ कैसे प्रेम किया जाता है, उनसे मिलनेके लिए कैसी उत्कण्ठा होती है। और उनसे मिलन होनेपर कैसे लोकोत्तर रसका अनुभव होता है। ब्रजकी लीलासे जगत्के जीवोंके सामने यह आदर्श रखा गया कि भगवान्के संयोगमें प्रेमका कैसा अनिर्वचनीय प्रकाश होता है,

परन्तु जगत्में ऐसे कितने जीव है, जो भगवान्के मिलनका अनुभव करते हों ? ऐसे भगवत्कृपा-प्राप्त महान् आत्माओंका अभाव नहीं है, परन्तु उनकी संख्या अंगुलियों-पर गिनी जा सकती हैं—वे थोड़े हैं । जगत्में ऐसे लोग बहुत अधिक है, जो भगवान्से वियुक्त हैं और उनके वियोगमें ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं । उन्हें अपना जीवन किस प्रकार विताना चाहिये । इस बात की शिक्षा भी गोपियोंके जीवनसे ही मिलनी चाहिये । और यही कारण है कि भगवान्के वियोगमें भीं जीवन धारण करके वे जगत्का हित करती रहती हैं । श्रीमद्भागवतमें ऐसा वर्णन आता है कि श्रीकृष्णके बिना गोपियोंके लिए एक क्षण भी सैकड़ों युगोंके समान हो जाता था—पलक गिरनेका व्यवधान भी उन्हें असह्य था और गिरनेपर वे पलक बनानेवाले ब्रह्माको उपालम्भ भी देती थीं । फिर भी वे विरहमें जीवित रहीं, इसका कारण प्रेमकी पूर्णता ही है । प्रेमका यह स्वभाव है कि वह प्रेमीमें इस भावको भर देता है कि मुझे चाहे जितना दुःख हो, परन्तु मेरे प्रियतमको दुःखका लेश भी स्पर्श न कर सके । गोपियाँ सोचती थीं—श्रीकृष्ण हमसे अलग रहनेमें ही जगत्का कल्याण सोच रहे हैं, वे हमारे वियोगी जीवनसे जीवोंका हित करना चाहते हैं । वे एक-न-एक दिन हमारे पास आयेंगे ही । यदि हम उनकी इच्छाके अनुकूल अपना वियोगी जीवन न बितायें, शरीर त्याग दें तो यह समाचार उन्हें किसी न किसी तरह मिल ही जायगा । वे हमारी मृत्युका समाचार सुनकर कितने दुखी होंगे, उनके कोमल हृदयपर कैसी निष्ठुर ठेस लगेगी—कल्पना करके भी हृदय हहर उठता है । इसलिये जीवनमें चाहे जितनी व्यथा सहनी पड़े, उसे सहकर उनकी इच्छा पूर्ण करनी चाहिये और उन्हें एक क्षणके लिए भी कभी कष्ट न हो, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये । गोपियोंका संकल्प दृढ़ था, गोपियोंने इस व्रतका जीवनभर निर्वाह किया । उनमें जितनी कोमलता थी उससे भी अधिक तितिक्षा और त्याग था—यह स्पष्ट है ।

श्रीकृष्णमें जैसे समग्र माधुर्य और समग्र सौन्दर्य हैं, वैसे ही समग्र वैराग्य भी है । श्रीकृष्ण चाहे जिस रूपमें हों, जिस क्रियामें संलग्न हों असङ्ग है—इतना निश्चित है । संसारमें मानव बुद्धिमें जितने विरुद्ध भावोंकी कल्पनाकी जा सकती हैं, सब श्रीकृष्णमें हैं क्योंकि सबके आश्रय वे ही हैं । वे शिशु होते हुए पुरातन है निर्गुण होते हुए भी सगुण है, एक देशमें होते हुए भी सर्व देश में हैं, वे गोपियों के पास न होते हुए भी है और होते हुए भी नहीं हैं । केवल शारीरिक सानिध्य ही नहीं है; मुख्य साँनिध्य तो मनका है, आत्माका है । जहाँ प्रेम है, वहाँ सानिध्य भी हैं—चाहे वे आंखोंसे नहीं दीखे । प्रेम न होनेपर शारीरिक संनिधि भी किसी कामकी नहीं । गोपियोके हृदयमें सच्चा प्रेम था और सच्चा साँनिध्य भी था । उसे दूसरे लोग नहीं देख सकते थे, गोपियां देखती थी । श्रीकृष्ण जानते थे कि ऐसा सांनिध्य संयोगकी अपेक्षा वियोगमें अधिक होता है संयोगमें प्रियतमका दर्शन, मिलन सीमित होता हैं और वियोगमें अनन्त । जहाँ देखिये, प्रियतमही-प्रियतम है । उन्हीका दर्शन, स्मरण । किसीकी पदध्वनि उन्हींके आनेकी आहट है । कोई भी रूप उसी नटवरकी लीला है ! श्रीकृष्णने अपनेको गोपियोंसे अलग करके उन्हें कोटि-कोटि रूपमें अपने आपका दान किया था, यह गोपियोंकी दिनचर्यासे प्रगट है और उद्धव यहीं अनुभव करके उनके चरणोंकी धूलपर लोटते थे ।

भगवान् दयामय हैं । वे दयाके ही कारण अवतीर्ण होते हैं और दयाके ही कारण अनेकों प्रकारकी लीला करते हैं । उनका प्रत्येक कार्य दयासे पूर्ण ही होता है जो उन्हें चाहता है, उसे वे मिलते हैं अवश्य—चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न चाहता हो । जो शत्रुके रूपमें चाहते हैं, उन्हें शत्रुके रूपमें भी मिलते हैं और उनका कल्याण भी करते हैं । अनेक अवतारोंमें अनेकों व्यक्ति भगवान्की ओर आकर्षित हुए थे और उनमेंसे जिन्होने पतिके रूपमें भगवानको चाहा था, उनके लिए श्रीकृष्णावतार ही उद्धारका समय निश्चित किया गया था । भगवान् श्रीकृष्णके ब्रज और मथुराके जीवनमें चार प्रकारकी स्त्रियाँ सम्पर्कमें आती हैं ! एक तो

यशोदा-राधा आदि गुणातीत श्रेणीकी स्त्रियाँ, जो भगवान्के नित्यधाममें उनके साथ रहती हैं और कुछ गोपियाँ, जो साधन-सिद्ध होकर गुणातीत हो गयी हैं। दूसरी श्रेणीकी सात्त्विक स्त्रियाँ मथुराकी रहनेवाली यज्ञपत्नियाँ हैं—जो बड़े ऊँचे भावसे श्रीकृष्णके पास आती हैं, प्रेम करती हैं, रहना चाहती हैं; परन्तु गोपियों-जैसा अधिकार न होंनेके कारण रह नहीं पातीं। उनके चित्तमें परिवारके प्रति कुछ आसक्ति भी है, जो कि उनके वचनोंसे ही प्रगट हो जाती है। तीसरी श्रेणीकी राजसिक स्त्रियां वे हैं, जो व्रजके वनोंमें रहती हैं, जातिकी पुलिन्द-कन्या—भीलिनी हैं, परन्तु श्रीकृष्णके प्रति वे विशेष आकृष्ट हैं और चाहती हैं कि श्रीकृष्ण हमें मिलें। परन्तु संकोच, भय और अपनी हीनताके बोधके कारण वे श्रीकृष्णसे अपनी कामना प्रकट नहीं कर सकतीं, केवल भगवान्के चरणोंकी धूलि लेकर अपनी व्यथा मिटाकर संतोष कर लेती हैं। श्रीमद्भागवतके वेणु-गीत (१०.२१) में इनकी बडी प्रशंसा है। इन तीनों श्रेणीकी देवियोंकी प्रशंसा सहस्र-सहस्र मुखसे गायी जाय तो भी समाप्त नहीं हो सकती। इन तीनोंके अतिरिक्त चौथी श्रेणीकी एक स्त्री है, जो तामसिक है और जिसकी निन्दा भी श्रीमद्भागवतमें मिलती है; वह चौथी स्त्री है—कुब्जा, जिसकी चर्चा श्रीमद्भागवतमें दो स्थानों-पर हैं—

कुब्जा अथवा कंसकी सैरध्री मथुराके बीच सड़कपर भगवान्को मिलती है, भगवान्को चन्दन लगाती है—जिसके फलस्वरूप भगवान् उसका कूबड़ ठीक कर देते हैं और वह एक सुन्दर स्त्रीके रूपमें हो जाती है। उसमें तामसिकता अधिक है और वह लज्जा संकोच छोड़कर वहीं भगवान् का पल्ला पकड़ लेती है। भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान् श्रीकृष्ण उसकी कामना पूर्ण करनेका वचन दे देते हैं। और मथुरामें शान्ति हो जानेके पश्चात् उसे पूर्ण भी करते हैं। भगवान्का धर्म है—भक्तकी इच्छा पूर्ण करना और भक्त सब प्रकारके होते ही हैं। इसलिए भगवान्के सामने कदाचित कोई ऐसा भक्त आजाय तो भगवान् उसकी भी इच्छा पूर्ण करते है, इस बातका यह ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। अनादि कालसे कामनाओंके कीचड़में फँसा हुआ जीव भगवान्के सामने जाकर भी अपनी कामनालोंको ही पूर्ण करना चाहता हैं और भगवान् उसके लिए छोटेसे छोटा काम कर दें—यह भी उनके अनुरूप ही हैं।

कुब्जाके पूर्व जन्मके प्रसङ्गमें तीन प्रकारकी कथाओंका उल्लेख मिलता है। एक तो माथुर हरिवन्शकी कथा, जिसका उद्धरण श्रीजीवगोस्वामीजीने अपनी टीकामें दिया है। वह इस प्रकार है—पूर्व जन्ममें यह एक राजकुमारी थी। देवर्षि नारद इसके पिताके पास आकर भगवान्के गुण सुनाया करते थे। जब यह विवाहके योग्य हुई और इसके पिताने देवर्षि नारदसे वरके सम्बन्धमें पूछा, तब उन्होंने उस विषयमें राजकुमारीका ही अभिप्राय जानना ठीक समझा। राजकुमारीने कहा—'आप जिसके गुणोंका गान करते हैं, उसीको मैं वरण करूगीं।' नारदके बहुत मना करने पर भी उसने अपना हठ नहीं छोड़ा, तब उन्होंने तपस्या करनेका उपदेश किया। तपस्या पूर्ण होनेपर आकाश-वाणी हुई कि दूसरे जन्ममें जिसके स्पर्शसे तुम्हारा कूबड़ अच्छा हो जाय, उसीको वह पुरुष समझ लेना और उसीको वरण करना। वही कुब्जा हुई। दूसरी कथा गर्ग—संहिन्तान्तर्गत मथुराखण्डके ग्यारहवें अध्यायमें मिलती है। वहाँ कहा गया है कि अपने कान-नाक काटनेकी बात रावणको सुनाकर सूपणखां पुष्करतीर्थमें चली गई और वहाँ बहुत दिनों तक तपस्या करती रही। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीने वर दिया 'कि द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें अपनायेगे।' वही मथुरामें कुब्जा रूपसे रहती थी। तीसरी कथा श्रीमद्भागवतकी टीकामें श्रीविश्वनाण चक्रबर्तीने लिखी हैं—कुब्जा भू-शक्ति सत्यभामाकी अंशावतार थी। कंसके अत्याचारके कारण ही वह कुब्जाहो गयी थी। लक्ष्मीकी ही भाँति पृथ्वी भी भगवान्की अर्धाङ्गिनी है, इसलिये उसे अपनाकर भगवान्ने उसका दुःख दूर किया।' कल्प-भेद से ये सभी कथाएँ ठीक हैं।

भगवान् जिस समय कुब्जाके घर पधारे, उसके एक-ही-दो दिन पहले उद्धव वृन्दावनसे लौटे थे। उनके मनमें यह शङ्का थी कि भगवान् अपने भक्तोंको भी छोड़ देते हैं और उनकी इच्छा भी अपूर्ण रख देते हैं। उनकी उसी शङ्काको दूर करनेके लिए भगवान् उद्धवको लेकर कुब्जाके घर गये और यह दिखाया कि 'मैं जब कुब्जाका भी परित्याग नहीं कर सकता, तब गोपियोंका कैसे कर सकता हूँ ? *गोपियाँ तो मुझसे नित्य-युक्त है, मैं उनके रोम-रोममें हूँ और वे मेरे रोम-रोममें हैं। एक क्षणके लिएभी हमारा उनका वियोग नहीं है। इस लीलासे भगवान्‌कीपरम कृपालुताप्रकट होती है, जैसाकि श्रीजीवगोस्वामीने कहाहै— सैरन्ध्या: स्वीकृति: सैनं व्यनक्ति स्म परां कृपाम्। इतना होनेपर भी इसका चरित्र भक्तोंके लिए आदर्श नहीं माना गया है। स्वयं श्रीशुकदेवजीने कहा है—

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यो वृणीते मनोग्राह्यमामसत्त्वात् कुमनीष्यसौ॥
(१०.४८.१२)

'बड़ी कठिनतासे प्रसन्न होने वाले सर्वेश्वर भगवान् विष्णुको प्रसन्न करके जो जीव विषय-भोगका ही वरण करता है, यह बड़ा दुर्बुद्धि है, क्योंकि विषय असत् हैं। इससे यह भी सिद्ध हो सकता है कि गोपियाँ श्रीकृष्णको सुख पहुँचाना चाहती थीं; उनके विषयलिप्साकी गन्ध न थी और कुब्जामें विषयलिप्सा थी। इसीसे श्रीशुकदेवजीने उनकी निन्दा की है। यह प्रसंग भी गोपियोंके प्रेमकी महिमा ही सूचित करता है।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि श्रीकृष्णावतारके समय अनेक युगोंके लोग अपनी-अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए, पूर्व जन्ममें प्राप्त वरदानोके अनुसार पृथिवीमें जन्म ग्रहण करते हैं और उन सबका सम्बन्ध भगवान् श्रीकृष्णसे होता है, क्यों कि भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम हैं। जिनका कल्याण अंशावतार–कलावतारसे नहीं हो सकता था, उनका कल्याण भी इस अवतारमें हो जाता है। इसी न्यायसे श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी बहुत–सी पत्नियों और पुत्रोंका होना मिलता है। यह ध्यान देनेकी बात है कि जबतक रुक्मिणी आदि स्त्रियोंने स्वयं अथवा उनके अभिभावकोंने श्रीकृष्णको बुलाया नहीं और उन्हींसे विवाह करनेकी इच्छा नहीं की, तबतक भगवान् श्रीकृष्णने किसीको ग्रहण नहीं किया। भगवान् श्रीकृष्णका ग्रहण भक्तोंके भावके अनुसार ही होता हैं और वे अपने चाहनेवालेको अस्वीकार नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत (१०.६९) में वर्णन आया है–भगवान्‌के अनेक विवाह की बात सुनकर देवर्षि नारद के मनमें बड़ा सन्देह हुआ कि वे ही इतनी स्त्रियों को कैसे प्रसन्न रखते होंगे। उन्होंने द्वारकामें जाकर प्रत्येक पत्नी के महल में भगवान्‌का दर्शन किया और उनकी विचित्र लीला देखकर आश्चर्यका अनुभव किया। भगवान् अपनी प्रत्येक पत्नी के साथ पृथक–पृथक रहते थे। यह उनके लिए कोई कठिन बात न थी' क्योंकि वे संकल्पमात्रसे ही जितने रूप चाहें धारण कर सकते हैं। प्रत्येक पत्नीकी प्रसन्नताके लिए उन्होंने बहुत–से पुत्र और पुत्रियां भी उत्पन्न की थी, जिनकी संख्या सुनकर बहुत–से लोग चकित रह जाते हैं। उन्हें सृष्टितत्त्वपर विचार करना चाहिए (देखिये विसर्गका वर्णन)। सृष्टि केवल अङ्ग–संङ्गसे ही नहीं होती। स्त्री–पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टि तो बहुत निम्न स्तरकी हैं। सृष्टि मानसी चाक्षुषी आदि कई प्रकार की होती है और ब्रह्मा, प्रजापति एवं उंचे अधिकारके ऋषिगण इसी श्रेणी की सृष्टि किया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका शरीर पाञ्चभौतिक था और वे भी साधारण पुरुषोंकी भांति अङ्ग–संङ्गसे ही संतानोत्पादन करते थे; ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिए भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य शरीरमें हेय वस्तु रहती ही नहीं। विष्ठा, मूत्र, नख,नेत्रमल, कर्णमल आदि वस्तुएं केवल पाञ्चभौतिक शरीरमें ही होती हैं, दिव्य शरीर में नहीं। वे मनुष्यरूप धारण करनेके कारण शौच–

* सैरन्ध्रीमपि संन्त्यक्तुमहं शक्तोऽस्मि नोद्धव।
किमुत ब्रजलोकांस्तानिति व्यञ्जन्निमामगात्॥

स्नानादिकी लीला करते हैं, यह दूसरी बात है। भगवान् श्रीकृष्णको भागवतमें 'अवरुद्धसौरत' कहा गया है और श्रुतियोंमें उनका नैष्ठिक ब्रह्मचर्य प्रसिद्ध है। इसलिये उनके वीर्य–त्यागद्वारा संतानोत्पत्तिकी धारणा उनका स्वरुप न समझने के कारण होती है। अत; उनके सब पुत्र और पुत्रियां मानसिक ही थी, उनके संकल्पमात्रसे ही उनकी उत्पत्ति हो गयी थी—ऐसा समझना चाहिये।

भगवान् जिन स्थानोंमें लीला करते हैं, वे नित्य और चिन्मय हुआ करते हैं। श्रीवृन्दावन, मथुरा और द्वारका भगवान्के नित्य लीला–धाम हैं। ये देश और कालसे परिच्छिन्न होनेपर भी परिच्छिन्न नही होते, भगवान्की इच्छासे, इनमें संकोच और विकास हुआ करता है। छोटे–से वृन्दावन में जितनी गोपियों, ग्वालों और गौओं के होनेका वर्णन आता है, वह स्कूल दृष्टिसे देखनेसे सम्भव नहीं प्रतीत होता, फिर भी भगवान्की महिमासे वह सब सत्य हीं है। वृन्दावनकी एक झाडीमें ही ब्रह्मा को सहस्र–सहस्र ब्रह्माण्ड और उनके अधिवासी दीख गये थे। श्रीयोगवासिष्ठके तण्डपोपाख्यानमें एक–एक अणुके अन्दर सृष्टिके महान् विस्तारका प्रत्यक्ष अनुभव कराया गया है। देशका बन्धन केवल स्थूल वस्तुओं में ही रहता है, सूक्ष्मतम दिव्य वस्तुओंमें नहीं। इसीसे द्वारकाधामका भी भगवान्की इच्छासे उनके स्थितिकालमें विकास हो जाता है और उसमें कोटि–कोटि यदुवंशी रह सकते है। स्थान–संकोचका अनुमान करके जो लोग यदुवंशियोंकी संख्या घटाने की चेष्टा करते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि द्वारका भगवान्का चिन्मय धाम है। वह देश–कालके परिच्छेदसे रहति, वास्तवमें भगवत्स्वरूप एवं अनन्त है; उसमें सारी सृष्टिके जीव निवास कर सकते हैं, यदुवंशियों की तो कथा ही क्या है?

श्रीमद्भागवतका पूर्ण पाठ कर लेनेपर यह निश्चय हो जाता है कि भगवान् श्रीकृष्ण का जीवन पूर्ण जीवन हैं। उनका ऐश्वर्य और साथ ही मर्यादापालन दोनों ही पूर्ण हैं। ऐश्वर्य और धर्मका अपूर्व सामञ्जस्य उनके जीवनमें देखा जाता है सौन्दर्य, माधुर्य, कोमलता, सम्पत्ति आदिके साथ ही उनकी कीर्ति भी परिपूर्ण है एवं उनके रहते हुए भी वे ज्ञान-वैराग्यसे परिपूर्ण हैं। श्रीकृष्णके ज्ञानकी पूर्णता सभी मानते हैं। श्रीमद्भागवत के अध्ययन करनेवालोंसे उनके वैराग्यकी पूर्णता भी अविदित नहीं हैं। मथुरा और द्वारकामें स्वयं राजा न बनकर उन्होंने उग्रसेनको राजा बनाया और वे गोपियों से इतना प्रेम होनेपर भी उनसे अलग ही रहे। महाभारत की सम्पूर्ण विजय इनके ही कारण हुई, परन्तु इन्होंने उससे तनिक भी लाभ नहीं उठाया, उलटे युधिष्ठरकों ही समय-समयपर बहुत-सा धन देते रहे। उनके वैराग्यकी पूर्णताका सबसे ज्वलन्त प्रमाण यह है कि उनकी आँखों के सामने यदुवंशकी समाप्ति हो गयी और बचे हुए लोगोंकी कोई व्यवस्था न करके मुस्कराते हुए वे अपने धामको चले गये, परन्तु हमलोगोंके लिए बहुत कुछ छोड़ गये। वे अपना ज्ञान, अपना वैराग्य और अपने 'लोकाभिराम', 'धारणा-ध्यान-मङ्गल' दिव्य शरीरकी वह स्मृति, जिसके द्वारा आज भी जीव उन्हें उसी प्रकार प्राप्त कर सकता है, कहीं ले थोड़े ही गये हैं? उनका स्मरण करके, अनुभव करके जीव अपना कल्याण सम्पादन करे—यही उनके अवतारका मुख्य प्रयोजन है।

श्रीराधा-नाम

भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी सर्वथा अभिन्न और एक ही हैं। श्रीकृष्ण श्रीराधास्वरूप हैं और श्रीराधा श्रीकृष्णस्वरूप। 'कृ' श्रीराधा हैं और 'ष्ण' श्रीकृष्ण। यहाँतक की 'कृ' में भी 'क' श्रीकृष्ण हैं; 'ऋ' श्रीराधा। वैसे ही श्रीराधाके सम्बन्धमें भी है। किसी भी समय, किसी भी देशमें, किसी भी निमित्तसे और किसी भी रूपमें श्रीकृष्णका पार्थक्य सम्भव नहीं हैं। एक ही अर्थके दो शब्द हैं, एक ही वस्तुके दो नाम हैं। जब उनमें देश, समय और वस्तुकृत भेद ही नहीं है तो यह बात कैसे कही जा सकती

है कि वे दोनों दो हैं? यही कारण है कि श्रीकृष्णकी लीला श्रीराधाकी लीला है और श्रीराधाकी लीला श्रीकृष्णकी। ऐसी स्थिसि में यह कहना कि अमुक ग्रन्थमें श्रीकृष्णकी लीला है, श्रीराधाकी नहीं, अथवा श्रीराधाकी लीला हैं, श्रीकृष्णकी नहीं, सर्वथा असङ्गत हैं। श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें भी ठीक यही बात है।

भगवान् श्रीकृष्णकी अथवा भगवती श्रीराधाकी एकता होनेपर भी अनेकता है। भेदमें अभेद और अभेदमें भेद—यही लोलाका स्वरूप है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि यह लीला प्राकृत नहीं है। देश, काल और वस्तुओंके भेदकी समाप्ति तो मनके साथ ही हो जाती हैं। जब विशुद्ध ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश होता है, तब उसके साथ ही अज्ञानस्वरूप अज्ञानकार्य प्रकृतिका भी, आत्यन्तिक लय हो जाता है। उस समय केवल विज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही अवशेष रहता है। यद्यपि यह ब्रह्म विशुद्ध तत्व है, तथापि प्रकृतिके लयके बादकी स्थिति होनेके कारण 'तुरीय'के नामसे कहा जाता है। जैसे प्रकृति जाग्रत्-स्वप्नसुषुप्तिरूप है, वैसे ही ब्रह्म तुरीयस्वरूप है। ब्रह्ममें अवस्थाएँ नहीं हैं और अवस्थाएँ ब्रह्म नहीं है, इस दृष्टिसे देखनेपर ब्रह्म भी एक अवस्था ही सिद्ध होता है। इस ब्रह्मके स्वरूपमें जो स्थित हो गये हैं, उनके लिए भी कदाचित् श्रीराधाकृष्णकी लीला अनुभवका विषय नहीं है, क्योंकि ब्रह्म तो जाग्रत् आदिकी अपेक्षासे तुरीय स्थिति है और श्रीराधाकृष्णमें द्वितीय, तृतीय, तुरीयका कोई भेद नहीं है। वे सर्वातीत और सर्वस्वरूप हैं। उनके नाम, धाम, रूप और लीला—सब-के-सब विशुद्ध चेतन हैं। वहाँ किसी भी रूपमें जड़ वस्तुओंका प्रवेश नहीं है। वहाँ भगवान् श्रीराधाकृष्ण ही विभिन्न नाम, रूप और धाम होकर विभिन्न लीलाएँ बनते रहते हैं। हमारी भाषामें जो एक क्षण श्रीराधा हैं, वही दूसरे क्षण श्रीकृष्ण हैं। जो अब श्रीकृष्ण हैं, वही दूसरे क्षण श्रीराधा है। वे अपने स्वरूपमें ही दो-से बनकर विहार करते रहते है; परन्तु अपनेसे भिन्न दूसरेको कोई भी पहचानता नहीं है। यही बात श्रीध्रुवदासजीने अपने एक पदमें कही है—'न आदि न अंत, बिहार करैं दोउ लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।' श्रीसूरदासजी भी इन्हीके स्वरमें स्वर मिलाते हैं—

सदा एकरस एक अखंडित आदि अनादि अनूप।
कोटि कलप बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल सरूप॥

श्रीमद्भागवतमें श्रीराधा-नामका उल्लेख क्यों नहीं हुआ, यह प्रश्न उठाते समय भगवान् श्रीराधाकृष्णके स्वरूपपर विचार कर लेना चाहिये। भला, यह भी कभी सम्भव है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णकी लीलाओं का तो वर्णन हो और श्रीराधाजीकी लीलाओंका न हो? भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनकी सत्-शक्तिसे कर्म-लीला, चित्-शक्तिसे ज्ञान-लीला और आनन्द-शक्तिसे बिहार-लीला सम्पन्न होती है। यदि किसी भी ग्रन्थमें भगवान्की बिहार-लीलाका वर्णन नहीं होता तो समझना चाहिये कि उस ग्रन्थमें भगवान्के आनन्दांशका वर्णन नहीं हुआ है। श्रीमद्भागवत एक पूर्ण ग्रन्थ है। इससे उनकी आनन्द-प्रधान बिहार-लीलाका भी पूर्णतः वर्णन होता है। एक नहीं, अनेक अध्यायोंमें गोपियोंके साथ होनेवाली मधुर-लीलाका अत्यन्त सरसता के साथ उल्लेख किया गया है। वेणुगीत, युगलगीत, कुरुक्षेत्रका प्रसंग और सबसे बढ़कर रास-लीलामें तो आठ प्रधान गोपियों और उनमें एक श्रेष्ठ गोपीका भी सुन्दर वर्णन है। इस प्रकार देखते हैं तो मालूम होता है कि श्रीमद्भागवतमें भगवान्की देश, काल और वस्तुसे परे होनेवाली अप्राकृत-मधुर-लीलाओंका स्पष्टतः उल्लेख है और उसमें गोपियों तथा श्रीराधाजीका भी वर्णन है। जब श्रीमद्भागवतमें उनकी लीलाओंका वर्णन है ही, तब श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाका नाम नहीं है—यह कहकर श्रीमद्भागवतसे श्रीराधाजीकी लीला उड़ायी तो नहीं जा सकती। और इस बातका तो स्वयं ही खण्डन हो जाता है कि श्रीमद्भागवतकी रचनाके समय श्रीयुगल-सरकार की आराधना प्रचलित नहीं थी। इसका निष्कर्ष यह है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीराधातत्वका स्पष्ट वर्णन है और

श्रीमद्भागवतमें ही क्यों उपनिषदोंमें भी गान्धर्वी आदि विभिन्न नामोंसे उन्हींके सुयशका संकीर्तन है। रासलीलाके प्रसंगमें अन्य समस्त गोपियोंको छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रधान गोपीको एकान्तमें ले गये, अनन्त: उसका कुछ नाम तो होना ही चाहिये।

जब यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाका वर्णन है, तब प्रश्न यह रह जाता है कि फिर इनका नाम क्यों नहीं दिया गया ? परन्तु यह प्रश्न भी निर्मूल है, क्योंकि श्रीमद्भागवतमें वर्णित अन्य गोपियाँ का नामोल्लेख भी तो वहाँ नहीं है। जब किसी भी गोपीका नाम नहीं है, तब श्रीमद्भागवतकारकी यह शैली स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है कि वे जान-बूझकर किसी भी गोपी या श्रीराधाजी का नाम नहीं लिखना चाहते। जब वस्तु का वर्णन है, तब नाम होना और न होना दोनों ही समान हैं। इस प्रकार कोई भी वस्तु का तो खण्डन कर सकता नहीं, रही बात नाम के सम्बन्धमें विकल्पकी, तो दूसरे पुराणोंसे निश्चित हो ही जाती है।

अवश्य ही इस प्रश्न के लिये अवकाश है कि श्रीमद्भागवतकारने किस अभिप्रायसे ऐसी शैली अपनायी जिससे श्रीमद्भागवतमें किसी भी गोपी और श्रीराधाजीका नामोल्लेख न हो सका ? परन्तु इस प्रश्नमें सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि यह परबुद्धिविषयक है। कोई साधारण पुरुष जब ऐसा काम करने लगता है जिसका उद्देश्य वह न बताये, तब दूसरे लोग उसके सम्बन्धमें तरह-तरह के अनुमान करने लगते हैं और जो बात उसके मनमें नहीं होती, उसकी भी कल्पना कर लेते हैं। सम्भव है, उनमें-से कोई चतुर पुरुष उनके चित्तका ठीक-ठीक अनुमान कर भी लें, परन्तु होता है वह कोरा अनुमान ही। भगवान् श्रीव्यास अथवा श्रीशुकदेवजी महाराज अनन्त ज्ञानसम्पन्न हैं। उनकी बुद्धि अगाध है। वे किस उद्देश्यसे कौन-सा काम करते हैं, यह वे ही समझ सकते हैं या जिसे वे कृपा करके समझा दें, वह। ऐसी स्थितिमें उन्होंने किस अभिप्रायसे श्रीराधाजी और गोपियोंका नामोल्लेख नहीं किया, इस प्रश्न का उत्तर या तो उनकी कृपासे ही प्राप्त हो सकता है, अथवा केवल अपने या दूसरेके अनुमानपर सन्तोष कर लेनेसे।

फिर भी सहृदय एवं भावुक भक्त श्रीशुकदेवजी भगवान्के सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ सोचते ही हैं। महात्माओंसे ऐसा सुना जाता है कि श्रीशुकदेवजी महाराज श्रीराधाजीके महलमें ही लीलाशुक (तोते) के रूपमें रहते थे और उनकी लीलाके दर्शनमें मुग्ध रहते थे। ऐसे श्रीजीके अनन्य लीलाप्रेमी वक्ता थे। वे और श्रीपरीक्षितजी भी उनके वैसे ही प्रेमी श्रोता। यदि उनके कानोंमें उस समय श्रीराधाजीका नाम पड़ जाता तो वे इतने भावमुग्ध हो जाते कि आगेकी कथा बन्द हो जाती और महीनोंतक वे समाधिस्थ ही रह जाते। परन्तु समय केवल सात दिनका ही था, यही सोचकर श्रीशुकदेवमुनिने श्रीराधानामका उच्चारण नहीं किया। इस सम्बन्धमें एक श्लोक प्रसिद्ध है—

श्रीराधानाममात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।
नोच्चारितमतः स्पष्टं परीक्षिद्धितकृन्मुनिः॥

श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवमुनिने भगवती श्रीराधाका नामोच्चारण क्यों नहीं किया ? इसके सम्बन्धमें श्रीब्रजधामके परमरसिक संत श्रीव्यासजीका एक पद है—

परमधन श्रीराधा नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत सुमिरत बारंबार॥
जंत्र मंत्र औ बेद तंत्र में सबै तार का तार।
श्रीसुकदेव प्रगट नहिं भाख्यौ जानि सारि कौ सार॥
'कोटिक' रूप धरे नँदनंदन तऊ न पायो पार।
व्यासदास अब प्रगट बखानत डारि भार में भार॥

अभिप्राय यह कि श्रीराधाजीका नाम तारकका भी तारक एवं श्रीकृष्ण-नामसे भी गोपनीय है, क्योंकि

श्रीराधा–नाम भगवान् श्रीकृष्णके जीवनका भी आधार और आत्मा है। पद्मपुराणमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी आत्मा हैं और उनके साथ विहार करनेके कारण ही श्रीकृष्णको 'आत्माराम' कहते हैं—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्त ऋषिभिर्गूढवेदिभिः॥

श्रीकृष्णकी आत्मा श्रीराधा और श्रीराधिकाके आत्मा श्रीकृष्ण हैं। दोनोंमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं है। पुराणोंमें स्पष्टरूपसे ऐसे वचन मिलते हैं, जिनमें श्रीराधाकृष्णमें भेद देखनेवालेको नरककी प्राप्ति बतलायी है। इसलिये श्रीकृष्णके नाममें श्रीराधाका नाम और श्रीराधाके नाममें श्रीकृष्णका नाम अन्तर्भूत है। कहाँ किसके नाम का उल्लेख है और कहाँ नहीं है, इस झगडेमें न पड़कर किसी भी नामका आश्रय लेना चाहिये और अपने जीवन, प्राण, मन तथा आत्माको श्रीराधाकृष्णमय बना देना चाहिये।

श्रीहरिसूरिकी उत्प्रेक्षाएँ

श्रीमद्भागवत भावका समुद्र है। उसके एक-एक श्लोक और एक-एक पदमें इतने अनूठे भाव भरे है कि यदि कोई उसमें गोता लगाये तो इतना सुख, इतना रस अनुभव करे जिसकी कोई सीमा नहीं। अबतकके अनेक आचार्यों और संतोंने उसमें डुबकी लगाकर बहुत-से दिव्य रत्न प्राप्त किये हैं और मुक्त हस्तसे उन्हें जनता जनार्दनकी सेवामें समर्पित भी किये हैं। यदि कोई उनके नामों की गिनती करना चाहे तो किसी प्रकार सम्भव नहीं है। वैसे ही संतोंमें श्रीहरिसूरि नामके एक महाकवि हो गये हैं। उन्होंने सम्वत् १८६४ के लगभग एक 'भक्तिरसायन' नामका काव्यग्रन्थ लिखा था। उसकी श्लोक-संख्या ५००० के लगभग है। उस ग्रन्थ में दशम स्कन्धके पूर्वार्धके अनुसार ४९ अध्याय हैं और सबमें श्रीमद्भागवतके मूल और अर्थके आधारपर सुन्दर-सुन्दर भावोंकी उद्भावना की गयी है। श्रीमद्भागवतको लेकर ऐसी सरस उत्प्रेक्षाएँ शायद ही कहीं अन्यत्र मिलें। सचमुच भागवतके गम्भीर भावोंको समझ लेना बडे-बडे विद्वानोंके भी वशकी बात नहीं है। इसे तो वे ही लोग ग्रहण कर सकते हैं, जिनका हृदय भगवान्के प्रवि प्रेमभावसे छलक रहा है। यों तो उनका पूरा ग्रन्थ ही अत्यन्त मधुर एवं सरस हैं, परन्तु एक स्थानपर सब-का-सब उद्धृत कर लेना सम्भव नहीं है। इसलिये यहाँ पाठकों की सेवामें उसके कुछ नमूने ही उपस्थित किये जाते हैं।

जिस समय पृथिवी असुरभावाक्रान्त राजाओंके अत्याचारसे पीड़ित होकर ब्रह्माकी शरणमें जाती है और ब्रह्मा उसकी व्यथा सुनकर भगवान् शंकरको साथ ले क्षीरसागरकी यात्रा करते हैं, उस समय ब्रह्माजी भगवान् शंकरको साथ क्यों ले जाते हैं—इसका रहस्य खोलते हुए श्रीहरिसूरि कहते हैं—

भक्ताभक्तजनावनार्दनकृते सत्वं तमोऽपेक्ष्यते
तत्राद्यं तु हरौ सदावनपरे नैसर्गिकं वर्तते।
अन्यद् योजयितुं ध्रुवं विधिरगात् त्र्यक्षेण सार्धं यतः
प्रोक्तं तेन पुरो हरेर्विहरणं शक्त्या स्वकालस्थया॥
(१.२४)

भक्तों की रक्षा के लिए सत्त्वगुणकी आवश्यकता होती है और दुष्टोंके दमनके लिए तमोगुणकी। भगवान् विष्णुमें सत्त्वगुण तो सदा-सर्वदा स्वाभाविक ही विद्यमान रहता हैं, क्योंकि वे भक्तों की रक्षामें तत्पर रहते ही हैं परन्तु तमोगुणके स्वामी तो भनवान् शंकर ही हैं। इसलिये ब्रह्माजी भगवान् शंकरको विष्णु भगवान्के पास ले गये कि वे भी इनके गुणसे युक्त होकर दुष्टोंके दमन का कार्य करें, यह बात श्रीमद्भागवतके मूलमें भी स्पष्टरूप से कह दी गयी है कि भगवान् अपनी कालशक्ति अथवा रुद्रशक्तिके द्वारा पृथिवीका भार क्षीण करते हुए बिहार करेंगे।

शंकरजीको साथ ले जानेका दूसरा कारण बतलाते हुए वे कहते हैं।

यदा स्यातां सत्वानुसरणचणौ द्वावपि गुणौ
भवति तदा योगः सिद्धोभवतिभगवत्प्रापक इति।
स्फुटं यत् क्षीराब्धौ सहरपरमेष्ठिप्रसरणात्
समाधिःसिद्धोऽभूदुदितहरिसाक्षात्कृतिसुखः॥
(१२.५)

'अध्यात्मशास्त्रके विद्वान यह बात जानते हैं कि जब रजोगुण और तमोगुण सत्त्वगुणका अनुगमन करने लगते हैं, तब भगवान्की प्राप्ति करानेवाला योग सिद्ध हो जाता है। यह बात इस घटनासे स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि जब तमोगुणके अभिमानी रुद्र और रजोगुणके अभिमानी ब्रह्मा दोनों एक-साथ मिलकर सत्त्वगुणके प्रतीक क्षीरसागरके तटपर पहुँचे, तब स्वयं उनकी समाधि लग गयी और उसमें भगवान्के साक्षात्कारका सुख हुआ।

कितनी सुन्दर और शास्त्रीय सूझ है!

भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके अवसरपर सम्पूर्ण प्रकृतिकी प्रसन्नताका वर्णन किया गया है। उस प्रसङ्गमें श्रीहरिसूरिने एक-एक विषयपर अनेक-अनेक सूक्तियाँ लिखी हैं। श्रीमद्भागवतमें वर्णन है कि उस समय दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। इसपर वे कहते हैं कि दिशाओंके प्रसन्न होनेका एक विशेष कारण था। वह यह कि उनके पति दिक्पालगण दैत्योंके भयसे अपना अधिकार और घर-द्वार छोड़-छाड़कर भाग गये थे। वे वियोगिनी थीं, दुखिया थीं। श्रीकृष्णके जन्मसे उन्हें अपने पतियोंके अधिकार और संयोग की प्राप्ति होगी, यह सोचकर वे प्रसन्नतासे फूली नहीं समातीं। देखिये इसका कितना सुन्दर वर्णन है—

रिपुजातभयोज्झिताधिकारैः पतिभिः
साकमितोऽजिरेण योगः।
प्रभवेदिति ता दिशः प्रसेदुर्भुवि
जन्मैशमवेक्ष्य कंसहन्तुः॥
(१३.६)

परन्तु दिशाओंकी प्रसन्नताका इतना ही कारण नहीं था, वे इसलिये भी प्रसन्न हो रही थीं कि उनका एक नाम 'हरित्' है और श्रीहरिके अवतारसे उनका हरित्त्व और भी बाधारहित तथा प्रसादपूर्ण हो जायगा संस्कृतिमें दिशाओंका एक नाम 'आशा' भी है। दिशाएँ यह सोचकर और भी प्रसन्न हो गयी कि 'अब भगवान्के अवतारसे सत्पुरुषोंकी आशाएँ अर्थात हम दिशाएँ पूर्ण हो जायँगी। इससे बढ़कर हमारे लिये आनन्द की बात और क्या होगी? श्रीहरिसूरि कहते हैं कि भगवान्के अवतारके दिन दिशाएँ प्रसन्न हों, यह तो स्वभाविक ही है, क्योंकि दिशाएँ ही भगवान्के कान हैं। भगवान् श्रीकृष्ण दुःखियोंकी प्रार्थना सुननेके लिए सदा-सर्वदा सावधान रहते हैं, यह बात अपनी प्रसन्नताके द्वारा उन्हें सूचित जो करनी है। उन्हींके शब्दोंमें—

दुर्दान्तोद्धतदैत्यदत्तविपदां तत्क्लेश नाशार्थिका
श्रोतुं वाचमदुर्हृदां सदयधीर्दत्तावधानः सदा।
अस्त्येव प्रभुरित्यशङ्कमखिलस्पष्टावगत्यै तदा
युक्तं ता निखिलाः प्रसेदुरमलास्तच्छोत्ररूपः दिशाः॥
(३.६)

अवश्य ही श्रीहरिसूरिकी दृष्टिमें प्रकृतिका एक-एक कण और एक-एक भावना भगवद्भावसे सम्बद्ध होकर ही सचेष्ट है।

आज वायु बड़ी ही शीतल, मन्द, सुगन्ध बह रही है? सम्भव है, वह उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णसे प्रेम करने के लिए स्वयं भी उदारबन रही हों। नहीं-नहीं वह अभ्यास कर रही है इस बातका कि जब प्यारे श्यामसुन्दर लीलाबिहार करते-करते थक जायँगे और उनके मुखारबिन्दपर मकरन्दके समान स्वेदबिन्दु

झलकने लगेंगे, तब मैं धीरे-धीरे उनका पान करूँगी। इसके लिए पहलेसे ही अभ्यास करना चाहिये' कहीं कोई ढिठाई न हो जाय। सम्भव है; वायुदेव यह सोच रहे हों कि भगवत्प्राप्तिके लिए शुद्ध अन्तःकरण चाहिये और उसके लिए कुछ दान-पुण्य की आवश्यकता है। इसीसे वह सुकृति-सुगन्धके उपार्जनमें व्यस्त हो रहे हो। वायुदेवके मनमें एक दूसरी बात और भी हो सकती है। वे सोच रहे होंगे कि 'मेरे पुत्र हनूमान्ने श्रीरामावतारसे भगवान्की बड़ी सेवा की है। यद्यपि अपने पुत्रकी सेवासे मैं कृतार्थ हो चुका हूँ, तथापि स्वयं भी भगवान्की कुछ-न-कुछ सेवा करनी चाहिये।

श्रीहरिसूरि कहते हैं—

पुत्रेण प्राग्घनूमता कृतयाऽस्य भूयः
शुश्रूषयाऽत्र भृशमस्मि कृतार्थ एव।
साक्षात्तथाप्यहमिहापि समाचरेयं
सेवामतः परिचचार तदा सदासः॥

(३.४३)

जिस समय श्रीवसुदेवजी अपने पुत्र श्यामसुन्दरको लेकर नन्दबाबाके घर पहुँचनेके लिए गोकुल जा रहे थे, श्रीमद्भागवतमें ऐसा वर्णन आता है कि उस समय यमुनाजी बहुत बढ़ गयी थी। बढ़नेके कारणकी उत्प्रेक्षा करते हुए श्रीहरिसूरिजी कहते हैं—

सन्मानसे लसति यत्पदपद्मरेणुः
सोऽयं स्दयं प्रभुरुपैति ममाद्य तीरे।
सूर्यात्मजेत्यतितरां मुदमुद्वहन्ती
सानन्दबाष्पलहरीभिरभूदपारा॥

(३.१४८)

"श्रीयमुनाजीने सोचा, संतोंके पवित्र मानसतीर्थमें जिनके चरण-कमलोंकी रमणीय रेणु शोभायमान होती है, वे ही प्रभु आज मेरे तटपर पधार रहे हैं।'—यह बात ध्यानमें आते ही श्रीयमुनाजी का हृदय आनन्दसे भर गया। उनके नेत्रसे आनन्दाश्रुकी धारा बह चली और बस, यही कारण है कि उस समय वे अपार हो गयी।" सम्भव है. श्रीयमुनाजीने सोचा हो कि—'ये हैं शूरके वंशज और मैं हूँ सूर्यकी पुत्री! इनके सामने मैं भी अपना शौर्य प्रकट करूँ, यह उचित ही है।' इसीसे उन्होंने एक सुसज्जित सेनाके समान अपनी जलराशि उनके सामने खड़ी कर दी। यह भी सम्भव है कि यमुनाजी शेषनागको देखकर डर गयी हों। उन्होंने सोचा कि भयंकर कालियनाग तो मेरे अन्दर रहकर सबको भयभीत कर ही रहा हैं, अब यह दूसरा आ पहुँचा। इसीसे उन्होंने शेषनागके सहस्त्र फण देखकर उन्हें लौटा देनेके लिए अपने को इतना बढ़ा लिया हो; परन्तु यह सब कुछ नहीं. श्रीयमुनाजी कालिन्दीके रूपमें भगवान्की पटरानी होनेवाली हैं। 'मैं तुम्हारी योग्य प्रेयसी हूँ,' यह दिखलानेके लिए ही वे अपनी अपार जलराशिद्वारा भगवान्के हृदयके समान ही अपने हृदयकी विशालता प्रकट कर रही हैं। श्रीहरिसूरि कहते हैं—

अनन्तशम्बरोल्लासि हृदयं सदयं सदा।
तवेवेश ममाप्यस्तीत्यापगा किमबोधयत्॥

(३.१५५)

यह सब तो हुआ, परन्तु क्षणभर में यमुनाजी घट क्यों गयीं? इसका भी कारण सुनिये—

अगाधे जलेऽस्याः कथं वाम्बुकेलि
मयाऽग्रे विधेयेति शङ्कां प्रमार्ष्टुम्।
क्वचिज्जानुध्ना क्वचिन्नाभिदध्ना
क्वचित् कण्ठदध्ना च साकि तदाऽऽसीत्॥

(३.१५६)

श्रीयमुनाजीने सोचा कि कहीं भगवान् श्रीकृष्णके मनमें यह बात आ गयी कि मैं यमुनाके अगाध जलमें जलक्रीड़ा कैसे करूँगा, तब तो बुरा होगा!' इसीसे वे
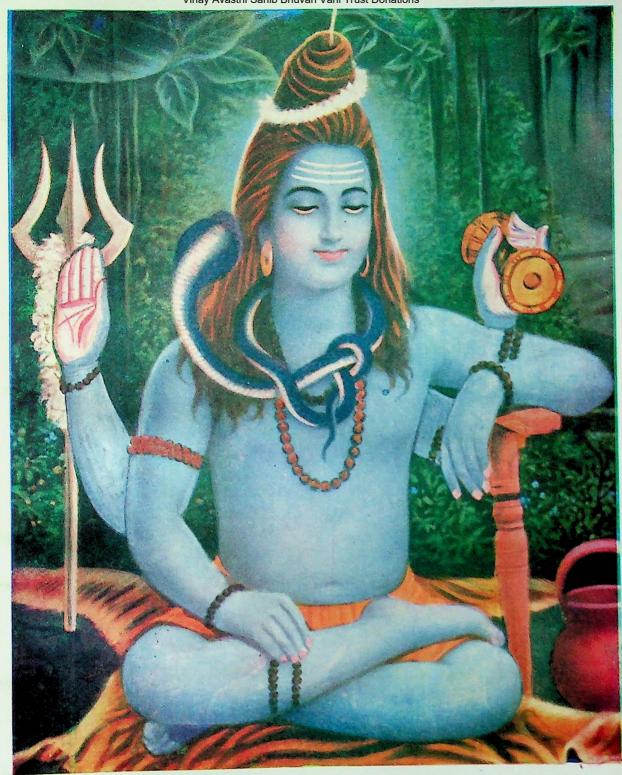
भगवान सदाशिव

झट इतनी कम हो गयी कि उसमें कहीं गलेभर पानी रह गया तो कहीं नाभितक ही। कहीं-कहीं तो घुटनेतक आगया ! सचमुच श्रीयमुनाजीके हृदयका यह भाव श्रीहरिसूरिकी दृष्टिसे ही समझा जा सकता हैं।

श्रीमद्भागवतमें ऐसा वर्णन आया है कि जिस समय पूतना खूब बन-ठनकर श्रीकृष्णको कालकूट विष पिलाने गयी, उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अपने नेत्र बंद कर लिए। भगवान् श्रीकृष्णके नेत्र बंद करनेका क्या रहस्य है, इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए श्रीहरिसूरिने अनेकों उत्प्रेक्षाएँ की हैं। वे कहते हैं—'भगवान्ने सोचा होगा कि मैं सोने का अभिनय कर लूं, तभी पूतनाकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति पापजनक हो सकती है। यदि मैं देखता ही रहा तब तो उसका अपराध हल्का हो जाता है।' इस प्रकार समदर्शी भगवान्ने अपने स्वच्छन्द लीला-विहारमें भी मर्यादा-पालनका समुचित ध्यान रखा। भगवान्के नेत्र बंद करनेका यह भी कारण हो सकता है कि वे पूतनाको आया हुआ देखकर कुछ सोचने लगे हों। अवश्य ही उन्होंने बाह्य नेत्र बंद करके अन्तर्दृष्टिसे इस विषयपर विचार किया होगा कि 'मुझे केवल अपनी ही रक्षा करनी चाहिये अथवा इस पापिनी पूतनाके पंजेसे जगत्के समस्त बालकोंकी रक्षा ?' तभी तो इनकी रक्षाके लिए पूतनाके मृत्युदण्डका निर्णय हुआ। परम कृपालु मधुसूदन भगवान्की अन्तर्दृष्टिसे यही निर्णय होना चाहिये था। सम्भव है, भगवान्के मनमें यह बात आगयी कि 'तनिक देखो तो इस पूतनाका परस्पर विरुद्ध व्यवहार ! यह रूप तो धरकर आयी है मेरी पत्नी लक्ष्मीका और पिलाना चाहती है मुझे अपना दूध ! ऐसी पापिनीका मुँह देखना भी पाप है।' यही सोचकर उन्होंने नेत्र बंद किये होंगे। नेत्र बंद करनेका और कारण यह भी हो सकता है कि भगवान्ने सोचा होगा—'पूतनाने इस जन्ममें तो कोई पुण्य किया नहीं; सम्भव है पूर्वजन्ममें कुछ किया हो, तभी तो मेरे पास चली आ रही है।' नेत्र बंद करनेका यही कारण होगा। एक बात और हैं, भगवान्ने सोचा होगा कि 'मुझे इस अवतारमें पहले-पहल स्त्रीका ही वध करना पड़ रहा है। जब यह कटु कर्म करना ही पड़ रहा है तो चलो, आँख बंद करके ही कर लें।' अन्यथा वे उस पापिनीका स्पर्श ही कैसे करते ! ऐसा जान पड़ता है कि सर्वानिष्टनिवृत्तिके लिए भगवान्‌को योग ही अभीष्ट है। इसी आदर्शकी स्थापनाके लिए पूतनारूप अरिष्टकी निवृत्तिके उद्देश्यसे नेत्र बंद करके योग की साधना तो नहीं कर रहे हैं ? श्रीहरिसूरि भगवान्के नेत्र बंद करने पर उत्प्रेक्षा करते हुए लिखते है—

दातुं स्तन्यमिषाद् विषं किल धृतोद्योगेयमास्ते यतः
पीतं चेत् प्रभुणा पुरो बत गतिः का वाऽस्मदीया भवेत्
इत्थं व्याकुलितान्निजोदरगतानालोक्य लोकान् प्रभु
र्वक्तुं भात्यभयप्रदानवचनं चक्रेऽक्षिसम्मीलनम्
(६.२२)

भगवान्के उदरमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड निवास करते हैं। जब उनमें रहनेवाले जीवोंने देखा कि पूतना दूधके बहाने भगवान्को विष पिलाना चाहती है, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'अब हमारी क्या गति होगी !' भगवान्ने अपने निज जनोंको इस चिन्तामें पड़े देखकर उन्हें अभयदान देनेके लिए नेत्र बंद कर लिये, ऐसा जान पड़ता हैं। सम्भव है, भगवान्ने इसलिये भी अपने नेत्र बंद कर लिये हों कि जो स्त्री बाहर तो माताके समान भाव दिखाती है और भीतर राक्षसीके समान क्रूर कर्म करनेके लिए उद्यत रहती है, उसका मुँह देखने योग्य नहीं है।' भगवान्के नेत्र बंद करनेका एक और कारण जान पड़ता है। भगवान्ने सोचा होगा कि 'यदि मैं उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखता हूँ तो यह निष्पाप हो जाती है और यदि उग्र दृष्टिसे देखता हूँ तो भस्म हो जाती है। दोनों ही प्रकारसे इसकी वासना के संस्कार अवशेष रह जाते हैं और यह सर्वथा मुक्त नहीं हो पाती।' यह सोचकर उसके कल्याणके लिए भगवान्ने अपने नेत्र बंद कर लिये। श्रीहरिसूरिके शब्दोंमें सुनिये—

दृष्टा चेत् करुणादृशेयमनघा स्याच्चोग्रया भस्मसात्
एवं चेदवशिष्यते ह्युभयथा तद्वासनासंस्कृतिः ॥
एतस्या हृदये तया च भविता जन्मान्तराप्ति पुनः ।
सा माभूदिति दीर्घदृष्टिकरोदीशः स्वदृङ्मीलनम् ॥
(६.२४)

भगवान् तो भगवान् ही हैं। वे किसीका परम कल्याण करनेके लिए नेत्र बंद कर लें, खोल लें—दोनों ही ठीक हैं; परन्तु उनके नेत्र भी तो चिन्मय ही हैं न! उनका बंद होना और खुलना भी कुछ-न-कुछ रहस्य, रखता होगा, अवश्य ! भगवान्के नेत्रोंने सोचा—'हम भगवान्के नेत्र हैं। हममेंसे एक ही एक सूर्यरूप होनेके कारण देवयानमार्ग हैं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हमारे ही द्वारा आत्मोचित गति प्राप्त करते हैं। ऐसी स्थितिमें पूतना-जैसी दुष्टा राक्षसीको—जो स्पष्टरूपसे शत्रुका हित करनेके लिए यहाँ आयी है—भगवान् कृपा करके चाहें तो उत्तम-से-उत्तम गति दे दें, हमें कोई आपत्ति नहीं। परन्तु हम तो अपना मार्ग कभी न देंगे'-यही सोचकर भगवान् श्रीकृष्णके नेत्रोंने अपने द्वारपर पलकोंके किवाड़ लगा लिये। यह बात उचित भी है कि जो व्यक्ति किसीकी हिंसा करना चाहता है, वह चाहे आत्मीय-से-आत्मीय ही क्यों न हो, देखनेयोग्य नहीं है। तभी भगवान्के नेत्रोंने पूतनाके नेत्र न देखनेके लिए पलक गिरा लिये। महात्मा पुरुषोंके चित्तमें अयोग्य पुरुषोंको देखनेकी उत्कण्ठा नहीं हुआ करती। तभी तो भगवान्के नेत्ररूप राजहंसोंने बकासुरकी बहन बनावटसे भरी पूतनाका मुँह नहीं देखा। श्रीहरिसूरि कहते हैं—

अनर्हवीक्षानुत्कण्ठा प्रसिद्धैव महात्मनाम् ।
ईशाक्षिराजहंसाभ्यां युक्तं नैक्षि बकीमुखम् ॥
(३.२४)

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी माखन-चोरीके प्रसङ्गके बाद ही मिट्टी खानेकी कथा आती है। भगवान्ने मिट्टी क्यों खायी, इसका रहस्य श्रीहरिसूरि बतलाते हैं—

स्निग्धाज्यादिपदार्थभक्षणकृतः कुर्वन्ति तत्स्निग्धता-
ऽशेषोन्मार्जनहेतवे निजकरे मृल्लेपनं सर्वतः ।
आलोच्यैवमशिष्टशिष्टसरणिं श्रीशोऽपि तद्भक्षण-
व्याजाद् विश्वमुखस्तदैव बहुधा सम्पादयामास किम् ॥
(८.५१)

भगवान् श्रीकृष्ण देखते थे कि बड़े-बड़े सदाचारी शिष्ट पुरुष जब घी आदि स्निग्ध पदार्थोंका भोजन करते तो हाथकी चिकनाई मिटानेके लिए मिट्टी लगा लिया करते। भगवान्ने भी अभी-अभी मक्खन खाया है, इसलिये उसकी स्निग्धता मिटानेके लिये मिट्टी खा ली है।' बचपनमें इसी प्रकार तो शिष्टाचारका अनुकरण होता है। परन्तु भगवान्में केवल बचपनकी बात हो, ऐसा तो नहीं जान पड़ता। इसमें कुछ-न-कुछ समझदारी भी अवश्य होगी। ठीक है, वैद्यलोग कहा करते हैं न कि 'विषस्य विषमौषधम्'-विषकी दवा विष है।' और विष है-मिट्टी का ही विकार। तब मिट्टीका अंश उसके प्रभावका नाशक भी हो सकता है। सम्भव है भगवान्ने सोचा हो कि 'मैंने पूतनाके स्तनका विष पी लिया है तो मिट्टी खाकर उसकी दवा कर लेनी चाहिये।' हो न हो; यही सोचकर उन्होंने मिट्टी खायी होगी। यह बात श्रीहरिसूरि कहते हैं—

पुरा विषमधायि यत् प्रबलपूतनास्तन्यगं
विधेयमिह तद् विषं भवति नष्टवीर्यं यथा ।
शिशुश्रियमुपाददे किमु विभुर्मृदंशादनाद्
विषस्य विषमौषधं भवति यद्भिषग्भाषितम् ॥
(८.५२)

परन्तु भगवान् अपने लिए तो कुछ करते ही नहीं, सब-कुछ भक्तोंके लिए ही करते हैं। तब उन्होंने मिट्टी खाकर भक्तोंकी कौन-सी इच्छा पूर्ण की ? हाँ, वह भी सुनिये—

यत् स्पृह्यं त्रिदशैरलभ्यमसतां ध्येयं च यद् योगिनां
प्राप्तं स्यात् किमु तद् रजो व्रजगतं गोगोपिकापादगम्

इत्थं भूरिनिजोदरस्थजनसद्वाञ्छां चिरं चिन्तयन्
मन्ये पूर्णदयार्णवः किमकरोत्तद्भक्षणं तत्कृते ॥
(८.५३)

भगवान्के उदरमें रहनेवाले भक्त बार-बार इस बातकी अभिलाषा किया करते है कि व्रजभूमिकी वह धूलि, जिसका सम्बन्ध गौओं और गोपियोंके चरणोंसे हैं, बड़े-बड़े योगी जिसका ध्यान करते रहते हैं, हमें भी मिल सकेगी क्या ? दयाके परम सागर भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंकी यह अभिलाषा पूर्ण करने के लिए व्रजकी मिट्टी खाने लगते हैं कि किसी प्रकार यह रज उन भक्तों तक पहुँच जाय।' एक बात और है। भगवान् श्रीकृष्ण सम हैं, परम शान्त हैं, अपने स्वरूपमें ही एकरस विराजमान हैं। ऐसी स्थितिमें वे किसीकी रक्षा और किसीका दमन कैसे करें ? हाँ, इसीलिये उन्हें सत्त्वगुण और रजोगुण अपनाने पड़ते हैं। सत्त्वगुण तो सदा-सर्वदा उनकी सेवामें हाथ जोड़े खड़ा रहता हैं। अब दुष्टोंके दमनके लिए रजोगुणकी आवश्यकता हैं। उसीका भगवान् व्रजकी रजके रूपमें संग्रह कर रहे हैं। श्रीहरिसूरिके शब्दोंमें—

नानाविधं बहु-रजोगुणकार्यमग्रे
कर्तव्यमस्ति मम चेति विचिन्त्य कृष्णः।
मृत्स्नानुभक्षणमिषात् प्रकृतोपयुक्तं
प्रायो रजोगुणसुसंग्रहणं चकार ॥
(८.५४)

अजी, इतना सोचनेकी क्या आवश्यकता है ? सीधी-सी बात है। पृथिवीका एक नाम है 'रसा'। इसमें ऐसा कौन-सा रस है कि इसका नाम 'रसा' पड़ा है। सम्भव है, भगवान्ने उसी रस की परीक्षा करनेके लिए मिट्टीका रस चखा हो। यह तो ठीक है ही, संस्कृतिमें पृथिवीका नाम 'क्षमा' भी है। मिट्टी खानेका अर्थ क्षमाको अपनाया हैं। इस समय इसकी क्या आवश्यकता आ पड़ी थी ? श्रीसूरिहरिके शब्दोंमें सुनिये—

विशृङ्खलविहारिणो मदवमानचेश्टाजुषो
भवन्ति शिशवोऽखिला अपि तदत्र मत्क्रीडनम्।
क्षमांशविधृतिं विना न हि भवेत् स्वभक्तेष्विति
प्रभुः किमु चकार तत्कृतितया क्षमाधारणम् ॥
(८.५६)

बात यह है कि भगवान्के साथ खेलनेवाले ग्वालवाल बिना किसीं मर्यादाके मनमाने खेल खेला करते थे। कभी-कभी तो वे भगवान्के सम्मान और अपमान्का ध्यान भी भूल जाया करते थे और भगवान्को उन्हींके साथ खेलना था। तब पृथिवीसे मिट्टीके रूपमें क्षमाको ग्रहण किये बिना वे उनके साथ कैसे खेल पाते अवश्य ही उन्होंने इसीलिये मिट्टी खायी होगी ! केवल इतना ही नहीं, भगवान्की दृष्टि भविष्यकी ओर भी अवश्य ही रही होगी। अभी-अभी अपनी मांको अपने मुँहके भीतर ही सारे विश्वकी सृष्टि कर दिखायेंगे ! तब वह विश्वसृष्टि रजोगुणके बिना कैसे बन सकेगी ? अवश्य उसीका आयोजन करनेके लिए आप व्रजकी रज संग्रह कर रहे हैं। धन्य है ?

ऐसी-ऐसी अनेक उत्प्रेक्षाएँ करनेपर भी श्रीहरिसूरि को संतोष नहीं होता। वे कहते हैं —

मय्येव सर्वार्पितभावना ये
मान्या हि ते मे त्विति किं नु वाच्यम्।
मुख्यं तदीयाङ्घ्रिरजोऽपि मे स्यात्
इत्यच्युतोऽधात् स्फुटमात्तरेणुः ॥

भगवान् व्रज-रजका सेवन करके यह बात दिखला रहे हैं कि जिन भक्तोंने मुझे अपनी सारी भावनाएँ और सारे कर्म समर्पित कर रखे है, वे मेरे सर्वथा मान्य हैं। केवल इतना ही नही, उनके चरणोंकी धूलि भी मेरे लिये एक प्रधान वस्तु और मुखमें धारण करने

योग्य है। वास्तवमें भगवान्की भक्तवत्सलता ऐसी ही है। उनकी एक-एक लीलासे भक्तोंके प्रति परम प्रेम और करुणके भाव व्यक्त होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालवालोंके साथ कलेऊ कर रहे थे। उनके चारों ओर गोल-गोल पंक्तियाँ बनाकर ग्वाल-बाल भी तरह-तरह की वस्तुओं का स्वाद ले रहे थे। उसी समय एकाएक सब-के-सब बछड़े आँखोंसे ओझल हो गये। जो ग्वाल-बाल बछड़ोंकी सुध-बुध खोकर खाने-खिलानेके खेलमें मस्त हो रहे थे, उन्हींके सिरपर चिन्ताके बादल मडँराने लगे। भगवान्ने उनके कलेऊमें विघ्न न पड़ने देकर स्वयं बछड़ोंको ढूंढनेके लिये अपना भोजन छोड़ दिया और बनकी यात्रा की। इस लीलाका रहस्य बतलाते हुये श्रीसूरिहिर कहते हैं—

ये मद्भक्तरसैकलुब्धमनसस्तेषाँ कदाचित् सता-
मक्षाणि भ्रमतो दुरन्तविषये मग्नानि जातानि चेत्।
त्यक्त्व ाभोज्यमहं स्वमप्यतिजवात् संशोधयामि स्वतः
मद्भीतिं च निवारयन्निति तथा कृत्वाच्युतोऽदर्शयत्॥
(१६.३५)

भगवान्की यह प्रतिज्ञा है कि 'जो सत्पुरुष निरन्तर मेरी प्रेमा भक्तिके रसास्वादनमें ही मग्न रहते हैं, उनकी इन्द्रियाँ यदि कभी विषयोंमें भटक जाती हैं और उनका पार पाना कठिन हो जाता है तब मैं और तो क्या, अपना भोजन भी छोड़कर अपने भक्तोंकी रक्षाके लिए बडे वेगसे दौड़ पड़ता हूँ और उनका भय मिटाकर सर्वदाके लिए उन्हें शुद्ध कर देता हूँ।' सच पूछो तो ग्वालबालोंके कलेऊमें कोई विघ्न-बाधा न पड़ने देकर बछड़ोंकी रक्षाके लिए दौड़ना उनकी लीलाका यही रहस्य प्रकट करता है। इस प्रसंङ्गमें एक बात ध्यान देने की है। जिस समय भगवान् बछड़ोंको ढूंढनेके लिए चले, उन्होंने और सारी वस्तुएँ तो पत्तलपर ही छोड़ दी, केवल भातका ग्रास लिए हुए दौड़े। इसका कारण क्या है? संस्कृत भाषामें भातको 'भक्त' कहते हैं। भगवान्ने अपने हाथमें भातका ग्रास रखकर यह भाव प्रकट किया कि मैं समयपर सब कुछ छोड़ सकता हूँ—और तो क्या; अपनी प्रियतमा लक्ष्मीका भी परित्याग कर सकता हूँ, परन्तु किसी भी कारणसे अपने प्रेमी और प्रियतम भक्तका परित्याग नहीं कर सकता। श्रीसूरिहरिके शब्दोंमें ही सुनिये—

सर्वं त्यजामि समये बहुना किं प्रियामपि।
सदाशयगतं भक्तं न कदापीत्यगात्तथा॥
(१३.४७)

श्रीहरिसूरिरचित 'भक्तिरसायन' के आरम्भिक अध्यायोंके कुछ अंशोंकी थोड़ी-सी सूक्तियाँ ऊपर संगृहीत की गयी हैं। उनके उनचास अध्यायोंमें-से बहुत-से तो ऐसे हैं, जिनमें चार-चार सौ-तक बड़े-बड़े श्लोक हैं। यदि उनका साराँश भी लिखा जाय तो एक बड़ी-सी पुस्तक तैयार हो सकती है। कहीं वे एक ही शब्दमें अनेको प्रकारके संधि-विच्छेद करके विभिन्न अर्थ करते हैं तो कहीं घटनाक्रमसे भाँति-भाँतिकी शिक्षा ग्रहण करते हैं, तो अध्याय-के-अध्याय किसी विशेष योग क्रियाके वर्णनमें लगा देते हैं। श्लेष, युक्ति, साधन और समाधिके विशेष अङ्गोंका वर्णन-सौन्दर्य स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। उनके एक-एक श्लोकसे यह बात प्रकट होती है कि वे श्रीमद्भागवतके गम्भीर-से-गम्भीर स्तरमें भी प्रवेश कर जाते हैं और वहांसे सूक्ष्मतम भाव ढूंढ लाते हैं। स्थान संकोचके कारण यहाँ बहुत थोड़ी बातें लिखी गयी हैं।

भक्तिरसकी पाँच धाराएँ

भक्ति साधारणतः दो प्रकारकी मानी गयी है—एक साधनभक्ति और दूसरी साध्य-भक्ति। पहलीका स्वरूप है भगवान्‌के भजनकी साधना, अर्थात् भजन होने लगे इसके लिए प्रयत्न। दूसरीका स्वरूप हैं, भगवान्‌का साक्षात् भजन, सेवन उनकी संनिधि और उनसे एकत्व पहलीको वैधी भक्ति कहते हैं और दूसरीको 'रागानुगा' प्रेमलक्षणा अथवा परा भक्ति। भगवान् स्वयं रसस्वरूप हैं, इसलिये जब जीवका, अथवा जीवकी वृत्तियोंका भगवान्‌से संयोग होता है, तब एक अनिर्वचनीय रसकी अनुभूति होती हैं। यदि दूसरी शैलीसे कहें तो इस प्रकार कह सकते हैं कि जब चित्त द्रवित होकर भगवदाकार हो जाता हैं, तब वास्तविक रसकी निष्पत्ति होती है। चित्त तो विषयोंके लिए भी द्रवित होता है और उसके साथ तदाकार भी हो जाता है, परन्तु इस तदाकारतामें स्थयायित्व नही होता, क्योंकि वे विषय ही अस्थाई हैं; जिनके आकारमें चित्त परिणत हुआ है इसलिये चित्त वहाँ अभावका अनुभव करके फिर दूसरे विषयके लिए द्रवित होता है और फिर तीसरेके लिये इसीका नाम संसार चक्र है, जिसकी गति-परम्परा तब-तक शान्त नहीं हो सकती जबतक चित्तको इनसे सर्वथा मुक्त न कर दिया जाय। परन्तु एक बार चित्त भगवदाकार हो जाता है, तब वहाँ किसी प्रकारके अभावका अनुभव न करने के कारण पुनः किसी दूसरे आकारमें परिणत होने की आवश्यकता नहीं होती। चित्त सर्वदाके लिए उसी रसमें डूब जाता है, उसी रसमें एक हो जाता है। इस रसकी उपलब्धिके लिए प्रयत्न साधन-भक्ति है और इस रसकी अनुभूति साध्य-भक्ति है।

वैसे तो भगवान्‌के साथ जिस सम्बन्धको लेकर चित्त द्रवित हो जाय—गङ्गाकी धारा जिस प्रकार अखण्ड रूपसे समुद्रमें गिरती रहती है, वैसे ही जब चित्त एकमात्र भगवान्‌की ओर ही प्रवाहित होने लगे, तब कोई भी भाव, कोई भी सम्बन्ध रस ही है, क्योंकि चित्तकी द्रवावस्था ही रस हैं, यदि वह संसारके लिए है तो विषयकी क्षणकिताके कारण 'रसाभास' है और यदि भगवान्‌के लिए है तो उनकी रसरूपताके कारण यह वास्तविक 'रस' है। इसीको रसिक भक्तोंके सम्प्रदायमें भक्ति-रस कहा गया है। इस भक्ति-रसके पाँच प्रकार अथवा पाँच अवान्तर भेद स्वीकार किये गये हैं। वह एक दृष्टिसे तो सब-के-सब परिपूर्ण ही हैं, परन्तु दूसरी दृष्टिसे एककी गाढ़ अस्वथा दूसरेके रूपमें परिणत हो जाती है। शान्तका दास्यके रूपमें, दास्यका सख्यके रूपमें, सख्यका वात्सल्यके रूपमें, वात्सल्यका माधुर्य-रसके रूपमें परिणाम होता है। इस मतमें मधुर-रस ही रस का चरम उत्कर्ष है। कोई-कोई सहृदय पुरूष शान्तमें सबका परिणाम मानते हैं और कोई-कोई दास्यरसमें। ऐसे भी आचार्य हैं, जो इनको भाव, आसक्ति अथवा स्थायी रति मानते हैं और इनके द्वारा एक महान् भक्ति-रसकी परिपुष्टि मानते हैं, दृष्टिभेदसे ये सभी मत सत्य हैं। सच्ची बात तो यह है कि जिस भावका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध है; उसका स्वरूप चाहे जो भी हो, वह पूर्ण रस है। यहाँ इन पाँचोंका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

शान्त-रस

जैसा कि रसोंके प्रसङ्गमें वर्णन आता है, रसकी अनुभूतिकी एक प्रक्रिया हैं। आलम्बन और उद्दीपन विभाग, अनुभाव, सात्विक भाव, संचारी एवं व्यभिचारी भावोंके द्वारा व्यक्त होनेवाला स्थायिभाव ही 'रस' होता है। जिसको शान्तरस कहा जाता है, उसके

अनुभव की भी यही प्रणाली है। इसका स्थायिभाव शान्त-रति है। इस भावमें भगवान्के संयोग-सुखका आस्वादन होता है। यद्यपि परमात्माके निर्गुण स्वरूपमें स्थिति भी शान्त-रसका ही एक स्वरूप माना जाता है, तथापि यहां भक्ति का प्रसङ्ग होनेके कारण सगुण भगवान्की अनुभूतिको ही शान्त-रसके रूपमें समझना चाहिए। निर्गुण स्थितिसे किसी प्रकारका आस्वादन न होनेके कारण और सगुण-शक्तिके आस्वादनात्मक होनेके कारण दोनोंकी विलक्षणता स्पष्ट है। इस शान्त भक्ति-रसके आलम्बन सगुण परमात्मा है। उनके स्वरूप ही—वह चाहे निराकार हो या साकार चतुर्भुज हो या द्विभुज—इस रसका आलम्बन-विभाग है। इसमें दास्य आदि भावोंके समान लीलाकी विशेषता नहीं है। भगवान्का स्वरूप सच्चिदानन्दघन है, वे सर्वदा अपने आपमें ही स्थित रहते है। वे समस्त शक्तियोंके एकमात्र केन्द्र हैं, सब पवित्रताओं के एकमात्र उद्गम है, जगत्की निखिल वस्तुओंके एकमात्र नियामक हैं। वे सबके कर्त्ता भर्त्ता, संहर्त्ता हैं। सबके हृदयमें अन्तर्यामी रूपमें स्थित हैं। वे व्यापक प्रभु ही चाहे साकाररूपमें अथवा निराकाररूपमें, अपने इष्टदेवरूपसे हृदयमें स्फुरित हुआ करते हैं। निखिल जीव और जगद्रूपी तरङ्गोंके समुद्र ये भगवान् जिस जीवके भावनेत्रोंके सामने इनके चरण प्रकट हो जाते हैं, उसका मन सांसारिक विषयोंकी तो बात ही क्या, मोक्षसुखका भी परित्याग करके इनमें आ समाता है।

शान्तरसके उपासक प्रायः दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे आत्माराम् पुरुष, जो भगवान् या उनके प्रिय भक्तोंकी करुणा दृष्टिसे भगवान्की ओर आकर्षित हुए हैं। दूसरे वे साधक जिनका ऐसा विश्वास है कि भगवान्की भक्तिसे ही परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती हैं। आत्माराम भक्तोंमें सनक-सनन्दनादिका नाम सबसे पहले उल्लेखनीय है। ये पाँच वर्षकी अवस्थाके गौरवर्ण, नग्न और प्रायः साथ ही रहनेवाले चारों अत्यन्त तेजस्वी हैं। श्रीमद्भागवतमें ऐसा वर्णन है कि जब वे वैकुण्ठधाममें गये तो भगवान्के चरणकमलोंकी सुगन्धसे इनका वह चित्त जो अक्षरब्रह्ममें स्थित था, खिंच गया। इनका चित्त द्रवित हो गया और शरीरमें सात्त्विक भावके चिह्न प्रकट हो गये। श्रीरूपगोस्वामीने इनके भावोंको इन्हीके शब्दोंमें वर्णन किया है।

समस्तगुणवर्जिते करणतः प्रतीचीनतां गते
किमपि वस्तुनि स्वयमदीपि तावत् सुखम्।
न यावदियमद्भुता नवतमालनीलद्युते
मुर्कुन्दसुखचिद्घना तत्र बमूव साक्षात्कृतिः॥

'हे प्रभो! तुम्हारे निर्गुण और इन्द्रियोंके अगोचर स्वरूपमें तभीतक अनिर्वचनीय सुखका अनुभव होता था, जबतक तुम्हारी इस अद्भुत मूर्तिका- जो नवीन तमालके समान नील कान्तवाली है, सच्चिदानन्दमय साक्षात्कार नहीं हुआ था। तात्पर्य यह है कि भगवान् आनन्द घन रूपराशिपर मुग्ध होकर ये आत्मसुखका परित्याग करके भगवान्की रूपमाधुरीका पान कर रहे हैं। इसी प्रकार परम तत्त्वज्ञानी राजा जनक भगवान् श्रीरामके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर उसीमें रम जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा॥
सहज विरागरूप मनु मोरा।
थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

(मानस १.२१५.३,५)

जिन साधकोंका यह निश्चय है कि भगवान्की भक्ति से ही मुक्ति मिलती है, जो विरक्त होकर प्राणपनसे साधनामें संलग्न हैं, मुमुक्षा अभी शान्त नहीं हुई हैं, वे शान्त-रसके तपस्वी उपासक हैं। आत्माराम भक्तोंकी कृपा और प्रेरणासे ही इनके हृदयमें शान्तरसका अनुभव हुआ करता है। एक साधक कितनी सुन्दर अभिलाषा करता है—

कदा शैलद्रोण्यां पृथुलविटपिक्रोडवसति-
र्वसानः कौपीनं रचितफलकन्दाशनरुचिः ।
हृदि ध्यायं ध्यायं मुहुरिह मुकुन्दाभिधमहं
चिदानन्दं ज्योतिः क्षणमिव विनेष्यामि रजनीः ॥

पर्वतकी कन्दरामें, अथवा विशाल वृक्षकी छायामें निवास करता हुआ मैं केवल कौपीन पहने हुए, फल-मूल का भोजन करते हुए और हृदयमें बार-बार चिदानन्दमय श्यामज्योति भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए अपने जीवनकी बहुत-सी रात्रियोंको एक क्षणके समान कब व्यतीत कर दूँगा ? मेरे जीवनमें ऐसा शुभ अवसर कब आयेगा ?' ऐसे जीवनकी अभिलाषा ही इस प्रकारके जीवनकी जननी है, जिसमें शान्तरसकी भक्ति पूर्ण होती हैं ।

शान्तरसके उद्दीपन विभाव, जिनसे शान्तरसकी पुष्टि होती है, दो प्रकारके होते है—एक तो 'असाधारण' और दूसरे 'साधारण' । 'असाधारण विभाव' निम्नलिखित हैं—

१. उपनिषद्, दर्शन और पुराणोंका तथा उन ग्रन्थों का श्रवण, कीर्तन, मनन, एवं स्वाध्याय, जिनमें भगवान्के तत्व, स्वरूप, गुण, रहस्य और महिमाका वर्णन है ।

२. उस पवित्र एकान्त स्थान का सेवन, जिसमें चित्त एकाग्र होता हैं ।

३- शुद्ध सत्त्वमय चित्तमें निरन्तर भगवान्की स्फूर्ति ।

४. भगवान्, जीव और जगत्के स्वरूपोंका पृथक्-पृथक् विवेचन और उनके सम्बन्धोंका निर्णय ।

५. भगवान्में ज्ञान-शक्तिकी प्रधानताका अङ्गीकार और अपने जीवनकी प्रगति भी ज्ञानानुसारिणी ।

६. सम्पूर्ण विश्वको भगवान्का व्यक्त रूप समझना और व्यवहारमें उनके दर्शनकी चेष्टा करना ।

७. ज्ञानप्रधान भक्तोंका सत्सङ्ग करना और अपने ही समान रुचि रखनेवाले साधकोंके साथ भगवान् और उनकी भक्तिके सम्बन्धमें चर्चा करना ।

इनके अतिरिक्त 'साधारण उद्दीपन' भी बहुत-से होते हैं । यथा—

१. भगवान्की पूजाके पुष्प, तुलसी, नैवेद्य आदि प्राप्त करके मुग्ध होना ।

२. भगवान्की पूजाके शङ्ख, घण्टा, आरती, स्तुति आदिके पाठ की ध्वनि सुनना ।

३. पवित्र पर्वत, सुन्दर जंगल, सिद्ध क्षेत्र और गङ्गा आदि नदियोंका सेवन ।

४. संसारके भोगोंकी क्षणभङ्गुरताका विचार ।

५. संसारकी समस्त वस्तुएँ तथा अपना जीवन भी मृत्युग्रस्त है—यह विचार इत्यादि ।

हृदय में शान्तरसका उन्मेष होनेपर बहुत प्रकारके साधारण और असाधारण चिह्न उदय हो जाते हैं, उनको 'अनुभाव' कहते हैं । यथा—

१. आँखोंका बंद रहना, नासाग्रपर, भ्रूमध्यपर अथवा निरालम्ब ही स्थिर रहना ।

२. व्यवहारका विशेष ध्यान नहीं रहना ।

३. चलते समय बहुत इधर-उधर नहीं देखना, सामने चार हाथतक देखना ।

४. स्थिर, धीर, गम्भीर भावसे बैठे रहना; ज्ञान-मुद्राका अवलम्बन ।

५. भगवान्के प्रति द्वेषभाव रखनेवालेसे भी द्वेष न करना तथा प्रेम भाव रखनेवालेसे भी अत्यन्त प्रेम न करना ।

६. सिद्ध-अवस्था अथवा जीवन्मुक्तिके प्रति आदर भाव ।

७. किसीकी अपेक्षा नहीं, किसीसे ममता नहीं करना और कभी अहंकारका भाव नहीं आना।

८. संसार और व्यवहारके सम्बन्धमें स्फुरणाका न होना और बहुत कम वार्तालाप करना इत्यादि।

इनके अतिरिक्त 'साधारण अनुभाव' भी प्रकट होते हैं। यथा—

१. बार-बार भगवान्‌को नमस्कार करते रहना।

२. सत्सङ्गियोंको भगवद्भक्तिकाउपदेश करना।

३. भक्तोंके साथ भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना आदि करना।

४. भावोदय होनेपर जमुहाई आना, शरीर तोड़ना आदि।

शान्तरसके उदय होनेपर सात्त्विक भावोंका भी प्रकाश होता हैं। परन्तु इस रसके उपासक प्रायः शरीरसे ऊपर उठे रहते हैं और बड़ी सावधानीके साथ शरीर-भावसे अपनी रक्षा करते हैं। इसलिये इनके हृदयमें तो समस्त सात्त्विक भाव प्रकट होते हैं, परन्तु शरीरमें रोमाञ्च, स्वेद, कम्प आदि कुछ थोड़े-से ही प्रकट होते हैं। प्रलय, उन्माद और मृत्यु आदि सात्त्विक भाव प्रायः इनके शरीरमें नहीं देखे जाते। संसारके प्रति निर्वेद (वैराग्य), विपत्ति आनेपर धैर्य, भगवद्भक्तके मिलनसे हर्ष, विस्मरणसे विषाद तथा और भी बहुत-से सञ्चारी भाव शान्तरसके पोषक हैं। शान्तरसका स्थायिभाव शान्तरति है, यह बात पहले ही कही जा चुकी हैं। यह दो प्रकारकी होती है—एक 'समा' और दूसरी 'सान्द्रा'। जब मन वृत्तिशून्य होकर ब्रह्मरूपसे स्थित हो जाता है, असम्प्रज्ञात समाधि लग जाती है; तब कहीं यदि उस समाधिमें भगवान् प्रकट हो जायँ और उनको देखकर योगीका चित्त प्रेममुग्ध हो जाय तो इसको शान्तरसकी 'समरति' कहेंगे। समस्त अज्ञानके ध्वंस हो जानेपर निर्विकल्प समाधिमें जो एकरस निर्विशेष अनन्तके रूपमें अनुभव होता है, वही तो उस अनन्त आनन्दको भी अनन्तगुना बनाकर नन्दनन्दन श्यामसुन्दरके रूपमें प्रकट हुआ है-इस प्रकारकी अनुभूति सान्द्र शान्तिरतिके नामसे प्रसिद्ध है। भगवान्‌के साक्षात्कार के लिए उत्सुकता और साक्षात्कार—दोनों स्थितियाँ इस रसके अन्तर्गत हैं।

शान्तरस साहित्यिकोंके मतमें भी सर्ववादिसम्मत रस है। नाट्यशास्त्रके आचार्योंने शान्तकों इसलिये रस नहीं माना हैं कि शान्तिरति निर्विकार है। रङ्गमञ्चपर किसी भावभङ्गीके द्वारा उसका प्रदर्शन सम्भव नहीं हैं; परन्तु काव्य एवं भक्ति-साहित्यमें इसका साक्षात्कार होने के कारण इसकी रसता निर्विवाद सिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भागवतके ग्यारवें स्कन्धमें 'शम'की व्याख्या करते हुए कहा है कि "मुझमें परिनिष्ठित बुद्धिका नाम 'शम' हैं।" यदि शान्तिको रतिके रूपमें स्वीकार नहीं किया जाय तो इस निष्ठाकी उपपत्ति कैसे हो सकती है? श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणमें शान्तरसका लक्षण इस प्रकार किया गया है—

> नास्ति यत्र सुखं दुःखं न द्वषो न च मत्सरः।
> समः सर्वेषु भूतेष स शान्तः प्रथितो रसः॥

'जिसमें न सुख है और न तो दुखः, न द्वेष और न तो मात्सर्य, जो समस्त प्राणियोंमें समभाव है, वही 'शान्तरस' के नामसे प्रसिद्ध हैं।" इस शान्तरसमें और सम्पूर्ण रसोंका अन्तर्भाव हो सकता है। वीर, करुणा, शृङ्गार आदि रस परिणत होते हुए, जब अहंकारसे नितान्त रहित हो जाते है तो शान्तरसमें उनका पर्यवसान हो जाता है। इस रसका स्थायिभाव 'शान्तिरति' है, इसमें पूर्वाचार्योका मतभेद है। किसी-किसीके मतमें शान्तरसका स्थायिभाव 'रति' है। व्यवहारमें चाहे जैसी भी घटना घट जाय, किन्तु रति अविचलित रहे, यही शान्तरसका पूर्वरूप स्थायिभाव हैं। कोई-कोई कहते हैं—"शान्तरसका स्थायिभाव 'निर्वेद' है।" निर्वेद दो प्रकारका होता है। एक तो अनिष्ट वस्तुकी अप्राप्तिसे और दूसरा अनिष्ट वस्तुके संयोगसे होता है। यह स्थायिभाव नहीं हो सकता, यह व्यभिचारी भाव है।

परन्तु तत्त्वज्ञानके उदयसे जो जागतिक विषयोंके प्रति सहज निर्वेद हो—इनमें-से किसीके द्वारा साधकके चित्तमें शान्तरसका उद्रेक होना चाहिये। शान्तरसका उन्मेष होनेपर भगवतत्त्वका अनुभव होने लगता है और इससे बढ़कर जीवके लिए सौभाग्यकी और कौन-सी बात हो सकती है? जहाँतक शान्तरसकी गति और है, वहाँतक पहुँचनेपर ही जाना जा सकता है कि इसके बाद भी कोई स्थिति है या नहीं। इसलिये सम्पूर्ण शक्तिसे इस शान्तरस-का ही अनुभव करना चाहिए।

दास्यरस

दास्यरसका स्थायिभाव 'प्रीति' है। यही जब आलम्बन, उद्दीपन; विभाव, सात्त्विक भाव आदिमें सुपुष्ट और व्यक्त होता हैं; तब 'दास्यरस' के नामसे कहा जाता है। कुछ लोग इसको 'प्रीतिभक्तिरस' कहते हैं। कई आचार्योंने इसे शान्तरसके अन्तर्गत ही माना हैं। परन्तु उसकी अपेक्षा इसमें कुछ विशेषता अवश्य है। शान्तरसमें स्वरूप-चिन्तनकी प्रधानता है, दास्यरसमें ऐश्वर्यचिन्तनकी। दास्यरसके दो भेद माने गये हैं—एक तो 'सम्भ्रमजनित दास्य' और दूसरा 'गौरवजनित दास्य'। 'सम्भ्रमजनित' दास्य वह है, जिसमें साधक भगवान्के अनन्त ऐश्वर्य, प्रभाव, महत्त्व, शक्ति, प्रतिष्ठा, गुणोंका आधिक्य और चरित्रकी अलौकिकता आदि देखकर, जानकर अपने सेव्यके रूपमें प्रभुका वरण कर लेता है और उनकी सेवाके रसमें ही अपनेको डुबा देता है। 'गौरव-प्रीतिरस' वह है, जिसमें भगवान्के साथ कोई गौरव-सम्बन्ध रहता है। जैसे भगवान्के पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब आदि गुरुबुद्धिसे भगवान्की सेवा किया करते थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दास्यरसके आलम्बन भगवान् सगुण ही होते हैं। यद्यपि निराकरण भगवान्के आज्ञापालनके रूपमें वेदोक्त सदाचारका अनुष्ठान और विश्व-सेवाकार्यके द्वारा भी दास्यरसका अनुभव किया जा सकता है; इस व्यक्त जगत्को भगवान्का रूप समझकर इसकी सेवा करना भी दास्यरसके अन्तर्गत हो सकता है, तथापि रसिक भक्तोंने सगुण-साकार, अनन्त ऐश्वर्योंके निधि द्विभुज, चतुर्भुज, आदि आकारविशिष्ट भगवद्विग्रहको ही दास्यरसका आलम्बन स्वीकार किया है।

भगवान्का ऐश्वर्य अनन्त है। उनके एक-एक रोम-कूपमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका निवास-स्थान है। इतने ऐश्वर्यवान् होनेपर भी वे करुणाके तो समुद्र ही हैं। उनकी शक्ति अचिन्त्य है। समस्त सिद्धियां उनकी सेवामें तत्पर रहती हैं। संसारमें जितने भी देवी-देवता हैं, उन्हीके अंशविशेष हैं और जितने भी अवतार होते हैं, उसके वे ही बीजस्वरूप हैं। उनकी सर्वज्ञता, क्षमाशीलता, शरणा-गतवत्सलता और अनुकूलता, सत्यता, सर्व-प्राणिहितैषिता आदि सद्गुण आत्माराम पुरुषोंके चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। उनके प्रतापसे ही संसारकी गति नियमित हैं, उनकी धारणाशक्तिसे ही धर्म सुरक्षित है। वे सब शास्त्रोंकी मर्यादाके स्थापक और पालक हैं। बड़े उदार है। महान् तेजस्वी हैं। एक बार भूलसे भी उनका कोई स्मरण करके भूल जाय, तब भी वे कभी नहीं भूलते। कृतज्ञताकी मूर्ति हैं। जो प्रेम करे, उसीके वशमें हो जाते हैं। इस प्रकारके परम उदार, परम ऐश्वर्यशाली भगवान् ही दास्यरसके आलम्बन हैं।

भगवान्के दास उनके आश्रित होते हैं। भगवान्पर उनका अखण्ड विश्वास होता है वे। सर्वात्मना भगवान्की आज्ञाका पालन करते हैं और भगवान्के अप्रतिहत ऐश्वर्यके ज्ञानसे उनका अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग-सम्पूर्ण जीवन भगवान्के चरणोंमें समर्पित एवं नमित रहता है। इनके चार प्रकार होते हैं—अधिकृत, आश्रित, पार्षद और अनुगामी। अधिकृत भक्तोंकी श्रेणीमें शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य आदि देवतागण हैं। ये भगवान्की किस प्रकारकी सेवा करते हैं, इसका एक उदाहरण देखिये—

का पर्येत्यम्बिकेयं हरिमवकलयन् कम्पते कः शिवोऽसौ
तं कः स्तौत्येष धाता प्रणमति विलुठन् कः क्षितौ-
वासवोऽयम्।

कः स्तब्धो हस्यतेऽद्धा दनुजभिदनुजैः पूर्वजोऽयं ममेत्थं
कालिन्दी जाम्बवत्यां त्रिदशपरिचयं जालरन्ध्राद्
व्यतानीत् ॥

'कोठेपर खिड़कीके पास खड़ी होकर जाम्बवतीके पूछनेपर कालिन्दी देवताओंका परिचय करा रही है—यह प्रतिक्षणा कौन कर रही हैं? 'यह अम्बिका देवी हैं। 'भगवान्‌का दर्शन करके यह कौन काँप रहे हैं? ये शिव हैं। 'ये स्तुति कौन कर रहे है।,' ये ब्रह्मा है। 'जमीनमें लोटकर नमस्कार कौन कर रहे हैं?, ये इन्द्र हैं। ये स्तब्ध कौन खड़े है, देवतालोग जिनकी हँसी उड़ा रहे हैं? 'ये मेरे बड़े भाई यमराज हैं'।' इससे स्पष्ट होता है कि सभी देवता द्वारकामें आ-आकर भगवान्‌का दास्य करते हैं। यह कोई नयी बात नहीं है, ब्रज और वैकुण्ठकी ऐसी बहुत-सी कथाएँ मिलती हैं। देवताओंके सहज वर्णनमें भी यह बात आती है कि वे सदा-सर्वदा भगवान्‌की दास्य-भक्तिमें ही तन्मय रहते है।

आश्रित भक्तोंकी तीन श्रेणियां हैं—शरणागत, ज्ञानी और सेवानिष्ठ। जरासंधके द्वारा कैद किये हुए राजालोग, भगवान्‌का अनुग्रहपात्र होनेपर कालियनाग—ये सब शरणागत, श्रेणीसे आश्रित हैं। जिन्होंने मुमुक्षा और जिज्ञासाका भी परित्याग कर दिया है और मोक्ष एवं ज्ञानका परित्याग करके भगवान्‌का ही आश्रयण किया है, वे ज्ञानी आश्रित हैं। इस श्रेणीमें शौनक आदि ऋषिगण आते हैं। इस श्रेणीके एक भक्त कहते हैं—

ध्यानातीतं किमपि परमं ये तु जानन्ति तत्वं
तेषामास्तां हृदयकुहरे शुद्धचिन्मात्र आत्मा।
अस्माकं तु प्रकृतिमधुरः स्मेरवक्त्रारविन्दो
मेघश्यामः कनकपरिधिः पङ्कजाक्षोऽयमात्मा ॥

'जो ध्यानातीत किसी एक परम तत्त्वको जानते हैं; उनके हृदयमें वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा रहे, हमारे तो जो स्वभाव-सुन्दर परम मधुर हैं, जिनके मुख-कमल पर मन्द-मन्द मुस्कान है, वर्षाकालीन मेघके समान जिनकी कान्ति है, जो पीताम्बरी एवं कमलनयन हैं, वे श्रीकृष्ण ही आत्मा हैं। वे ही प्राणप्रिय हैं, वे ही सेव्य हैं। हमें किसी दूसरे आत्मासे और कोई काम नहीं।

जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌के भजनमें ही आसक्त हैं, वे सेवानिष्ठ आश्रितोंकी श्रेणीमें हैं। इसमें चन्द्रध्वज हर्यश्व, इक्ष्वाकु, श्रुतदेव आदिका नाम लिया जा सकता हैं। इस श्रेणीके भक्तका हृद्गत भाव इस प्रकार होता है—हे प्रभो! जो सर्वदा आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे तुम्हारे गुणोंका श्रवण करनेके लिए उस सभामें सम्मिलित होने लगते है, जिनमें तुम्हारे गुणोंका गान होता है। जो एकान्त जंगलमें रहकर घोर तपस्यामें अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे तुम्हारे उदार चरित्र सुननेके लिए प्रेमी भक्तोंके सामने भिक्षुकके रूपमें उपस्थित होते हैं। इसलिये मैं न तो स्वरूप-स्थिति चाहता हूँ और न तो निर्विकल्प समाधि। मैं तुम्हारी सेवामें रहूँ, तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँ, तुम्हारी संनिधि में रहकर निरन्तर तुम्हारी प्रसन्नता अनुभव किया करूँ—यही मेरे जीवनकी एकमात्र अभिलाषा है।

भगवान्‌की नित्य-लीलामें और समय-समयपर प्रकट होनेवाली लीलामें उनके नित्य पार्षद रहते हैं। वैकुण्ठमें विष्वक्सेन आदि, द्वारकाकी लीलामें उद्धव, दारुक आदि और हस्तिनापुरकी लीलामें भीष्म, विदुर आदि भगवान्‌के पार्षद श्रेणीके भक्त हैं। यद्यपि ये विभिन्न कार्योंमें नियुक्त रहते हैं, कोई मन्त्रीका काम करता है तो कोई सारथिका, तथापि ये अवसर पानेपर भगवान्‌की शरीरतः सेवा करते हैं और उससे अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। अनुगामी भक्त भगवान्‌की सेवामें सर्वदा संलग्न रहते हैं। भगवान्‌के चरणोंमें इनकी दृढ़ आसक्ति होती है। द्वारकामें सुचन्द्र; मण्डल आदि अनुग भक्त छत्र-चामर आदि धारण करते हैं और ब्रजमें रक्तक, पत्रक आदि दासगण भगवान्‌के वस्त्र आदिके परिष्कार आदिकी सेवा करते हैं। जैसे द्वारकाके भक्तोंसे उद्धव श्रेष्ठ है, वैसे ही ब्रजके भक्तोंमें रक्तक श्रेष्ठ है। इनके तीन भेद होते हैं यथा—धूर्य, धीर और वीर। धूर्य वे हैं, जो

महल और दरबार-दोनोंमें एक-सी सेवा करते हैं। धीर श्रेणीके सेवक भगवान्के प्रेयसीवर्गका आश्रय लेकर विशेष सेवा न करनेपर भी अपना मुख्य स्थान रखते हैं वीर सेवक भगवान्के आश्रयसे निर्भीक रहता है और किसीकी अपेक्षा नहीं रखता। भगवान्के चरणोंमें इसका अतुलनीय प्रेम होता है। यह कभी-कभी अपनी प्रौढ़तावश कह बैठता हैं कि 'मुझे न बलरामसे काम है और न प्रद्युम्नसे कुछ लेना है। भगवान्की कृपासे मैं इस प्रकार बलवान हो गया हूँ कि मैं सत्यभामाको भी कुछ नहीं गिनता।' अबतक जितने प्रकारके दासों की गिनती की गयी है, वे सभी तीन श्रेणियोंमें बाँटे जा सकते हैं एक तो नित्यसिद्ध, दूसरे साधनसिद्ध और तीसरे जो अभी साधन कर रहे हैं। इन सभीके चित्तमें अनुदिन दास्य-रतिकी अभिवृद्धि हुआ करती है।

दास्यरसमें साधारण और असाधारण अनेकों प्रकारके उद्दीपन बिभाव होते हैं, यथा—

१. पद-पदपर भगवान्की कृपाका अनुभव।
२. उनके चरणोंको धूलिकी प्राप्ति।
३. भगवान्के प्रसादका सेवन।
४. भगवान्के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग।
५. भगवान्की वंशी- शृङ्गआदिकी ध्वनि का श्रवण।
६. भगवान्की मन्द-मन्द मुस्कान और प्रेम-भरी चितवन।
७- भगवान्के गुण, प्रभाव, महत्त्व आदिका श्रवण।
८. कमल, पदचिह्नः मेघ, अङ्गसौरभ आदि।

जिनके हृदयमें दास्यरका उदय हो गया हैं, उनके जीवनमें बहुत-से अनुभाव प्रकट हो जाते है तथा—

१. भगवान् जिस कार्यमें नियुक्त कर दें, उसीको सर्व-श्रेष्ठ समझकर स्वीकार करना।

२. किसीके प्रति ईर्ष्याका लेश भी नहीं होना।

३. जो अपनेसे अधिक सेवा करता है, उससे प्रसन्नता और भगवतद्भक्तोंसे मित्रता।

४. भगवान्की सेवामें ही रति, उसीमें प्रीति और उसीकी निष्ठा। दास्यके अवसरकी प्राप्तिसे और उनकी अप्राप्तिसे भी स्तम्भ आदि सात्त्विक भावोंका उद्रेक होता है। हर्ष, गर्व आदि भाव भी समय-समयपर स्फुरित हुआ करते हैं। भगवान्के ऐश्वर्य और सामर्थ्यके ज्ञानसे जो आदर पूर्वक सम्भ्रम होता है, उनके साथ मिलकर प्रीति ही सम्भ्रम-प्रीतिका नाम धारण करती है। दास्यरसमें यही स्थायीभाव हैं। यह सम्भ्रम-प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रेम स्नेह और रागरूप धारण करती है। अकस्मात् भगवान्के मिलनेसे जो आदरभाव पूर्वक सम्भ्रम प्रेम है, वह सम्भ्रम-प्रीति है। यही भाव जब इतना दृढ़ हो जाता है कि उसमें ह्रासकी आशङ्का नहीं रहती, तब इसे ही प्रेम कहते हैं। उस अवस्थामें प्रेम इतना स्वाभविक हो जाता है कि भगवान् चाहे सौख्यके महान् समुद्रमें डाल दें अथवा घोर दुःखमय नरकमें, कहीं भी चित्तमें विकार नहीं होता। भगवान्के चरणोंका पूरा विश्वास बना रहता है। यही प्रेम जब और घना होकर चित्तको अत्यन्त द्रवित कर देता है, तब इसका नाम 'स्नेह' होता है। इसमें एक क्षणका वियोग भी सहन नहीं होता। यदि कहीं एक क्षणके लिए कृतिम वियोग हो जाय तो भी प्राणान्त की नौबत आजाती है। यही स्नेह जब इतना गाढ़ा हो जाता है कि दुःख भी सुख मालूम होने लगता है तब उसका नाम 'राग' होता है। इस अवस्था में अपने प्राणोंका नाश करके भी भगवान्की सेवा करनेका प्रयास होता है। इस अवस्थामें थोड़ा-बहुत सख्यका भी उदय हो जाता है यदि भगवान् इस श्रेणीके किसी सेवकको कभी अपने हृदयसे लगा लेते हैं, तो वह लग तो लेता है, किन्तु उसके चित्तमें संकोच रहता है।

सेवककी दो अवस्थाएँ होती हैं—एक तो भगवान्के साथ योगकी और दूसरी अयोगकी। भगवान्के साथ

न रहकर सेवासे वञ्चित रहना, यह 'अयोग-अवस्था है। इसमें मन भगवान्में ही रहता है, प्रायः भगवान्के गुणोंका अनुसंधान और उनके मिलनेके उपायका चिन्तन हुआ करता हैं। इसके दो भेद हैं—'उत्कण्ठा' और 'वियोग'। भगवान्के जबतक एक बार भी दर्शन नहीं हुए रहते, परन्तु उनके दर्शनकी बड़ी इच्छा रहती है; तबतक की अवस्थाका नाम 'उत्कण्ठा' है। इस अवस्थामें कृष्णासार-मृगका नाम सुनकर कृष्णाकी स्मृति हो आती है। श्याम-मेघको देखकर घनश्याम को पानेकी उत्कण्ठा तीव्र हो जाती हैं। इस अवस्थामें विरहके सभी भावोंका उदय होता है। भगवान्के पानेकी उत्सुकता, अपनी दीनता, संसारसे निर्वेद, आशा-निराशा, जड़ता, उन्माद सभी एक-एक करके उसमें आते रहते हैं। भगवान्के दर्शनके विना एक-एक क्षण कल्पके समान मालूम होने लगता है। निरन्तर हृदयसे सच्ची प्रार्थनाकी धारा प्रभावित होने लगती है। आगे चलकर ऐसी स्थिति हो जाती है कि व्यवहारका ध्यान भी नहीं रहता, आँखे निर्निमेष दर्शन की प्रतीक्षा करने लगती हैं। भक्त प्रेमोन्मादमें मस्त होकर कभी रोता है, कभी निःसंकोच नाचने लगता है, कभी तन्मय होकर भगवान्की लीलाओं का ही अनुकरण करने लगता है, कभी उसे मूर्छा हो जाती है तो कभी मृत्युकी-सी भी दशा हो जाती हैं। इसी अवस्थामें जाकर प्रेमपरवश भगवान्को दर्शन देने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

एक बार या अनेक बार भगवान्का दर्शन प्राप्त होनेके पश्चात् जो भगवान्का विरह होता है, उसको 'वियोग-अवस्था' कहते हैं। भगवान्के मिलनका सुख ही ऐसा हैं कि जिसे एक क्षणके लिए भी प्राप्त हो जाता है, वह उसके विरहमें बड़ी कठिनाईसें जीवन धारण करता है। परन्तु संसार की अपेक्षा उसकी यह कठिनाई भी परम रसमय है। भगवान्के विरहमें हृदयमें इतना ताप होता है कि सम्पूर्ण अग्नि और सूर्य भी वैसी जलन नहीं पैदा कर सकते। शरीर दुर्बल हो जाता है, चेहरा पीला पड़ जाता है, नींद नहीं आती, उनके सिवा चित्त कहीं स्थिर नहीं होता, धैर्यका बाँध टूट जाता है, पीड़ासे शरीर जर्जर, शिथिल और अविचल हो जाता है, श्वासकी गति बढ़ जाती है, मानसिक व्याधि, उन्माद, मूर्च्छा और मृत्यु, पुनः जीवन और फिर वही अवस्थाएँ उसकी ये ही अवस्थाएँ हुआ करती हैं। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि भगवत्प्रेमीके शरीरमें जो व्याधि उन्माद, मूर्च्छा आदि होते है, ये लोकोत्तर होते हैं। भगवान्के प्रेमराज्यमें मृत्युका तो प्रवेश ही नहीं है। वहाँ जो ये अवस्थाएँ आती हैं, सो सब संयोग-सुखकी अभिवृद्धिके लिए। इसलिए प्रेमकी यह मृत्यु भी जीवनसे बढ़कर हैं, क्योंकि रसस्वरूप भगवान्की संनिधिमें यह पहुँचा देती है। यह वियोग संयोगका पोषक होनेके कारण रसस्वरूप है।

योग-अवस्थाके तीन भेद हैं—सिद्धि 'पुष्टि' और 'स्थिति'। उत्कण्ठित अवस्थामें भगवान्की जो प्राप्ति होती है, उसको 'सिद्धि कहते हैं। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें अक्रूरकी उत्कण्ठा और उनको भगवत्प्राप्तिका वर्णन है, यह सिद्धि-अवस्था है। भगवान्का वियोग होनेके पश्चात् जो मिलन होता है, उसको 'तुष्टि' कहते हैं। ऐसा वर्णन आता है कि द्वारकाके द्वारपर दारुकने जब भगवान्को देखा तब उसको इतना आनन्द हुआ कि अञ्जलि बाँधकर भगवान्को प्रमाण भी नहीं कर सका। उसकी चित्रलिखित-सी दशा हो गयी। इसीका नाम 'तुष्टि' है। स्थिति-अवस्था' उसे कहते हैं; जिसमें भगवान्से कभी वियोग नहीं होता। इस स्थिति-अवस्थामें भक्त प्रत्येक क्षण बड़ी सावधानीसे भगवान्की सेवामें ही व्यतीत करता हैं। भगवान्के दास्यरसके लिए इससे बढ़कर वाञ्छनीय कोई अवस्था नहीं हो सकती। वे परमानन्दके महान् समुद्रमें स्थित रहकर भगवान्की अवसरोचित सेवा किया करते हैं। कहाँ बैठना, कहाँ खड़े रहना, कैसे बोलना, कैसी चेष्टा करना—सब उनके नियमित रहते हैं। सख्यमिश्रित दास्यसे कभीकभी कुछ प्रगल्भता भी आ जाती है, परन्तु वह कभी-कभी ही होती है।

गौरवप्रीतिजनित दास्यमें पिता, बड़े भाई, गुरु आदिके रूपमें भगवान्‌की सेवा की जाती है। सर्वश्रेष्ठ कीर्तिमान्, परम ज्ञानसम्पन्न, परम शक्तिमान्, एकमात्र रक्षक, दुलार करनेवाले पिता आदिके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण 'आलम्बन' हैं। उनके प्रेम या दुलारके पात्र सारण, गद, सुभद्र आदि छोटे भाई, प्रद्युम्न, साम्ब आदि पुत्र भी 'आलम्बन' हैं। ये भगवान्‌से नीचे आसनपर बैठकर उनसे उपदेश ग्रहण करते हैं, साथ भोजन करते हैं। भगवान् इनका सिर सूंघते हुए आलिङ्गन करते हैं। ये उनका स्नेह देख मुग्ध होते रहते हैं। सम्भ्रमजनित दास्यमें भगवान्‌के ऐश्वर्यका ज्ञान प्रधान रहता है। परन्तु भगवान्‌के प्यारे इन सम्बन्धियोंमें तो सम्बन्धकी ही स्फूर्ति प्रधान रहती है। ब्रजमें किसी प्रकारके ऐश्वर्यकी धारणा न होनेपर ही ब्रजराजकुमार होनेके कारण कुछ-कुछ ऐश्वर्यका लेश भी रहता ही है। भगवान्‌के वात्सल्यका स्मरण, उनकी प्रसन्नतासूचक मुसकान और प्रेमभरी चितवनका स्मरण आदि इसके 'उद्दीपन' हैं। भगवान्‌के सामने नीचे आसन-पर बैठना, उनकी आज्ञाका पालन, उनके कार्य-भारका ग्रहण, उच्छृङ्खलता त्याग—ये सब 'अनुभाव' इस रसमें प्रकट होते हैं। सात्त्विक और संचारीभाव भी यथावसर प्रकट हुआ करते हैं।

गौरवप्रीति क्रमशः विकसित होकर प्रेम, स्नेह और रागका रूप धारण कर लेती है। इनका वर्णन सम्भ्रम-प्रीतिमें जैसा हुआ है, वैसा ही समझना चाहिये। योग और अयोग अवस्थाओंके भेद-विभेद भी उतने ही और वैसे ही हैं। गौरवप्रीति और सम्भ्रमप्रीति दोनों ही दास्यरसके 'स्थायिभाव' हैं। जिन्हें भगवान्‌की इस प्रेम-मयी, रसमयी अवस्थाका अनुभाव नहीं है, वे इसे रस नहीं मानते। परन्तु श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें इस अवस्थाकी रसमयताका सुन्दर वर्णन हुआ है। जीवके लिए इससे बढ़कर और कौन-सी सरस और आनन्दमयी अवस्था होगी, जब वह अपने प्रियतम प्रभुकी संनिधिमें रहकर उनके कृपा-प्रसादका अनुभव करता हुआ उन्हींकी सेवामें संलग्न रहे। 'भवन्ति तूष्णीं परमेत्य: निर्वृता: (श्री भा० ११:३,३२) कहकर भागवतकारने इसके परमानन्द-स्वरूपकी ओर निर्देश किया है।

सख्यरस

इस रसमें सख्यरति ही स्थायी होकर रसका रूप ग्रहण करती है। कुमार, पोगण्ड और किशोर अवस्थाके श्रीकृष्ण एवं उनके सखा इसके 'आलम्बन' हैं। ब्रजमें मरकतमणिके समान श्याम-सुन्दर शरीर, कुन्दके समान निर्मल हास्य, चमकता हुआ पीताम्बर, वनमाला, जादूभरी वंशी—ये सब-के-सब सख्यरसकी धारा प्रवाहित करते रहते है। द्वारकामें और हस्तिनापुरमें भी श्रीकृष्णके समवयस्क अर्जुन आदि सखा हैं और वे सख्यरसके अनुसार श्रीकृष्णसे व्यवहार करते हैं। सखाके रूपमें श्रीकृष्ण अपने सब सखाओंसे बलवान् हैं, सबसे अधिक भाषामें ज्ञाता वक्ता और विद्वान, प्रतिभा, दक्षता करुणा, वीरता, विदग्धता, बुद्धिमत्ता, क्षमा और प्रसन्नतामें अतुलनीय। सखा भी रूप, वेष, गुण आदिमें उनके समान ही होते हैं। दासोंके समान नियन्त्रणमें नहीं रहते। वे अपने सखा श्रीकृष्णपर सम्पूर्ण रूपसे निर्भर रहते हैं। अर्जुन, भीमसेन द्रौपदी, सुदामा—ये सब द्वारकाके सखा हैं। व्रजके सखा सर्वदा श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ा किया करते हैं। उनके जीवन ही श्रीकृष्ण हैं। वे एक क्षण भी अपने सखा श्रीकृष्णका दर्शन न पाकर दीन हो जाते हैं। इनके प्रेम और सौभाग्य की तुलनामें और किसीका भी नाम नहीं लिया जा सकता। बलराम, श्रीदामा, सुबल आदि यहांके प्रसिद्ध सखा हैं। कितना प्रेम है इनका श्रीकृष्णके प्रति, वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्ण अपने ऐश्वर्यमय रूपसे अपने बायें हाथकी कनिष्ठा अँगुलीपर गोवर्द्धनपर्वत उठाये हुए हैं। परन्तु ग्वालवालों के लिए तो वे अपने सखा ही हैं, उन्हें उनके ऐश्वर्यका ध्यान कहाँ? वे जाकर उनसे कहने लगे—

उन्निद्रस्य ययुस्तवात्र विरतिं सप्त क्षपास्तिष्ठतो
हन्तश्रान्त इवासि निक्षिप सखे श्रीदामपाणौ गिरिम्।

आर्धिविध्यति नस्त्वमर्पय करे किं वा क्षणं दक्षिणे
दोर्ष्णस्ते करवाम काममधुना सव्यस्य संवाहनम् ॥

'सखे ! तुम नींद छोड़कर सात दिनसे खड़े हो, बड़े कष्टकी बात है। अब तुम बहुत थके-से जान पड़ते हो, अब परिश्रम करनेकी आवश्यता नहीं। श्रीदामाके हाथ पर पर्वत रख दो, अथवा हमारे हाथमें ही दे दो। तुम्हें इस प्रकार देखकर हमारे हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा है। यदि ऐसा करनेकी इच्छा नहीं हो, तो थोड़ी देरके लिए उसे दाहिने हाथमें ले लो, हम तुम्हारे बायें हाथका थोड़ा संवाहन तो कर लें। उसे हाथसे दबाकर उसकी पीड़ा तो कम कर दें।

इनकी चार श्रेणियाँ होती है—'सुहृद', 'सखा', 'प्रियसखा' और 'प्रियनर्मसखा'। सुहृदोंकी अवस्था कुछ बड़ी होती है, उनमें वात्सल्यमिश्रित सख्य रहता है। वे अपने सखा श्रीकृष्णकी रक्षा करनेके लिए सर्वदा तैयार रहते हैं। इस श्रेणीमें सुभद्र, मण्डलीभद्र, बलभद्र आदि सखा हैं। ये भरसक श्रीकृष्णको अकेले नहीं छोड़ते। अपने बिना उनको अरक्षित समझते हैं। उनके चित्तमें अनिष्टकी आशङ्का बार-बार आया करती है और ये सर्वदा सजग रहते हैं। सखा-श्रेणीके ग्वाल-बाल अवस्थामें कुछ छोटे रहनेपर समान ही रहते हैं। इनमें दास्यमिश्रित सख्य होता है। विषाद, ओजस्वी, देवप्रस्थ आदि इस श्रेणीमें हैं। ये वनमें, गोष्ठमें और जलमें सर्वदा श्रीकृष्णकी सेवामें संलग्न रहते हैं। खेलमें इनका सख्य प्रकाशमें आजाता है। प्रिय सखाओंकी श्रेणीमें श्रीदामा, सुदामा आदि हैं। इनकी अवस्था श्रीकृष्णके समान है और इनमें केवल विशुद्ध सख्य है। ये श्रीकृष्णके साथ कुश्ती लड़ते, लाठी चलाते एवं तरह-तरहके अन्य खेल भी खेलते हैं। कोई श्रीकृष्णसे विनोद करता है, कोई पुलकित शरीरमें उनका आलिङ्गन करता है। श्रीकृष्णका क्षणिक वियोग भी इनके लिए असह्य है। 'प्रियनर्मसखाओं' की श्रेणी प्रिय सखाओंकी अपेक्षा और भी अन्तरङ्ग है। ये अत्यन्त रहस्यमें भी सम्मिलित रहते हैं और गोपियोंके संदेश, पत्र आदि श्रीकृष्णके पास ले आते हैं और उनके पास पहुंचाते भी हैं। इस श्रेणीमें सुबल, उज्वल आदि हैं। ये चारों श्रेणियाँ व्रजके सखाओंमें ही होती हैं। इनमें-से कोई बड़े-बड़े विद्वान् भी हैं। कोई सरल हैं तो कोई चपल हैं तो कोई गम्भीर, कोई बहुत बोलनेवाले हैं तो कोई चुप रहनेवाले। इनकी सभी चेष्टाएँ श्रीकृष्णकी प्रसन्नता के लिए होती हैं। प्रकृति भिन्न-भिन्न होनेपर भी ये बड़े ही मधुर हैं। इनकी पवित्र मित्रता और विचित्रता श्रीकृष्णको भी मोहित कर लेती हैं।

सख्यरसके उद्दीपनोंमें बहुत-सी वस्तुएँ हैं, यथा—

१. श्रीकृष्णकी कुमार, पौगण्ड, किशोर अवस्थाएँ।

२. श्रीकृष्णकी मुनिजन-मनमोहिनी लोकोत्तर सुन्दरता।

३. श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि, शृङ्गध्वनि आदि।

४. श्रीकृष्णकी विनोदप्रियता, मधुर भाषण।

५. श्रीकृष्णकी लीलाप्रियता, उछलना, कूदना, नाचना, गाना आदि।

६. श्रीकृष्णके प्रियजनोंके आनन्द और सौभाग्यका स्मरण।

७. श्रीकृष्णके द्वारा राजा, देवता, अवतार, हंस आदिका अनुकरण।

८. श्रीकृष्णका अपने सखाओंके साथ अत्यन्त प्रेमपूर्ण और समान व्यवहार।

इन बातोंके श्रवण, कीर्तन, स्मरण एवं चिन्तनसे हृदयमें सख्यरस प्रकट होता हैं। सख्यरसके प्रकट होनेपर निम्नलिखित अनुभाव स्वयं ही स्फुरित होने लगते हैं—

१. श्रीकृष्णके साथ गेंद खेलना, कुश्ती लड़ना, एक-दूसरेपर सवारी गाँठना आदि।

२. आपसमें खेल-कूदकर श्रीकृष्ण जैसे प्रसन्न हों; वैसी चेष्टा करना।

३. उनके साथ पलंगपर बैठना, झूलेपर घूलना, साथ सोना इत्यादि ।

४. श्रीकृष्णके साथ सुन्दर-सुन्दर अद्भुत विनोद।

५. श्रीकृष्णके साथ जल विहार।

३. श्रीकृष्णके साथ नाचना, गाना एवं बजाना।

७. उनके साथ गाय दुहना-चराना, कलेऊ करना, आँख-मिचौनी आदि खेलना, दूर हो जानेपर आपसमें होड़ लगाकर उन्हें छूना इत्यादि।

ये अनुभाव सख्यरसका अनुभव करनेवालोंके हृदयमें और परिपक्व होनेपर शरीरमें भी प्रकट हुआ करते थे।

श्रीकृष्णके प्रेमसे पगे रहना, उनकी कोई अद्भुत लीला देखकर स्तम्भित हो जाना, शरीर पसीज जाना रोमाञ्चित हो जाना, काँपना, विवर्ण हो जाना आदि सात्त्विक भाव उनमें स्पष्टरूपसे प्रकाशित हुआ करते हैं। आनन्दके आँसू, हर्षकी गाढ़ता आदि स्वाभाविक ही रहते हैं। सख्यरतिमें ऐश्वर्यका भान नहीं रहता। इसमें अपने सखाके प्रेमपर पूरा विश्वास रहता है। सख्यरसका यही 'स्थायी भाव' है। यही परिपुष्ट होकर रसका रूप धारण करता है। यही सख्यरति क्रमशः विकसित होकर प्रणय, प्रेम, स्नेह और रागका रूप धारण करती है। सख्यरतिमें मिलनकी इच्छा प्रबल रहती है। प्रणयमें ऐश्वर्यका प्रकाश होनेपर सखापर भी उसका कोई प्रभाव नही पड़ता। एक ओर ब्रह्मा और शिव श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं, तो दूसरी ओर एक सखा उनके बालोंपर पड़ी हुई धूलि झाड़ रहा है। प्रेममें दुःख भी उसको बढ़ानेवाला होता हैं। स्नेहमें एक क्षणके लिए भी अपने सखाकी विस्मृति नहीं होती। हृदय सर्वदा स्नेहसे भरा रहता है। आँखोमें आंसू और कण्ठ गद्गद, प्रियतमका गुणगान हुआ करता हैं। रागमें दुःखके निमित्त भी सुखके रूपमें अनुभव होते हैं। अश्वत्थामा श्रीकृष्णपर अत्यन्त तीखे बाण चलाता है, परन्तु अर्जुन उन्हें श्रीकृष्णको न लगने देकर अपने वक्षःस्थलपर ले जाते हैं। उन्हें मालूम होता है, मानों कोई पुष्पोंकी वर्षा कर रहा है। वे आनन्दमग्न हो रहे हैं।

दास्यरसकी भाँति ही सख्यरसमें भी वियोगके दोनों भेद होते है—जबतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती तबतक उत्कण्ठित-अवस्था और मिलनेके पश्चात् जब विरह होता है—तब वियोग-अवस्था। श्रीकृष्णसे मिलन होनेसे पहले पाण्डवोंकी, विशेष करके अर्जुनकी उत्कण्ठित अवस्था प्रसिद्ध है। मिलनके पश्चात्‌का वियोग भी पाण्डवोंके जीवनमें बहुत ही सुस्पष्ट रूपसे वर्णित हुआ है। भागवतके प्रथम स्कन्धमें अर्जुनने भगवान्‌का विछोह होनेपर जो विलाप किया है, वह बड़ा ही हृदयद्रावक एवं मर्मस्पर्शी है। भगवान्‌के मथुरागमनके पश्चात् व्रजके ग्वाल-बालों को जो वियोग हुआ है वह वर्णनातीत है। उनके जीवनमें जितने भी दुःखके अवसर आये है—दावानलमें जलना, कालीदहका विषैला जल पीना और अघासुरके मुखमें जाना आदि सबसे बड़ा दुख श्रीकृष्णके वियोग से हुआ है। उनके अन्तरमें विरहकी ज्वाला इस प्रकार प्रज्वलित होती रहती है कि भाण्डीर वटकी शीतल छाया, यमुनाकी बर्फ के समान ठण्डी धारा भी उसे शान्त न करके और भी धधका देती है। शरीर दुर्बल हो जाते हैं। आँखोंमें आँसू भरे रहनेके कारण नींद नहीं आती, उनका चित्त आलम्बनशून्य एवं जड़प्राय हो जाता है। उनके शरीर की एक-एक गाँठ टूटती रहती है। जगत्‌के व्यवहार भूलकर कहीं लोटते हैं, कहीं दौड़ते हैं, कहीं खिलखिलाकर हँसने लगते हैं, अपने आप न जाने क्या-क्या बका करते हैं और कभी-कभी मूर्च्छित भी हो जाते हैं। श्रीकृष्णके विरहमें ग्वाल-बालों की दशा भी गोपियोंके समान ही हो जाती है। श्रीरूपगोस्वामीके शब्दोंमें—

कंसारे विरहज्वरोमिजनितज्वालावलीजर्जरा
गोपाः शैलतटे तथा शिथिलतश्वासाङ्कुराः शेरते।
वारं वारमखर्वलोचनजलैराप्लाव्य तान्निश्चलान्
शोचन्त्यद्य यथा चिरं परिचयस्निग्धाः कुरङ्गा अपि॥

'हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारे विरहकी तरङ्गोंसे उत्पन्न ज्वालाएँ ग्वाल-बालोंको जर्जरित बना रही हैं। उनके श्वासका अङ्कुर भी अब क्षीण हो चला है। वे पर्वतकी तराइयोंमें निश्चेष्ट पड़े हुए हैं। इतने निश्चल हो रहे हैं वे कि उनके चिर-परिचित स्नेही हरिण बार-बार अपने आँसुओंकी अजस्र धारासे भिगोकर भी जब उन्हें नहीं उठा पाते, तब बहुत देरतक उनके लिए शोक करते हैं। भगवान्‌के विरहकी तो ऐसी अवस्था जिनके जीवनमें प्रकट हुई है, उन भाग्यवान ग्वाल-बालोंके सम्बन्धमें और क्या कहा जा सकता है?

ग्वाल-बालोंकी यह विरहावस्था व्यक्त लीलाके अनुसार है। इनके जीवनसे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि सख्यरसके उपसकोंमें भगवान्‌के विरहकी कितनी ऊँची अवस्थाका प्रकाश होना चाहिए। अन्तर्लीलामें तो श्रीकृष्ण के साथ इनका वियोग कभी होता ही नहीं। दास्यरसके समानही इसमें भी संयोगकी सिद्ध-तुष्टि और स्थिति नाम की तीनों अवस्थाएँ होती हैं। पहले-पहल भगवान्‌का दर्शन, जैसे पाण्डवोंको हुआ था, दुबारा-तिबारा दर्शन, जैसे कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय ग्वाल-बालोंको हुआ था और सर्वदा एक साथ रहना, जैसे कि ब्रजके ग्वाल-बालों का अन्तर्लीलामें रहता है—सब सख्यरसकी ही उपयुक्त अवस्थाएँ हैं। उनके सौभाग्यका भला कौन वर्णन कर सकता है, जो संतोंके परमानन्दस्वरूप आतमा, भक्तोंके परमाराध्यदेव भगवान् और प्रेमियोंके परम प्रियतम श्रीकृष्णके साथ—जिनके चरणोंकी धूलि बड़े-बड़े योगियों को कोटि-कोटि कल्पकी तीव्र तपस्यासे भी दुर्लभ है—इस प्रकार खेलते हैं, मानो कोई अपना ही समवयस्क, अपने ही जैसा साधारण बालक हो। यही भगवान्‌के प्रति सख्यरतिका फल, सख्यरस है। शान्त और दास्यरसकी अपेक्षा इनका वैलक्षण्य बहुत ही सुस्पष्ट है और सहृदयोंके अनुभवगोचर इस रसकी रसरूपता भी निर्विवाद है। श्री जीवगोस्वामीने दास्यरसका 'प्रीतिरस' के नामसे और सख्यरसका 'प्रेयोरस' के नामसे वर्णन किया है।

वत्सलरस

भगवान्‌के प्रति वात्सल्यरति ही विभाव, अनुभाव आदिके द्वारा व्यक्त होकर वात्सल्यरसका रूप ग्रहण करती है। इसके आलम्बन हैं—बालक भगवान् और उसके गुरुजन। अयोध्यामें शिशुरूप भगवान् श्रीराम और ब्रजमें शिशुरूप श्रीकृष्ण—ये दौनों ही वात्सल्य-भाजन हैं। सुकुमार शैशवसे लेकर कमनीय कैशोरतक वात्सल्यरति की अवस्था है। यौवनका प्रारम्भ होनेपर भी गुरुजनोंकी दृष्टिमें किशोर अवस्था ही रहती है। नवीन नीलकमलके समान साँवला शरीर, शिरीष कुसुम-सा कोमल अङ्ग, मरकतमणिके समान सुचिक्कण कपोलोंपर घुघराली अलकें, प्रभाव और ऐश्वर्यसे सर्वथा रहित नन्हे-से शिशुके रूपमें शैशवोचित चापल्य और व्याघ्रनख आदि भूषणोंसे विभूषित भगवान् अनुग्रहपात्रके रूप इस वात्सल्यके लोकोत्तर आलम्बन हैं। तोतली बोली—मानो मूर्तिमान मिठास, सरलताकी सीमा नहीं, गुरुजनोंके प्यारसे बार-बार उल्लासित एवं प्रफुल्लित होनेवाले, गुरुजनोंको बार-बार प्रणाम करनेवाले और बात-बातमें उनके सामने सकुचा जानेवाले, अपनी नन्ही-नन्ही हथेलियोंसे किसीको माखन और किसीको धन-रत्न लुटाने वाले बालरूप भगवान् गुरुजनोंके सम्पूर्ण स्नेहको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। वेद, उपनिषद्-दर्शन और भक्त जिनकी महिमा गाते-गाते अघाते नहीं, वे ही भगवान् वात्सल्यरति के वश होकर ऊखलमें बाँधे जाते हैं, डाँट-फटकार सुनते हैं और माँकी सांटीसे डरकर रोने लगते हैं। क्या ही अलौकिक माधुर्य हैं! अवश्य ही यह वात्सल्यरतिकी महिमा और श्रीकृष्णकी प्रेमपरवशता है।

श्रीकृष्णके गुरुजन—जैसे नन्द, यशोदा और वे गोपियाँ जिनके बच्चोंको ब्रह्माने चुरा लिया था—इसके 'आलम्बन विभाव' है। वे अपनेको श्रीकृष्णसे अधिक माता-पिता आदिके रूपमें मानते हैं। वे उनको दुलारते हैं, पुचकारते हैं और अपराध करनेपर दण्ड भी देते हैं। देवकी, कुन्ती, सान्दीपनि मुनि—ये सब भी गुरुजनोंकी ही श्रेणीमें हैं। यशोदा अपने प्यारे शिशुको माखन खिलाने

के लिए अपने हाथसे ही, बहुत-सी दासियोंके होनेपर भी, दही मथती हैं। वे श्रीकृष्णकी रक्षाके लिए गद्गद कण्ठ और अश्रुपूर्ण नयनोंसे श्रीकृष्णके शरीरसें मन्त्रों और देवताओंका न्यास करती है, उनके सिरपर रक्षा-तिलक करती हैं और भगवान्से देवी-देवताओंसे प्रार्थना करती रहती हैं। अभी पूरा प्रातःकाल भी नहीं हुआ होता, श्रीकृष्ण सोकर उठे भी नहीं होते, इनके स्तनोंसे दूधके रूपमें वात्सल्यरसकी धारा फूट पड़ती है। यदि कोई वात्सल्यरसका मूर्तिमान दर्शन करना चाहता हो तो माँ यशोदाका दर्शन कर ले। ये वत्सलरसकी अभिव्यक्ति नहीं, उसकी जननी हैं। नन्दबाबाके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है! जब श्रीकृष्ण उनके हाथकी अँगुली पकड़कर लड़खड़ाते हुए आँगनमें चढ़ते है; तब नन्दबाबाका स्नेह उमड़ पड़ता है, उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसू झर-झर झरने लगते हैं, पुलकित शरीरसे श्रीकृष्णको उठकर वे अपने हृदयसे लगा लेते हैं और सिर सूँवकर बार-बार चूमते हैं। उनके सुख-सौभाग्यकी कल्पना भी मनकी सीमा से परे है; उनका वर्णन तो किया ही कैसे जा सकता है।

वात्सल्य-रसके उद्दीपन विभावोंकी संख्या अपरिमेय है। श्रीकृष्णकी कुमार आदि अवस्थाएँ: उन अवस्थाओं में प्रस्फुटित सहज सौन्दर्य और उसके अनुकूल वेश-भूषा तथा चपलताएँ, बोलना, हँसना, खेलना, रोना, सोना, जगना, रूठना—यहाँतक कि बालोचित सभी क्रियाएँ उद्दीपन विभावके अन्तर्गत हैं। कुमार अवस्थाके तीन भाग होते है—आदि, मध्य और शेष। आदि अवस्थामें मध्य भाग और ऊरु कुछ स्थूल होते हैं। आँखोंके कोने श्वेत और बहुत-से दाँत। अङ्ग-अङ्गमें मृदुलताका साम्राज्य होता है। इस अवस्थामें बार-बार पैर उछालना, एक क्षणमें रोना तो दूसरे ही क्षणमें हँस देना, अपने पैरका अँगूठा चूसना और उतान पड़े रहना—यही चेष्टा होती है। गलेमें बघनखा ललाटपर रक्षा-तिलक, आँखोंमें अञ्जन कमरमें करधनी और हाथमें सूत—यही आभूषण होते हैं। नन्दरानी, नन्दबाबा इस शोभाको देख-देखकर कभी तृप्त नहीं होते, यही चाहते हैं कि निर्निमेष नयनोंसे इन्हें निहारते रहें। मध्य अवस्थामें आँखोंके कोनोंमें कुछ केसरिया रंग आता है। कभी कपड़ा पहनते हैं और कभी नग्न रहते हैं। कान छिदे हुए होते है। तोतली बोली बोलते हैं। आँगनमें घुटनोंके बल चलते हैं। नाकमें मोती हाथमें माखन; कमरमें घुंघरू—यही आभूषण होते हैं। इनकी मन्द-मन्द मुसकान और बालोचित चेष्टाओं को देखकर गुरुजन आनन्दित होते रहते हैं। शेष अवस्थामें कमर कुछ पतली और वक्षःस्थल कुछ ऊँचा हो जाता है। मस्तकपर घुंघराले बाल लहराते हैं। इस अवस्थामें कंधे-पर पीताम्बरकी चादर, जंगली पुष्पोंके आभूषण और छोटा-सा बेतका डण्डा आदि धारण करते हैं। ग्वाल-बालों के साथ खेलते हैं। गाँवके आस-पास उनके साथ बछड़ोंको चरा लाते हैं। छोटी-सी बाँसुरी और छोटी-सी सींग अपने अपने पास रखते हैं और कभी-कभी पत्तोंके बाजे बनाकर बजाते हैं। जो इनकी लीलाओंको देख-देखकर मुग्ध होते रहते हैं, वे ही वास्तवमें बड़भागी हैं।

पौगण्ड-अवस्थाका वर्णन सख्यरसके प्रसङ्गमें प्रायः आ ही गया है। आँखोंमें धवलिमा, सिरपर पगड़ी, वदनमें कंचुक, चरणोंमें मन्द-मन्द ध्वनि करनेवाले मनोहर नूपुर, एवं पीताम्बर धारण किये हुए श्रीकृष्ण इस अवस्थामें गौओंको चराने लगते हैं। ग्वाल-बालोंके साथ यमुनातटपर भी जाते हैं। किशोर अवस्थामें दोनों आंखोंके कोनोंमें किञ्चित् लालिमा आ जाती है। वक्ष स्थल ऊँचा होता है, हार धारण करते हैं। इसी समय नव-यौवनका उन्मेष होता है, परन्तु वात्सल्य-प्रेमवालोंको ये शिशु ही मालुम पड़ते हैं। दास्यरसवालोंको ये पौगण्ड अवस्थामें किशोरके समान मालूम पड़ते हैं। बचपनमें ये कहीं दूधकी कमोरी फोड़ देते हैं; तो कहीं आंगनमें बिखेर देते हैं। कहीं मथानीका डण्डा तोड़ देते हैं, तो कहीं माखन आँगनमें डाल देते हैं, बानरोंको खिला देते हैं, या ग्वाल-बालोंको बांट देते हैं। गोपियोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए इसी समय माखन-चोरी भी करते हैं। एक गोपी कह रही है—बहन, तनिक अनजान की तरह चुप होकर यह दृश्य देख तो लो—लताओंकी

आड़में-से धीरे-धीरे पैर रखता हुआ कन्हैया सशंङ्क भावसे इधर-उधर देखता हुआ माखन चोरी करनेके लिए कितनी चालाकी और मधुरताके साथ आ रहा है ! ठहरो ! तनिक मुझे देख लेने दो—भयभीत आंखें किस प्रकार इधर-उधर घूम रही हैं, ओठ सूखा जा रहा है। इस छलियाकी छलना भी कितनी मधुर है ! तनिक देखो तो सही !'

इस रसके अनुभाव भी औरोंकी अपेक्षा विलक्षण ही हैं; यथा—

१. गोदमें लेकर या हृदयसे लगाते हुए सिर सूंघना।

२. अपने हाथसे शरीरमें लगी हुई धूलझाड़ना; उबटन, तेल; फुलेल लगाना।

३. देवताओंसे रक्षाकी प्रार्थना करना, कवच बांधना; न्यास करना, आर्शीबाद देना।

४. अमुक वस्तु ले आओ, अमुक वस्तु रख आओ—इत्यादि आज्ञा करना।

५. दुलारना,-पुचकारना।

६. पशुओंसे, कांटेसे, नदीसे और भयके अन्य निमित्तों से रक्षा करना।

७. तुम्हें इस प्रकार रहना चाहिए, ऐसे नहीं रहना चाहिए—इत्यादि उपदेश करना।

८. चूमना, हृदयके लगाना, नाम लेकर पुकारना, उलाहना देना, डांटना इत्यादि।

नन्दरानी यशोदाके स्तनोंसे स्नेहाधिक्यके कारण दूध तो प्राय निकलता ही रहता है। कभी-कभी श्रीकृष्णके खेलोंको देखकर वे चकित रह जाती हैं। उस दिन जब उन्होंने अपने लाड़लेको गोवर्धन उठाये देखा तो इनका शरीर स्तम्भित हो गया। ये उनका आलिङ्गन भी नहीं कर सकीं। आंखोंमें इतने आंसू आ गये कि देख भी नहीं सकीं। और तो क्या—गला रुँध गया, ये उन्हें समझा भी न सकीं कि तुम ऐसा साहस क्यों कर रहे हो। अन्तमें इन्होंने यही निश्चय किया कि मैं प्रतिदिन भगवान्की अराधना करती हूँ, प्रतिदिन अपने पुत्रकी रक्षाके लिए उनसे प्रार्थना करती हूँ—उसीका यह फल है नहीं तो मेरा कुसुम-सा सुकुमार लल्ला इतना बड़ा पहाड़ भला कैसे उठा सकता है ? इन सात्विक भावोंके अतिरिक्त हर्ष निर्वेदादि भी पूर्वोक्त रसोंके समान ही होते हैं।

यह पहले कहा जा चुका है कि वत्सलरसमें ऐश्वर्यका लेश भी—चाहे वह गौरवकी दृष्टिसे हो; या सम्भ्रमकी दृष्टिसे—सर्वथा नहीं होता। अपने स्नेहपात्रके प्रति स्नेह करनेवाले की जो विशुद्ध रति है, उसीका नाम वात्सल्य भाव है, यही वत्सलरसका स्थायिभाव है। यशोदामें यह वात्सल्यरति स्वभावसे ही परिपूर्ण रहती हैं। औरोंमें यह कभी प्रेमके रूपमें और कभी रागके रूपमें प्रकट होती है। श्रीकृष्णके दर्शनकी व्याकुलता, मुनिजनोंके द्वारा पूजित होते समय भी उन्हें गोदमें बैठा लेना, हृदयका उनके स्नेहसे सर्वदा द्रवित रहना, उनके लिए, उनकी प्रसन्नता के लिए और उनकी संनिधिके लिए, दुखको भी सुखके रूपमें अनुभव करना—ये सब उसके लक्षण हैं।

इस रसमें भी पहले-पहले मिलनेके पूर्व उत्कण्ठा, एक बार मिलनेके पश्चात् विरह पूर्ववत् ही होते हैं। देवकी और कुन्तीकी उत्कण्ठा, श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेपर यशोदाका विरह कौन नहीं जानता ? यशोदाका ऐसा वर्णन आता है कि उन्हें अपने बालोंकी सुध नहीं रहती, व्यथित होकर इस प्रकार जमीनमें लोटतीं कि चोट लगने की भी परवाह नहीं रहती। 'हा पुत्र ! हा पुत्र ! कहती हुई अपनी छाती पीटतीं। वत्सलरसमें वियोगकी इतनी अवस्थाएं हो सकती हैं, होती हैं कि उनका वर्णन असम्भव है। विशेष करके चिन्ता; विषाद, निर्वेद, जड़ता, दीनता, चपलता, उन्माद और मोह—ये तो अत्यन्त अभिवृद्ध हो जाते हैं। थोड़े ही समयके लिए जब श्रीकृष्ण वनमें गौएँ चरानेके लिए चले जाते हैं तो नन्दरानीकी चाल धीमी पड़ जाती है। मति कुछ स्तब्ध रहती है। आँखें कई बार स्थिर हो जाती हैं, श्वास गरम आने लगता है। अपने पुत्रकी

अनिष्टाशङ्कासे वे क्षुब्ध हो उठती हैं। श्रीकृष्णके मथुरा और वहाँसे द्वारका चले जानेपर तो उनके विषाद की सीमा नहीं रही . वे कभी सोचतीं कि 'हाय' मैं कितनी अभागिनीं हूँ कि अपने पुत्रकी मनोहर जवानी नहीं देख सकी। उसके विवहका सुख देखना मेरे भाग्य में नहीं वदा था। मेरे जीवनको धिक्कार ! मैं उसे अब अपनी गोदमें नहीं बैठा पाती। इन गौओंसे अब मेरा कौन काम है, जिनका दही और माखन चुराकर लुटानेवाला ही दूर चला गया। कभी वे घरमें जातीं हैं, श्रींकृष्णकी बांसुरी अथवा छड़ीपर आंख चली जाती है, तो वे घण्टोंतक छड़ी की तरह ही खड़ी रह जाती हैं, शरीर हिलता-डोलता तक नहीं। जड़ता दूर होनेपर वे वड़ी दीनतासे प्रार्थना करने लगती हैं—'हे प्रभो' एक क्षणके लिए मेरे कन्हैयाको मेरी आंखोंके सामने ला दो; मैं जन्म-जन्म तुम्हारी ऋणियां रहूँगीं।' वे कभी-कभी विरहकी ज्वालासे चञ्चल हो उठती हैं। और नन्दबाबाको उलाहना देने लगती हैं कि 'तुमने मेरे हृदयको' जीवनसर्वस्वको, आंखोंके तारेको मथुरामें क्यों छोड़ दिया ? मेरे बच्चेको माखन-मिश्री मिलती होगी कि नहीं, क्या पता ? तुम यहां गोष्ठमें बैठकर आराम कर रहे हो।' वे कभी-कभी उन्मत्त होकर वृक्षों से, हरिनोंसे पूछने लगती हैं कि क्या तुमने कहीं मेरे श्यामसुन्दर को देखा हैं ? वे इतनी मोहित हो जाती हैं कि जब बहुत देरतक आंखें नहीं खुलतीं, तब नन्दबाबा अनेकों प्रकारके यत्न करके उन्हें जगानेकी चेष्टा करते हैं।

भगवान्का संयोग इस रसमें भी तीन प्रकारका ही माना गया है—'सिद्धि; 'तुष्टि और स्थिति।' जब श्रीकृष्ण पहले-पहल मथुरामें गये तो वहाँकी वे स्त्रियाँ, जिनका उनमें पुत्रभाव था, स्नेहकी रसधारासे आप्लावित हो गयीं। उनके स्तनोंसे दूधकी धारा प्रवाहित होकर उनके वस्त्रोंको भिगोने लगी। कुरुक्षेत्रमें जब यशोदा और श्रीकृष्णका मिलन हुआ तो माँ के हृदयमें कितनी तुष्टि और कितने रसका सञ्चार हुआ—वर्णन नहीं किया जा सकता। लोगोंने देखा, यशोदाके नयनों और स्तनोंसे रसकी निर्झरिणी प्रवाहित हो रही है और श्रीकृष्णका दिव्य अभिषेक सम्पन्न हो रहा है। श्रीकृष्णका नित्य-संयोग जो कि अन्तर्लीलामें सर्वदा एकरस रहता है, उसकी रसरूपताका, उसके आनन्दका वर्णन करना ही उसे नीचे उतारना है। प्रेम अन्तर्जगत्‌की वस्तु है। उसका कुछ वाह्यरूप है तो केवल सेवा। दास्यकी सेवामें और वात्सल्यकी सेवामें बड़ा अन्तर है। वह तो सख्यसे भी विलक्षण है। जिनके शुद्ध और भगवत्कृपापात्र हृदयमें इस भावका उदय और परिपोष हुआ है, वे ही इसका अनुभव कर सकते है।

वहुत-से काव्य-रसिकों और नाटयाचार्योंने भी वात्सल्य-भावके रसत्वको स्वीकार किया है। इस रसकी चमत्कार-कारिता निर्विवाद है। दास्यरसमें यदि भगवत्प्रेमका स्फुरण न होता रहे तो ऐसा समझना चाहिये कि दास्यरस अभी परिपुष्ट नहीं हुआ है। प्रेमकी स्फूर्ति बिना सख्यरस की तो कोई स्थिति ही नहीं है। परन्तु यह वात्सल्यरस उनकी अपेक्षा यह महान् विलक्षणता रखता है कि प्रतीति हो या न हो, यह ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण रहता है। जिस समय माता अपने शिशुकी ताड़ना करती है, उसकी चञ्चलताओं से घबराकर उसे डाँटती है—यहाँतक कि बाँध देती है और पीटती भी हैं—इन अबस्थाओंमें भी वात्सल्यभाव ज्यों-का-त्यों एकरस वना रहता है। यही इसकी अनन्यसाधारण विशेषता हैं। कभी-कभी यह दास्य और वात्सल्यसे मिश्रित ही होता है। किसीका सख्यप्रधान वात्सल्य, किसीका दास्यप्रधान वात्सल्य और किसीका उभयप्रधान वात्सल्य। वात्सल्यप्रधान सख्य और दास्य भी होते हैं। ये सब भेद और उनके उदाहरण श्रीरूपगोस्वामीके ग्रन्थोंमें द्रष्टव्य हैं।

मधुररस

सत्पुरुषोंके हृदयमें भगवान्के प्रति जो मधुर रति होती है, वही विभाव, अनुभाव आदिके द्वारा परिपुष्ट होकर मधुररसका रूप ग्रहण करती है। इस रसका इतना

अधिक विस्तार है कि यदि इसको अवस्थाओंके केवल नाम ही गिनाये जायँ तो एक बड़ा-सा ग्रन्थ बन सकता है। इसलिये यहाँ संक्षेपसे उनकी कुछ थोड़ी-सी बातें ही लिखी जायँगी। इसके आलम्बन हैं भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी वल्लभाएँ। भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्यकी त्रिभुवनमें किसीसे समता भी नहीं की जा सकती, उससे परेकी तो बात ही क्या ? उनकी लीलाका माधुर्य लोकोत्तर है। अत्यन्त रमणीय, अत्यन्त मधुर, समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त बलवान्, नित्य-नूतन, नवयुवा और प्रेम-परवश, मदनमोहन श्यामसुन्दर। लहराते हुए बाल और फहराता हुआ पीताम्बर । जिसकी आँखें एक बार क्षणभरके लिए उन्हें देख लें, वह सर्वदाके लिए उन्हींपर निछावर हो जाता है। प्रेम करनेवालोंके अनुकूल, कृतज्ञ और रहस्यको गुप्त रखनेवाला यह मूर्तिमान शृङ्गार है अथवा प्रेम। अङ्ग-अङ्गसे उन्मादकारी रस, मधुमय आनन्द छलक रहा है। धीर, वीर और गम्भीर ललित और उदात्तचरित्र। ये मोहन भला, किसका मन नहीं मोह लेते ? व्रजदेवियाँ तो इनपर निछावर हैं।

श्रीकृष्णकी वल्लभाएँ— द्वारकाकी, वृन्दावनकीअत्यन्त प्रेममय, सहृदय और श्रीकृष्णको ही अपना जीवन-सर्वस्व माननेवाली, नित्य किशोरावस्था। प्रतिक्षण माधुरीकी धारा प्रवाहित होती रहती है। हृदय प्रेम और आह्लाद की तरङ्गोंसे उच्छ्वलित। इनमें व्रजकी गोपियाँ प्रधान हैं, गोपियोंमें श्रीराधाके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या ? वे भगवान्‌की स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति हैं श्रीकृष्ण उनके अपने और वे श्रीकृष्णकी अपनी, श्रीकृष्ण श्रीराधा और श्रीराधा श्रीकृष्ण। भेद-भावकी माया-छायामात्र भी नहीं। ऐसी स्थितिमें राधाकृष्णके पारस्परिक भावको कहा जाय तो कैसे, सोचा जाय तो कैसे ? एकहीके दो रूप, दोके अनेक रूप, यही लीलाका स्वरूप हैं। सभी गोपियाँ श्रीराधाकी ही अंश-विशेष, शक्तिविशेष हैं। उनमें स्वकीया और परकीया भेद लीलामात्र है, सो भी लीलारसकी परिपुष्टि के लिए। एक गोपी कहती है कि 'नन्दरानी मुझसे बड़ा स्नेह करती हैं, सखियाँ मुझे प्राणोंसे भी प्रिय समझती हैं और वृंदावन वैकुण्ठसे भी उत्तम है। परन्तु यदि कात्यायनीकी आराधनाके फलस्वरूप मयूर-पिच्छधारी, गुञ्जाकी माला पहने हुए, मदनमोहन श्रीकृष्ण प्राणप्रियके रूपमें न मिलें तो इन सबसे मुझे क्या लाभ ?' गोपियोंकी महिमा अनन्तकोटि मुखोंसे भी नहीं कही जा सकती। उनके प्रेमका उल्लास आर्यमर्यादाकी सीमा पार कर गया है। फिर भी सतीशिरोमणि अरुंधती आदि श्रद्धापूर्ण हृदयसे उनके चरित्र और सौभाग्यकी महिमा गाकर अपनेको कृतकृत्य समझती हैं। वे वनमें रहनेवाली गोपबालाएँ इतनी मधुर हैं, इतनी रसप्लावित हैं कि लक्ष्मीका प्रेम-सौन्दर्य इनके सामने धूमिल पड़ जाता है। गोपियोंकी अपेक्षा भी श्रीकिशोरीजीकी विशेषता दिखाने के लिए 'उज्वलनीलमणि' में एक कथा का उल्लेख हुआ है।

'रासके समय भगवान् गोपियों के प्रेमकी और भी अभिवृद्धि करने के लिए एक कुञ्जमें जाकर छिप गये। गोपियोंको उनके बिना चैन कैसे पड़ती। वे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसी कुञ्जमें पहुँत गयीं, जिसमें श्रीकृष्ण छिपे हुए थे। अब पकड़े गये, । नटवर श्रीकृष्णने वहीं एक लीला रच दी—द्विभुजसे चतुर्भुज हो गये। गोपियाँ देखकर सकुचा गयीं। उन्हें इस ऐश्चर्यमय चतुर्भुज रूपसे क्या काम ? ये तो भक्ति-नम्र हृदयसे दण्डवत्-प्रणाम करनेके योग्य हैं ! वे उनके चरणोंमें नमस्कार करके लौट गयीं। जब यह बात श्रीराधाके कानोंमें पहुँची, तब उन्होंने कहा—'चलो तनिक मैं भी तो देखूं, यहाँ ईश्वर अथवा विष्णुका क्या काम ? हो-न-हो हमारे नटवर मनमोहन श्यामसुन्दरकी ही कोई लीला होगी।' श्रीकिशोरीजीके वहाँ पहुँचते ही श्रीकृष्णको यह बात भूल गयी कि मैं चतुर्भुज रूप धारण किये हुये हूँ। अपनी प्राणप्रियाके दर्शनमात्रसे उनके कृत्रिम ऐश्वर्यका लोप एवं सहज माधुर्यका उदय हो गया। यहीं गोपियों और श्रीराधाका अन्तर परिस्फुट हो जाता है। गोपियाँ ऐश्वर्य सहन नहीं कर सकतीं, उन्हें केवल माधुर्य चाहिये और श्रीजीके सामने ऐश्वर्य टिक नहीं सकता, मधुर रूपमें रहने

के लिए ही श्रीकृष्ण विवश हैं। श्रीराधाका श्रीकृष्ण-के प्रति जितना अधिक प्रेम है, उससे भी अधिक श्रीकृष्णका राधाके प्रति है। यहाँ न्यूनाधिक्यका तो कोई प्रश्न ही नहीं है, दोनों प्रेमस्वरूप हैं।

मधुररसके उद्दीपनोंकी संख्या इतनी अधिक है कि उनको बतलाना भी कठिन है। यहाँ अत्यन्त संक्षेपमें बहुत थोड़े-से लिखे जाते हैं—

१. थोड़ी सेवासे रीझना, असह्य अपराध हो जानेपर भी मुस्कुरा देना, दूसरे के लवमात्र दुःखसे भी कातर हो जाना इत्यादि भगवान्‌के स्वभावसिद्ध गुण हैं।

२. इतनी रसमयी, मधुमयी और अश्रुतपूर्व प्रेमपूर्ण वाणी, जो प्राणोंमें और हृदय में अमृतका सिञ्चन करती है।

३. भगवान्‌की किशोर, यौवन आदि अवस्थाएँ, उनका रूप-लावण्य, सौन्दर्य, अभिरूपता, माधुर्य और मृदुलता आदि शारीरिक विशेषताएँ।

४. वंशीबादन, नृत्य, सुन्दर खेल: गोदोहन, गोवर्द्धन-उद्धार, गवाह्वान और मत्तगतिसे गमन इत्यादि लीलाएँ।

५. वस्त्र, आभूषण, माला, अनुलेपन आदि शारीरिक अलंकार।

६. वंशी और शृङ्गकी ध्वनि, मधुर गायन, शरीरकी दिव्य सुगन्ध, आभूषणोंकी झनकार, चरणचिह्न, उनका शिल्प-कौशल आदि।

७. श्रीकृष्णका प्रसाद, मयूरपिच्छ, गुञ्जा, धातुएँ, सखाओंका दीख जाना, गोधूलि, गोवर्द्धन, यमुना, कदम्ब, रासस्थली; वृन्दावन, भौंरे, हरिन, कुञ्ज, लताएँ आदि।

८. मेघ, विद्युत, वसन्त, चाँदनी, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु, सुन्दर-सुन्दर पक्षी आदि।

अनुभाव तीन प्रकारके होते हैं—अलंकार, उद्भास्वर और वाचिक। भाव, हाव, हेला—ये तीन शारीरिक। शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य—ये सात विना प्रयास ही होनेवाले तथा लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित्, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित, विकृत और चकित दस स्वाभाविक—ये बीस 'अलंकार' कहे जाते हैं। शरीरपरसे वस्त्रका गिर जाना, बाल खुल जाना, अङ्ग टूटना, लम्बी साँस चलना—ये सब 'उद्भास्वर' अनुभावके अन्तर्गत हैं। आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप आदि बारह प्रकारके वाचिक अनुभाव होते हैं। इनके अतिरिक्त मौग्ध्य और चकित नामके दो अनुभाव और भी होते हैं। अपने प्रियतमसे जानी हुई वस्तुको भी अज्ञानीके समान पूछना, यह 'मौग्ध्य' है और भयका स्थान न होनेपर भी भयका बहाना करके प्रियतमके पास पहुँच जाना— जैसे भौंरेसे डरकर श्रीकृष्णसे लिपट जाना, यह 'चकित' अनुभाव है। इस रसमें सभी प्रकारके सात्त्विक भाव उदय होते हैं—

१. स्तम्भ—हर्षसे, भयसे, आश्चर्यसे, विषादसे अथवा अमर्षसे स्तम्भित हो जाना।

२. स्वेद—भगवान्‌के संस्पर्श, दर्शन-आदिजनित आनन्दसे, भयसे अथवा क्रोधसे शरीरका पसीजने लगना।

३. रोमाञ्च—आश्चर्यसे, हर्षसे अथवा भयसे शरीरका रोमाञ्चित हो जाना।

४. स्वरभङ्ग—विषादसे, विस्मयसे, अमर्षसे, भयसे अथवा हर्षसे कण्ठका रुद्ध हो जाना, वाणीका स्वाभाविक ढंगसे नहीं निकलना।

५. कम्प—त्राससे, हर्षसे और अमर्षसे शरीरका काँपने लगना।

६. विवर्णता—विषादसे, अथवा भयसे शरीरका विवर्ण हो जाना। (चेहरा फक हो जाना।)

७. अश्रुपात—हर्षसे, रोषसे, विषादसे आँसू गिरना।

८. प्रलय—सुखसे या दुःखसे शरीर और मनका अविचल हो जाना।

ये अपनी अभिव्यक्तिके तारतम्यसे धूमायित, ज्वलित, दीप्त, उद्दीप्त और सुदीप्त भेदसे पाँच प्रकारके होते हैं। यों तो सभी रसोंमें इन सात्त्विक भावोंका उदय होता है, परन्तु उनकी पूर्णता मधुररस में होती है। निर्वेद आदि तीसों भाव उग्रता और आलस्यको छोड़कर पूर्णरूपसे इस मधुररसमें ही अभिव्यक्त होते हैं। यदि विभाव, अनुभाव; सात्त्विक भाव—सबके लक्षण और उदाहरणकी चर्चा की जाय तो विशाल ग्रन्थ तैयार हो सकता हैं। एक-एकके अनेक-अनेक भेद होते हैं। जैसे निर्वेद ही अनेक कारणोंसे होता है। वियोगके कारण होनेवाले निर्वेदसे श्रीकिशोरीजी ललिता सखीसे कह रही हैं—

न क्षोदीयानपि सखि मम प्रेमगन्धो मुकुन्दे
क्रन्दन्तीं मां निजसुभगताख्यापनाय प्रतीहि।
खेलद्वंशीवलयिनमनालोक्य तं वक्त्रबिम्बं
ध्वस्तालम्बा यदहमहह प्राणकीटं बिभर्मि॥

'हे सखी! मुझमें श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी प्रेम नहीं है, तुम विश्वास करो; मेरा श्रीकृष्णमें बड़ा प्रेम था और मैं उनकी सर्वश्रेष्ठ प्रेमपात्र थी, अपने इस सौभाग्यकी ख्यातिके लिए ही मैं रो रही हूँ। सखि! प्रेमकी यह कैसी बिडम्बना है कि राग, स्वर, ताल और मूर्च्छनाके साथ बाँसुरीमें स्वर-लहरी भरते हुए श्यामसुन्दरके मुख-चन्द्रको देखे बिना ही, जीवनका सहारा टूट जानेपर भी मैं अपने प्राणरूपी कीड़ोंको जो मुझे निरन्तर डँस रहे हैं, धारण कर रही हूँ और इतना ही नहीं, उनका पालन कर रही हूँ।' श्रीजीके इन वचनों में कितना निर्वेद है, इसका अनुभव कोई सुहृद ही कर सकता है। इसी प्रकार सभी भाव श्रीजीके और गोपियोंके जीवनमें व्यक्त हुए हैं।

इस रसमें 'मधुररति' ही स्थायिभाव है। उसके आविर्भावके सात कारण बतलाये गये हैं। यथा—

१. अभियोग—अपनी चेष्टाओंसे हृद्गत भावोंका प्रकाश, वह चाहे प्रियतमके सम्मुख ही हो अथवा दूसरा कोई जाकर उससे कहे।

२. विषय—शब्द-स्पर्शादि पाँच विषयों-से किसी एकका या सबका आकर्षण—जैसे भगवान्‌की मधुर वाणी, वंशींध्वनि, अकस्मात् स्पर्श, सुन्दर रूपका दीख जाना इत्यादि।

३. सम्बन्ध—उनके कुल, रूप आदि सामग्रीके गौरवसे उनके साथ सम्बन्ध-स्थापन।

४. अभिमान—संसारमें यदि बहुत-सी उत्तम और रमणीय वस्तुएँ हैं तो वे रहें, मुझे तो यही चाहिये—इस प्रकार दृढ़ निश्चय।

५.—श्रीकृष्णकी विशेषताएँ—श्रीकृष्णके पदचिह्न, गोष्ठ और प्रियजन जो उनसे प्रेम करते हैं, उनका दर्शन, मिलन, वार्तालाप।

६. उपमा—उनके समान कोई-सी भी वस्तु देखकर उनकी स्मृतिमें तल्लीन हो जाना। जैसे बादल देखकर घनश्यामकी स्फूर्ति, कमल देखकर कमलके समान नयनोंकी स्फूर्ति—इत्यादि।

७. स्वभाव—यह दो प्रकारका होता है, एक निसर्ग और दूसरा 'स्वरूप'। दृढ़ अभ्यास करते-करते जो संस्कार बन गये हैं, गुण, रूप और नामके किंचत् श्रवणमात्रसे उनका उद्बोधन निसर्गके नामसे कहा जाता है—जैसे रुक्मिणीका। 'स्वरूप' वह है, जिसमें किसी निमित्तकी आवश्यकता नहीं होती, स्वतःसिद्ध प्रेमभाव होताहै—जैसे व्रजदेवियों का।

मधुररति ही क्रमशः विकसित होकर प्रेम, स्नेह मान, प्रणय, राग, अनुराग और भावके रूपमें परिणत होती है। उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें कहा गया है कि 'जैसे ईखका नन्हा-सा अंकुर क्रमशः ईख, रस, गुड़, खाँड़, चीनी,

मिश्री और ओलेका रूप धारण करता है, वैसे ही यह रति भी भावके रूपमें परिणत होकर पूर्णताको प्राप्त होती है। रतिसे भावपर्यंत सभी 'प्रेम' शब्दके द्वारा कहे जाते हैं। प्रेमी और प्रियतमके उस भावसम्बन्ध को, जो नाशका कारण उपस्थित होनेपर भी नष्ट नहीं होता, 'प्रेम' कहते हैं। इसके प्रौढ़, मध्य और मन्द—तीन भेद होते हैं। वियोगकी असहिष्णुता, और यदा-कदा किंचत् विस्मृति—क्रमशः यही तीनोंके स्वरूप हैं। यही प्रेम जब और भी उद्दीप्त होकर हृदयको अतिशय द्रवित कर देता है, जिससे दर्शन-स्पर्शमें कभी भी तृप्ति नहीं होती, तब उसे 'स्नेह' कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं—अङ्गसङ्गमें अतृप्ति, दर्शनमें अतृप्ति और नाम-गुणके श्रवण आदिमें अतृप्ति। ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। 'स्नेह' दो प्रकारका होता है—'घृतस्नेह' 'मधुस्नेह'। पहलेमें कुछ आदरभाव रहता है और दूसरे में केवल अतिशय ममता। 'घृतस्नेहमें' थोड़ा उन्माद और अपनापन भी रहता है। घृतस्नेहमें 'मैं उनका हूँ' यह भाव रहता है और मधुस्नेहमें 'वे मेरे हैं'—यह भाव स्नेह ही उत्कर्षको प्राप्त होकर नवीन माधुर्यके साथ 'मान'के रूपमें प्रकट होता है। इसके दो भेद हैं—उदात्त और ललित ! 'उदात्त मान'में घृतस्नेहकी विशेषता रहती है—अनुकुलता कम। 'ललित मान'में मधुस्नेहकी प्रधानता रहती है—प्रतिकूलता अधिक और अनुकूलता कम। यही मान जब सम्भ्रम-रहित होकर अत्यन्त विश्वासके साथ परिपक्व अवस्थाको प्राप्त होता है—'तब 'प्रणय' नाम धारण करता है। प्रणय दो प्रकार का होता है—मैत्र' और 'सख्य'। विनययुक्त विश्वास 'मैत्र' है और प्रियतमको अपने वशमें रखनेवाला उन्मुक्त विश्वास 'सख्य' है। यह प्रणय ही आगे चलकर रागके रूपमें अनुभवका विषय होता है।

जिसमें अधिक-से-अधिक दुःख भी सुखके रूपमें ही अनुभव होने लगता है, प्रणयकी उस उत्कृष्ट अवस्थाको ही 'राग' कहते हैं। यही गुप्त रहनेपर 'नीली राग' और प्रकट होनेपर 'श्यामा राग'के नामसे कहा जाता है। और भी इसके अनेकों भेद हैं। यह राग प्रतिक्षण वर्द्धमान और नवनवायमान होकर 'अनुराग' के रूपमें प्रकट होता है। यह प्रतिक्षण अनुभूयमान प्रिय-समागमको और प्रियतमको भी नित्य नूतन बनाता रहता है। इस अवस्थामें ऐसा मालूम होता है—मेरे साथ उनका अभी मिलन हुआ है और अभी मैंने उन्हें पहले-पहले देखा है। इसमें प्रेमी और प्रियतम एक दूसरेके अधीन रहते हैं। प्रियतमके सम्मुख रहनेपर भी वियोगकी आशङ्कासे मृत्युके समान दुःखका अनुभव होने लगता है और इस अवस्थाको देखकर स्वयं प्रियतम श्रीकृष्ण भी चकित-स्तम्भित रह जाते हैं। इसका नाम 'प्रेमवैचित्त्य' है। अनुराग की इस स्थितिमें संयोग होने पर भी अतृप्ति की सीमा नहीं रहती। ऐसी लालसा होती है—यदि मैं बाँस बन जाती तो बाँसुरीके रूप में नित्य-निरन्तर प्रियतमके अधरोंकी सुधा-मधुरिमाका आस्वादन करती रहती। यदि कहीं इस अवस्थामें प्रियतमका विछोह हुआ तो जहाँ दृष्टि जाती है, वहीं उनके दर्शन होते हैं। इसी अवस्थाके सम्बन्धमें कहा गया है कि संयोगसे वियोग ही उत्तम है; क्योंकि संयोगमें अपने प्राणनाथ अकेले रहते हैं और वियोगमें सारा संसार ही उनका रूप हो जाता है।

यद्यपि प्रेमकी सभी अवस्थाएँ स्वसंवेद्य एवं अनिर्वचनीय हैं, तथापि अबतक जिनका वर्णन हुआ हैं, वे रसिकोंके द्वारा अनुमेय तथा ज्ञेय हैं। भगवान्की द्वारकास्थित नित्य सहचारियोंमें भी इनका प्रकाश होता है और व्रजदेवियोंमें तो ये सहज स्वभावसिद्ध रूपसे ही रहती हैं। यह अनुराग ही जब परसंवेद्यतासे ऊपर उठकर स्वसंवेद्य रूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है, तब प्रेमी अनुरागीके रूपमें न रहकर अनुरागस्वरूप हो जाता है, श्रीकृष्णकी अनुभूतिका सुख, प्रेमकी अनुभूतिका सुख और सुखकी ऐसी अनुभूति होती है, जिसे अनुभूति कहना भी नहीं बनता, तब उस अनुरागकी ही 'भाव' संज्ञा होती है। द्वारकाकी श्रीकृष्णपत्नियोंके लिए भी यह अत्यन्त दुर्लभ है, व्रजकी देवियोंमें इसीका नाम 'महाभाव' है। दूसरे किसीको भी इसकी उपलब्धि नहीं होती। यह अमृतस्वरूप श्रेष्ठ रस है, इसे 'आनन्दकी सीमा' कहते

हैं। इसमें दिव्य प्रेमी दिव्यतास्वरूप ही होता है। इसके दो भेद हैं—'रूढ महाभाव'। और 'अधिरूढ, महाभाव' जिस महाभावमें सात्त्विक भाव उद्दीप्त रहते हैं, उसे 'रूढ महाभाव' कहते हैं। इसमें प्रियतमके दर्शन-सुखमें बाधक होनेके कारण पलकोंका गिरना भी असह्य हो जाता है—'यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति ।' (श्री भा० १०. ८२. ४०) इस स्थितिके प्रेमीको—व्रजदेवियोंको देखननेवाले प्रेम-समुद्रमें डूबने-उतराने लगते हैं। स्वयं लक्ष्मी भी चकित—स्तम्भित हो जाती हैं। इस परम रसमें कल्पान्त-पर्यन्त रहनेपर भी एकक्षण-जितना भी मालूम नहीं होता। प्रियतमको सुख मिलनेपर भी कहीं उन्हें कष्ट न पहुँच जाय, इस आशंकासे खेद होने लगता है। गोपियाँ अपने वक्षःस्थलपर श्रीकृष्णके चरण-कमल रखते समय डरने लगती हैं कि कहीं इसकी कर्कशता उनके दुःखका कारण न हो जाय—'भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।' श्री भा० (१०. ३१. १८) प्रेमकी इस सर्वोत्कृष्ट भूमिकामें, जहाँ मोह आदि प्राकृत भावोंका प्रवेश कदापि सम्भव नहीं है, अनेकों, परायेको, सबको भूल जाना और श्रीकृष्णके बिना एक क्षणका भी कल्पसे अधिक मालूम होना इस 'रूढ़ महाभाव' की असाधारण विशेषता है—'त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।'

(श्री भा. १०.३१.१५)

रूढ महाभावमें जो अनुभाव होते हैं, उनकी अपेक्षा और भी विशिष्ट—जिनका निर्वचन नहीं किया जा सकता—'अधिरूढ महाभाव' में प्रकट होते है। यदि समस्त मोक्षसुख अथवा ब्रह्मसुखको और त्रैकालिक संसार-सुखको एक स्थानपर एकत्रित कर दिया जाय और संसारके समस्त त्रैकालिक दुःखोंको दूसरे स्थानपर तो ये दोनों ही इस अधिरूढ महाभावके सुख-दुःखरूपी महासागरकी एक बूंदके समान भी नहीं हो सकते। यह स्मरण रखना चाहिये कि यहाँका दुःख जागतिक दुःख-जैसी कोई वस्तु नहीं है। यह भी दिव्य रसका ही एक रूप है। इस दुःखके लेशमात्रकी समतामें संसारके समस्त सुख तुच्छ हैं। इसीसे यह दुःख भी परम पुरुषार्थ प्रेमका अत्यन्त उत्कृष्ट स्वरूप है। 'अधिरूढ महाभाव' के दो प्रकार हैं— 'मोदन' और 'मादन'। जिसमें सात्त्विक भाव प्रेमी और प्रियतम दोनोंमें ही उद्दीप्तरूपसे प्रकट रहते हैं, दोनों ही स्तम्भित-कम्पित रहते हैं, उसको 'मोदन' कहते हैं। दोनोंको इस अवस्थामें देखकर प्रेमी भी विक्षुब्ध हो जाते हैं। दोनोंके प्रेमकी सम्पत्ति समस्त चराचरकी प्रेम-सम्पत्तिसे बढ़ जाती है। यह मोदन ही विरहकी अवस्थामें 'मोदन' कहा जाता है। इसमें भी विरहकी विवशतासे प्रिया-प्रियतम दोनोंमें ही सात्त्विक भाव सूद्दीप्त रहते हैं। इसके अनुभाव भी औरोंकी अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण हैं। इस मोदन-दशामें द्वारकास्थित अन्य पत्नियोंके द्वारा आलिङ्गित होनेपर भी राधाका स्मरण करके श्रीकृष्ण मूर्छित हो जाते हैं और ऐसा अनुभव करते हैं कि मैं वृन्दावनमें यमुनातटवर्ती निकुञ्जमें श्रीजीके साथ रास-विलास कर रहा हूँ। असह्य दुःख स्वीकार करके भी जिस प्रकार अपने प्रियतम सुखी हों, वही चेष्टा इसमें की जाती है। इस सम्बन्धमें गोपियोंका कितना सुन्दर भाव है, यह उन्हींके शब्दोंमें सुननेयोग्य है—

स्यान्नः सौख्यं यदपि बलवद्गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे
यद्यल्पापि क्षतिरुदयते तस्य मागात्कदापि ।
अप्राप्तेऽस्मिन् यदपि नगरादार्तिरुग्रा भवेन्नः
सौख्यं तस्य स्फुरति हृदि चेत्तत्र वासं करोतु ॥

'यदि श्रीकृष्ण वृन्दावन आ जायँ तो हमें बड़ा सुख होगा, इसमें संदेह नहीं। परन्तु यदि यहाँ आनेसे उनकी तनिक भी क्षति हो, तो वे यहाँ कभी न आवें। यद्यपि यहाँ न आनेसे हमें महान् दुःख होगा, लेकिन यदि वहां रहनेमें ही उन्हें सुख होता है तो वे सुखपूर्वक वहीं निवास करें।' कहना न होगा कि गोपियोंका यह भाव प्रेमकी अत्यन्त ऊँची स्थितका उद्गार है। इस स्थितके प्रेमीका जीवन, उसका श्वास-प्रश्वास निखिल ब्रह्माण्डमें प्रेमका संचार कर देता है। इस अवस्थाका प्रेमी जब तारस्वरसे रुदन करने लगता है, तब पशु-पक्षी भी—यहाँतक कि लता-वृक्ष भी उसके साथ रोने लगते हैं।

प्रेमी अपनी मृत्युकी आशङ्कासे इस जन्ममें प्रियतमका मिलन असम्भव देखकर यह अभिलाषा करने लगता है कि मेरे शरीरके पञ्चभूत मृत्युके पश्चात् भी प्रियतमकी संनिधिमें रहकर उनकी सेवामें लगें—

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांसे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम् ।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकरे ज्योतिस्तदीयाङ्गन
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः ॥

'शरीरकी मृत्यु हो जाय, पांचों भूत अपने-अपने मूल कारणमें विलीन हो जायें—इसमें मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं है। परन्तु उनके सम्बन्धमें परमात्माको प्रणाम करके मैं एक वरदानकी प्रार्थना करती हूँ। जिस बावलीका वे जल पीते हैं उसमें मेरे शरीरका जलांश, जिस दर्पणमें वे अपना मुख देखते हैं, उसमें मेरे शरीरकी ज्योति, उनके आंगनके आकाशमें मेरे शरीरका आकाश, उनके मार्गमें मेरे शरीरकी मिट्टी और उनके पंखेमें मेरे शरीरकी हवा मिल जाय।' प्रेमकी कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति है! यही मोदन दशा आगे चलकर दिव्योन्मादका रूप धारण करती है। इसमें प्रेमी प्रियतमके लिए उनके न होनेपर भी शैया सज्जित करता हैं, अपना श्रृङ्गार करता है और विरहोद्भ्रान्त होकर नाना प्रकारकी चेष्टा करता है। प्रियतमके सुहृदोंको देखकर अनेकों प्रकारके प्रलाप करने लगता है। जल्प, प्रजल्प, आदिके भेदसे वे दस प्रकारके होते हैं, जो श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धान्तर्गत 'भ्रमरगीत'में सुस्पष्टरूपसे प्रकट हुए हैं प्राय; ये भाव श्रीराधामें ही पूर्णरूपसे प्रकाश पाते हैं।

रतिसे लेकर महाभावपर्यन्त जितने भी भाव हैं वे सब जब उल्लसित हो जाते हैं, तब संयोग-अवस्थामें आह्लादिनीका सार एवं सर्वश्रेष्ठ 'मादन' नामका परात्पर भाव उदय होता है। इसका उदय राधाके अतिरिक्त किसीमें नहीं होता। इसकी स्थिति विचित्र ही होती है। भगवान्‌का सर्वदा संयोग रहनेपर भी उनके वक्षःस्थलपर नित्य विराजमान वनमालाके साथ इस अवस्थामें ईर्ष्या होने लगती है और ऐसे भाव उठने लगते हैं, कि 'री वनमाले! तू हमारा तिरस्कार करके नित्य-निरन्तर प्रियतमके वक्षःस्थलपर विहार करती रहती है। यह तो हमलोगोंके प्रति तुम्हारा विद्वेष है। यहां यह नहीं भूलना चाहिये कि इस अवस्थाके ईर्ष्यादि भाव भी दिव्य होते हैं। इस मादनकी अनेकों दशाएँ हैं और अनिर्वचनीय गतियाँ भी। संयोगलीलाके अधिकांश भेद इसीके अन्तर्गत हैं। लीलाभेदसे जो भाव भेद होते हैं, उनकी कल्पना भी साधारण चित्तमें नहीं आ सकती। मधुररसमें यही सब लोकोत्तर चमत्कारी भाव, जो कि रसरूप हैं, विकास और पूर्णताको प्राप्त होते हैं। श्रीराधाजी महाभाव-स्वरूपिणी हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें समस्त भावोंकी अपेक्षा इस महाभावकी उत्कृष्टताका वर्णन करके कहा गया है—

ह्लादिनीर सार अशं तार प्रेम नाम।
आनन्द चिन्मय रस प्रेमेर आख्यान॥
प्रेमेर परम सार महाभाव जानि।
सेइ महाभावरूपा राधा ठाकुरानि॥
प्रेमेर स्वरूप देह प्रेमे विभावित।
कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठा जगते विदित॥
सेइ महाभाव हय चिन्तामणि-सार।
कृष्ण-वाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य यार॥
महाभाव-चिन्तामणि राधार स्वरूप।
ललितादि सखी यार कायव्यूहरूप॥

यह मधुर महाभावरूपा परिपुष्ट मधुररति ही 'मधुररस' 'उज्जवल रस' अथवा 'दिव्य श्रृङ्गाररसके' नामसे कही जाती है। यद्यपि इस अवस्थामें प्रिया-प्रियतमका वियोग किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है, तथापि संयोगकी परिपुष्टिके लिए वह भी होता है। इसलिये इस रसके दो भेद हो जाते हैं—एक तो 'संयोग- और

दूसरा 'वियोग'। वियोगकी चार अवस्थाएँ होती हैं। 'पूर्वराग' 'मान' 'प्रेमवैचित्त्य' और 'प्रवास'। श्रीकृष्णके साक्षात् दर्शनसे, स्वप्न दर्शनसे अथवा चित्र दर्शनसे पूर्वरागकी उत्पत्ति होती है। वन्दीजन, दूती, सखी और किसी गायकके मुखसे श्रीकृष्णके सद्‌गुण, सौन्दर्य आदिका श्रवण करनेसे भी पूर्वरागका संचार होता है। मधुररतिके उदयके प्रसङ्गमें जो अभियोग आदि हेतु बतलाये गये हैं, वे सब इसमें भी कारण हैं। यह 'प्रौढ़' 'समञ्जस' और 'साधारण' भेदसे तीन प्रकारका होता है। इसमें व्याधि, शङ्का, असूया आदि सभी संचारि भावोंका उदय होता है। प्रियतम की प्राप्तिके लिए लालायित रहना, चित्तका उद्विग्न होना, नींद न आना, शरीरका दुबलापन, जड़ हो जाना, चित्तका व्यग्र होना, शारीरिक व्याधि, उन्माद, बेहोशी और मृत्युपर्यन्त तककी अवस्थाएँ पूर्वरागमें भी प्राप्त होती हैं। प्रियतमका स्मरण, उनकी प्राप्तिके उपायकी चिन्ता- उनके गुण, नाम, लीला आदिका कीर्तन, पत्र-प्रेषण, माल्यार्पण आदि इसके विशेष चिह्न हैं। मानका प्रसङ्ग बहुत ही प्रसिद्ध है और भावोंके प्रसङ्गमें 'प्रेमवैचित्य'का उल्लेख किया जा चुका हैं। इसलिये उनका पिष्टपेषण उचित नहीं जान पड़ता।

मिलनके पश्चात् प्रिया-प्रियतमके समागममें जो व्यवधान होता है, उसे 'प्रवास' कहते हैं। यह दो प्रकारका होता है—एक तो जान-बूझकर और दूसरा विवशतासे अनजानमें। थोड़ी दूर और थोड़ी देरका प्रवास एवं बहुत दूर और बहुत दिनोंका प्रवास; इसी प्रकार भूत; भविष्य और वर्तमानका प्रवास, दैवी कारणोंसे, अथवा लौकिक कारणोंसे प्रवास। इन सभी प्रवासोंमें श्रीकृष्णकी ही चिन्ता, जागते रहनेके कारण स्वप्नमें भी नहीं आना, हृदयमें आग जलती रहना, शरीर सूख जाना, मैला-कुचैला रहना, प्रलाप करना और हृदयमें अत्यन्त संताप रहना—यही सब दशाएँ होती हैं। श्रीराधा ललितासे अपनी व्याधिका वर्णन कर रही हैं—

उत्तापी पुटपाकतोऽपि गरलग्रामादपि क्षोभणो
दम्भोलेरपि दुःसहः कटुरलं हृन्मग्नशल्यऽदपि।
तीव्रः प्रौढविशूचिकानिचयतोऽप्युच्चैर्ममायं वली
मर्माण्यद्य भिनत्ति गोकुलपतेर्विश्लेषजन्मा ज्वरः॥

'जो स्वर्णके जलते हुए द्रवसे भी अधिक तापकारी है, कालकूट विषसे भी अधिक क्षुब्ध करनेवाला है, वज्रसे भी अधिक दुस्सह है, हृदयमें विंधे हुए शल्यसे भी अधिक तीखा है और उग्र विषूचिकाओंके समूहसे भी अधिक तीव्र है, वही यह श्रीकृष्णके वियोगका तीव्र ज्वर मेरे मर्मस्थानोंको बेध रहा है।

श्रीकृष्णके वियोगमें कभी हँसना, कभी रोना, निष्प्रयोजन भटकना, पशु-पक्षियों और लता-वृक्षोंसे भी प्रियतमका पता पूछना और जमीनमें लोटना आदि उन्मादके बहुत-से लक्षण प्रकट हो जाते हैं। दुःखकी अधिकतासे कर्त्तव्याकर्त्तव्य-ज्ञानशून्य हो जाना, मर जाना और मरकर फिर जीना और फिर वही अवस्था। इस प्रकार एक क्षणके लिए भी विरहके पंजेसे छुटकारा नहीं मिलता। प्रेमकी सभी अवस्थाओंमें वियोगकी मर्मवेधिनी पीड़ा होती है और उनके अनुभव भी प्रकट होते हैं। अधिरूढ महाभावमें मोदन दशाका वर्णन करते हुए जो कुछ कहा है, उसे यहाँ स्मरण कर लेना चाहिये और ऐसा समझना चाहिये कि वह तो बहुत कम है। विरहकी वेदना कोई विरही ही जान सकता है, सो भी यदि उसी श्रेणीका हो। प्रकट लीलाके अनुसार विरहकी परिपूर्णता ब्रजदेवियोंमें ही देखी जाती है। अन्तर्लीलामें तो उनका एकरस विहार सदा-सर्वदा चलता ही रहता है!

भगवान्‌का संयोग-सुख अवर्णनीय है। वास्तवमें मधुररसकी यही चरम परिणित है। प्रणय-परिणयकी यही मधुयामिनी है। रतिका नाम यहीं आकर सार्थक होता है। वैसे तो सभी रस हैं। परन्तु यह रसराजकी भी सरस अवस्था है। यह दिव्य उज्ज्वल शृङ्गार

श्रीमद्भागवतके रास-प्रसङ्गमें जैसा अभिव्यक्त हुआ हैं, वैसा और कहीं नहीं। यह 'स्वप्न' और 'जाग्रत्'के भेदसे दो प्रकारका होता है। स्वप्नका संयोग अत्यन्त गौण है। फिर भी भगवान्‌के साथ मानस-संयोग होनेके कारण उसकी रसरूपतामें कोई बाधा नहीं पड़ती। 'जागरण'में जितने प्रकारके संयोग ओर लीलाएँ हो सकतीं हैं, उनसे भी अधिक 'स्वप्न'में सम्भव है। प्रेमियोंका स्वप्न साधारण स्वप्न नहीं है। मूढ़ पुरुषोंके जागरण और योगियोंकीं समाधिसे भी उसका ऊँचा स्थान है। प्रेमियोंका दिव्य मन समस्त प्रकृति और प्राकृत जगत्‌से ऊपर उठा हुआ, दिव्य होता है। अन्तःकरणके साधारण विकार स्वप्नका उस प्रेमराज्यमें प्रवेश नहीं हैं। इसलिये प्रेमियोंका भगवत्संयोगरूप दिव्य स्वप्न भी आलौकिक ही होता है।

जाग्रत् अवस्थामें चार प्रकारके संयोग होते हैं—संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न और समृद्धिमान्। व्रजदेवियोंके जीवनमें ये सभी अपने अवान्तर भेदोंसहित अनुभवके विषय होते हैं। उनका वर्णन लेखविस्तार भयसे नहीं किया जाता। संयोगकी लीलामें प्रियतमका दर्शन, उनके साथ वृन्दावनके निकुञ्जोंमें रहस्य-क्रीड़ा, जल-विहार, रासलीला, नौकालीला, वेषपरिवर्तन, कपटशयन, वंशी-चौर्य, मार्गरोधन आदि अनेकों लीलाएँ होती हैं—जिनका अनुभव कोई गोपीभावापन्न सरसहृदय प्रेमी ही कर सकता है। भगवान्‌के लीलाप्रतिपादक ग्रन्थोंमें इन लीलाओंका अत्यन्त हृदयस्पर्शी भाषामें वर्णन हुआ है। मधुररसके रसिकोंको वहींसे उनका आस्वादन करना चाहिये।[1]

यहाँतक हमने भक्ति रसकी जिन पाँच धाराओंमें अवगाहन किया है और जिनमें डूब-डूबकर सम्पूर्ण प्राणसे और उन्मुक्त हृदयसे रसास्वादन किया है, वे सब-के-सब स्वर्गीय सुधा और मोक्षसुखको भी तिरस्कृत करनेवाले परमामृतस्वरूप दिव्य रस हैं—इसमें संदेह नहीं। इनमें उत्कृष्ट और निकृष्टका भेद करनेका हमें कोई अधिकार नहीं। जिस प्रेमीको जिस रसकी अनुभूति हुई है, उस रसके रूपमें उसे भगवान्‌की ही अनुभूति हुई है; क्योंकि भगवान् ही रसस्वरूप हैं। उनकी अनुभूति ही वास्तविक रसानुभूति है। इसलिये हम नम्र हृदयसे प्रेमपरिप्लुत होकर उनके प्रेमको ही, युगल सरकारके उस लोकत्तर महाभावस्वरूपको ही प्रणाम करें—

आसृष्टेरक्षयिष्णुं हृदयविधुमणिद्रावणं वक्रिमाण
पूर्णत्वेऽप्युद्वहन्तं निजरुचिघटया साध्वसं ध्वंसयन्तम्।
तन्वानं शं प्रदोषे धृतनवनवतासम्पदं मादनत्वा-
दद्वैतं नौमि राधादनुजर्विजयिनोरद्भुतं भावचन्द्रम्॥*

---

१. इस विषयमें जिनको विशेष जानना हो वे श्रीरूपगोस्वामीरचित 'उज्जवलनीलमणि' तथा 'हरिभक्ति-रसामृतसिन्धु' नामक संस्कृत ग्रन्थोंको पढ़ें।

एतवान् एव !

श्रीमद्भागवत स्वयं ही सार-ग्रन्थ है। भगवत्स्वरूप होनेके कारण इसके किसीभी अंशमें कुछ भी त्याज्य नहीं है। यदि इसके किसी अंशमें किसीको कुछ त्याज्य प्रतीत होता है तो वह उसकी दृष्टिका दोष है, जैसे श्यामसुन्दर के परम सुकुमार श्रीविग्रहमें कंसको केवल अपनी मृत्यु ही दीख रही थी। ऐसी स्थितिमें श्रीमद्भागवतसे कुछ थोड़ा-सा संग्रह करके यह कह देना कि इतना ही भागवत का सार है, साहसमात्र है। फिर भी श्रीमद्भागवतमें कुछ बातोंका उल्लेख करके स्पष्ट कर दिया गया है कि इसका तात्पर्य बस इतना ही हैं। इसके लिए मूलके अनेक स्थानों में 'एतावानेव' पदका प्रयोग हुआ है। उन्हें ही यहाँ नमूने के तौरपर उद्धृत किया जाता है—

१. जीवका परम कल्याण क्या है ?

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ।
भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतः ॥
(२.३.११)

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥
(३.२५.४४)

पहले श्लोकमें यह बात कही गयी है कि जो लोग अपने परम कल्याणकी प्राप्तिके लिए प्रयत्नशील हैं, उनके परम कल्याणका उदय बस, इतना ही है कि भगवान्में उनकी भाव-भक्ति अविचल हो जाय। इसका साधन बतलाया गया है—भगवान्के प्यारे भक्तोंका सङ्ग अथवा श्रीमद्भागवतका स्वाध्याय। इसमें संदेह नहीं कि समस्त साधनाओंका लक्ष्य, चाहे वे क्रियाके रूपमें हों चाहे भावना के रूपमें, स्वयं श्रीभगवान् ही हैं। उनमें अचल स्थिति या निष्ठा हो जाना ही प्रयत्नकी परिसमाप्ति है। इस युगमें, जब कि समष्टिमें ही घोर रजोगुण और तमोगुणका प्रवाह प्रबल हो रहा है, सुगम-से-सुगम और श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ साधन भी सत्सङ्ग ही है। यदि संतोंकी पहचान न हो, उनके सङ्गकी सुविधा न हो तो श्रीमद्भागवत-शास्त्रका स्वाध्याय भी परम कल्याणके उदय और भक्तिभावकी स्थिरतामें सत्सङ्ग-जैसा ही सहायक है। यह सबके लिए सुगम और निरापद भी है। अपने अधिकारके अनुसार इसकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। दूसरे श्लोकमें केवल साधकोंके लिए ही नहीं, समस्त जीवोंके लिए ही, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, परम कल्याणका निर्देश है। परन्तु उनके लिये साधनोंके लिये तीव्र भक्तियोगके अनुष्ठानकी आज्ञा दी गयी है। यह निश्चित है कि अपना सम्पूर्ण जीवन, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, भगवान्को समर्पित कर देना होगा। बिना आत्मसमर्पणके अभिमानी जीव कभी शान्तिका अनुभव नहीं कर सकता। समर्पण भी ऐसा जो स्थिर हो, जिसके बाद कभी अहंकारका उदय न हो। ऐसा आत्मसमर्पण भगवान्के आज्ञा-पालनरूप तीव्र भक्तियोगके अनुष्ठानसे ही सम्भव है। यही बात दूसरे श्लोकमें समस्त जीवोंके परम कल्याणके नामसे कही गयी है।

२. जीवका धर्म क्या है ?

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ।
यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥
(६.१०.९)

एतावान् पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते ॥
(४.२७.२६)

एतवान् हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥
(८.७.३८)

एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥
(६.५.४४)

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥
(६.३.२२)

एक शरीर और उसके सम्बन्धियोंमें क्रमशः अहंता और ममता करके जीवने स्वयं ही अपने आपको संसार-बन्धनमें जकड़ लिया है । अब धर्मका काम यह है कि जीवकी अहंता और ममताको शिथिल करके उसे संसार के बन्धनसे सर्वदाके लिए छुड़ा दे । ऐसे धर्मको ही अविनाशी धर्म' कहते हैं और जगत्के परम यशस्वी महात्मा उसीका अनुष्ठान करते रहे हैं । उसका स्वरूप बस, इतना ही है कि केवल अपने सुखसे फूल न उठे और अपने ही दुःखसे मुरझा न जाय । समस्त प्राणियोंके सुख-दुःखके साथ अपना नाता जोड़ दें । सबके सुखमें सुखीं हो और सबके दुःखमें दुःखीं । इससे अहंकारका बन्धन कटता है और ममता भी शिथिल पड़ती है । यही बात पहले श्लोकमें बतलायी गयी है । परन्तु इतना ही धर्म नहीं है । धर्मकी गति इससे आगे भी हैं । बहुत-से पशु भी दूसरोंके सुखसे सुखी और दूसरोंके दुःखसे दुःखी होते हैं; परन्तु मनुष्य अपनेको सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ मानता हैं । इसलिये उसमें कुछ विशेषता होनी चाहिये । वह विशेषता क्या है ? बस, इतनीं ही कि किसीको दुःखी देखकर उसका हृदय दयासे द्रवित हो जाय और वह उसके प्रति सहानुभूतिके भावसे भर जाय । यद्यपि सहानुभूति भी एक बहुत बड़ा बल है, इससे दुःखियोंको बड़ी शक्ति प्राप्त होती हैं, तथापि जो कुछ प्रत्यक्ष सहायता कर सकते हैं, उनकी ओरसे केवल मानसिक या वाचिक सहायता प्राप्त होना ही पर्याप्त नहीं है । उनकी प्रभुता या ऐश्वर्यकी सफलता इसीमें है कि वे तन, मन, धनसे दीनोंकी रक्षा करें । जो सामर्थ्य होनेपर भी दीन-दुःखियोंकी रक्षाका कार्य नहीं करते, उनकी सामर्थ्य व्यर्थ है; उन्होंने अपने धर्मका पालन न करके पाप कमाया ।

श्रीमद्भागवतमें यह बात स्थान-स्थानपर बहुत ही जोर देकर कही गयी हैं कि समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्वयं परमात्माका ही निवास है, इसीलिये यथाशक्ति दान और सम्मानके द्वारा सभीकी पूजा करनी चाहिये । इस सम्बन्धमें यहाँतक कहा गया है कि जो दुःखी प्राणियोंकी उपेक्षा करके अथवा किसी भी प्राणीसे द्वेषभाव रखकर केवल सूखे पूजा-पाठमें लगे रहते हैं, उन्हें कभी शान्ति नहीं मिल सकती और न तो उन्हें परमात्माकी प्रसन्नता ही प्राप्त हो सकती है (देखिये तीसरे स्कन्धका उन्तीसवाँ अध्याय) । चौथे स्कन्धमें तो इस बातको और भी स्पष्ट कर दिया गया है । वहाँ कहा गया है कि चारों वेदोंका ज्ञाता और समदर्शी महात्मा भी यदि दीन-दुःखियोंकी उपेक्षा करता है तो उसका सारा वेदज्ञान नष्ट और निष्फल हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे फूटे घड़ेसे पानी बह जाता है । जो लोग सांसारिक सम्पत्ति और ऐश्वर्य को अपना मानकर अभिमानसे फूले हुए हैं और दीन-दुःखियोंकी सहायता नहीं करते, उन्हें श्रीमद्भागवतके इस वचनपर ध्यान देना चाहिये—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥
मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ॥
(७.१४-८,९)

'मनुष्योंका अपनी सम्पत्तिपर उतना ही हक है, जितनेसे उनका पेट भर जाय । जो इससे अधिक अपना मानते हैं, वे चोर हैं और दण्डके पात्र हैं । हरिण, ऊँट, गदहा, बानर, चूहा, रेंगनेवाले कीड़े, पक्षी, मक्खी—और तो क्या, सभी प्राणियोंको अपने पुत्रके समान ही देखना चाहिये । भला ! अपने पुत्रोंमें और इनमें अन्तर ही कितना है ।' यह उपदेश गृहस्थोंके लिए है । इसका तात्पर्य यह निकलता है कि वे जैसे स्वयं भोजन करते हैं, वैसे ही सबके भोजनका ध्यान रखें । जैसे अपने शरीर और पुत्र के शरीरके कष्टसे पीड़ित होते हैं और उसका उपचार

करते हैं, वैसे ही दूसरोंके लिए भी करें। इतना ही नहीं, श्रीमद्भागवतके ऊपर उद्धृत चौथे श्लोककी अर्धालीमें तो यह बात कही गयी है कि प्रशंसनीय तो वह है कि अपने कष्टोंको मिटानेकी क्षमता होनेपर भी उन्हें सहन करे। अर्थात् स्वयं दुःख सहन करके दूसरोंका दुःख मिटावे, अपनी इच्छा अपूर्ण रखकर दूसरेकी इच्छा पूर्ण करे। यह सत्य है कि इससे अपनी साम्पत्तिक, पारिवारिक और शारीरिक हानि होनेकी सम्भावना है; परन्तु उस लाभके सामने, जो इससे स्वयं होता है, कुछ भी नहीं है, क्योंकि हानि तो होती है केवल सांसारिक पदार्थोंकी और लाभ होता है परमार्थका। जो मनुष्य सर्वस्व त्यागकर और कष्ट उठाकर दूसरोंका भला करता है, उसे त्याग, वैराग्य, सहिष्णुता, तितिक्षा, श्रद्धा, विश्वास, समता आदि आदर्श सद्गुण स्वयं ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अन्तःकरणकी शुद्धि सम्पन्न होती है और मनुष्य अपने धर्म-पालनके द्वारा परम कल्याणका अधिकारी होता है।

यह तो हुई सामान्य धर्मकी बात। एक परम धर्म भी है, जिसका संकेत पूर्व उद्धृत पाँचवें श्लोकमें किया गया है। एक तो कर्मभूमि भारतवर्षमें जन्म मिलना ही कठिन, दूसरे मनुष्यका जन्म। मनुष्यका जन्म प्राप्त करके अपने धर्मका पालन करना और भी दुर्लभ है। परम धर्मका तो ज्ञान भी बड़े सौभाग्यसे होता है, यह श्रीमद्भागवतमें सुनिश्चितरूपसे बतलाया गया है। ब्रह्माजी बार-बार शास्त्रोंका आलोचन करके इसी निश्चयपर पहुँचे कि समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य भगवान्के निरन्तर स्मरणमें ही है। स्मरणका स्वरूप क्या है? जैसे गङ्गाजीकी धारा अखण्डरूपसे समुद्रमें गिरती है, जैसे तेलकी धारा अविच्छिन्नरूपसे एक पात्रसे दूसरे पात्रमें जाती है, वैसे ही बिना किसी फलका अनुसंधान किये चित्तवृत्तियाँ नित्य-निरन्तर भगवान्को ही विषय करती रहें, उन्हींके चिन्तनमें-तन्मय रहें—यही है भक्तियोगका स्वरूप। इसे ही उपर्युक्त श्लोकमें 'परम धर्म'के नामसे कहा गया है। इसका साधन क्या है? सभी शास्त्रोक्त साधन हैं। अभी-अभी जिस धर्म-पालनकी चर्चाकी गयी है, उसका पर्यवसान भी इसीमें है। परन्तु उन समस्त साधनोंमें सबसे श्रेष्ठ है—भगवान्के नामोंका जप, कीर्तन, एवं अर्थ-चिन्तन। वृत्तियोंको निरन्तर भगवान्में लगाये रखनेके लिए इससे सरल कोई साधना नहीं है। इस प्रकार इस प्रसङ्गमें मनुष्यके लिए धर्म, परम धर्म और उसके साधनका संक्षेपमें निर्देश किया गया है।

३. योग क्या और किसलिये ?

एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा॥
(११. १३. १४)

एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः।
युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः॥
(३. ३२. २७)

भगवान् श्रीकृष्ण योगका बस, इतना ही स्वरूप बतलाते हैं कि मनको सब ओरसे खींचकर साक्षात् भगवान्में प्रविष्ट कर दिया जाय। मनको लगानेका उपाय चाहे कोई भी हो, जीवोंका मन स्वभावसे ही जड़ विषयोंकी ओर ही दौड़ता है। और उन्हींमें लगता भी है। यदि योग-साधनाके द्वारा भी मनको जड़ विषयोंमें ही लगाया गया तो सारा प्रयास व्यर्थ ही समझना चाहिये। सविकल्प समाधिपर्यन्त जितनी भी स्थितियाँ हैं, सब-की-सब कुछ-न-कुछ जड़ता लिये हुए हैं। योगकी रीतिसे निर्विकल्प स्वरूपसे अवस्थान ही 'अखण्ड निर्विकल्प समाधि' है और वास्तवमें वही विशुद्ध चेतनकी स्थिति भी है। कर्मयोगसे, अष्टांगयोगसे, भक्तियोगसे अथवा ज्ञानयोगसे वही स्थिति प्राप्त करनी है। भगवान्के निर्गुण-निराकार अथवा सगुण-साकार स्वरूपकी अनुभूति किसी भी जड़ स्थितिमें नहीं होती, उसके लिए विशुद्ध चेतनकी स्थिति अनिवार्य है। जीव और भगवान्का उसी स्थितिमें वास्तविक मिलन होता है, इसलिये उसे 'योग'के नामसे कहते हैं।

दूसरे श्लोकमें समग्र योगका उद्देश्य बतलाया गया है। योगके द्वारा होता क्या है? समग्र प्रकृति और प्राकृत जगत्से असङ्गता। सङ्ग ही समस्त अनर्थोंका मूल है। यह प्रकृति और प्राकृत पदार्थ मैं हूँ, अथवा यह मेरे हैं, यही सङ्गका स्वरूप है। इस बातको तनिक स्पष्ट समझ लेना चाहिये। व्यवहारमें दो प्रकारके पदार्थ देखे जाते हैं। एक तो प्राकृतिक और दूसरे प्रातीतिक। उदाहरणके लिए पृथवीको लीजिये। पृथवी एक प्राकृतिक पदार्थ है। यह केवल प्रकृतिकी है अथवा भगवान्की है। यह न किसीके साथ गयी और न जायगी, फिर भी लोग इसे अपनी मान बैठते हैं और बड़े अभिमानके साथ कहते हैं कि इतनी पृथवी मेरी है। यह मेरे मनकी भावना नितान्त प्रातीतिक है और यही समस्त दुःखोंका मूलभी है। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र धन, शरीर, मन आदिके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। इनके प्रति अहंता ममता जोड़ लेना ही सङ्ग है। जब योगके द्वारा बहिर्मुखता घटती है और अन्तर्मुखताकी वृद्धि होती हैं, तब स्वयं ही ब्राह्य पदार्थोंसे आसक्ति छूटने लगती है और अन्ततः विशुद्ध चित्तस्वरूप एवं असङ्ग आत्मस्वरूपमें स्थिति हो जाती है। जबतक असंगता प्राप्त नहीं होती, तबतक योगका लक्षण अपूर्ण ही समझना चाहिये. उपयुक्त दोनों श्लोकोंमें अन्तर्मुखता की सीमा तो भगवान्में मनका लग जाना है और योगका स्वरूप बतलाया है—समस्त प्रकृति और प्राकृत सम्बन्धोंसे अलग हो जाना।

४. जीवका परम स्वार्थ और परमार्थ क्या है?

एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः
स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥
(६.१६.६३)

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृत, ।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम् ॥
(७.७.५५)

जिन मनुष्योंकी बुद्धि योगमें निपुणता प्राप्त कर चुकी है, उनके लिए सब प्रकारसे, बस इतना ही अपना स्वार्थ और परमार्थ है कि वे अपनी आत्मा और परमात्माके एकत्वका साक्षात्कार करें। पहले यह बात कही जा चुकी है कि योग अन्तर्मुखताकी सीमा है। अन्तर्मुख हो जानेपर बाह्य बिषयोंमें किसी प्रकारकी दिलचस्पी नहीं रह जाती और न तो उनका चिन्तन ही होता है। उस समय जितनी भी वृत्तियाँ उठती हैं सब अन्तःस्थित वस्तुके सम्बन्धमें ही। अन्तदेशके गुह्यतम प्रदेशमें जो वस्तु है, वह क्या है? उसे आत्मा कहें या परमात्मा? यह प्रश्न ही उस समय उठता है जिस समय अन्तःकरण सर्वदा अन्तर्मुख और शुद्ध हो जाता है। जब उपर्युक्त प्रश्न उठता है तो मैं कौन हूँ और परमात्मा क्या है, दोनोंमें क्या अन्तर है—इन प्रश्नोंका ऐसा विशुद्ध समाधान प्राप्त होता है कि जो अबतक अपनेको जीव समझकर अपनेको नाना संकटोंका घर समझे रहता है, वह अनिर्वचनीय एवं आश्चर्यमय स्थितमें पहुँच जाता है। अनादि कालका अज्ञान मिट जाता है और फिर कुछ बोलने और सोचनेका कोई अवसर ही नहीं रहता। यह परमात्मा और आत्माकी एकता ही समस्त श्रुतियोंका प्रतिपाद्य विषय है और यही योगियोंका सर्वोच्च ध्येय है।

दूसरे श्लोकोंमें यही बात दूसरे ढंगसे कही गयी है जीवनका परम स्वार्थ क्या है? भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेममयी भक्ति। भक्तिका अर्थ विभक्त नहीं है, समस्त बिभक्तियोंका मिट जाना ही सच्ची भक्ति है। एक कवि कहता है—'प्रेमी और प्रियतमके मिलनमें वक्षःस्थलपर स्थित माला भी पर्वतसे भी बड़ा व्यवधान है। भक्त और भगवान्के बीचमें किसी भी प्रकारका आवरण—चाहे वह कितना भी झीना क्यों न हो, अभीष्ट नहीं है। आखिर कौन-सा ऐसा रहस्य है, जिसे प्रियतम प्रभु अपने प्रेमीसे छिपाकर रख सकते हैं। प्रेमके सामने सारे पर्दे फट जाते हैं; सारी दूरी समीपतामें परिणत हो जाती है। इसीसे अनन्य भक्तिस्वरूपका निदर्शन करते समय

यह बात कही जाती है—'यत् सर्वत्र तदीक्षणम्' (७.७.५५)। भगवान्‌की अनन्य भक्ति है सर्वत्र उन्हें देखना 'सर्वत्र' शब्द बड़ा व्यापक है। अपनेमें, परायेमें, निद्रामें जागरणमें, ब्रह्ममें और प्रकृतिमें—जहाँ दृष्टि जाय, जो दीखे; वही उसीमें, अधिक तो क्या, उसीके रूपमें भगवान्‌का दर्शन! यही जीवनका सबसे बड़ा स्वार्थ अथवा परमार्थ है।

५. अज्ञान और ज्ञानका स्वरूप

एतावानात्मसम्मोहो यद् विकल्पस्तु केवले।
आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि॥
(११.२८.३६)

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥
(२.९.३५)

पहले श्लोकमें अज्ञानका स्वरूप बतलाया गया है। कहते हैं कि अद्वितीय आत्मस्वरूपमें जो विविधताका संकल्प है, यह मनका मोह है, क्योंकि आत्माको छोड़कर उस विविधताके संकल्पके लिए भी कोई दूसरा अवलम्बन नहीं है, यही विविधताकी भावना अद्वितीय स्वरूपके अज्ञानसे है। अज्ञान किसे है, किसमें है—यह प्रश्न इस बातको मानकर उठता है कि अज्ञानकी सत्ता हैं। परन्तु अज्ञानकी सत्ता भी तभीतक मानी जाती है, जबतक अपने आश्रय और विषयके सहित अज्ञानके स्वरूपका बोध नहीं होता। अज्ञान ज्ञात होनेपर तो अज्ञान रहता ही नहीं, ज्ञान हो जाता है, और जहाँतक वह स्वयं अज्ञात है; वहाँतक यह प्रश्न बनता ही नहीं कि वह किसमें है, किसे है? ऐसी अवस्थामें अज्ञानका स्वरूप क्याहै, तत्त्वदृष्टि करानेके लियेएक अध्यारोपमात्र! इसीलिये वह किसीको नहीं है, किसीमें नहीं है, क्योंकि अध्यारोपित वस्तुसे किसीका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। परन्तु यह यथार्थ उक्ति तो अज्ञानपर लगायी हुई सारी व्यवस्थापर ही पानी फेर देती है। यह भी अभीष्ट ही है। फिर भी उसे अनिर्वचनीय स्वीकार कर लिया जाता है। 'अनिर्वचनीय' शब्दका अर्थ अज्ञेय नहीं है। जिसका मन और वाणीके द्वारा 'इदंतया' निर्वचन नहीं किया जा सकता, वही 'अनिर्वचनीय' है। तब वह 'अनिद' है अर्थात 'अहं' है—स्वरूपसे अभिन्न है। ज्ञान और अज्ञान सब-कुछ स्वरूप ही है—यही बात जाननेकी है। दूसरे श्लोकमें यही कहा गया है।

जो आत्मतत्त्वके जिज्ञासु हैं, उन्हें बहुत विषयोंका ज्ञान नहीं प्राप्त करना है। उन्हें तो केवल एक ऐसी वस्तुका ज्ञान प्राप्त करना है, जो सर्वदा और सर्वत्र एकरस रहती है। यह जाननेका साधन क्या है? 'अन्वय' और 'व्यतिरेक'। आकाशके रहनेपर ही पृथिवीका अस्तित्व हैं—यह 'अन्वय' है। आकाशके न रहनेपर पृथिवी भी नहीं रह सकती। परन्तु पृथिवीके न रहनेपर भी आकाश तो रहता ही है—यह 'व्यतिरेक' है। आत्मसत्ताके रहने पर ही अनात्म पदार्थोंकी सत्ता रह सकती है, परन्तु अनात्म पदार्थोंकी सत्ता न रहनेपर भी आत्मपदार्थकी सत्ता तो रहती है। तब सत्ता केवल आत्माकी—परमात्माकी है। अनात्म-पदार्थ केवल प्रतीतिमात्र, सर्वथा मिथ्या हैं। तब यही सर्वत्र और सदा तथा उनकी सीमासे परे भी रहनेवाली आत्मसत्ताका स्वरूप ही तत्त्वजिज्ञासुके ज्ञानका स्वरूप है। न इसमें ज्ञातृ-ज्ञेय-सापेक्ष ज्ञान ही है और न तो आश्रय-आश्रयीभाव रखनेवाला 'अज्ञान' ही। इस सत्ता-मात्र निर्विशेष चैतन्यमें मन और वाणीसे निर्वचन करने-योग्य वस्तु नहीं है। वही आत्मा है, वही मैं हूँ। उसको अपने-आपके रूपमें न जानना ही अज्ञान है। और जो इस अज्ञानको मिटादे, वही 'ज्ञान' है। इसके अतिरिक्त 'ज्ञान' और 'अज्ञान' शब्दोंका कोई अर्थ नहीं है।

६. समस्त वेदोंका तात्पर्य

एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिद्ध्य प्रसीदति॥
(११.२१.४३)
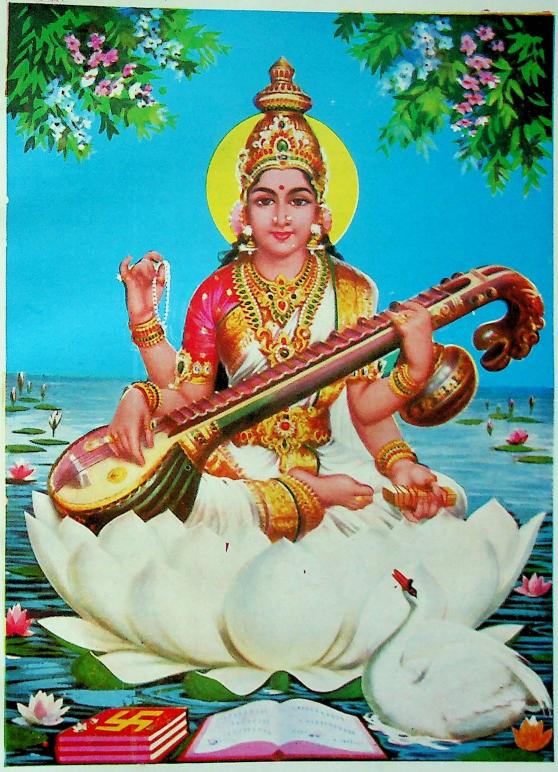
भगवती सरस्वती

वेदोमें कहीं किसी कर्मका विधान है तो कहीं देवता आदिके विभिन्न नामोंका उल्लेख है; आकाशादि विविध सृष्टिका वर्णन है तो कही उनका निषेध भी है—यह सब क्या है ? भगवान् श्रीकृष्ण स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि कर्मोके रूपमें मेरा ही विधान है। देवताओंके नामोंके रूपमें मेरे ही नामोंका गान है। आकाशादि विविध सृष्टि के रूपमें मेरा ही वर्णन है और उनके निषेध तथा निषेधकी अवधिके रूपमें मेरा ही वर्णन है। तब समस्त वेदोंका तात्पर्य क्या है ? इस प्रश्नका सीधा उत्तर है—स्वयं परमात्मा। ऊपर उद्धृत श्लोकमें इस बातका स्पष्ट निर्देश है। सारे वेदोंके तात्पर्य हैं—भगवान्। वेद उन्ही परमार्थ-स्वरूप परमात्माका आश्रय लेकर कहता है—'दीखनेवाला भेद सर्वथा मायामात्र है। नानात्व कुछ नहीं है; केवल परमात्मा-ही-परमात्मा हैं।' इस प्रकार अशेष विषयोंका निषेध करके वेद अपना काम बंद कर देता है। स्वयं परमात्माके स्वरूपमें स्थित हो जाता है ! वेद-स्तुतिके अन्तमें भी यही बात कही गयी है—'अतन्निरसनेन भवन्निधनाः' (१०.८७.४०)। 'नेह नानास्ति किञ्चन'। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म'—इत्यादि श्रुतियाँ स्पष्टरूपसे परमात्मा में ही पर्यवसित होती हैं।

इसी अभिप्रायसे श्रीमद्भागवतके बारहवें स्कन्धके पाँचवें अध्यायमें श्री शुकदेवजी महाराजने राजर्षि परीक्षितको अन्तिम उपदेश किया है—

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मानं आत्मन्याधाय निष्कले ॥

(१२.५.११) इत्यादि।

'प्रत्यक्‌चैतन्य' और ब्रह्म दोनोंका मुख्य सामानाधिकरण्य है। 'जगत्' और 'ब्रह्मका' बाध सामानाधिकरण्य है। इसलिए ब्रह्म अविनाशी परिपूर्ण अखण्ड आत्मसत्ता ही है।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि श्रीमद्भागवत भगवत्स्वरूप है। यह श्रुतियोंका सार-सार अंश है। जैसे समस्त श्रुतियों का तात्पर्य एकमात्र परमात्मामें ही है, वैसे हीं श्रीमद्भागवतका भी। इसका रस तो श्रद्धा-भक्ति पूर्वक इसके मूलका स्वाध्याय करनेसे प्राप्त होता है। भगवान् हमलोगोंको इसके मूलके स्वाध्यायमें लगायें, उसका रस लेनेकी योग्यता दें।

परम तात्पर्य

१. सत्यं परं धीमहि (१.१.१)
सत्यं परं धीमहि (११.१३.१६)

प्रथम स्कन्धके प्रथम श्लोकमें ही परम सत्यके चिन्तनका निर्देश है। 'परम सत्य' वह है, जो जगत्का उपादान और निमित्त दोनों ही है। उसीसे नाम-रूपात्मक प्रपञ्चसे आकार, विकार एवं प्रकार प्रकट हुए हैं, उसीमें हैं और उसीमें समा जायँगे। प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति होनेपर भी वह उसमें अनुगत है और अनुगत होते हुए भी उनसे व्यतिरिक्त, अर्थात् प्रपञ्चके गुणधर्मोंसे असंस्पृष्ट है। वह न केवल स्थूल द्रव्योंमें, प्रत्युक्त सम्पूर्ण जीव-बुद्धियोंमें एवं एक जीव हिरण्यगर्भकी बुद्धिमें भी अनुगत है और उन्हें सत्ता-स्फूर्ति देता रहता है। वस्तुतः त्रिविध सृष्टि बिना हुए ही उसमें भास रही है और उसकी सत्तासे ही पृथक्-पृथक् पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं। वह स्वयंप्रकाश, सर्वावभासक एवं अविद्या मायाके स्पर्शसे भी रहित है। ऐसे अद्वितीय ज्ञानस्वरूप परम सत्यके चिन्तनके लिए ही श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ हुआ है।

इस उपक्रमके अनन्तर एक दृष्टि उपसंहारपर भी डाल ली जाय। ठीक वही शब्द है। वह परम सत्य-स्वरूपसे शुद्ध, आगन्तुक मलोंसे रहित, शोक और मृत्युसे वर्जित है। उसको जान लेनेपर जन्म-मृत्यु नहीं, शोक-मोह नहीं, आवरणादि दोष नहीं। इससे स्पष्ट है कि ग्रन्थका प्रारम्भ और अन्त दोनों परम सत्यके चिन्तनके लिए ही है।

२. यज्ज्ञानमद्वयम् (१.२.११)

धर्म अन्तः करण-शुद्धिके द्वारा मोक्षका हेतु है, धनका नहीं! धन धर्मका हेतु है, भोगका नहीं। भोग जीवन-निर्वाहके लिए है, इन्द्रियतृप्तिके लिए नहीं। जीवन तत्त्व-जिज्ञासाके लिए है, बहुत कर्म करनेके लिए नहीं। फिर तत्त्व क्या है? तत्त्ववेत्ता लोग, तत्त्व का जो स्वरूप बतलाते हैं, वह क्या है—अद्वय ज्ञान। 'अद्वय'का क्या अर्थ है? ज्ञाता अर्थात् जीव और ईश्वर, ज्ञेय अर्थात् व्यष्टि-समष्टि, कार्य-कारण, व्यक्त एवं अव्यक्त रूपसे रहनेवाला प्रपञ्च; दोनोंसे जो सर्वथा रहित, अर्थात् दोनोंके भावाभावका अधिष्ठान स्वयंप्रकाश चेतन है, वह ज्ञानस्वरूपसे ही 'अद्वय तत्त्व' है। इसीको शास्त्रकी परिभाषाके अनुसार 'ब्रह्म' 'परमात्मा' और 'भगवान्'के नामसे कहा जाता है। तात्पर्य यह कि श्रीमद्भागवतमें जहाँ-जहाँ 'ब्रह्म', 'परमात्मा' एवं 'भगवान्' शब्दके प्रयोग किये गये हैं, वहाँ-वहाँ इसी अद्वय ज्ञानतत्त्वको सूचित करनेके लिए। यह श्रीमद्भागवतमें शास्त्रका परिभाषा-वचन है। यदि स्वाध्यायशील व्यक्तिके हृदयमें इसका अभिप्राय ठीक-ठीक जम जाय तो भागवतका परम तात्पर्य समझनेमें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं पड़ेगी।

३. इति तद् ब्रह्मदर्शनम् (१.३.३३)

वृत्तिज्ञानकी जिस दशामें यह निश्चय हो जाता है कि ये जितने भी स्थूल और सूक्ष्मरूप प्रतीत होते हैं, ये सब प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वके अज्ञानसे ही अपने-आपमें प्रतीत होते हैं, यह वस्तुतः सत्य नहीं हैं और अपने स्वरूपका दृढ़ अपरोक्ष साक्षात्कार हो जानेपर जब इनका नितान्त निषेध, अपवाद अथवा बाध हो जाता है, तब उस अविद्या-तत्कार्यनिवर्तक ज्ञानको ही 'ब्रह्मदर्शन कहते हैं' ठीक यही बात दूसरे स्कन्धमें दसवें अध्यायके पैंतीसवें श्लोकमें कही गयी है। पहले स्कन्धमें 'त्वं-पदार्थ' की प्रधानतासे प्रपञ्चका निषेध है और दूसरे स्कन्धमें 'तद्-पदार्थ' की प्रधानतासे। स्पष्ट कह दिया गया है कि कार्य-कारणरूप प्रपञ्च भगवान्‌के ही रूप हैं; परन्तु तदद-

ज्ञानी पुरुष उन्हें मायाकी सृष्टि जानकर सत्यरूपसे ग्रहण नहीं करते। इसलिये अद्वितीय ब्रह्म ही परम सत्य-तत्त्व है। तीसरे स्कन्धके बत्तीसवें अध्यायमें कहा गया है कि अद्वितीय अर्थात् ज्ञाता-ज्ञेयमें द्वैतसे रहित ज्ञान ही 'निर्गुण ब्रह्म' है। बहिर्मुख इन्द्रियोंके कारण ही वह शब्द-स्पर्शादि धर्मसे युक्त पदार्थोंके रूपमें प्रतीत होता है और भ्रान्तिसे वे पदार्थ सत्य माने जाते हैं। एक परब्रह्म परमात्माके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जैसे एक ही वस्तु विभिन्न इन्द्रियोंके द्वारा पृथक्-पृथक् रूपमें अनुभवका विषय होती है, इसी प्रकार शास्त्रोक्त विभिन्न साधन-पद्धतियोंसे एक ही भगवान् अनेक रूपोंमें अनुभवके विषय होते हैं। पुरञ्जनोपाख्यानमें देह, इन्द्रिय और मनके धर्मोंका अपने-आपमें अभ्यास कर लेनेके कारण ही यह आत्मा अपनेको कर्ता, भोक्ता एवं बद्ध मान बैठता है और दुःख पाता है—यह बात कही गयी है 'ममाहमिति कर्मकृत्' (४. १९. २५)। जडभरतोपाख्यानमें विशुद्ध अद्वय ज्ञानको ही 'परमार्थ' कहा गया है और उसीका नाम 'भगवान्' और 'वासुदेव' भी है। वह बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे रहित है। उसके अतिरिक्त जो भेद-विभेद हैं, वे सब अविद्याके कारण मनः कल्पित हैं।

द्वितीय स्कन्धके चतुःश्लोकी भागवतमें नारायण अपने आदिकालीन स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त सत्, असत् या इनसे अतिरिक्त कोई भी दूसरी वस्तु नहीं थी। इनके न रहनेपर भी मैं ही रहता हूँ। जो प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ। सबका निषेध कर देनेपर जो अवशिष्ट रहता है, वह भी मैं ही हूँ। मायासे ही असत् प्रपञ्च सत्-सा और सद्ब्रह्म असत्-सा भासता है। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, पाषाण आदि नाना नाम-रूपोंमें महाभूत पहलेसे ही विद्यमान रहते हैं; वैसे ही मैं सबसे विद्यमान् और विवर्तमान हूँ। मैं सबसे व्यावृत्त रहकर भी सबसे अनुवृत्त हूँ। मैं अविनाशी एवं पूर्ण हूँ। तत्त्व-जिज्ञासुके लिए केवल यही आत्मज्ञान पर्याप्त है।' नारायणकी इस युक्तियुक्त उक्तिसे यह सिद्ध है कि परमात्मा भूत, भविष्य, वर्तमानरूप कालभेदसे बाह्य, अन्तर एवं अन्तरालरूप देश-भेदसे तथा सजातीय-विजातीय-स्वगतरूप-वस्तु भेदसे सर्वथा रहित है। इसका अभिप्राय ही यह है कि परमात्मा अद्वितीय ज्ञान-स्वरूप है! ज्ञाता एवं ज्ञेयका पृथक् स्वरूप मिथ्या है। वे केवल परमात्माके रूपमें ही सत्य हैं। इसकी व्याख्या करने के लिए श्रीमद्भागवतमें सैकड़ों प्रसङ्ग हैं।

४. अहं ब्रह्म परं धाम (१२. ५. ११.)

श्रीशुकदेवजी महाराजने सारे श्रीमद्भागवतका उपदेश करनेके अनन्तर अन्तमें राजा परीक्षितसे कहा कि 'तुम ऐसा अनुसन्धान करो कि मैं स्वयंप्रकाश सर्वाधिष्ठान ब्रह्म हूँ। इस प्रकार निष्कल ब्रह्ममें अभेदरूपसे आत्माका सम्यक् दर्शन प्राप्त कर लेनेपर यह शरीर और विश्व भी आत्मासे पृथक् नहीं रहेगा।' इसके पश्चात् राजा परीक्षितने कृतज्ञता प्रकट की—'आपने ज्ञान-विज्ञान-निष्ठाके द्वारा मेरे अज्ञानका निरसन कर दिया और मुझे परमात्मपदकी प्राप्ति हो गयी।' इसके बाद परीक्षितने अपनेको ब्रह्म अनुभव कर लिया। यही श्रीमद्भागवतके श्रवणका फल है। इस प्रकारके प्रसङ्ग श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर हैं। सनत्कुमारने पृथुसे कहा—'तमवेहि सोऽस्मि'। पुरञ्जनोपाख्यानमें ईश्वरने अपने सखासे कहा—'मित्र मैं ही तुम हूँ। तुम कोई दूसरे नहीं हो। तुम्हीं मैं हो—तुम इस प्रकारका अनुभव प्राप्त करो; क्योंकि ब्रह्मानुभवी महापुरुष मुझमें और तुममें, अर्थात् ईश्वर और जीवमें कभी कुछ भी अन्तर नहीं देखते।' यथा—

'अहं भवान् न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः।
न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि॥
(४, २५. ६२)

कितना स्पष्ट वर्णन है—

यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि।
आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः॥

एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः ।
मायामात्राणि विज्ञाय तद् द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥
येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ।
सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥
(६. १६. ५३. ५५)

एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः ।
स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥
(६. १६. ६३)

जैसे एक व्यक्ति स्वप्नावस्थामें सो गया और फिर निद्रावस्थामें स्वप्नान्तर होनेपर अपनेमें ही सम्पूर्ण विश्व देखता है और फिर वह दूसरा स्वप्न टूट जानेपर पहले स्वप्नमें ही जागता है और देखता है कि मैं संसारके एक कोनेमें स्थिर हूँ । मैं स्वप्नसे जग गया अब उठ बैठा हूँ; परन्तु वस्तुतः वह भी एक स्वप्न ही है, वैसे ही जीव एक शरीरके सोनेपर उसमें स्वप्न देखता है और जागनेपर समझता है कि स्वप्न टूट चुका है; परन्तु अभी तो यह जागा हुआ पुरुष भी स्वप्नपुरुष ही है । जागरण आदि प्रतीयमान अवस्थाएँ मायामात्र ही हैं, यह समझकर अपने सर्वोपरि द्रष्टास्वरूपका ही चिन्तन करना चाहिये । शयनके समय पुरुष जिस चिन्मात्र सत्स्वरूपकी अधिष्ठानतामें निद्रा और उसके अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करता है, वह निर्गुण ब्रह्म मैं ही हूँ । और तुम इस ब्रह्मस्वरूप मुझको अपना आत्मा जानो ।'

साधन-साध्यके स्वरूपको समझनेमें निपुण पुरुषोंको भली-भाँति समझ लेना चाहिये कि जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ-परमार्थ केवल इतना ही है कि वह आत्मा और परमात्माकी एकताका साक्षात्कार करे ।'

इस सम्बन्धमें कहाँतक उदाहरण दिये जायँ, बारहवें स्कन्धके तेरहवें अध्यायका यह एक श्लोक ही पर्याप्त है—

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥
(१२. १३. १२)

'सम्पूर्ण वेदान्तका सार है—अद्वितीय वस्तु । यह कल्पना, भाव, फल अथवा स्थिति नहीं है । यह आकारके आरोपसे विनिर्मुक्त तत्त्ववस्तु है । इसका एकमात्र लक्षण है—ब्रह्म और आत्माकी एकता । उसीमें इसकी निष्ठा, अर्थात् परम तात्पर्य है और इससे केवल कैवल्यरूप प्रयोजनकी सिद्धि होती है ।' यह सालोक्य, सामीप्य आदि मुक्तियोंके लिए नहीं है; क्योंकि कैवल्यमुक्ति केवल ब्रह्मात्मैक्य-बोधसे होती है । श्रीमद्भागवतके परम तात्पर्यका निर्णय करनेके लिए इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है ?

यह बात भी ध्यान देनेयोग्य है कि श्रीमद्भागवतमें संन्यासियोंके आत्मचिन्तनकी जो प्रक्रिया बतलायी गयी है—विशेषकर मृत्युके समय, उसका स्वरूप यह है—

इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ।
ज्ञात्वाद्वयोऽथ विरमेद् दग्धयोनिरिवानलः ॥
(७. १२. ३१)

'आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥'
(७. १३. ४)

और जीवनकालमें भी संन्यासी इसप्रकार अनुसन्धान करे—

तथा—

'पश्यन् बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥'
(७.१३. ५)

इन श्लोकोंमें यह बात स्पष्टकी गयी है कि संन्यासी अपने आपको परब्रह्मके रूपमें जाने, बन्धन और मोक्षको वास्तविक न समझें । । वे केवल मायामात्र हैं ।

५. ब्रह्मणि निष्कले (१. ६. ४४)

महापुरुषोंकी अन्तिम गतिके अनेक प्रसङ्ग हैं। भगवान्‌के विशेष अनुग्रहभाजन अजामिल, अघासुर आदि कुछ व्यक्तियोंको तो अन्तिम गतिके रूपमें भागवत-देहकी प्राप्ति हुई है; परन्तु उनके अतिरिक्त जिन-जिन महापुरुषोंकी अन्तिम गतिका वर्णन है—ब्राह्मी स्थिति अथवा ब्रह्मनिर्वाणके रूपमें ही है। भीष्मके प्रसङ्गमें—'आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥ (१. ६. ४३) अर्थात् आत्मस्वरूप श्रीकृष्णमें अपने-आपको मिलाकर वे निष्प्राण—उपरत हो गये।' इसका अर्थ है कि उनके सूक्ष्म शरीरका कहीं गमन नहीं हुआ। 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति' इस श्रुतिके अनुसार उनके प्राण यहीं लीन हो गये। इसलिये कहा गया कि 'सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ (१. ६. ४४) महात्माओंने देखा कि भीष्म निरवयव ब्रह्मसे एक हो गये हैं।' इसी प्रकार अर्जुन भी तत्त्वज्ञानके द्वारा लिङ्गशरीरसे मुक्त होकर पुनर्जन्मरहित गतिको प्राप्त हुए। देखिये, प्रथम पन्द्रहवें अध्यायका इकतीसवाँ श्लोक ! युधिष्ठिरने भी 'सर्वं-मात्मन्यजुहवीद् ब्रह्मण्यात्मानमव्यये (१. १५. ४२)।' और वे ब्रह्मसे एक हो गये। श्रीमद्भागवतका अनुसंधान करनेवालोंके लिए जितने भी सत्पुरुषोंके निर्वाण प्रसङ्ग हैं, उनमें देखनेयोग्य एकरूपता है।

६- त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः (१०.५६. ३०)

आत्मा और परमात्माकी एकता सिद्ध वस्तु है—यह निश्चय तबतक नहीं हो सकता, जबतक दोनोंकी उपाधि, व्यष्टि, समष्टिरूप प्रपञ्चका मिथ्यात्व सिद्ध न हो। हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर उभयविध प्रपञ्चको भ्रम, मृषा, माया, भानमात्र इत्यादि शब्दोंसे कहा गया है। उदाहरणके लिए पृथिवी भगवान् श्रीकृष्णसे कह रही है—

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो
मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं
त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥
(१०. ५६. ३०)

'भगवन् ! मैं (पृथिवी), जल अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृदेवता, अहंकार और महत्तत्त्व—कहाँतक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमके कारण ही पृथक् प्रतीत हो रहा है।'

इसी प्रकार 'वेदस्तुति'में कहा गया है कि 'जो लोग कर्म और कर्मफलरूप व्यवहारको सत्य बतलाते हैं, वे केवल अध्यारोपसे ही ऐसा कहते हैं। आत्माका कर्तृत्व अज्ञानसे ही है। ज्ञानस्वरूप परमात्मा इन सबसे परे है और उसमें यह सब कुछ नहीं है।' (१०. ८७. २४)। छत्तीसवें श्लोकमें बतलाया गया है कि अविद्या और अधिष्ठानके संयोगसे जो सृष्टि होती है, वह मिथ्या ही होती है। सैंतीसवें श्लोकमें अत्यन्त स्पष्ट रूपसे कहा गया है—

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनात्
अनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे।
अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथै
र्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥
(१०.८७.३७)

'भगवन् ! वास्तविक बात तो यह है कि जगत् उत्पत्तिके पहले नहीं था और प्रलयके बाद नहीं रहेगा; इससे यह सिद्ध होता है कि यह बीचमें भी एकरस परमात्मामें मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है। इसीसे हम श्रुतियाँ इस जगत्का वर्णन ऐसी उपमा देकर करती हैं कि जैसे मिट्टीमें घड़ा, लोहेमें शस्त्र और सोनेमें कुण्डल आदि नाममात्र हैं, वास्तवमें मिट्टी, लोहा और सोना ही हैं, वैसे ही परमात्मामें वर्णित जगत् नाममात्र है, सर्वथा मिथ्या

और मनकी कल्पना है। इसे नासमझ मूर्ख ही सत्य मानते हैं।'

भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको उपदेश करते हुए कहा—
यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि माया मनोमयम्॥
(११.७.७)

'इस जगत्में जो कुछ मनसे सोचा जाता है; वाणी से कहा जाता है, नेत्रोंसे देखा जाता है और श्रवण आदि इन्द्रियोंसे अनुभव किया जाता है, वह सब नाशवान् है। सपनेकी तरह मनका विलास है। इसलिये मायामात्र है, मिथ्या है—ऐसा समझ लो।'

न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चात्
मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्
तदेव तत् स्यादिति मे मनीषा॥
अविद्यमानोऽप्यवभासते यो
वैकारिको राजससर्ग एषः।
ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति
ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम्॥
(११.२८.२०.२२)

'जो उत्पत्तिसे पहले नहीं था और प्रलयके पश्चात् भी नहीं रहेगा, ऐसा समझना चाहिये कि बीचमें भी वह है नहीं—केवल कल्पनामात्र नाममात्रही है। यह निश्चित सत्य है कि जो पदार्थ जिससे बनता है और जिसके द्वारा प्रकाशित होता है, वही उसका वास्तविक स्वरूप है, वही उसकी परमार्थ सत्ता है—यह मेरा दृढ़ निश्चय है। यह जो विकारमयी राजस-सृष्टि है, यह न होनेपर भी दीख रही है। यह स्वयंप्रकाश ब्रह्म ही है। इसलिये इन्द्रिय, विषय, मन पञ्चभूतादि जितने चित्र-विचित्र नाम-रूप हैं, उनके रूपमें ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है।

न केवल परमात्माके स्वरूपमें यह प्रपञ्च मिथ्या है, बल्कि विवेक करनेपर जो शुद्ध त्वं-पदार्थ सिद्ध होता है, उसकी दृष्टिसे भी नाम-रूपात्मक प्रपञ्च ही है—

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धः एकः क्षेतज्ञ आश्रयः।
अविक्रियः स्वदृग्हेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः॥
एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः।
अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत्॥

"आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयंप्रकाश, सबका कारण, व्यापक, असङ्ग तथा आवरणरहित है। ये बारह आत्माके कारण जो 'मैं' और 'मेरे' का झूठा भाव हो रहा है, उसे छोड़ दे।"

इस प्रकार आत्माका विवेक करके स्वरूपदृष्टिसे देखनेपर स्पष्ट अनुभव होता है कि—

बुद्धीन्द्रियार्थ रूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम्।
दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत्॥
दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग् भवेत्।
एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात्॥
बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते।
मायामात्रमिदं राजन् नानात्वं प्रत्यगात्मनि॥
यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च।
ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात्॥
सत्यं ह्यवयवः प्रोक्त सर्वावयविनामिह।
विनार्थेन प्रतीयेरन् पटस्यैवाङ्ग तन्तवः॥
सत् सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत् स भ्रमः।
अन्योन्यापाश्रयात् सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत्॥
विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा।
न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत्॥

नहि सत्यस्य नानात्वमविद्वान् यदि मन्यते।
नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥
(१२.४.२३.३०)

"परीक्षित ! (अब आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्षका स्वरूप बतलाया जाता है।) बुद्धि, इन्द्रिय, और उनके विषयोंके रूपमें उनका अधिष्ठान, ज्ञानस्वरूप वस्तु ही भासित हो रही है। उन सबका तो आदि भी है और अन्त भी। इसलिये वे सब सत्य नहीं हैं। वे दृश्य हैं और अपने अधिष्ठानसे भिन्न उनकी सत्ता नहीं है। इसलिये वे सर्वथा मिथ्या—मायामात्र हैं। जैसे दीपक, नेत्र और रूप—ये तीनों तेजसे भिन्न नहीं हैं, वैसे ही बुद्धि, इन्द्रिय और इनके विषय तन्मात्राएँ भी अपने अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं—यद्यपि वह इनसे सर्वथा भिन्न है; (जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानमें अध्यस्त सर्प अपने अधिष्ठानसे पृथक् नहीं है, परन्तु अध्यस्त सर्पसे अधिष्ठानका कोई सम्बन्ध नहीं है।) परीक्षित ! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—यह तीनों अवस्थाएँ बुद्धिकी ही हैं। अतः इनके कारण अन्तरात्मामें जो विश्व, तैजस और प्राज्ञरूप नानात्वकी प्रतीति होती है, वह केवल मायामात्र है। बुद्धिगत नानात्वका एकमात्र सत्य आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह विश्व उत्पत्ति और प्रलयसे ग्रस्त है, इसलिये अनेक अवयवोंका समूह-अवयवी है। अतः यह कभी ब्रह्ममें होता है और कभी नहीं होता, ठीक वैसे ही जैसे आकाशमें मेघमाला कभी होती है और कभी नहीं होती। परीक्षित ! जगत्के व्यवहारमें जितने भी अवयवी पदार्थ हैं, उनके न होनेपर भी उनके भिन्न-भिन्न अवयव सत्य माने जाते हैं; क्योंकि वे उनके कारण हैं। जैसे वस्त्ररूप अवयवीके न होनेपर भी उसके कारणरूप सूतका अस्तित्व माना ही जाता है, उसी प्रकार कार्यरूप जगत्के कारणरूप अवयवकी स्थिति हो सकती है। परन्तु ब्रह्ममें यह कार्य-कारणभाव भी वास्तविक नहीं है; क्योंकि देखो, कारण तो सामान्य वस्तु है और कार्य विशेष वस्तु। इस प्रकारका जो भेद दिखायी देता है, वह केवल भ्रम ही है। इसका हेतु यह है कि सामान्य और विशेष भाव आपेक्षिक हैं, अन्योन्याश्रित हैं। विशेषके बिना सामान्य और सामान्यके बिना विशेषकी स्थिति नहीं हो सकती। कार्य और कारणभावका आदि और अन्त दोनों ही मिलते हैं, इसलिये भी वह स्वाप्निक भेद-भावसे समान सर्वथा अवस्तु है। इसमें संदेह नहीं कि यह प्रपञ्च विकार स्वाप्निक विकारके समान ही प्रतीत हो रहा है तो भी यह अपने अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप आत्मासे भिन्न नहीं है। कोई चाहे भी तो आत्मासे भिन्न रूपमें अणुमात्र भी इसका निरूपण नहीं कर सकता। यदि आत्मासे पृथक् इसकी सत्ता मानी भी जाय तो यह भी चिद्रूप आत्माके समान स्वयंप्रकाश होगा और ऐसी स्थितिमें वह आत्माकी भाँति ही एकरूप सिद्ध होगा। परन्तु इतना तो सर्वथा निश्चित है कि परमार्थ-सत्य-वस्तुमें नानात्व नहीं है। यदि कोई अज्ञानी परमार्थ-सत्य-वस्तुमें नानात्व स्वीकार करता है तो उसका वह मानना वैसा ही है, जैसा महाकाश और घटकाशका, आकाशस्थित सूर्य और जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यका तथा बाह्य वायु और आन्तर वायुका भेद मानना।"

यही बात सातवें स्कन्धके इन श्लोकोंमें स्पष्ट कही हुई है—

आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः।
दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थ विकल्पितम् ॥
क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि।
न संघातो विकारोऽपि न पृथङ्नान्वितो मृषा ॥
धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना।
न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ॥
स्यात् सादृश्यभ्रमस्तावद् विकल्पे सति वस्तुनः।
जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ॥
(७.१५.५८—६१)

"दर्पण आदिमें दीख पड़नेवाला प्रतिबिम्ब विचार और युक्तिसे बाधित है, उसका उनमें अस्तित्व है नहीं, फिर भी वस्तुके रूपमें तो वह दीखता ही है। वैसे ही

इन्द्रियोंके द्वारा दीखनेवाला वस्तुओंका भेदभाव भी विचार, युक्ति और आत्मानुभवसे असम्भव होनेके कारण वस्तुतः न होनेपर भी सत्य-सा प्रतीत होता है। पृथिवी आदि पञ्चभूतोंसे इस शरीरका निर्माण नहीं हुआ है। वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो न तो वह उन पञ्चभूतोंका संघात है और न विकार या परिणाम ही; क्योंकि यह अपने अवयवोंसे न तो पृथक् है और न उनमें अनुगत ही है, अतएव मिथ्या है। इसी प्रकार शरीरके कारण पञ्चभूत भी अवयवी होनेके कारण अपने अवयवों—सूक्ष्म भूतोंसे भिन्न नहीं हैं, अवयवरूप ही हैं। जब बहुत खोज-बीन करनेपर भी अवयवोंके अतिरिक्त अवयवोंका अस्तित्व नहीं मिलता—वह असत् ही सिद्ध होता है, तब अपने-आप ही यह सिद्ध हो जाता है कि ये अवयव भी असत्य ही हैं।

जबतक अज्ञानके कारण एक ही परमात्मतत्त्वमें अनेक वस्तुओंके भेद मालूम पड़ते रहते हैं, तबतक यह भ्रम भी रह सकता है कि जो वस्तुएँ पहले थीं, वे अब भी हैं और स्वप्नमें भी जिस प्रकार जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंके अलग-अलग अनुभव होते ही हैं तथा उसमें भी विधि-निषेधके शास्त्र रहते हैं—वैसे ही जबतक इन भिन्नताओंके अस्तित्वका मोह बना हुआ है, तबतक यहाँ भी विधि-निषेधके शास्त्र हैं ही।"

छठे स्कन्धमें यह बात दो-टूक कही हुई है कि 'यह दृश्यमान प्रपञ्च गन्धर्वनगर, स्वप्न, माया एवं मनोरथके समान है। बिना हुए ही मनकी कल्पनासे दीख रहे हैं और कभी-कभी तो खोज करनेपर भी दिखायी नहीं पड़ते'—

गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः।
दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यन्ते मनोभवा॥
(६.१५.२३.२४)

इसलिये—

'द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश।'
(७.१५.२६)

'चित्रकेतु! इसलिये तुम द्वैतमें सत्य वस्तु होनेका विश्वास छोड़ दो और शान्त हो जाओ।'

७. सर्व वेदान्तसारम् (१२.१३.१५)

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह ग्रन्थरत्न सम्पूर्ण वेदान्तोंका सारसंग्रह है; इसकी एक-एक कथामें वैराग्य, ज्ञान, योग एवं भक्तिसे युक्त नैष्कर्म्यका उपदेश—संदेश दिया गया है। शत-शत भगवल्लीलाओं के उज्ज्वल प्रसङ्ग अमृतसे संत और देवताओंको आनन्द देते रहते हैं। यह उक्ति सर्वथा युक्तियुक्त और सत्य है कि जो इसके रसामृतसे तृप्त है, उसका मन कहीं अन्यत्र आकृष्ट नहीं हो सकता। इस प्रसंगका अधिक विस्तार न करके अन्तमें आइये, हम सब श्रीमद्भागवतके शब्दोंमें ही श्रीशुकदेवजी महाराजको नमस्कार करें—

स्वसुखनिभृतचेतास्तद् व्युदस्तान्यभावो
प्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनं नतोऽस्मि॥
(१२.१२.६८)

—०—

धर्म

धर्म का मूल

भौतिक ज्ञान, तद्गत विशेषताओंका अनुसंन्धान 'विज्ञान'के नामसे प्रसिद्ध है। कर्मका ज्ञान और तद्गत विशेषताओंका अनुसंन्धान 'धर्माधर्मविज्ञान' कहलाता है। साधारण धर्म सच्चिदानन्दघन अद्वय ब्रह्मस्वरूप उपादानकी प्रधानतासे होता है। वस्तुत: निखिल प्रपञ्चका मूलतत्त्व परब्रह्म परमात्मा है। अतएव वह सर्वदेश, सर्वकाल, एवं सर्वव्यक्तिमें अनुगत रहता है। साधारण धर्म सर्वदा सर्व प्रकारके अधिकारियोंके लिए आवश्यक होते हैं और यथाकथञ्चित् गुप्त-प्रकट रूपसे उनमें रहते भी हैं। सृष्टिमें जहाँ पूर्णता अधिक विकसित होती है वहाँ वे अधिक मात्रामें होते हैं और जहाँ कम मात्रामें होती है वहाँ कम। पूर्णतामें तारतम्य नहीं होता, अभिव्यक्तिके प्रकारमें तारतम्य होता है। प्राणी-अप्राणी सभी पदार्थोंमें धर्माधर्मका ह्रास-विकास होता रहता है। पूर्णताका सर्वाधिक विकास मानव शरीरमें होता है। मनुष्यमात्रके लिए साधारण धर्म उपादानसे ही प्राप्त है। उपादानगत धर्मके विकासमें सत्‌से जीवन; चित्‌से ज्ञान तथा आनन्दसे सुखका प्रकाश होता है। अद्वयता अभेद और मेल-मिलापके रूपमें प्रकट होती है। जीवनदान, ज्ञानदान, सुखदान और प्रेमदान जीवमात्रके लिए अकृत्रिम सहज धर्म है। इसमें प्रकाश—तारतम्यसे ही ह्रास-विकास अथवा तारतम्य प्रतीत होता है।

मनुष्यमें ही धर्माधिकार

धर्म सभी पदार्थोंमें होता है। अभिव्यक्तिके भेदसे उनमें परस्पर वैधर्म्य भी होता है। कोई रोगका हेतु है, कोई औषधका हेतु; कोई मधुर है तो कोई कटु; कोई शुक्ल है, कोई कृष्ण। इन विशेषोंकी गणना आवश्यक नहीं है। मनुष्यके शरीरकी रचना अधःस्रोत है। वृक्ष ऊर्ध्वस्रोत होते हैं और पशु-पक्षी तिर्यक्स्रोत। इसका अभिप्राय यह है कि विरञ्चि-प्रपञ्चमें रचनागत जितनी चातुरी है, वह मनुष्यके निर्माणमें प्रकट हो गयी है। अब यह विशेष धर्मका आश्रय लेकर अपनेको प्रपञ्च-जालसे मुक्त करनेका प्रयास नहीं करेगा तो फिर पशु-पक्षियोंके समान तिर्यक् स्रोत अथवा लता-वृक्षके समान ऊर्ध्वस्रोत जातियोंमें जन्म ग्रहण करेगा; क्योंकि योग्यताके अनुसार ही पदकी प्राप्ति होती है।

मनुष्यके दो हाथ उसके कर्माधिकारकी सूचना देते हैं। वृद्धिकी विशेषताको सूचित करते हैं—नये-नये आविष्कार। विविध गन्ध, स्वाद, सौन्दर्य, स्पर्श, स्वर आदिकी सृष्टि उसकी सुख-वासनाको निवारण करती रहती हैं। परस्पर-सम्बन्ध आनन्द-भावके, अभेद-भावके सूचक हैं। ऐसी स्थितिमें मनुष्य यदि अपनी विशेष योग्यताका उचित और उपयुक्त प्रयोग न करे तो वह उत्थानकी दिशासे च्युत होकर पतनकी ओर भ्रष्ट हो जाता है। निष्कर्ष यह कि मनुष्य अपनी स्वभाव-प्राप्त योग्यताका उचित उपयोग करके अभ्युदयनिःश्रेयस प्राप्त कर सकता है और उनका ठीक-ठीक उपयोग न करनेपर उन योग्यताओंसे वञ्चित होकर पतनीय दशाको प्राप्त हो जाता है।

मानव-शरीरमें स्वत:प्राप्त योग्यताकी ग्लानि-म्लानि न हो और वह अपनी सहज पूर्णताको अभिव्यक्त कर ले, इसके लिए कर्म-क्षेत्रमें विशेष धर्मकी आवश्यकता होती है।

धर्मका निमित्त

प्रपञ्चके उपादानको ब्रह्म, प्रकृति, परमाणु, पुद्गल, शून्य, विज्ञान, भूतचतुष्टय—कुछ भी कहें, वह भेदकी अभिव्यक्तिसे पूर्वकी दशा ही है। भेद प्रकट होनेपर उनका समत्व सबमें अनुगत ही रहता है। विवर्त, परिणाम या आरम्भ कुछ भी क्यों न हो—मूलतत्त्व, अर्थात् उपादानकी दृष्टिसे धर्माधर्मका विभाग नहीं हो सकता। सभी कार्योंमें प्रतीयमान विक्रिया समान ही होती है। अतएव मनुष्यके द्वारा कर्तृत्वपूर्वक या प्रयत्नपूर्वक किये जानेवाले व्यापारोंमें धर्माधर्मका विभाग आवश्यक हो जाता हैं। वह उपादानकी दृष्टिसे नहीं होता, अनुशासनकी दृष्टिसे होता है। कुछ भी हो धर्माधर्मका विभाजक-निमित्त-उपादान कारण नहीं, संविधान शास्त्रगत विधि-निषेध ही है। भले ही वे विधि-निषेध देश, काल, समाज, जाति, सम्प्रदाय अवस्था, वय, शक्ति, बुद्धिके अनुसार भिन्न-भिन्न क्यों न हों।

भेद-सृष्टिमें 'विक्रिया' स्वाभाविक है और 'क्रिया' कर्तृत्वपूर्वक की हुई। क्रियामें ही मनुष्यका स्वातन्त्र्य है कि वह क्या करे, क्या न करे? कोई वस्तु, जैसे चाँदी, सोना दुष्ट नहीं है उनके साथ धर्माधर्मका कोई; सम्बन्ध नहीं है; परन्तु उनको ग्रहण करना या त्याग देना यह क्रिया मनुष्यके अधीन है। इसलिये उसीके साथ धर्माधर्मका सम्बन्ध होता है। कोई भी स्त्री-पुरुष स्वभावसे दूषित नहीं हैं, परन्तु उनमें-से कौन; किसके उपभोगका अधिकारी है, इस उपभोगकी क्रियासे ही धर्माधर्मका सम्बन्ध है, स्त्री-पुरुषसे नहीं। तात्पर्य यह कि जिस कर्मको करनेमें मनुष्यका स्वातन्त्र्य है, उसीके करने या न करनेके विधि-निषेध होते हैं और विधि-निषेधके आचरण और उल्लंघनसे ही धर्माधर्मकी उत्पत्ति होती है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति तत्काल सुखाभास उत्पन्न कर सकती है, परन्तु भविष्यके लिए वह वस्तु, व्यक्ति, स्थान, समय, क्रिया या भोगके परतन्त्र बना देती है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति ही पराधीनताका मूल कारण है। अनुशासनसे द्वारा उसीको नियन्त्रित किया जाता है। शिष्टानुशिष्ट कर्म मिष्ट-मिष्ट इष्ट फलका जनक होता है। इसीको 'विशेष धर्म' कहते हैं। वह जीवनमें स्वतः नहीं आता, उसे लानेका प्रयास करना पड़ता है। इसमें अधिकारी संकल्प, विधिःपूर्वक अनुष्ठान-सामग्री और समग्रता की अपेक्षा होती है। धर्मका एक अङ्ग भी फलप्रद होता है, परन्तु अंगवैगुण्य होनेपर प्रत्यवायकी भी उत्पत्ति होती है। समग्र धर्म समयपर फल देता है। वह कर्त्तामें या उसके अन्तःकरणमें अपूर्वके रूपसे तवतक रहता है जबतक उसका फल उदय न हो जाय। कर्मका विहित नियन्त्रण धर्म है। वासनाका विहित नियन्त्रण उपासना है। वृत्तिका विहित नियन्त्रण योग है।

नियन्त्रणके बिना कोई भी साधना अपने साध्य आकारके रूपमें परिणत नहीं होती है। जैसे दूध विधिपूर्वक जमानेपर दही हो जाता है और उससे नवनीत निकलता है इसी प्रकार कर्म विधिपूर्वक करनेपर 'धर्म' हो जाता है और उससे सुखकी प्राप्ति होती है। कर्ममें विधि-निषेध, उपासनामें आवाहन-विसर्जन, योगमें अभ्यास-वैराग्य और तत्त्वज्ञानमें अध्यारोप-अपवाद ये सब मिलते-जुलते साधनाके प्रकार-भेद ही हैं। इनमें सामान्य एक ही है। मूल वस्तु ज्यों-की-त्यों है। कर्म, उपासना, योग और ज्ञानके द्वारा उसका शोधन अथवा अनुसंधान ही सम्पन्न होता है। परम्परया अथवा बहिरङ्ग-अन्तरङ्ग रूपसे सब साधन समन्वित होते हैं और एक ही लक्ष्यकी ओर अग्रसर होते हैं।

नाम-रूप सृष्टि और वेद

यह कहा जा चुका है कि सामान्य धर्म जगत्के मूल उपादान सच्चिदानन्दघन अद्वय-ब्रह्मकी प्रधानतासे होते हैं और विशेष धर्म अपने निमित्त कारण अनुशासनकी प्रधानतासे। जैसे सृष्टि अनादि है, वैसे ही दृष्टि भी अनादि है। जैसे रूपात्मक सृष्टि अनादि एवं प्रवाहरूपसे नित्य है, ऐसे ही नामात्मक सृष्टि भी अनादि और अनन्त है। जैसे मूल धातुमें रूप व्याकृत होते हैं, वैसे ही मूल धातुमें शब्द भी व्याकृत होते हैं। नाम-रूपका विभाग कार्यावस्थामें ही

है, कारणावस्थामें नहीं। अतएव प्रलयके समय रूप-प्रपञ्चके समान ही नाम-प्रपञ्च भी विलीन रहता है और सृष्टिके समय उनका आविर्भाव हो जाता है। मूलतः नाम और रूप एक ही तत्त्व हैं। परावाणीमें नाम-रूपका विभाग नहीं है। अतएव द्रष्टाके सम्मुख जब दृश्य-रूप आते हैं, तभी दृश्य-शब्द भी आते हैं। अतएव वेदवाणीका निर्माण नहीं होता, दर्शन होता है। संस्कृत-भाषामें 'ऋषि' शब्दका अर्थ भी द्रष्टा है। जैसे ईश्वरके संनिधानसे यथापूर्व सृष्टिका उदय होता है, वैसे ही वेदोंकी आनुपूर्वीका भी। इसीसे वेदको 'अनादि-निधन नित्य' कहा गया है। उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता।

धर्म-प्रामाण्य—वैलक्षण्य

ज्ञानका जो परमार्थ-स्वरूप है वही वेदका भी परमार्थ-स्वरूप है। ज्ञानका प्रथम निर्माता कोई नहीं है, न ईश्वर, न जीव क्योंकि निर्माणमें ज्ञानकी अपेक्षा होती है। यदि कोई निर्माण करेगा तो ज्ञानके अनुसार ही करेगा। ईश्वर-जीवरूप-पुरुषके द्वारा निर्मित न होनेके कारण वेद अपौरुषेय हैं। इनमें पुरुषनिष्ठ भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा (ठगी) कर्णापाटव (ऐन्द्रियक शक्तिकी न्यूनता) आदि दोष-पङ्ककी कलंकरेखा नहीं है, जो लौकिक वस्तुओंका अनुभव करके उदय होता है, वह नित्य-सिद्ध विज्ञान है। धर्मका निर्णय करनेमें वही प्रमाण है। वैदिक विज्ञानके निमित्तसे ही धर्माधर्मका निश्चय होता है। कहना न होगा कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके धर्म-ग्रन्थोंके स्वरूप एवं आविर्भावके सम्बन्धमें इस प्रकारकी गम्भीर दृष्टि परिलक्षित नहीं होती। अतएव वेदके समकक्ष किसी भी साम्प्रदायिक ग्रन्थको रखा नहीं जा सकता। वेद सम्प्रदायविशेषके धर्म-विशेषका प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ-विशेष नहीं है, वह सार्वकालिक उदय-विलयशील प्रपञ्चका शाश्वत धर्मबोध है। किसी भी राष्ट्र, जाति, लिङ्ग या समाजकी सीमामें वह आबद्ध नहीं है। सर्वदेश,सर्वकाल, सर्व व्यक्तियोंके लिए अधिकारानुसार अर्थात् सबकी योग्यताके अनुसार सबके हितके लिए अनुष्ठेय धर्मका प्रतिपादन करता है।

यह अनन्त वेदराशि दो प्रकारसे पदार्थका निरूपण करती है—१, सिद्धवस्तुका वर्णन; २. साध्यवस्तु और उसकी प्राप्तिके उपाय। पहला ब्रह्म है और दूसरा धर्म। सिद्धवस्तुका साक्षात्कार होता है तद्विषयक अविद्याकी निवृत्तिसे। अविद्याकी निवृत्ति होती है तद्विषयक विद्यासे। ब्रह्मविद्या है ब्रह्मात्मैक्यविज्ञान। एक विज्ञानसे सर्व-विज्ञान होता है, यह वेदकी प्रतिज्ञा है। इसके लिए स्वर्ण, लौह आदि मूल धातुओंके दृष्टान्त हैं। प्रतीयमान सब कुछ ब्रह्ममात्र ही है। केवल प्रज्ञानघन तन्मात्र आत्माका कभी बाध नहीं हो सकता। आत्मासे भिन्न होनेपर ब्रह्मको कल्पित या जड़ मानना पड़ेगा। महावाक्य स्पष्टरूपसे आत्मा और ब्रह्मकी एकताका वर्णन करते हैं। अतएव ब्रह्मविद्या अर्थात् आत्मा, ब्रह्मकी एकताका बोध भेदका बाध है। अद्वय ब्रह्म ही सिद्धवस्तु है। शम, दम आदि-सम्पन्न जिज्ञासु अधिकारीके लिए वेद इसीका निरूपण करता है।

जिनकी दृष्टि विशेष-विशेष सृष्टिमें तादात्म्यापन्न हो गयी है, ब्रह्मात्माके सिद्धि-स्वरूपके अज्ञानसे परिच्छिन्न पदार्थमें अहंता-ममता करके जड़प्राय हो गयी है, जो अपनेको कर्ता, भोक्ता, संसारी, परिच्छिन्न मानकर दृश्यके मोहजालमें फँस गये हैं; उनको वहाँसे छुड़ानेके लिए मातासे भी अधिक वात्सल्यवती भगवती श्रुति क्रममार्गका उपदेश करती है। स्वच्छन्द-प्रवृत्तिका निरोध ही क्रम-मार्गका प्रारम्भ है। दुश्चरित, दुर्वासना, दुर्गुण, चाञ्चल्य आदिदोषोंका परिहार करके अन्तःकरणको शुद्ध करना और सिद्धवस्तुके साक्षात्कारके योग्य बनाना, इसी धर्मका कार्य है। धर्म-साधनामें क्रमकी स्वीकृति ही सम्प्रदायका मूल है। साधन अनेक हैं। उनका फल है अन्तःकरणकी शुद्धि; वही साध्य है। धर्मानुष्ठान साध्याकार वृत्तिको उत्पन्न और स्थिर करता है। शुद्धाकार वृत्ति शुद्ध चिन्तनकी धारा है। उसीमें शुद्धतत्त्वकी जिज्ञासा और महावाक्यके निमित्तसे भ्रम-निवर्तक ब्रह्मात्मैक्यप्रमाका जन्म होता है। वह भ्रमको मिटाकर निष्प्रयोजन हो जाती है और स्वरूपमें स्वयं बाधित हो जाती है।

धर्मका वास्तविक प्रयोजन : आत्म-पदार्थ शोधन

अन्तःकरण शुद्धिके लिए पाँच बातोंपर ध्यान देना आवश्यक है, १. कर्म-शुद्धि; २. भोग-शुद्धि; ३. भाव शुद्धि; ४. अहंता शुद्धि; और ५. शुद्ध चिन्तन । अन्तःकरण चिन्तनात्मक है । अतः जब चिन्तन शुद्ध हो जाता है, तब अन्तःकरण भी शुद्ध हो जाता है । कल्पित वस्तुके त्यागके विना अकल्पित यथार्थ परमार्थ सत्यवस्तुका साक्षात्कार नहीं होता ।

धर्मानुष्ठानके कुछ अङ्ग हैं । उनसे अधिकार-सम्पत्तिके सम्पादनमें अत्यधिक सहायता मिलती है । जैसेवर्ण-व्यवस्था । माण्डूक्योपनिषद्‌में तत्त्वका निरूपण करनेके लिए साधन और सिद्धिके रूपमें आत्माका चार विभागोंमें निरूपण किया है । वैश्वानर शूद्र है और तैजस वैश्य; प्राज्ञ क्षत्रिय है तथा तुरीय ब्राह्मण । सेवा, व्यापार, वाणिज्य, उपसंहार एवं तत्त्वज्ञान इनकी वृत्ति हैं । इसी क्रमसे आश्रम-व्यवस्था भी है । ब्रह्मचारी वैश्वानर है तथा गृहस्थ तैजस, वानप्रस्थ प्राज्ञ और संन्यासी तुरीय हैं । जाग्रत्-स्वप्न आदिकी उपाधिसे जैसे आत्मामें गुण-धर्मका आरोप होता है, इसी प्रकार चारों वर्णों एवं आश्रमोंके भी गुण-धर्म होते हैं । जैसे स्थानानुरूप स्थानीका अनुसंधान करनेसे आत्म-पदार्थका विवेक होता है, वैसे ही साधार वर्णाश्रम-व्यवस्थाका चिन्तन एवं तदनुकूल धर्मानुष्ठानसे अन्तःकरण शुद्ध होता है । अनुष्ठानसहित चिन्तन बुद्धिको निर्मल एवं तदाकार बना देता है । अतएव धर्मज्ञानकी धर्मानुष्ठानको अपेक्षा होती है । जो अध्यात्मको ठीक-ठीक नहीं समझता, वह वेदज्ञान एवं क्रिया-फलसे भी वञ्चित हो जाता है ऐसा शास्त्रवचन है ।

निषिद्ध कर्मानुष्ठानके कारण जितनी अशुद्धियाँ उत्पन्न हुई, वह सब अन्तःकरणमें ही हुई । ईश्वरमें कोई अशुद्धि नहीं होती । इसलिये अन्तःकरण ही शुद्ध किया जाता है, ईश्वर शुद्ध नहीं किया जाता । अपने अन्तःकरणकी कल्पनाके अनुसार ही ईश्वरमें गुण-दोष प्रतीत होते हैं । यहाँतक कि अन्तःकरणमें जबतक भ्रम है और उसका मूल अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ है, तभीतक ईश्वरके स्वरूपमें मायाका भी आरोप होता है । माया के आरोपसे विनिर्मुक्त ईश्वर ब्रह्म ही है । अतएव बुद्धिगत दोष-आवरणके निवारणके लिए ज्ञान एवं मल विक्षेपके निवारणके लिए धर्मानुष्ठानकी आवश्यकता होती है ।

धर्म-विवेक

धर्मके चार रूप हैं—१. नित्य कर्म-संध्यावन्दनादि, २. नैमित्तिककर्म—संक्रान्ति, ग्रहण आदिके अवसरपर कर्तव्य, ३. काम्यकर्म—स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिए यज्ञ-यागादि और ४. प्रायश्चित्तकर्म—ज्ञात-अज्ञात त्रुटियोंके दोषको मिटानेके लिए शास्त्रोक्त कर्म । इन चारोंका अन्तःकरणकी शुद्धिमें उपयोग है । ये चार प्रकारसे अन्तःकरण शुद्ध करते हैं—१. अधःपतनके कारणभूत प्रत्यवायको मिटा देते हैं । २. जन्मजन्मान्तरके या सङ्गदोष उत्पन्न मलविक्षेपको भगा देते हैं । ३. अनात्मचिन्तनसे वैराग्य होनेके कारण आत्म-चिन्तनके लिए उन्मुख करते हैं अर्थात् जिज्ञासा देते हैं । ४. इन्हींके द्वारा ज्ञानोत्पत्ति भी होती है । इस प्रकार धर्मानुष्ठान हमारे जीवनको पूर्णताके सन्निकट पहुँचा देता है ।

धर्ममें पुरुषार्थ-सिद्धि

शास्त्रोक्त सकाम-कर्मसे भी अन्तःकरण शुद्धि होती है; क्योंकि अलौकिक स्वर्ग-सुख, ब्रह्मलोक आदि भोगनेकी सामर्थ्य अन्तःकरणमें नहीं रहती । धर्मानुष्ठानके द्वारा उनके भोग-योग्य अन्तःशरीरका निर्माण होता है, वह लौकिक शरीरसे विलक्षण होता है । सकाम-कर्म अशुद्धियोंको दूर करके इस शुद्ध सात्त्विक शरीर को उत्पन्न करता है । यदि बीचमें ही कदाचिद् वैराग्य उदय हो जाय तो परमार्थस्वरूपपरमात्माका भी साक्षात्कार हो जाता है ।

संसारके पदार्थ इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये जाते हैं । उनकी प्राप्तिकी इच्छा अर्थ-पुरुषार्थके नामसे कही जाती

है। वे अपने शरीर और मनसे बाहर रहते हैं। उनका संयोग श्रमसाध्य है और वियोग नैसर्गिक। उनकी प्राप्तिमें पराधीनता है, चिन्तनमें तन्मयता होनेसे जड़ता है, अप्राप्त होनेपर दुःख है, प्राप्त होनेपर भी विनाशका भय है। अर्थमें भी सुख नहीं है। अर्थके मिलनकी कल्पना या उसके मिलनकी अनुभूतिमें सुख है? सुख सर्वथा एक मानसिक अनुभूति है। बाह्य पदार्थोंमें, मानसिक अनुभूतिके लिए, निमित्त होनेकी कल्पनाभर की जा सकती है। बाह्य पदार्थ स्थान, काल, अभिरुचि, अवस्था अथवा स्वगत परिवर्तनके कारण कभी सुख देते हैं, कभी दुःख देते हैं। इसलिये कामनापूर्तिके अनुकूल होनेपर ही अर्थ 'पुरुषार्थ' होता है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें वही दुःखप्रद हो जाता है। अर्थ मुख्य पुरुषार्थ नहीं है, काम पुरुषार्थका अङ्ग होनेसे गौण पुरुषार्थ है। अर्थ बहिरङ्ग है, काम अन्तरङ्ग है। यह अन्तःकरणमें ही रहता है, बाहर नहीं। मनोरूप होनेसे इसकी गति उच्छृङ्खल है। अनुभूतके संस्कार, दूरकी वस्तुओंके सम्बन्धमें मनोराज्य, प्राप्तके प्रति ममता और अभिमान, भोगमें आत्मविस्मृति—ये सब काम-पुरुषार्थके सहचर हैं। यह सब होनेपर भी काम-पूर्तिमें सुख है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह अनुभव-सिद्ध है कि अभिरुचिके अनुरूप भोग प्राप्त होनेपर सुख होता है। तो क्या इसको रुचिपर ही छोड़ देना चाहिये? चाहे जिस वस्तु और व्यक्तिपर स्वत्व स्थापित कर लें, उसका उपभोग कर लें, ऐसा क्या अपने हितमें या समाजके हितमें उपयोगी है? ऐसी स्थिति तो पशुसे भी गयी-बीती होगी। इसलिए बहिरङ्ग-अर्थ और अन्तरङ्ग-काम दोनोंके नियन्त्रणके लिए जीवनमें धर्मकी आवश्यकता है। धर्मका निवास बुद्धिमें है। उपनिषद्का वचन है—विज्ञान ही यज्ञका विस्तारक है। अर्थ-संग्रह और भोग-प्रवृत्तिका नियन्त्रण करनेके लिए अर्न्तयामी परमेश्वरकी ही एक शक्ति बुद्धिमें अवतीर्ण होती है। वह बुद्धिस्थ होकर ही उचित-अनुचित, ग्राह्य-त्याज्य, कर्तव्याकर्तव्यको इङ्गित करता रहता है।' धर्ममें स्थिरता है, प्रतिष्ठा है, विश्वास है, आत्मबल है और प्रज्ञाकी अपराधीनता है। विषयवासनाका आक्रमण होनेपर भी प्रज्ञा हारती नहीं, धर्मके बलपर प्रतिष्ठित रहती है। लक्ष्योन्मुख जीवनको धर्म ही आगे बढ़ाता है और पथभ्रष्ट होनेसे त्राण करता है। वह कल्याणका मूल है, निर्वाणका सोपान है।

धर्म उच्छृङ्खल अर्थ-तृष्णाको संयत करता है, भोगलिप्साको नियमित करता है। इस प्रकार दुराचरणके आन्तरिक निमित्तोंको ही कुण्ठित कर देता है। धर्मके दो काम हैं—स्वच्छन्द-प्रवृत्तिका अवरोध और निवृत्तिकी परिपुष्टि। अवरोधसे अर्थ-कामपर नियन्त्रण होता है और निवृत्तिकी परिपुष्टिसे मोक्ष पुरुषार्थकी प्राप्तिमें सहायता मिलती है। इस प्रकार धर्म, पराधीनताके बन्धनको काटता है और मुक्तिका मार्ग उन्मुक्त कर देता है। चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्षका निवास आत्मामें है; वह आत्मरूप ही है। अतएव निवृत्तिकी परिपुष्टिके बिना उसकी उपलब्धि नहीं होती। धर्मका चाहे कोई भी अङ्ग हो, वह दुःखप्रद संसारके किसी-न-किसी अंशका निवर्तक होता है। जो किसी दोषका निवर्तक नहीं है, वह धर्म ही नहीं है।

मिथ्याज्ञान-मूलक राग-द्वेष मोहरूप दोष ही प्रवृत्ति-विस्तारके मूल कारण हैं। योग-दर्शनके अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेष-रूप क्लेशोंका मूल भी अविद्याके खेतमें पनपते-फलते एवं फूलते हैं। अविद्या स्वयं महाक्लेश है। वेदान्त अविद्याकी निवृत्तिसे उपलक्षित स्वतः सिद्ध आत्माको ही मोक्षकी संज्ञा देता है। अतएव मोक्ष-पुरुषार्थीको निवृत्ति-प्रधान धर्मका ही आश्रय लेना चाहिए।

परमधर्म : योग

योगाङ्गोंपर एक दृष्टि

निवृत्तिप्रधान धर्म है—'योग'। याज्ञवल्क्यने आत्म-दर्शनके साधन योगको 'परम धर्म' कहा है। योग पौरुष-साध्य है। वह जीवके द्वारा अनुष्ठित होता है। वह त्वं-पदार्थ-प्रधान है। द्रष्टाका अपने स्वरूपमें अवस्थान ही योग है। इसलिये निवृत्ति-प्रधान साध्य-धर्मके अन्तर्गत योगका भी संनिवेश है। योगके आठ अङ्ग हैं। अङ्गोंके क्रमपर एक चलती-फिरती दृष्टि डाल लें, पहला 'यम'—यमके पाँच विभाग हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, और ब्रह्मचर्य। शत्रु चार हैं और निवर्तक पाँच। कामना निवर्तक ब्रह्मचर्य है। सबके अन्तमें इसकी गणना इसलिये है कि पराधीन करनेवाली वृत्तियोंमें यह सबसे प्रमुख है और पहलेके चार गुणोंके सहकारसे ही इसपर विजय प्राप्त की जा सकती है। कामकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। वह बार-बार जीने-मरनेका स्वाँग करता रहता है। आत्मासे अतिरिक्त देशान्तर, कालान्तर या वस्त्वन्तर-रूपमें विद्यमान या वर्तमान किसी वस्तुको चाहना काम है। न चाहनेके रूपमें भी काम ही रहता है। इसीसे कामरूपको 'दुरासद' कहते हैं। उसको पकड़ पाना कठिन है। नित्यप्राप्त सत्ताके खो जानेकी भ्रान्ति और अन्यकी प्राप्तिकी इच्छा कामका मूल है। इसकी निवृत्तिके लिए अद्वय-तत्त्वका, ब्रह्मका, आत्मरूपसे ज्ञान अपेक्षित है। उसी ब्रह्मकी प्राप्तिकी साधनाका नाम 'ब्रह्मचर्य' है। यह स्त्री-पुरुषकी परस्पर कामनासे लेकर भ्रम-प्रमा-मूलक वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छातक पहुँचता है। ब्रह्मके लिए चर्या ही इस इच्छाको मिटा सकती है।

यमोंद्वारा व्यावृत्त्य

स्तेय-लोभ एक दुर्गुण है। यह दो रूप धारण करके आता है। जिस वस्तुपर अपना स्वत्व नहीं है, उसको किसी प्रकार प्राप्त करना. इसका नाम 'स्तेय' है। दूसरा रूप है—जो वस्तुएँ अपने पास हैं, जिनपर अपना स्वत्व है, उन्हें अधिक-से-अधिक संग्रह करके अपने साथ रखें, परिग्रह करें, इसका नाम 'परिग्रह' है। लोभके इन दोनों तरुण-तनयोंको वशमें करनेके लिए अस्तेय और अपरिग्रह नामकी दो वृत्तियाँ आवश्यक होती हैं। पहले अन्यायपूर्वक उपार्जनका परित्याग, फिर आवश्यकतासे अधिक संग्रहका परित्याग।

काम और लोभकी पूर्ति न होनेपर मनुष्यके मनमें क्रोधका उदय होता है। इच्छापूर्तिमें बाधा डालनेवालेके प्रति द्वेष भी होता है। द्वेष और क्रोध ज्वलनात्मक-वृत्तिके रूपमें प्रचण्ड हो उठते हैं और हिंसा तथा विद्रोहके रूपमें झण्डा उठाते हैं। यह क्रोध आग है और हिंसा उसकी ज्वाला। हिंसाके निरोधके लिए अहिंसाकी आवश्यकता होती है। अहिंसा आत्मस्वरूपके अनुरूप अन्तःकरणका एक गुण है। यह स्वरूप-स्थितिके अधिक अनुकूल पड़ता है। यह करुणा तथा क्षमासे भी अन्तरङ्ग है; क्योंकि वे दोनों व्यवहार-दशामें ही रहते हैं। अहिंसा शान्तिके रूपमें व्यवहारशून्य दशामें भी विद्यमान रहती है।

यमोंका प्रयोजन

हमारी वाणी, कर्म-कलाप, कामसंकल्प, विचार-विवेक, असत्यसे अनुविद्ध हो गये हैं। हमारी बुद्धि अधिकांश असत्यको ही सत्यके रूपमें ग्रहण करती है और व्यवहार करती है। व्यवहारमें माताके लिए सत्य अलग होता है. पत्नीके लिए अलग। यह सत्यकी विभाजक-रेखा समाधि लगाये बिना टूट नहीं सकती और स्वरूप-सत्यका साक्षात्कार होनेके लिए ऐसा आवश्यक है। ऐसी अवस्थामें यदि केवल वाणीसे ही सत्य-भाषण प्रारम्भ कर दिया जाये तो सत्य क्या है, यह जिज्ञासा जाग जायेगी। हम सत्यको

जानेंगे, तब सत्यको बोलेंगे। क्या बौद्धिक, मानस या ऐन्द्रियक सत्य ही सत्य है? आत्मसत्य सर्वथा गुप्त-लुप्त-सुप्त हो गया है? आत्मसत्य क्या है? इस जिज्ञासाका बीज सत्य-भाषणमें निहित है। आपकी दृष्टिसे जो असत्य है, वह न बोलें, न करें, न सोचें। आपके जीवनमें एक दिन ऐसा आयेगा, जब आप वास्तविक मौनका महत्त्व समझ जायेंगे। सत्यके साक्षात्कारके बिना बोलनेमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी। सत्यकी अभिव्यक्ति मौनमें होती है।

कहना न होगा कि अष्टाङ्गयोगका यह प्रथम अङ्ग यम न केवल अपने लिए हितकारी है, प्रत्युत लोक-व्यवहारमें समाज-सेवाके लिए भी बहुत उपयोगी है। धर्म-कक्षामें साधारण धर्मका सार यही है। वेदान्तके साधन-चतुष्टयमें शम-दम आदिरूप षट्-सम्पत्ति भी इसीका परिपाक है। यह यम ही आदिमें धर्म है और अन्तमें अधिकार-सम्पत्ति। यह जिज्ञासुके जीवनमें इतना घुल-मिल जाता है कि तत्त्वज्ञान होनेपर भी इसमें शिथिलता नहीं आती। यह जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखका आधार बनकर जीवन्मुक्त पुरुषके जीवनमें उल्लसित होता रहता है। अन्तर्मुखताके साधनोंमें यही प्रथम है, इसके बिना किसी साधनकी नींव मजबूत नहीं होती।

दूसरा अङ्ग : नियम

योगका दूसरा अङ्ग है। 'नियम'। यह व्यक्तिगत जीवनके निर्माणका आवश्यक साधन है। एक वस्तु जब दूसरी वस्तुके साथ मिश्रित हो जाती है, तब दोनों ही अपने शुद्ध रूपमें नहीं रहते। मिट्टी और पानी मिलकर कीचड़ बन जाते हैं। शक्कर और जलका मिश्रण शर्बत हो जाता है। न शुद्ध जल रहा, न शुद्ध शक्कर। इसी प्रकार मनुष्यका चरित्र भी भिन्न-भिन्न वस्तुओं और व्यक्तियोंके समागमसे अपने शुद्ध रूप अर्थात् पवित्रताको खो बैठता है। आत्मा-अनात्माका मिश्रण भी अशुद्धि ही है। मनुष्यके चरित्रमें जब पवित्रताकी रुचि उदय होती है तब वह बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग दोनों ही प्रकारसे पवित्र रहनेका प्रयास करता है। शरीरपर मैल चढ़नेसे धोनेकी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मनमें शत्रु-मित्रके प्रवेशसे क्रोध-काम-रूप मलिनता आजाती है और उसके निवारणके लिए द्वेषकी आग बुझानी पड़ती है और रागका रंग छुड़ाना पड़ता है। ऐसा कोई भी रंग नहीं है, जो शरीके बहिर्देश या अन्तर्देशमें प्रवेश कर जाय और उसको निकालना न पड़े; इसको 'शौच' कहते हैं। यह अन्तरङ्ग और बहिरङ्गके मलको प्रक्षालित करनेकी प्रक्रिया है। स्नान, संध्या-वन्दनगत अघमर्षणसे यह सम्पन्न होता है। शरीरमें जो भोगका अभ्यास हो गया है, वह गहराईमें उतर गया है। भोगका अभ्यास एक रोग है, वह जितना-जितना बढ़ता है, उतना-ही-उतना राग-संस्कार घनीभूत होता है, साथ ही भोगके कौशल बढ़ते हैं। भोगी पुरुष किसी-न-किसीको दुःख पहुँचाकर ही भोग करता है। अतएव भोगवृत्तिके सकोचका नियम लेना चाहिये। अपनी रुचिके अनुसार कुछ न हो, न मिले, कोई न बोले तो थोड़ा कष्ट सहकर भी अपनेको संयत रखना चाहिये। संयमहीन मनुष्य पशु हो जाता है। चाहे जिस खेतमें, चाहे जिसकी खेतीपर मुँह मार दिया। जो स्वधर्म-पालनके लिए कष्ट सहन नहीं करता, वह धर्मात्मा नहीं, ढोंगी है। योगसम्बन्धी नियममें जो 'तप' है, वही वेदान्तियोंकी षट्-सम्पत्तिमें तितिक्षा बनकर प्रकट होती है। तपकी माँ है धृति, बेटी है तितिक्षा। जिसके जीवनमें तप नहीं है, वह किसी मन्त्रकी रक्षा या ज्ञानके धारणमें समर्थ नहीं हो सकता।

'शौच' है—तन-मनमें बाहरसे लगे हुएको निकाल देना—तप है भीतर-ही-भीतर तन-मनको तपाकर कुन्दन बना देना। इसके बाद अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होनेके लिए तत्सम्बन्धी ज्ञान तथा तन्मयता प्राप्त करनेके लिए 'स्वाध्याय' की आवश्यकता पड़ती है। धर्ममें स्वाध्यायका अर्थ होता है साङ्गवेदोंका अध्ययन। कम-से-कम अपनी शाखाके वेदोंका अध्ययन। उपासनामें स्वाध्यायका अर्थ होता है इष्ट देवताके दर्शनके लिए जप। 'जप' से प्रपञ्चकी

विस्मृति और बारम्बार लक्ष्यका स्फुरण होता है। स्वाध्याय बार-बार प्रपञ्चका विस्मरण कराता है और लक्ष्यका स्फुरण। इससे अभ्यास एवं वैराग्यकी परिपुष्टि होती है। जपमें स्वरूपतः अभ्यास है, दुहराना है और लक्ष्यसे अतिरिक्त वृत्तिका उच्छेद है। स्वाध्यायसे लक्ष्यकी ओर अभिरुचि बढ़ती है।

साधकके लिए यह आवश्यक है कि अपने साधन-शरीरको परिपुष्ट रखनेके लिए किसी बाह्य वस्तुके लिए व्याकुल न हो। निर्वाह-मात्रके लिए ही खान-पान, परिधान, शयन-स्थान अपेक्षित है, सुख लेनेके लिए या ममता करनेके लिए नहीं। यदि बाह्य वस्तुओंसे ही अपनेको गौरवशाली महामहिम माना जाय तो अन्तरमें जो गरिमा सुषुप्त है, वह जाग्रत् नहीं होती; क्योंकि उसकी ओर पीठ हो जाती है। आप असंग आत्मा होनेसे श्रेष्ठ हैं कि बहिरङ्ग पद-प्रतिष्ठा, प्रशंसा, भोग-रागकी प्राप्तिसे? आपकी आत्मतुष्टि कहाँ है? 'संतोष' के बिना साधना निष्प्राण हो जाती है। हाँ, वह संतोष लक्ष्य-प्राप्तिकी साधनासे नहीं, बाह्य, वस्तुओंकी लिप्सासे विरतिके रूपमें होना चाहिये।

यह जीव जबतक शिवसे एक नहीं हो जाता, जबतक पूर्णता एवं अपूर्णता—प्रतीति दृष्टि, उल्लास या कल्पनामात्र नहीं हो जाती, तबतक अपनी अल्पज्ञता और अल्पशक्तिताके बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। जीव जीव ही है। साधनकी सभी कक्षामें जीवत्व अनुगत रहता है। जीवत्वके साथ निर्बलता जुड़ी हुई है। वह कभी उदास होता है, कभी निराश होता है, कभी थोड़ी देरके लिए उल्लास भी तरंगायित हो जाता है। जैसे शरीर स्वस्थ-अस्वस्थ होता रहता है, वैसे मन भी खिलता-मुरझाता रहता है। जैसे शरीरके लिए चिकित्सक और चिकित्साकी आवश्यकता होती है, मनके रोगोंकी चिकित्सा है—'ईश्वर-प्रणिधान'। ईश्वर शाश्वत है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्ति है, करुणा-वरुणालय है, परम गुरु है। जैसे साँसके साथ हवा रहती है, आँखके साथ प्रकाश-ज्योति रहती है, वैसे ही प्रत्येक मनमें जो सत्त्वांश है वह महासत्त्व शरीर परमेश्वरका ही रूप है। मन कण है तो ईश्वर मृत्तिका, मन बिन्दु है तो ईश्वर सिंधु, मन घट है तो ईश्वर घटाकाश। अतएव "ईश्वरमें स्वतः समर्पणकी विद्यासे मनको देखना 'प्रणिधान' है।" ईश्वर है, प्रकृष्टनिधान। सत्त्वात्मक मनका खजाना है, कोश है। स्थिति-मति-गति-रतिका कारण है––परमेश्वर। उसमें अपने मनको समर्पित करना, उसीके उद्देश्यसे अपने समस्त क्रिया-कलापोंका अनुष्ठान और ईश्वरके प्रति आत्म-समर्पण 'प्रणिधान' अथवा शरणागतिभाव है। क्या हो रहा है, मिल रहा है, किया जा रहा है, बोला जा रहा है, इसकी ओर न देखकर सर्वत्र परम गुरु परमेश्वरका करुणामय, हितमय वरद हस्तकमल ही देखना चाहिये। उसकी उपस्थितिमें, उसकी आँखोंके सामने जो कुछ हो रहा है, उसमें अनिष्टकी सम्भावना ही क्या है? इस सम्पूर्ण समर्पणसे साधक लौकिक चिन्ताओंसे से मुक्त होकर तथा परमार्थकी प्राप्तिमें आशावान् होकर विश्वासपूर्वक दृढ़तासे अपने साधनमें संलग्न हो जाता है। जहाँ भक्तिमार्गमें समर्पणको साधनकी पूर्णता मानते हैं, वहाँ योगमार्गमें समर्पणको योग-साधनामें सहायक अङ्गीकार करते हैं।

यम-नियम साधनमात्रकी प्रथम भूमिका है। साधन-मार्गपर चलनेके लिए ये अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य पाथेय हैं। ये मार्गमें मिलनेवाले प्रलोभनों एवं प्रतिबन्धोंसे रक्षा करते हैं। किसीको हानि पहुँचाये बिना एवं स्वयं हानि उठाये बिना आगे बढ़नेके लिए यही अन्तरङ्ग बलसम्बल हैं।

योग-सिद्धान्त और साधना

योग-सिद्धान्तमें सृष्टि दो प्रकार की है––१. प्रकृतिका परिणाम, २. अविद्याका परिणाम। अविद्या ही मैं-मेरा, अपना-पराया एवं भयकी सृष्टि करती है। इन्हींको योगकी भाषामें 'अस्मिता', 'राग-द्वेष' तथा अभिनिवेश' कहा जाता है। ये 'क्लेश' हैं। धन-हरण, जन-मरण अथवा भवन-दहन क्लेश नहीं हैं, क्लेश है—धन-जन-भवनमें ममता एवं

शेषशायी

अहंता। यह अविद्याके कारण ही होती है। जब प्रकृति-पुरुषका विवेक होता है और समग्र सृष्टिप्रपञ्च प्रकृतिमें समाधिस्थ कर दिया जाता है, जैसे मुर्देको कब्रमें गाड़ दिया गया हो तब ज्ञानस्वरूप द्रष्टा समाधिमें नहीं गड़ता; वह समाधिसे पृथक् होकर विवेक-ख्यातिके द्वारा अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। जबतक 'विवेक-ख्याति' नहीं होती तबतक 'सम्प्रज्ञात-समाधि होती है। विवेक-ख्यातिके अनन्तर 'असम्प्रज्ञात समाधि' हो जाती है। योगके अङ्गोंमें यह समाधि अन्तिम अङ्ग है, इसलिये साधनाके प्रारम्भसे ही समाधिका प्रारम्भ हो जाता है। योग-सिद्धान्तके अनुसार तत्त्व केवल दो ही हैं—'पुरुष' और 'प्रकृति'। असङ्ग द्रष्टा 'पुरुष' अपरिणामी है 'प्रकृति' क्षण-परिणामी है। प्रकृति ही प्रथम कारण है। यह अनेक रूप धारण करती है। पञ्चभूत अन्तिम कार्य हैं। बीचके तत्त्व अपने कार्यके प्रति कारण हैं एवं अपने कारणके प्रति कार्य हैं, अर्थात् उभयात्मक हैं। पुरुष इस कार्यकारणात्मक सृष्टिसे विलक्षण असङ्ग एवं उदासीन है। वह कभी किसी रूपमें परिणत नहीं होता। उसके विविक्तरूपका साक्षात्कार समाधिसे हो जाता है। योगकी भाषामें उसे 'साक्षात्कार' नहीं कहते, 'स्वरूपमें अवस्थान' कहते हैं। उसके पूर्वके जितने साधन हैं, उनमें 'समाधि' किसी-न-किसी रूपमें अनुगत रहती है।

प्रकृति त्रिगुणमयी है। गुण हैं सत्त्व, रज तम। ये परिणामके क्रमसे प्रलयके समय साम्यावस्थामें होते हैं और सृष्टिके समय वैषम्य दशामें। साधन तमसे रजमें, रजसे सत्त्वमें, वृत्त्याकार-सत्त्वसे शान्तसत्त्वमें प्रतिष्ठित करता है। यही कारण है कि आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार तीनों अपने-अपने स्थानपर समाधिके लिए आवश्यक साधन हैं।

यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रकृतिका अन्तिम कार्य पञ्चभूत ही है। पशु-पक्षी-मनुष्य आदिके जो विविध शरीर हैं वे कार्य नहीं हैं, कार्याभास हैं तथा पञ्चभूतमें क्लृप्त अथवा कृत्रिम हैं। कार्यका कार्य नहीं हुआ करता। अतएव शरीरोंका आदि एवं अन्त पञ्चभूत ही हैं। उन्हींमें ये दीखते हैं और समाप्त हो जाते हैं। इसमें 'मैं-मेरा' अविद्या अथवा अविवेककी रचना है, प्रकृतिकी रचना नहीं। अतः शरीरों को योग-साधनके द्वारा द्रव्य-समाधि दी जाती है। शरीरकी स्थिरता उसे पञ्चभूतसे एक कर देती है। व्यष्टि-मूढ़ता समष्टि-मूढ़तासे एक हो जाती है। यही शरीरकी 'द्रव्य-समाधि' है। यदि किसी प्रकारकी पीड़ाका अनुभव किये बिना आरामसे शरीर चिरकालतक स्थिर रह जाय और चेतनाका लोप न हो तो तमोगुणका व्यष्टि-कार्याभास समष्टि-कार्यमें समाधिस्थ हो गया। यही 'आसनकी सिद्धि' है। इससे क्षुधा-पिपासापर विजय प्राप्त हो जाती है। पञ्चभूतों का जीवन ही शरीर-जीवनके लिए पर्याप्त हो जाता है।

आसन और प्राणायाम

रजोगुण विक्षेप-रूप है। उसकी प्रधानतासे क्रियाएँ होती हैं, एवं विक्रिया भी होती है। अविद्याके कारण देहमें 'मैं-मेरा' होता है और तद्गत क्रियाशक्ति प्राणमें भी 'मैं-मेरा' होता है। इसीसे शरीरमें श्वासोच्छ्वास, रक्त-संचार, पाचन, मलापसरण, केशवृद्धि, आङ्गिक-परिवर्तन और तो क्या, क्रिया-विक्रिया, सब-की-सब होती रहती हैं। प्राणायामकी साधना इन क्रिया-विक्रयाओंकी प्रक्रियाको ठप्प कर देती है, केवल श्वासक्रियामात्र शेष रहती है। समष्टिगत क्रिया ही व्यष्टिकी क्रिया हो जाती है। समष्टि-क्रियामें व्यष्टि-क्रियाकी समाधि ही 'प्राणायाम सिद्धि' है। इससे देहमें स्वाभाविक बलका विकास और दीर्घजीवनका प्रकाश भी आ जाता है। प्रारम्भमें आसन-प्राणायाम—दोनोंके अनेक भेद हो सकते हैं, परन्तु समाधिके लिए उपयोगी एक ही आसन और एक ही प्राणायाम होता है। हिलते हुए या सोते हुए शारीरिक आसन योगके लिए उपयोगी नहीं हैं। पहले में 'विक्षेप' है और दूसरे में 'लय' है। अतएव जैसे समाधिके लिए बैठे हुए शरीरका 'आसन' उपकारक है, वैसे ही विविध प्राणायामोंमें कुम्भकप्रधान प्राणायाम ही योगके लिए उपयोगी होता है।

योगाङ्गोंमें प्रत्याहार

इन्द्रिय एवं विषयोंका संनिकर्ष ध्यानात्मक ही होता है। 'आसन' से द्रव्यशक्ति, 'प्राणायाम' से क्रियाशक्ति एवं 'प्रत्याहार' से विविध ज्ञानात्मक इन्द्रियशक्तिको समाधिस्थ किया जाता है। इन्द्रिय एवं विषय—दोनोंकी शक्ति सीमित होती है। वे अपने-अपने मण्डलमें परस्पर मिलते रहते हैं। वे कितनी दूरीतक, कितनी देरतक और किस प्रकार स्वयंमें मिलते-बिछुड़ते हैं, यह उनकी शक्तिपर अवलम्बित है। वस्तुतः सारी सृष्टिका चित्त-सत्त्व एक है। इन्द्रियोंकी उपाधिसे भिन्न-भिन्न विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय-शक्तियाँ 'चित-सत्त्व' की वृत्ति हैं। जैसे जल बहनेके समय तरंगायित होता है, स्थिरताके समय शान्त होता है; उसी प्रकार इन्द्रियोंके द्वारा सत्त्वात्मक ज्ञान-शक्ति भी पृथक्-पृथक् विषयोंको ग्रहण करते समय वृत्ति-रूपसे विक्षिप्त होती है और विषयोंका ग्रहण न करनेपर अपने गोलकमें शान्त हो जाती है। इन्द्रियवृत्तियोंका अपने-अपने विषयोंका आहार न करके अपने-अपने गोलकमें स्थिर हो जाना ही 'प्रत्याहार' है। 'ऐन्द्रियक ज्ञानवृत्तियोंकी समाधि' ही 'प्रत्याहारका मुख्य रूप है; इससे विषयोंके आकर्षण, प्रलोभन एवं तज्जन्य प्रतिबन्धको निवृत्त करनेमें पूरी सहायता मिलती है। अतएव योगके अङ्गोंमें आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार द्रव्य-समाधि, क्रिया-समाधि तथा ऐन्द्रियक वृत्ति-समाधिके द्वारा चित्त-निरोधमें पूर्णतः उपयोगी हैं। इन्हींके द्वारा शरीर कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियोंका वशीकरण सम्पन्न होता है। 'निरोधका अर्थ मारण नहीं होता, स्वायत्तीकरण होता है।' इन तीनोंमें इतना अन्तर अवश्य है कि 'आसन' और 'प्राणायाम' तो बिना वैराग्यके केवल अभ्याससे किये जा सकते हैं परन्तु 'प्रत्याहार' अपनी स्थिरताके लिए वैराग्यकी अपेक्षा रखता है। यम-नियममें धर्म, आसन-प्राणायाममें अभ्यास और प्रत्याहारकी स्थिरतामें वैराग्य हेतु है। अपने लक्ष्यको बारम्बार स्पर्श करना 'अभ्यास' है। लक्ष्यके विरोधीकी उपेक्षा कर देना 'वैराग्य' है। लक्ष्यके विरोधीके प्रति भी स्पर्धा, द्वेष, क्रोध या ईर्ष्या नहीं होनी चाहिये।

धारणा, ध्यान, समाधि और उनका विज्ञान

इन पाँच साधनोंके बाद इनकी अपेक्षा तीन अन्तरङ्ग-साधनोंका प्रारम्भ होता है। उनका नाम है—'धारणा', 'ध्यान' और 'समाधि'। इस बातपर बहुत कम लोगोंका ध्यान जाता है कि न्यायवैशेषिक एवं पूर्वमीमांसामें द्रव्यरूपसे स्वीकृत देश-काल योगाभ्यासमें कहाँ लुप्त हो जाते हैं? देश तथा काल योगसिद्धान्तमें पदार्थ ही नहीं हैं। वृत्तिके संकोच-विस्तारका नाम 'देश' है और उदय-विलयके क्रमका नाम 'काल' है। ये न प्रकृति हैं, न विकृति हैं और न उभयात्मक हैं। वृत्तिनिरोधसे ही इनका निरोध सम्पन्न हो जाता है। जैसे पञ्चभूतोंमें कल्पित आकृतियों, अर्थात् कार्याभासोंको वस्तु समझना अविवेक है, वैसे ही व्यष्टि-समष्टि-कालको वृत्तिसे पृथक् मान बैठना अविवेक ही है। धारणाके द्वारा देशाकार-वृत्तिका मुख्यरूप से संकोच किया जाता है और ध्यानके द्वारा प्रधानतया कालाकारवृत्तिका संकोच किया जाता है। वृत्तिके संकोचनसे साक्षात् सम्बन्ध होनेके कारण ही पूर्वोक्त तीन साधनोंसे ये दोनों अन्तरङ्ग हैं।

पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर, ऊर्ध्व-अधः तथा अन्तर्बहिरूप वृत्तियाँ ही दिशाओंके आकारमें फैली हुई मालूम पड़ती हैं। देशके किसी एक आकारमें वृत्तिको बाँध दीजिये—मूलाधार या सहस्रार, दिव्य देश वैकुण्ठ, या आध्यात्मिक हृदय-देश इनमेंसे कहीं भी एक हृदय-देशमें वृत्तियोंको बाँध दीजिये। द्विभुज, चतुर्भुज आदि मूर्तियोंमें भी लम्बाई-चौड़ाई होती है, शालग्राम-शिलामें भी गोलाई होती है, उसमें कहीं भी वृत्तिको स्थिर कर लेना, दूसरा स्थान स्फुरित न हो। इसको यहाँसे भी शुरू कर सकते हैं कि हम अपनी मनोवृत्तियोंको मकान, कमरे या शरीरके घेरेसे बाहर नहीं जाने देंगे। शरीरगत किसी चक्रमें वृत्तिको तदाकार कर दीजिये। धीरे-धीरे देशकी कल्पना सूक्ष्म होकर लुप्त हो जायगी और वृत्तिका स्थानान्तरण नहीं होगा। वस्तुतः वृत्तिका स्थानान्तरण नहीं होना चाहिये। स्थानाकार कल्पना ही नाना रूप धारण करती है। न

वृत्ति देशमें रहती है, न विदेश जाती है। वृत्ति ही तत्तत् रूपसे परिणत होती रहती है। जब वृत्ति अणु-देशमें स्थित होती है, तब देशका विस्तार लुप्त हो जाता है और केवल वृत्ति ही रहती है। यह देश-कल्पना-विनिर्मुक्त वृत्ति परिणामरूप देशके आश्रयसे संकोचविस्तारसे मुक्ति पा लेती है और चित्त-सत्त्वसे एकता, अर्थात् समाधिकी योग्यता प्राप्त कर लेती है। समाधि और समाधानका अर्थ एक ही है। सम्यक् आधान अर्थात् वृत्तिका अपने चित्त-सत्त्वरूप कारण-द्रव्यसे अभिन्न होकर स्थित होना है।

वृत्तियाँ क्रम अथवा अक्रमसे उदय-विलयको प्राप्त होती रहती हैं। उदय एवं शान्तिका क्रम तो रहता ही है। क्रमकी संख्या ही वृत्तिका कालाकार परिणमन दिखाती है। भूत, भविष्य वर्तमान एवं सब है और वृत्तिमें ही हैं; न प्रकृतिमें, न पञ्चभूतमें। द्रष्टासे तो इनका सम्बन्ध कल्पित रूपसे भी नहीं हो सकता। वस्तुतः काल वृत्ति-रूप ही है। वृत्तियोंकी लयदशामें काल-संवित् नहीं रहती। जबतक संवित् है, वृत्ति और कालको पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता। जब वृत्ति पुन,:पुनः एक ही लक्ष्यकी ओर प्रवाहित होने लगती है, एक ही लक्ष्यके सम्बन्धमें ताना-बाना फैलाने लगती है तो धीरे-धीरे वृत्तिकी गाढ़ता होनेपर काल अणु होता जाता है और उसके साथ ही वृत्ति भी अणु होती जाती है। अणुदशामें जाकर काल अपने अस्तित्वकी कल्पना खो देता है और वृत्ति कालाकार परिणामको छोड़कर लक्ष्याकार हो जाती है। फिर कालका बोध नहीं रहता। वृत्ति क्रमसे हो, अक्रमसे हो, प्रतिलोम क्रम से हो, कैसे भी क्यों न हो, उसमें अणुकाल जान पड़ता है। ध्यानकी पराकाष्ठामें उसी काल-कल्पनाका लोप हो जाता है। इस समाधि अथवा समाधान-दशामें लक्ष्य-ही-लक्ष्य फुरता है, वह काल नहीं। इसलिये ध्यान समाधिका अव्यवहित पूर्ववर्ती साक्षात् साधन है।

समाधि-विज्ञान

यही कारण है कि आत्मा अथवा ब्रह्म देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न है। यह सिद्ध करनेके लिए योगसाधनामें आवश्यकता ही नहीं होती, वृत्तियोंका निरोध अथवा समाधि होनेपर देश, काल और विविध कार्य-वस्तुएँ भासती ही नहीं। चित्तवृत्तियाँ एक अखण्ड चित्त-सत्त्वसे एक हो जाती हैं और उसका द्रष्टा समग्र चित्त-सत्त्वका विभु—द्रष्टा होता है। दूसरा पुरुष है, कोई ईश्वर है, प्रकृति प्राकृत है—यह सब वृति-विलास है। वृत्ति जब चित्त- सत्त्वमें लीन हो जाती है, तब द्रष्टा किसीका द्रष्टा नहीं, दृङ्मात्र ही रहता है। इसीको 'कैवल्य' कहते हैं।

वृत्तिका चित्त-सत्त्वमें शान्त होना समाधि है। इसके दो विभाग हैं—विवेकख्यातिके पूर्व और उसके पश्चात्। पहलीका नाम 'सम्प्रज्ञात समाधि', दूसरीका नाम 'असम्प्रज्ञात समाधि' है। इनमें विवेकख्याति ही विभाजक रेखा है। प्राकृत प्रपञ्चका स्वाभाविक उदय-विलय पुरुषके कैवल्यका हेतु नहीं है। अभ्यासजन्य समाधिसे कैवल्य होता है। अतः समाधि-स्थिति लाभ करनेके लिए प्रयत्न आवश्यक है।

चित्त-सत्त्वका साम्योन्मुख या वैषम्योन्मुख स्पन्दन ही 'वृत्ति' है। साम्यमें आकर 'सम' होते हैं और वैषम्यमें 'विषम'। "वर्तन, वृत्तिः व्यापृत होनेका नाम 'वृत्ति' है।" योगदर्शनमें इन्हें पाँच प्रकारका माना गया है। प्रमाण विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति। ये अविद्या आदि पञ्चक्लेशोंसे युक्त भी होती हैं और वियुक्त भी। इनका रूप चाहे कुछ भी क्यों न हो, निरोध करनेयोग्य ही हैं। लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक सभी प्रकारकी वृत्तियाँ निरोध्य कोटिमें ही आती हैं। धर्मानुष्ठान; भगवद्भक्ति, श्रवण-मनन-निदिध्यासन, इनमें-से किसीको योगीलोग निरोध्यसे बाहर नहीं मानते। जब प्रमाण, प्रमेय एवं प्रमारूप समग्र व्यवहार ही वृत्तिरूप है और उसका निरोध करना है, तब दूसरी वृत्तियोंकी तो महत्ता ही क्या है? यह एक अलग दर्शन है। भक्ति-दर्शन और वेदान्त-दर्शन इस प्रकारके समाधि-योगको स्वीकार नहीं करते; क्योंकि भक्ति और ब्रह्मविद्या दोनों ही वृत्तिरूप हैं और उन्हें निरोध कर देनेके बाद भगवदाकारताकी प्राप्ति

और अविद्याकी निवृत्तिके लिए कोई साधन ही नहीं रह जाता। इसीका नाम शास्त्रोंमें 'प्रस्थान-भेद' है। अस्तु !

स्थूल-आलम्बनसे वृत्तियोंका निरोध, सूक्ष्म आलम्बनसे वृत्तियोंका निरोध, आनन्दालम्बनसे वृत्तियोंका निरोध—सम्प्रज्ञात समाधिके ये चार प्रकार हैं। इनके तीन विभाग और होते हैं—ग्राह्य, ग्रहण और ग्रहीतामें समापत्ति। समाधिकालमें ज्ञान शब्द एवं अर्थका भेद मिट जाता है। योग-सिद्धान्तमें ज्ञान भी प्रकृतिका ही परिणाम है। इसलिये 'घट' शब्द 'घट' अर्थ और 'घट' ज्ञानकी एकता होनेपर प्राकृत ज्ञानमें ज्ञाताज्ञेयका भेद नहीं रहता। परन्तु अप्राकृत चितिशक्ति ज्ञानस्वरूप ज्यों-की-त्यों रहती है। यहीं प्राकृत ज्ञान और शुद्ध ज्ञानका पृथक्करण हो जाता है। इसे 'विवेक-ख्याति' कहते हैं। समाधिकालमें प्रशान्त भावसे संस्कार प्रवाहित होते रहते हैं। जब द्रष्टाके सम्मुख त्रिपुटी अर्थ मात्र भासती है, तब 'सबीज-समाधि' है। जब उसका भी निरोध हो जाता है, तब सबका निरोध हो जाता है और 'निर्बीज-समाधि' सिद्ध हो जाती है।

सिद्धान्त वैलक्षण्य

योग-सिद्धान्तकी यह विलक्षणता है कि वहाँ पुरुष कर्ता नहीं है। प्रकृति ही कर्तृ है। वह स्वाभाविक रूपसे परिणामको प्राप्त होती है और बुद्धिपूर्वक करती है। होना और करना प्रकृतिके दोनों ही रूप हैं। निद्रा स्वतः होती है और समाधि बुद्धिपूर्वक की जाती है। बुद्धि जब वृत्तियोंको बहिर्मुखताकी ओर तीव्र संवेगसे धक्का दे देती है, तब वह कर्तृत्वके बिना ही अपने लक्ष्यसे जाकर मिल जाती है; अर्थात् पुरुषके सम्मुख चित्त-सत्त्वसे एक होकर स्थिर हो जाती है। समाधिकी साधनामें बुद्धिका कर्तृत्व काम करता है; परन्तु विवेकख्याति हो जानेपर वह निष्क्रिय हो जाता है। इस प्रकार बहिर्मुख परिणामके द्वारा प्रकृति ही पुरुषको 'भोग' देती है और अन्तर्मुख परिणामके द्वारा 'अपवर्ग' देती है। पुरुष असङ्ग-उदासीन है; वह अपने कैवल्यमें स्थित है; उसमें न भोग है, न अपवर्ग है। योग-दृष्टिसे कृतार्थ पुरुषके प्रति प्रपञ्च नहीं रहता। परन्तु प्रपञ्च एक प्राकृत सत्य है। वह दूसरे अकृतार्थ पुरुषोंके प्रति ज्यों-का त्यों बना रहाता है। जो वृत्ति-निरोध करके अपने स्वरूपमें स्थिति हो जायगा, वह 'मुक्त' है और जो ऐसा नहीं करेगा वह 'बद्ध' है और वृत्तियोंके साथ घुल-मिलकर जैसी जैसी वृत्तियाँ होंगी, वैसा-ही वैसा वह बनता रहेगा। शरीरमें अभिनिवेश होनेपर भयकी उपत्ति होती है, पञ्चतन्मात्राओंके प्रति राग-द्वेष होता है। अहंताकी कक्षामें अस्मिता जुड़ जाती है। महत्तत्त्वमें बुद्धिकी भ्रान्त करनेवाली 'अविद्या' है। समाधि प्रकृति-लयकी समानान्तर-रेखापर है, परन्तु पुरुष इन सबसे विलक्षण है। संसारके सभी क्लेश वृत्ति-सारूप्यके कारण हैं। इन्हींसे परिवर्तन, ताप, और संस्कार गुण-वृत्ति-विरोधके कारण दुःख होता है। अतः योगाभ्यासके सिवा इनसे बचनेका कोई उपाय नहीं है।

योग-विभूतियाँ

योगानुष्ठानके साथ विभूतियोंका भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब वृत्तियाँ परिच्छिन्न देहका तादात्म्य छोड़कर परिपूर्ण चित्त-सत्त्वसे एक होने लगती हैं तो उसके पूर्ण ज्ञान, शक्तिका सम्बन्ध वृत्तियोंसे भी होने लगता है। इससे अणिमा, महिमा, लघिमा आदि सिद्धियोंका प्रकाश होना सम्भव है। दूर-दर्शन, दूर-श्रवण परचित्त-ज्ञान तथा परकाया-प्रवेश—ये सब क्षुद्र सिद्धियाँ हैं। जब वृत्तियाँ-चित्त-सत्त्व डूबकर निकलती हैं तो कुछ-न-कुछ ले आती हैं। ये विभूतियाँ, समाधि, विवेक-ख्याति एवं पुरुषकी स्वरूप-स्थितिके प्रति विघ्न हैं। यदि योगाभ्यास करते-करते कोई सिद्धि आ भी जाय तो मौनके द्वारा, अर्थात् उसे गुप्त रखकर दबा देना चाहिये। सिद्धियोंके प्रति आकर्षण या प्रदर्शन या ख्यातिका भाव होनेपर यौगिक लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

योग और धर्म

धर्म और योग—दोनों ही पुरुष-प्रयत्न साध्य-साध्य हैं। अतएव अपौरुषेय श्रुतिके द्वारा इनका उपदेश होनेपर

भी वह त्वं-पदार्थ-प्रधान जीवके धर्म ही हैं। यही कारण है कि शास्त्रोंमें इन्हें अन्तरङ्ग और वहिरङ्गके नामसे कहा गया है। अनुष्ठान-प्रवण बुद्धिके द्वारा धर्म होता है, शान्ति-प्रवण बुद्धिके द्वारा योग। सिद्धि-लाभतक इन दोनोंका समुच्चय नहीं चल सकता। सबके लिए इनका विकल्प भी योग नहीं है। अतः अधिकारीभेदसे ही इनकी व्यवस्था करनी चाहिए। जिसकी प्रवणता (झुकाव या रुझान) कर्मकी ओर है उसके लिए धर्मका विधान है, जिसका झुकाव शान्ति एवं समाधिकी ओर है उसके लिए योगाभ्यासका। धर्म करण-शुद्धिका प्रधान साधन है और योग कर्ताकी शुद्धिका। अतएव दोनों वेदोक्त त्वं-पदार्थके शोधनमें सहायक हैं।

भागवत धर्म

तत्पदार्थ और भक्ति

अब तत्पदार्थ-प्रधान धर्मका विचार करते हैं। तत्-पद सर्वनाम भी है और ईश्वर-नाम भी है। 'ॐ तत् सत्' प्रसिद्ध है। धात्वर्थ है—प्रपञ्चका विस्तारक—तनोति। उसके स्वरूपका चिन्तन, स्मरण, और श्रवण कीर्तन सब तत्पदार्थ-प्रधान धर्म हैं। जिससे मन उसमें लगे, उसपर मनःकल्पित आवरण भङ्ग हो, वह तत्पदार्थ-प्रधान धर्म होता है। लोक-भाषामें उसे 'भक्ति' कहेंगे। संसारको और ईश्वरको विभाग-पूर्वक अलग-अलग करके ईश्वरका अनुसंधान करना। 'भाग-विभाग' भक्ति है। 'भजन' भक्ति है। 'संसार-भञ्जन' भक्ति है। त्वं-पदार्थके चिन्तनमें आत्म-अनात्म-विवेकका जो स्थान है, वही तत्-पदार्थके चिन्तनमें भक्तिका स्थान है। अपरोक्षका विवेक, परोक्षकी भक्ति। प्रत्यक्षानुमानवादी चार्वाक्, बौद्ध आत्मा-परमात्माकी सत्ता स्वीकार नहीं करते। जैन संकोच-विकासशील आत्माको मानते हैं, परमात्माको नहीं। जैन एवं बौद्धोंमें भक्ति तो है, परन्तु वह वीतराग सिद्ध पुरुष तीर्थंकर अथवा बुद्धकी है, परमात्माकी नहीं। न्याय-वैशेषिकमें युक्ति-सिद्ध परमात्मा है; योगदर्शनमें साधनसिद्धिमें सहायक प्रयोजनसिद्धि परमात्मा है। तत्त्वदृष्टिसे सांख्ययोगमें परमात्माको दृश्य-विभाग या द्रष्टा-विभागमें अन्तर्भूत करना पड़ेगा या द्रष्टा-दृश्यसे विलक्षण महाद्रष्टाकी कल्पना करनी पड़ेगी। पूर्वमीमांसामें आत्मा कर्ता है, फलदाता परमात्मा स्वीकार नहीं है। कर्म स्वयं अपना फल दे लेता है। वेदान्त-दर्शनमें परमात्मा माया-उपाधिसे युक्त होकर जगत्का कर्ता भी है और जीवोंके कर्मका फलदाता भी। यह केवल युक्ति-सिद्धि या भावकल्पित नहीं, श्रुतिसिद्ध है। परमार्थके अनुभवमें इसका एक स्थान है। जीव-ईश्वर अविद्या-मायासे विनिर्मुक्त-स्वरूपमें अभिन्न है।

प्रपञ्च-कारणत्व-विचार

प्रपञ्चके कारणके सम्बन्धमें भी विविध मत हैं। चार्वाक् भूत-चतुष्टयसे सृष्टि मानते हैं। उन्हें उत्पत्तिप्रलय स्वीकार नहीं है। अतएव कर्म या ईश्वर-रूप निमित्तकी आवश्यकता नहीं होती। जैन सृष्टिकी उत्पत्ति एवं विनाश तो नहीं मानते, परन्तु पुद्गलको उपादान एवं कर्मको निमित्त मानकर पदार्थोंके जन्म-मृत्युकी संगति लगाते हैं। भूत-चतुष्टय और पुद्गल दोनों बहिरङ्ग हैं, कर्म अन्तरङ्ग है। न्यायवैशेषिक परमाणुको उपादान, ईश्वरको निमित्त और कर्मादिको सहकारी मानते हैं। इनका उपादान भी बहिरङ्ग हैं। बौद्ध अन्तरङ्ग कारणवादी हैं। उनका विज्ञान चित्त, शून्य एवं कर्म सब कुछ अन्तरङ्ग ही है। उनके कार्य-

कारणवादमें परमात्माके लिए कोई स्थान नहीं है। सांख्य-योगमें प्रकृति उपादान एवं निमित्त दोनों ही है, वह स्वयं बनती है और स्वयं बनाती है। बुद्धि और पुरुषके बीचमें स्थित होनेके कारण वह अन्तरङ्ग है। पूर्वमीमांसक सृष्टिको अनादि-अनन्त मानते हैं। इसमें कर्म-निमित्तक विविधता हैं। आत्मा कर्ता-भोक्ता है, सृष्टि-बहिरङ्ग है परन्तु कर्म एवं कर्ता अन्तरङ्ग ही हैं।

वेदान्त तत्-पदार्थस्वरूप परमात्माका निरूपण करता है। उसमें दो धारा बन गयी हैं—सगुणवादी और निर्गुणवादी। सगुणवादीमें वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि अनेक अवान्तर भेद हैं। परन्तु आश्चर्य है कि ये सब-के-सब परमात्माको अभिन्न-निमित्तोपादान कारण मानते हैं। कोई विशेष्य-विशेषण, कोई कार्य-कारण, कोई स्वाभाविक, कोई औपाधिक, कोई विवर्त, कोई परिणाम मानते हैं। ऐसा मानना, जानना एवं अनुभव करना इसलिये भी आवश्यक है कि श्रुतियोंमें एकविज्ञानसे सर्व-विज्ञानकी प्रतिज्ञा है। मृत्तिका, लौह और स्वर्णके दृष्टान्तोंद्वारा परमात्माकी एकताका प्रतिपादन है। उपनिषद् स्पष्ट कहता है—'सब कुछ प्रज्ञान-घन ही है।' ब्रह्मसूत्र भी दुविधामें नहीं। उसका कहना है—'श्रुतिका आदेश है कि केवल परमात्मा ही सत्यहै। अन्यत्र श्रूयमाण प्रकृति भी परमात्मा का ही एक नाम है। सब कुछ पर-मात्मासे अनन्य है, विकार वाचारम्भण (नाम) मात्र है। आत्मा सब है, ब्रह्म सब है, वह सब है, अहं सब है। सत् सब है' इस प्रकारके अनेकानेक मन्त्र उपलब्ध हैं। अतएव परमात्माके अतिरिक्त जो कुछ जान पड़ता है, वह भ्रम-कल्पित है अथवा परमात्माका आत्म-विलास है। सत्‌के कार्य हैं, परन्तु सत् अपरिणामी है। चित्‌की प्रतीतियाँ हैं, परन्तु वह दृश्य कभी नहीं होता। आनन्दके लीला-विलास हैं, परन्तु वह निर्विकार है। परिणाम-रहितमें कार्य है। अदृश्यमें दृश्य है। भोक्ता-भोग्यके बिना आनन्द है। पर-मात्माका यही वेदान्त सिद्ध स्वरूप है। यह केवल श्रद्धाका विषय नहीं है। आवरणभङ्ग होनेपर साक्षात् अपरोक्ष अनुभवस्वरूप है। पहले श्रुति-सिद्ध है, पश्चात् अनुभव-स्वरूप है।

भजनीय तत्त्वकी अद्वयता

यह परमात्मा यदि आत्मासे पृथक् हो तो प्रत्यक्ष होनेपर दृश्य, कार्य, जड़ एवं भोग्य हो जायेगा। इसे परिच्छिन्न मानना पड़ेगा। यदि परोक्ष हो तो केवल कल्पित होगा। परमात्माकी प्रत्यक्ष-परोक्षसे विलक्षण साक्षात् अपरोक्षता अभेदको स्वीकार किये बिना हो नहीं सकती। परमात्मा मुझसे अलग होकर कल्पित है, सत्ता-शून्य है, मूर्च्छित है, जड़ है। परमात्मासे अलग होकर आत्मा मृत्युग्रस्त है, मूर्च्छित है, दुःखी है; अतएव श्रुति-सिद्ध परमात्मा अद्वितीय है। एकका दो-तीनमें अन्वय होता है। उनसे व्यतिरेक भी होता है। एकमें वृद्धि-ह्रास-विभाग-संयोग-पृथक्त्व आदि हैं, परन्तु अद्वितीयमें यह सब कुछ नहीं है। अतः वेदान्तने निरुपाधिक स्वरूपमें आत्मा परमात्माके अभेद एवं अद्वितीयताका ही निरूपण किया है। निश्चय ही तत् तथा त्वं-पदार्थका निरूपण करनेके लिए बहुत-से वेदान्त-वाक्य हैं, उन्हें अवान्तर-वाक्य कहते हैं। उन सबके द्वारा निरूप्य 'तत्-त्वं'का सामाना-धिकरण्य एवं 'असि' पदके द्वारा सांकेतिक एकता दोनों पदार्थोंकी उपाधिका निषेध करके स्वरूपकी अद्वितीयता बोधित करती है। अद्वितीयतामें उपाधियाँ बाधित हो जाती हैं, फिर प्रयोजन-पूर्ति हो जानेसे निषेध्य भेद सम्पर्क एवं तन्निवर्तक वाक्य, महावाक्य भी बाधित हो जाते हैं। सत्य प्रत्यगात्मासे अभिन्न एवं अद्वय ब्रह्म है।

भागवतधर्ममें अधिकार-वैलक्षण्य

अबतक यह विचार किया गया कि धर्म तथा परमधर्म अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ब्रह्मात्मैक्य-साक्षात्कारमें उपयोगी है। यह निश्चत है कि उनके विशेष-विशेष अधिकारी होते हैं। धर्मके अनुष्ठानमें वह अधिकारी होता है, जो उसके साध्य-फलका इच्छुक हो, समर्थ हो, समझदार हो एवं शास्त्रनिषिद्ध न हो। अधिकार-सम्पत्तिके बिना अविधि पूर्वक

निरुद्देश्य किया हुआ धर्मानुष्ठान अपूर्वद्वारा फलोत्पादक नहीं होता। समाधिके द्वारा आत्मस्वरूपावस्थानके इच्छुक विवेकवान्, अभ्यास-वैराग्यपरायण व्यक्ति योगके अधिकारी होते हैं। विवेक-वैराग्य-शमादि सम्पत्तियुक्त मुमुक्ष जिज्ञासा-सम्पन्न होकर ब्रह्मात्मैक्य-बोधके अधिकारी होते हैं। कहना न होगा कि इस प्रकारकी साधन-सम्पन्नता सर्वसाधारणके लिए सुगम नहीं है। मानसिक दुर्बलताओंके कारण पग-पगपर वासनाके वशीभूत होकर दुश्चरित्रताके गर्तमें गिरना, हीनताकी ग्रन्थिसे आबद्ध होना, भोग्य वस्तुओं एवं ममतास्पद व्यक्तियोंके प्रति अनर्थकारक आसक्ति, विद्या-बुद्धि-धन आदि आगन्तुक विनश्वर वस्तुओंका मिथ्याभिमान एवं अज्ञानको ही ज्ञान समझ बैठना, कुछ ऐसे बाधा-विघ्न हैं जिनके कारण मनुष्य धर्म, योग या ज्ञानकी साधना करनेमें समर्थ नहीं हो पाता। यह न कर पाना बल पूर्वक निषेधके कारण नहीं हैं, परन्तु अपनी अयोग्यताओंके कारण हैं। इन अयोग्यताओंसे ऊपर उठनेके लिए किसी प्रबल आश्वासन अथवा दृढ़ आलम्बनकी आवश्यकता होती है। फिसलता हुआ सँभल जाय, गिरा हुआ उठ जाय, पिछड़ा हुआ भी आगे बढ़े, इसके लिए कोई दृढ़ आश्रयकी अपेक्षा होती है। गिरे हुएको गोदमें उठा ले, दीन-हीनको हृदयसे लगा ले, बेसहारेका सहारा बन जाय; ऐसा कोई-न-कोई होना चाहिये। और ऐसा अवश्य कोई है। वह ऐसा होना चाहिये जो हमारी योग्यताओंकी ओर न देखे, क्योंकि हममें तो अयोग्यता ही है। अपने सहज शील-स्वभावसे ही हमारा रक्षण, पालन-पोषण एवं संवर्द्धन करे। मनुष्यकी इसी आशाकी पूर्तिके लिए भागवत-धर्म प्रकट हुआ है।

भागवत-धर्मकी यह विशेषता है कि वह अधिकार-अनधिकारकी परीक्षा नहीं करता। वह निरीक्षण-समीक्षणके बिना ही क्षण-क्षण सबके ऊपर कल्याणकी वर्षा करता है। भागवत-धर्म एक ओर नारदादि ऋषियों, धर्मराजादि देवताओं, मनु आदि राजाओं, व्यास आदि विद्वानों एवं शुक आदि अवधूतोंमें रहता है तो दूसरी ओर वृत्रासुर आदि दैत्यों, गोपियों, गायों, पशुओं, पक्षियों, वृक्षों, लताओं और अजामिल आदि पतितोंमें भी प्रकट होता है। जैसे एक बगीचेका माली अपने लगाये हुए पौधेको निर्बल देखता है तो स्वयं उसकी गोड़ाई, सिंचाई, छँटाई, खाद एवं औषधिका प्रयोग करके उसका रोग मिटाता है, दोष दूर करता है और सब प्रकारके सम्वर्द्धन करता है, ठीक इसी प्रकार भगवान् जब अपने किसी बीज या जीवको निर्बलताके कारण पतित होते देखते हैं तो उसको अपने हाथोंसे सँभाल लेते है। अधिकारियोंको अपने दरबारमें बुला लेना सगुण भगवत्ताकी सार्थकता नहीं है, दीन-परिपालनमें ही भगवत्ता सफल होती है। अधिकार-परीक्षाके बिनाही अपनी कृपावीक्षासे जीवको निहाल कर देनेके कारण ही भगवान्‌के धर्मको, जिसका नाम भागवत-धर्म है, सब धर्मोंकी अपेक्षा विशेषता प्राप्त है। यह सर्व-सम्मत है कि भागवत-धर्म अधिकारी-निरपेक्ष है। मनुष्य हो या पशु, देवता हो या दानव, ब्राह्मण हो या शूद्र, स्त्री हो या पुरुष, धनी हो या दरिद्र, बालक हो या वृद्ध, दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो या पण्डित सभी इस धर्मके अधिकारी हैं। जब हम ब्रजकी लीलाओंमें या श्रीरामके वनवासमें पशु-पक्षी, लता-वृक्षसभीको भगवत्प्रेमसे सराबोर होते देखते हैं तो बरबस ही लगने लगता है कि कृपणके घरमें छाँट-छाँटकर बड़े लोगोंको भोजन कराया जाता है, परन्तु उदार पुरुषके घरमें सबके लिए द्वार खुला होता है। भागवत-धर्म सचमुच ऐसा ही उदार है। इसका द्वार सबके लिए सर्वदा एवं सर्वत्र खुला है। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति प्रभुकी सहज करुणा ही भागवत-धर्मके रूपमें अवतीर्ण हुई है।

भागवत-धर्मका स्वरूप-वैलक्षण्य

श्रौत-स्मार्त आदि धर्मोंमें यज्ञ-यागादि-रूप विशेष कर्म करने पड़ते हैं। अधिकार-विचारके साथ ही कर्मके सम्बन्धमें विधि-विधान होते हैं। विविध कर्मोंकी विविध विधा, उनमें थोड़ी-सी भूल हो जाये तो प्रत्यवायकी उत्पत्ति हो जाती है। संकल्पमें भूल हो जाय, क्रिया पूर्वापर हो जाये, अङ्ग-संचालनमें त्रुटि हो जाये, सामग्री शुद्ध न हो,

मन्त्र-वर्णका उच्चारण ठीक न हो, यजमानकी अन्यथा द्रवृत्ति हो जाये, पुरोहितसे त्रुटि हो जाय, अङ्ग-वैगुण्य हो जाये इत्यादि। अनेक कारणोंसे अनुष्ठानात्मक-धर्मकी सफलतामें बाधा पड़ती है। कर्म-विशेषका नाम 'धर्म' होता है। वह साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न होना चाहिये। किसी-किसी यज्ञ-यागमें, परिसंख्या-विधिसे ही सही, हिंसाका भी समावेश होता है। उसके लिए श्रद्धा, उत्तमकाल, पवित्र-स्थान, न्यायोपार्जित वस्तु, वृत्ति-संतोष आदिकी भी अपेक्षा होती है। भागवत-धर्ममें यह सब कुछ अपेक्षित नहीं हैं; चाहे जो भी कर्म हो वह भगवान्‌के प्रति अर्पित होना चाहिये। कर्म-विशेषका नियम नहीं है, समर्पण-भावकी विशेषता है। जहाँ श्रौत-स्मार्त-धर्ममें कर्तृत्व, संकल्प, विधि, सामग्री एवं कर्म-समग्रताका बल है फलकी प्राप्तिके लिए, वहाँ भागवत-धर्ममें बल है तो केवल एक भगवान्‌का। इसमें कर्त्ता-कर्मकी प्रधानता नहीं है, 'उद्देश्यकी प्रधानता' है। आचार्योंकी वाणी है 'प्रमेय-बलसे भक्ति बलवती हैं' विधान-बलसे धर्म, अभ्यास-बलसे योग, प्रमाण-बलसे वेदान्त और प्रमेय-बलसे भक्ति, धर्म और भक्तिमें यही महान् अन्तर है। धर्म प्रमाताका क्रिया-कलाप है, भक्ति प्रमेयका अवतरण है। इसलिये शरीरसे, वाणीसे, मनसे, इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे, अहंकारसे संस्कारजन्य स्वभावसे, जो कुछ भी करे, वह सब अन्तर्यामी परमेश्वर नारायणके उद्देश्यसे एवं समर्पित करदे। भागवत-धर्ममें कर्मका स्वरूप निर्धारित नहीं है। 'एकमात्र भगवदर्पण ही उसका स्वरूप है।' परधर्म-रूप योगाभ्यासमें जहाँ क्रमशः अन्तर्मुख होते जाना आवश्यक है, वह शर्त भी भागवत-धर्ममें नहीं है। भागवत धर्ममें अनुष्ठान नाम-मात्र ही है। वस्तुतः यह तत्त्वज्ञानके समान 'अनुष्ठान-निरपेक्ष अवस्थाप्रधान धर्म है।' कहीं-कहीं तो आस्था भी प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आती जैसे-अजामिलमें।

फल-वैलक्षण्य

श्रौत एवं स्मार्त-धर्मकी भागवत धर्मके साथ यदि फलकी दृष्टिसे तुलना करें तो महान् अन्तर है। धर्मानुष्ठानसे कर्तामें या उनके अन्तःकरणमें ऐसी अपूर्व वस्तु उत्पन्न होती है, जो धर्मानुष्ठानके पूर्व नहीं रहती। वही समयपर फलके रूपमें प्रकट होती है। जितना धर्म, उसके अनुपातमें फल। फलदेकर अपूर्व नष्ट हो जाता है, फल भी समयपर नष्ट हो जाता है। क्षणिक कर्मसे अविनाशी फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती; चाहे वह स्वर्ग हो या ब्रह्मलोक, एक दिन न रहेगा। वहाँके सुखसे वञ्चित होनेपर दुःख भी अवश्यम्भावी है। कृतक अनित्य होता है, दृष्ट नष्ट हो जाता है। 'जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुतना।' भागवत धर्मका फल उत्पाद्य, संस्कार्य, विकार्य, आप्य या विनाशी नहीं हैं; वे जड़-चेतन सबके परमार्थ-स्वार्थके रूपमें नित्य प्राप्त हैं। उनकी प्राप्ति—अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं है, अपने-आपकी ही प्राप्ति है। इसलिए भागवत-धर्मका फल भगवत्प्राप्ति विनश्वर नहीं है। गुण-विशिष्ट भगवान्‌की प्राप्ति भक्ति-विशिष्ट ज्ञानसे होती; अतएव सगुण परमेश्वरकी प्राप्तिमें भक्ति सर्वथा स्वाधीन है। इसको धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास अथवा निर्गुण ज्ञानकी किञ्चित् भी अपेक्षा नहीं है।

पूर्व-मीमांसामें फलदाताके रूपमें ईश्वर स्वीकार्य नहीं हैं। उत्तर-मीमांसामें स्पष्टरूपसे ईश्वरको फलदाता अङ्गीकार किया गया है। जैसे धर्मात्माको धर्मके फलस्वरूप स्वर्ग-सुखादिरूप फल चाहिये, वैसे भक्तको भक्तिके सिवा दूसरा कोई फल नहीं चाहिये। सम्पूर्ण साधनोंका फल 'भगवद्भक्ति' है। यह स्वयं फल है; क्योंकि इसीमें भगवद्-रस प्रतिफलित होता है। जिस फलमें भगवद्रस प्रतिफलित नहीं होता, वह फल परिणाममें कटु है। भक्तके लिए भगवान्‌से भी बढ़कर 'भक्ति' है। जैसे सती स्त्री अपनी भक्तिसे अपने सज्जन पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही भक्त भक्तिसे भगवान्‌को। भगवानको वशमें करनेकी सामर्थ्य भक्तिमें कहाँसे आयी ?

भागवत-धर्म रसात्मक है

भक्तिके स्वरूपकी मीमांसा करते हुए सांख्यवादी कहते हैं कि यह सत्त्वगुणमयी प्रकृतिकी ही एक स्वाभाविक वृत्ति है। उनके दर्शनके अनुसार यह ठीक है; परन्तु जड़

चञ्चला परिणाममिनी प्रकृतिकी वृत्तिमें भगवान्‌को वशमें करनेकी सामर्थ्य नहीं हो सकती। योगीलोग समाधिके साधनके रूपमें ईश्वरालम्बन चित्तवृत्तिको भक्तिके रूपमें स्वीकार करते हैं। वे ईश्वर-प्रणिधानको महत्त्वपूर्ण तो स्वीकार करते हैं, परन्तु समाधि-सिद्धिके लिए उसे निरोध्य मानते हैं। अक्लिष्ट-वृत्ति अवश्य है, परन्तु है तो वृत्ति ही जिसको स्वयं निरोध-स्थानमें जाना है, वह वृत्ति भगवान्‌को वशमें किस शक्तिसे करेगी? प्रक्रियावादी वेदान्ती अविद्याके परिणाम अन्तःकरणकी भगवदाकारवृत्तिको 'मुक्ति' कहते हैं। परन्तु ब्रह्मविद्याद्वारा अविद्या एवं उसके कार्यका बाध होते ही मिथ्या हो जानेवाली भक्ति परमेश्वरको वशमें कैसे कर सकती है? कोई कहते हैं, 'भक्ति भी वैध क्रिया-कलाप अथवा रागानुग-भावनासे उदितभावत्ताका परिपाक-विशेष है। वह भी परमेश्वरको वशमें करनेमें असमर्थ है।' कोई कहते हैं—'भक्ति ईश्वरकी शक्ति है। परन्तु शक्तिमान्‌को वशमें नहीं कर सकती। यह आह्लादिनी शक्ति भी नहीं है; क्योंकि उसका काम सेवा है, वशीकरण नहीं। वस्तुतः भगवान्‌की परमान्तरङ्गा आह्लादिनीका सारसर्वस्व ही भक्तिके रूपमें प्रकट होता है। वह भगवद्-रससार-सर्वस्व श्रीराधा ही भक्तिके रूपमें प्रकट होकर भगवान्‌को अपने वशमें करती हैं। यह धर्मका फल नहीं है और न योगाभ्यासकी स्थिति। यह भगवद्रसका स्वतःसिद्ध आविर्भाव है।

भागवतधर्ममें प्रामाण्य-वैलक्षण्य

धर्ममें प्रमाण विधि-शास्त्र है, ब्रह्मज्ञानमें प्रमाण वेदान्तशास्त्र है। निश्चय ही दोनों वेद हैं, शाश्वत ज्ञानके निधान हैं। इन्होंने अपने अंदर दुर्लभ रहस्यके रूपमें भक्तिको गुप्त रखा है। ऋषि-मुनियोंके मुखसे धर्म प्रकट हुआ। आचार्य-महर्षियोंके द्वारा ज्ञान प्रकट हुआ। भगवान्‌के श्रीमुखसे वह वेदोंका गुप्त खजाना प्रकट हुआ। भगवान्‌की अदभ्र करुणा उनके कोमल हृदयको भी कोमलातिकोमल बनाकर अपने साथ रहस्यात्मक भक्तिको उनकी वाणीपर ले आयी और उन्होंने स्वयं इसका उपदेश किया। भगवान्‌ने स्वयं अपनी प्राप्तिके लिए जो उपाय बतलाये हैं, उसे 'भक्ति' कहते हैं। इसका अर्थ है—भक्तिके वक्ता भी विलक्षण हैं। कोई अनुमानसे बता दे कि वह व्यक्ति अमुक-स्थानपर मिलेगा। कोई सुन-सुनाकर, कोई पूर्व स्मृतिके आधारपर, कोई कल्पना ही कर ले; इससे उस व्यक्तिका मिलना सुनिश्चित नहीं हो जाता। परन्तु यदि वह व्यक्ति स्वयं ही अपने मिलनेका स्थान, समय और युक्ति बता दे तो उसका मिलना सर्वथा सुनिश्चित हो जाता है। भगवत्प्राप्ति न आकाशमें उड़नेकी बात है, न गुहामें प्रवेश करनेकी एवं न डोंड़ी पीटनेकी यह भक्त भगवान्‌का परस्पर प्रेम-मिलन है और वे स्वयं ही उसका संकेत करते हैं। भगवद्वचनकी विशेषता है—वह सबके लिए हितकारी होता है और सबके जीवनमें सद्भाव, चिद्भाव एवं आनन्दभावको भर देता है। भगवद्वचन छाँट-छांटकर हित नहीं करता तथा रसदानोंमें किसी प्रकारकी कृपणता नहीं करता। अभिप्राय यह है कि भक्तिमें प्रमाण है भगवद्वाणी, जिससे वेदका गुप्त रहस्य प्रकट होता है। इस प्रकार वक्ताकी विशेषतासे भी भक्तिकी विशेषता है।

भागवतधर्मकी ये विशेषताएँ

धर्म क्रियारूप है। वह अधिकारी पुरुषके द्वारा अनुष्ठित होता है। कर्ता विधि-विधानका ज्ञाता होता है। धर्म-महाराजकी पहचान ही यह है कि उनका दर्शन करके आर्य-पुरुष उनकी प्रशंसा करने लगते हैं और जय ही बोलने लगते हैं। योग देवता पाँव दबाकर चलते हैं कि किसीको पता न लग जाये। वे एकान्तवासी, पक्के अभ्यासीके जीवनमें प्रविष्ट होते हैं। ब्रह्मज्ञान शान्त-दान्त, चिन्तनशील जिज्ञासुके हृदयमें चमक उठता है; परन्तु भक्ति माता अपने किसी भी पुत्रको अपनी गोदमें उठा लेती हैं और उसके रोम-रोमको अपने वात्सल्य-रससे आप्लावित एवं आप्यायित कर देती हैं। उन्हें शास्त्रोक्त अधिकारी, एकान्ताभ्यासी अथवा शान्त-दान्त जिज्ञासुकी अपेक्षा वह बालक अधिक प्यारा लगता है, जो अज्ञानी अबोध एवं है कर्म करनेमें असमर्थ है। एकान्त होनेपर रोता है, डरता है। जिसे मुक्ति नहीं चाहिये, प्रेम-माधुरीका बन्धन ही जिसको

भाता है, वह कभी-कभी अपनी माताको भी भूल जाता है परन्तु माता उसे नहीं भूलती । माता अपने अबोध शिशुपर करुणाकी गङ्गा बहा देती है । एकान्तवासीको लोरी देने लगती है, अशुद्धके मल-मूत्रको प्रक्षालित कर देती है । भक्तके प्रति भगवान्‌के महत्वको वही चरितार्थ करती है । वह जब देखती है कि हमारा शिशु मलिनतासे लथपथ हो रहा है, आगमें हाथ डालने जा रहा है । अहंकार, ममकारकी विघ्नबाधासे व्यथित हो रहा है, तब भगवती भक्ति माँके समान ही उसपर छा जाती है और अपनी स्नेह-माधुरीसे उसको निर्मल बना देती है । कुमार्गसे बचा लेती हैं; उसके तन-मनमें मुस्कान भर देती हैं । वे नासमझको ज्ञान देती हैं, मलिनको स्वच्छ करती हैं, पीड़ितको सुखी करती हैं । वे अबोधको सँभालती हैं, मलिनता दूर करनेमें रुचि लेती हैं, स्वयं मुसकान बिखेरकर बच्चेके मुखकमलको भी विकसित कर देती हैं, रोतेको चुप कराती हैं, चुपको हँसाती हैं, भूखे-प्यासेको तृप्त करती हैं । इन्हें भगवान्‌के किसी रूपसे, किसी शिशुसे, किसी लीलासे कोई परहेज़ नहीं है । सबमें अपने प्रभुका अनुभव करना ही भक्तिका स्वभाव है ।

धर्मानुष्ठानमें त्रुटि होनेपर प्रत्यवाय होता है और फलभ्रंश हो जाता है । योगमें प्रमाद होनेपर समाधिमें विघ्न आजाता है; तपस्यामें मद होता है । वैराग्यमें भगवत्-सम्बन्धी पदार्थोंका भी तिरस्कार हो जाता है । अल्पज्ञोंका अपमान होता है, मौनमें दीनता आती है, ज्ञानाभिमानी दूसरेकी नव-नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाको भी आदर न देकर उनको अपनी पूर्व स्मृतिका विषय मान बैठता है—'यह तो मैं पहलेसे ही जानता था' इस प्रकार प्रायः सभी साधनोंमें कुछ-न-कुछ विघ्न हैं । सिद्धियोंका लोभ समाधिको भी दूर भगा देता है । ऐसी स्थितिमें सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओंसे असंस्पृष्ट भक्ति माता ही मनुष्यके लिए एकमात्र त्राण-कल्याण-निर्वाणकी जननी है । भक्तिकी ओर बिना समझे-बूझे, आँख बंद करके दौड़ पड़ो, बीच-बीचमें साधन-पथका क्रमभङ्ग भले ही हो जाय परन्तु न इसमें पाँव फिसलता है और न तो लक्ष्यकी प्राप्तिमें कोई बाधा पड़ती । भक्तिके मार्गमें स्खलन तथा फलभ्रंश नहीं है ।

धर्म अन्तःकरण-शुद्धिके पहले आता है, उसे शुद्ध करता है । तत्त्वज्ञान अन्तःकरण शुद्धिके पश्चात् आता है । अशुद्धि-कालमें अन्तःकरणको सँभालनेवाली भक्ति ही है । यदि किसीसे धर्म छूट जाय, भगवान्‌का भजन करते-करते भजनका भी परिपाक न हो, वह भजनसे विमुख हो जाय तो स्वयं भजन ही उसको सहारा देकर अपनी ओर खींच लेता है । परन्तु यदि नित्यसिद्ध भगवानका बल न हो तो केवल अपने बलपर किया हुआ धर्म कुछ भी नहीं दे सकता । इसका कारण क्या है ? भक्तिके हृदयमें विराजमान भगवान् ही इसका कारण है । आचार्योंने इसको 'वस्तुकी शक्ति' कहा है । भक्तिके विषय भगवान्‌की महिमा-प्रमेय-प्रभुका बल है । आप जानते हैं, अनजानमें कोई अमृत पी ले तो वह अमर हो जायगा कि नहीं ? अनजानमें कोई विष पी ले तो मरेगा कि नहीं ? भगवत्सम्बन्धी पदार्थ अमृत हैं । उनमें वस्तु-गुण हैं, भगवद्-रस है । हम जानें या न जानें, वे हमारे जीवनमें आते हैं और हमको भगवन्मय बना देते हैं । जातिहीन, ज्ञानहीन एवं आचारहीन व्यक्ति भी भगवत्सम्बद्ध वस्तुसे अनजानमें ही जुड़कर परम कल्याण-भाजन हो जाते हैं । कुब्जामें काम था, कंसमें भय था, शिशुपालमें द्वेष था, पौण्ड्रकमें दम्भ था । इनमें-से कोई भी भगवान्‌को पहचानता नहीं था; निष्काम प्रेम-भक्तिकी तो चर्चा ही व्यर्थ है । जादू तो वह, जो सिरपर चढ़कर बोले । भगवान्‌की शक्ति तो वह, जो अव्यक्त रहकर ही हृदयमें शक्ति-फलकी अभिव्यक्ति दे दे । अजामिलने कौन-सा जान-बूझकर भगवान्‌का नाम लिया था ? शबरीने कब विधि-विधानसे धर्माचरण किया था ? भगवान्‌ने स्वयं ही अपनेको भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित कर दिया है । उनके गुण-धर्मका लोभ कभी नहीं होता ।

भागवत-धर्मकी मूल दृष्टि

सगुण ब्रह्म जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादन कारण है। अर्थात् वही बनता है, वही बनाता है। हिरण्यगर्भसे लेकर कीट-पतंग-पर्यन्त एवं प्रकृतिसे लेकर तृण-पर्यन्त सब भगवान्का ही रूप है। आकृति, संस्कृति, विकृति, प्रकृति पृथक् पृथक् प्रतीत होनेपर भी उनके भेदसे तत्त्वमें किसी प्रकारका भेद नहीं होता। वह अपने सुनिश्चित स्वरूपका परित्याग नहीं करता। सत् अविनाशी है, चेतन निर्विकार है, 'आनन्द' निर्विषय है। आकार है सत् निर्वृत्तिक है चित्, अभोग है आनन्द। परन्तु ये आकार-विकार-भोग जो देखनेमें आते हैं, ये कौन हैं। वही अभिन्ननिमित्तोपादान कारण प्रभु। उपादान जैसे घड़ेमें माटी, निमित्त जैसे घड़ा बनानेवाला कुम्हार; सूत, डंडा, चाक, थापी, सब कुछ। यह जगत् घट है। इसका मूल मसाला कर्ता-धर्ता-संहर्ता, कर्मसंस्कार-फलसब परमेश्वर है।

ईश्वरवादी अवैदिक उसे केवल निराकार रूपमें ही मानते हैं, साकार रूपमें नहीं, जैसे ईसाई, मुसलमान। ईश्वरवादी वैदिकोंमें कुछ ऐसे हैं, जो ईश्वरको साकार नहीं मानते। वे द्वैतवादी हैं, त्रैतवादी हैं। जैसे ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी। अभिन्न निमित्तोपादान कारणवादी सभी सम्प्रदायके वैदिक ईश्वरको साकार-निराकार दोनों ही मानते हैं। विश्व वही है, विश्वातीत-साक्षी वही है, विश्वकर्ता कारण वही है, विश्व-रहित भी वही है। वह सब है, सबसे न्यारा है। इस दृष्टिकोणसे सृष्टिको देखिये। आपको कहीं ईश्वरकी नये रूपसे प्राण-प्रतिष्ठा नहीं करनी पड़ेगी वह सर्वरूपमें विद्यमान तथा वर्तमान है।

केवल निराकारवादी, चाहे वैदिक हों या अवैदिक, उनके मतमें मूर्तिपूजा और अवतारकी संगति नहीं लग सकती। वे सबमें परमात्मा मान सकते हैं, परन्तु सबको परमात्मा नहीं मान सकते। अद्वैतवादी भी बाधितवृत्तिसे अधिष्ठानाभेदेन सबको परमात्मा ही मानते हैं। अतः उनके मतमें भी मूर्तिपूजा एवं अवतार सिद्ध होता है। सगुण परमेश्वरमें शरीर-शरीरीभावसे, कार्यकारणभाव से, उपादान-उपादेय-भावसे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है और जीवोंके उद्धारके लिए कृपा-पारावार प्रभुका अवतार भी सिद्ध होता है। अतएव सनातन-धर्मके सभी सिद्धान्त, साधन-पद्धति एवंपूजाप्रक्रिया समंजस एवं सुसंगत हो जाती है। प्रकृति परमेश्वरका ही एक नाम है, ब्रह्मसूत्रमें यह अत्यन्त स्पष्ट है। अतः प्रकृतिके प्रत्येक पदार्थमें परमेश्वर-भाव करके उपासना की जा सकती है। कालके रूपमें एकादशी, पूर्णिमा, शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि परमेश्वरके ही रूप हैं। दिव्य देशके रूपमें काशी, मथुरा, नैमिषारण्य, श्रीरङ्गम् आदि परमेश्वर ही हैं। इनका तो विन्यास भी वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ तथा तुरीयके रूपमें माना गया है जैसे काशी, वाराणसी, अन्तर्वेदी एवं अविमुक्तक्षेत्र। सभी तीर्थोंमें क्षेत्रोंमें इसी प्रकारका विवेक है। वस्तुओंमें शालग्राम-शिला, नर्मदेश्वर आदि; द्विभुज, चतुर्भुज, त्रिकोण आदि आकार; शुक्ल, कृष्ण आदि रूप; सब परमात्माके ही उपास्य रूप हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन सबसे परमात्माकी भावना और अनुभव किया जाता है। माता-पिता, पति-पत्नी, बहन-भाई तथा कुमारी-कुमारके-रूपमें भी ईश्वरकी पूजा होती है। गोबरकी गौरी, सुपारीके गणेश, पीपलके वासुदेव, गाय, घोड़े, हाथी भी परमात्माके स्वरूप हैं। सर्वरूपमें परमेश्वर। इसका विज्ञान ही उसका अभिन्न निमित्तोपादान-कारण होना है। स्थलचर, नभचरके रूपमें भी परमात्माका प्रकाश होता है। राम, कृष्ण, मत्स्य एवं बाराह इसीके उदाहरण हैं। यही भागवत-धर्मका विज्ञान है और विशिष्टता है। अपने शरीरमें भी भगवान्की पूजा होती है और आकाशमें भी। सम्पूर्ण चराचर विश्व भगवद्रूप है और भगवान् आत्मस्वरूपसे अभिन्न हैं। यही भागवत-धर्म है। राग-द्वेषकी आत्यन्तिक निवृत्ति करनेवाला ऐसा कोई धर्म नहीं है।

विशेष-विशेष प्रयोजनकी सिद्धिके लिए विशेष-विशेष रूपमें भगवान्की आराधना की जाती है। ज्ञान-

प्राप्तिके लिए ऋषियोंमें, ऐश्वर्य-वीर्यं भोगकी प्राप्तिके लिए देवताओंमें, वंश परम्पराकी वृद्धि एवं सांस्कृतिक सम्पदाकी रक्षाके लिए पितरोंमें परमेश्वरकी ही पूजा की जाती है। इसीसे श्राद्ध-तर्पण आदिकी भी संगति लग जाती है। भागवत-धर्म सनातन-धर्म ही है, उससे पृथक् कोई अलग धर्म नहीं है। यह किसी आचार्य-विशेषके द्वारा चलाया हुआ केवल अपने अनुयायियोंके लिए नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌में बनी बनायी निखिल-विश्व-सृष्टिके लिए है।

श्रीमद्भागवतका वर्तमान रूप ही प्राचीन है

श्रीमद्भागवत् इस समय जिस रूपमें उपलब्ध होता है, वही इसका प्राचीन स्वरूप है।—यह बात इन सभी टीकाओंसे तथा अन्य अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होती है। श्रीनारदीय पुराणमें श्रीमद्भागवतकी जो सूची मिलती है और प्रत्येक स्कन्धमें जिन कथाओंका निर्देश मिलता है, वे सब ज्यों-की-त्यों श्रीमद्भागवतमें मिलती हैं। वह वर्णन इस प्रकार है—

तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः ।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ।।
पारीक्षितमुपाख्यानमितिदं समुदाहृतम ।
परीक्षिच्छुकसंवादे सृतिद्वयनिरूपणम् ।।
ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम् ।
पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसम्भवः ।।
द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ।
चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य संगम ।।
सृष्टिप्रकरणं पश्चात् ब्रह्मणः परमात्मनः ।
कापिलं साङ्ख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ।।
सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ।
पृथोः पुण्यमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषः ।।
इत्येष तुर्यो गदिते विसर्गे स्कन्ध उत्तमः ।
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम् ।।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ।
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमो मतः ।।
अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ।
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम् ।।
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे ।
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् ।।
सप्तमो गदितो वत्स वासनाकर्मकीर्तने ।
गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ।।
समुद्रमन्थनं चैव बलिवैभवबन्धनम् ।
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः ।।
सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ।
वंशानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ।।
कृष्णस्य बालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः ।
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः ।।
भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ।
नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः ।।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ।
यादवानां मिथोऽन्तिश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः ।।
भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ।
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मतम् ।।
सौरीविभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम् ।
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम् ।।
इयेवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ।

श्रीमद्भागवतमें बारह स्कन्ध हैं, इसमें तो किसीका विवाद ही नहीं है। पद्मपुराणमें श्रीमद्भागवतके बारह स्कन्धोंका भगवान्‌के बारह अङ्गोंके रूपमें वर्णन किया गया है, जिसमें लोग श्रीमद्भागवतके रूपमें भगवान्‌का ध्यान कर सकें। उसमें पहले और दूसरे स्कन्धको दोनों चरणकमल, तीसरे और चौथेको जांघ, पाँचवेंको नाभि, छठेंको वक्षःस्थल, सातवें और आठवेंको बाहु-युगल, नवेंको कण्ठ, दसवेंको मुखारविन्द, ग्यारहवेंको ललाट और बारहवेंको मूर्धा कहा गया है।[3]

कौशिक-संहितान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें यही बात कुछ दूसरे ढंगसे कही गयी है। उसमें पैरसे लेकर जानुपर्यन्त पहला स्कन्ध, जानुसे कटिपर्यन्त दूसरा स्कन्ध, तीसरा स्कन्ध नाभि, चौथा स्कन्ध उदर, पाँचवाँ स्कन्ध हृदय, छठा स्कन्ध बाहुसहित कण्ठ, सातवाँ स्कन्ध मुख, आठवां स्कन्ध नेत्र, नवाँ स्कन्ध कपोल एवं भृकुटि, दसवाँ स्कन्ध ब्रह्मरन्ध्र, ग्यारहवाँ स्कन्ध मन और बारहवाँ स्कन्ध आत्मा कहा गया है।

पाददिजानुपर्यन्तं प्रथमस्कन्ध ईरितः ।
तदूर्ध्वं कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्ध उच्यते ॥
तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदरं मतम् ।
पञ्चमो हृदयं प्रोक्तं षष्ठः कण्ठं सबाहुकम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमो मुखमुच्यते ।
अष्टमश्चक्षुषी विष्णोः कपोलौ भ्रुकुटिः परः ॥
दशमौ ब्रह्मरन्ध्रं च मन एकादशः स्मृतः ।
आत्मा तु द्वादशस्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः ॥

इस प्रकार स्कन्धोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद न होनेपर भी अध्यायोंके सम्बन्धमें थोड़ा मतभेद प्राप्त होता है। पद्मपुराणमें ऐसा कहा गया है कि 'द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः' और चित्सुखाचार्यने एक पद्यांश उद्धृत किया है—'द्वात्रिंशत्त्रिशतं पूर्णमध्यायाः।' इन वचनों के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवतमें तीन सौ बत्तीस ही अध्याय होने चाहिये। इसी आधारपर एक आचार्यने श्रीमद्भागवतके तीन अध्यायोंको प्रक्षिप्त माना है। उनकी दृष्टिमें श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें बारहवाँ, तेरहवाँ और चौदहवाँ तीन अध्याय प्रक्षिप्त हैं। ऐसा मानते हुए भी उन्होंने इन तीन अध्यायोंकी व्याख्या की है और संगति बैठायी है। उनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके प्रायः सभी टीकाकार श्रीमद्भागवतमें तीन सौ पैंतीस अध्याय मानते हैं और सबकी व्याख्या भी करते हैं। श्रीजीवगोस्वामीने बारहवें अध्यायकी टीकाके प्रारम्भमें लिखा है—"जो इन तीन अध्यायोंको प्रक्षिप्त मानते हैं, उनके वैसा माननेका कोई कारण नहीं है; क्योंकि सब देशोंमें वे प्रचलित हैं और वासनाभाष्य, सम्बन्धोक्ति, विद्वत्कामधेनु, शुकमनोहरा, परमहंसप्रिया आदि प्राचीन एवं आधुनिक टीकाओंमें इनकी व्याख्या की गयी है। यदि अपने सम्प्रदायमें अस्वीकृत होनेके कारण ही वे इन्हें अप्रमाणिक मानते हैं, तो दूसरे सम्प्रदायोंमें स्वीकृत होनेके कारण प्रामाणिक ही क्यों नहीं मानते। इसीलिये 'द्वात्रिंशत् त्रिशतञ्च' इस पदका अर्थ यदि तीन सौ बत्तीस ही हो, तब भी चाहे जहाँसे तीन अध्याय नहीं निकाल देने चाहिये। वास्तवमें तो द्वात्रिंशत् च त्रयश्च शतानि च' इस प्रकारका द्वन्द्वैक्य स्वीकार करके उन पदोंका भी तीन सौ पैंतीस ही अर्थ समझना चाहिए।' श्रीमद्भागवतके प्रथम श्लोककी श्रीधरी व्याख्याकी टिप्पणी 'दीपनी' एवं श्रीराधामोहन तर्क-वाचस्पतिकी टीकामें इस विषयपर बड़ा विचार किया गया है और अनेक प्रमाणोंके आधारपर इस पदका अर्थ तीन सौ पैंतीस ही माना गया है। गौरी-तन्त्रमें इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि श्रीमद्भागवतमें तीन सौ पैंतीस अध्याय हैं—

---

१ पादौ यदीयौ प्रथमद्वितीयौ तृतीयतुर्यौ कथितौ यदूरू ।
नाभिस्तथा पञ्चम एव षष्ठो भुजान्तरं दोर्युगलं तथान्यौ॥
कण्ठस्तु राजन् नवमो यदीयो मुखारविन्दं दशमं प्रफुल्लम् ।
एकादशो यश्च ललाटपट्टं शिरोऽपि यद्द्वादश एव भाति ॥
नमामि देवं करुणानिधानं तमालवर्णं सुहितावतारम् ।
अपार संसारसमुद्रसेतुं भजामहे भागवतस्वरूपम् ॥

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः ।
पञ्चत्रिंशोत्तराध्यायस्त्रिशतीयुक्त ईश्वरि ॥

इतना ही नहीं, कौशिक संहितान्तर्गत भागवत-माहात्म्यमें तो पूरे ग्रन्थकी अध्याय-संख्या तीन सौ पैंतीस लिखकर प्रत्येक स्कन्धकी अध्याय-संख्या पृथक्-पृथक् भी गिनायी गयी है—प्रथम स्कन्धमें उन्नीस, द्वितीय स्कन्धमें दस, तृतीयमें तैंतीस, चतुर्थ स्कन्धमें इकतीस, पञ्चम स्कन्धमें छब्बीस, षष्ठमें उन्नीस, सप्तममें पन्द्रह, अष्टममें चौबीस, नवममें चौबीस, दशममें नब्बे, एकादशमें इकतीस और द्वादशमें तेरह सब मिलाकर तीन सौ पैंतीस । * इसी प्रकार इक्कीस दिनोंके पाठमें कितने-कितने अध्याय प्रतिदिन पढ़ने चाहिये, यह वर्णन करते समय भी अध्याय-संख्या दी गयी हैं । श्लोकोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है । पुराणोंसे लेकर आधुनिक टीकाकारपर्यन्त श्रीमद्भागवतमें श्लोकोंकी संख्या अठारह हजार मानते हैं । श्रीमद्भागवत मन्त्रात्मक ग्रन्थ है । इसके एक-एक श्लोक, एक-एक पद और शब्दोंका मन्त्रकी भाँति प्रयोग करके लोग अपनी अभीष्ट-सिद्धि करते हैं, इसलिये परम्परासे ही पाठ-ग्रन्थ होनेके कारण श्रीमद्भागवतमें कुछ घटती-बढ़ती नहीं हुई है । वह ज्यों-का-त्यों चला आता है । स्थूल दृष्टिसे देखनेपर वर्तमान श्रीमद्भागवतमें अठारह हजार श्लोक नहीं मिलते । इसका कारण यह है कि इस समय प्रेस आदिके कारण ग्रन्थोंके सुलभ हो जानेसे, प्राचीन कालमें जिस प्रकार श्लोक गिननेकी प्रथा थी, वह अब नहीं रही । प्राचीन कालमें बत्तीस अक्षरोंका एक श्लोक माना जाता था और उसी गणनाके अनुसार लिखनेवालेको पुरस्कार आदि दिये जाते थे । इस प्रकार गणना करनेसे सोलह हजारके लगभग श्लोक श्रीमद्भागवतमें होते हैं । प्रत्येक उवाचको एक श्लोक मान लेनेपर श्लोक संख्या अठारह हजार हो जाती है । इसीसे श्रीमद्भागवतके पाठमें 'इति' 'अथ' आदिको भी छोड़ा नहीं जाता; क्योंकि श्रीमद्भागवत रसरूप फल है । इसमें त्याग करने योग्य छिलका आदि कुछ नहीं है । श्रीमद्भागवतकी अन्वितार्थ-प्रकाशिका टीकाके रचयिता स्वनामधन्य श्रीगंगासहायजी जरठ महोदयने लिखा है कि मैंने तीन बार श्रीमद्भागवतका अक्षर-अक्षर गिना है, उनके कथनानुसार सत्रह हजार नौ सौ, साढ़े अठ्ठानवे श्लोक होते हैं ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवतमें डेढ़ श्लोक कम अठारह हजार श्लोक हैं । यह कमी भी उवाच आदिके पाठभेदके कारण ही है । अबतक जितनी प्राचीन प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें सबसे प्राचीनतम सरस्वती-भवन, काशीकी पुस्तक है । परन्तु वही पाठ ठीक है, यह बलपूर्वक नहीं कहा जा सकता । यद्यपि वर्तमान प्रचलित प्रतियोंमें कहीं-कहीं पाठभेदके अतिरिक्त उसका और कोई भेद नहीं है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि श्रीधरस्वामी एवं श्रीवल्लभाचार्य आदिको इससे भी प्राचीन प्रति न मिली होगी । सम्भव है, उनकी टीकाओंमें आदृत पाठ इस प्रतिसे भी प्राचीन हो और यही ठीक जचता है । इस श्लोक-गणनासे यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है कि श्रीमद्भागवतका प्रचलित रूप बहुत ही प्राचीन है ।

---

* स्कन्धेषु सर्वेषु गतां ब्रुवेऽहमध्यायसंख्यां शृणुत द्विजेन्द्राः ।
एकोनविंशा दश रामरामास्तथैकत्रिंशद्रसनेत्र संख्याः ।
नन्देन्दुसंख्याः शरणन्द्रसम्मिताश्चतुर्द्वयं चाग्रिमके तथैव ।
खनन्दसंख्या विधुवह्निसंख्या अध्यायसंख्याः क्रमतस्त्रिरूपाः ॥

———

श्रीशुकदेवजी का अनुपम दान

वैवस्वत मन्वन्तर इसी अट्ठाइसवें द्वापर और कलियुगकी संधिमें बड़ी विषम अवस्था उत्पन्न हो गयी थी। वेद और शास्त्रोंका ह्रास हो चला था और उनका प्रचार-प्रसार सर्वथा शिथिल होनेलगा था। शास्त्रोंकी रक्षाके बिना धर्म-कर्म, उपासना-भक्ति और ज्ञान-विज्ञानकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये स्वयं भगवान्ने श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासके रूपमें अवतीर्ण होकर वेदोंका चार भागोंमें विभाजन किया और इतिहास, पुराण, ब्रह्मसूत्रादिका निर्माण करके वेदार्थका निर्णय एवं विस्तार किया। इतना सब करनेपर भी जीवोंकी स्थितिमें कुछ विशेष परिवर्तन न हुआ। जिस अभावके कारण जगत्के जीव छटपटा रहे थे, जिस कमीके कारण उन्हें संतोष नहीं प्राप्त हो रहा था, वह अभाव—वह कमी अभीतक दूर नहीं हुई थी। व्यासदेव उनके लिए चिन्तित हो गये।

भगवान् व्यासदेव एकान्तमें बैठकर चिन्ता कर रहे थे कि देवर्षि नारद वहाँ आगये। महर्षि वेदव्यासने उनका स्वागत किया और अपने चित्तकी अशान्तिका कारण पूछा। देवर्षि नारदने कहा—'महर्षे! आपने अबतक भगवान्के निर्मल यशका प्रायः निरूपण नहीं किया है। जिस क्रिया, असंकल्प और जीवनके द्वारा आत्मतुष्टि न प्राप्त हो वह अपूर्ण है। अभी उसकी पूर्णतामें कुछ त्रुटि है। आपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका जैसा वर्णन किया वैसा श्रीकृष्णका नहीं किया। आप श्रीकृष्णकी लीलाका स्मरण करें; बिना उसके आपकी आत्मग्लानि मिट नहीं सकती।

देवर्षि नारदने वेदव्यासको संक्षेपमें बताया कि 'मैंने अपने पिता ब्रह्मासे वह ज्ञान प्राप्त किया है, जो कि उन्होंने स्वयं भगवान् विष्णुसे प्राप्त किया था। इस प्रकार मैं तुम्हें जिस ज्ञानका उपदेश कर रहा हूँ, वह भगवान् विष्णुसे ब्रह्माको, ब्रह्मासे मुझको और मुझसे तुमको प्राप्त हो रहा है। तुम संसारमें इसका विस्तार करो। इसे सेवन करनेवाले जीवोंको शान्ति मिलेगी और तुम्हें भी आत्मतुष्टि प्राप्त होगी।' यों कहकर देवर्षि नारद भगवन्नामका दिव्य संगीत गाते हुए विदा हुए और भगवान् व्यासने श्रीमद्भागवत-संहिताकी रचना की।

श्रीमद्भागवत-शास्त्रका प्रणयन तो हो गया, परन्तु अब इसका अध्ययन किसको कराया जाय, यह प्रश्न उठा। महर्षि वेदव्यासने योगदृष्टिसे देखा तो उन्हें अपने पुत्र श्रीशुकदेवका ध्यान आया। श्रीशुकदेव निवृत्तिपरायण एवं ब्रह्मनिष्ठ थे। वे अध्ययन और अध्यापनसे अलग रहकर समाधिमें ही स्थित रहते थे। व्यासदेवके मनमें कई बार ऐसा संकल्प उठा करता था कि शुकदेव अध्ययनाध्यापनमें लगें, परन्तु उनकी रुचि उस ओर न थी। वेदव्यासने जब ध्यानसे देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि श्रीशुकदेवके अन्तःस्थलमें पहलेसे ही श्रीमद्भागवत्त-विद्यमान् हैं, क्योंकि पूर्वजन्मसे ये तोतेके गले हुए अण्डेके रूपमें कैलास पर्वतपर पड़े हुए थे, तब भगवान् शंकरके मुखसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनकर ये जीवित हो गये थे और पार्वतीजीके सो जानेपर भी 'ओम्-ओम्' बोलते हुए स्वीकृतिवचन देते रहे थे। इससे यदि मैं इन्हें श्रीमद्भागवतके श्लोक सुनाऊँ तो उन्हें सुनकर ये अवश्य आकृष्ट हो जायेंगे—ऐसा विचारकर जहाँ श्रीशुकदेवजी समाधि लगाते थे, वहीं जाकर व्यासदेव भगवान्की लीलाके और दयालुताके श्लोक सुनाने लगे। उन श्लोकोंको सुनकर श्रीशुकदेवजीका चित्त गद्गद हो गया; वे सहज समाधि और आत्मानन्दको छोड़कर भगवत्प्रेमकी अनन्त धारामें बह गये।

श्रीशुकदेवजी महाराजने महर्षि व्यासके आश्रममें आकर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने परमधाममें पधारे। उन्होंने अपनी प्रकट लीलाका संवरण कर लिया। उनके अन्तर्धान होनेके पश्चात् पाण्डव भी इस लोकमें न रह सके, अपने-अपने कर्मके अनुसार गतिको प्राप्त हुए। परीक्षितका राजत्वकाल भी पाण्डवोंके समान ही प्रजाके लिए बड़ा सुखद था; परन्तु कलियुग आगया था, इसलिये वे बहुत दिनोंतक पाण्डवोंके समान राजशासनका निर्वाह न कर सके। एक दिन उन्होंने देखा कि एक बूढ़ी गौ और बैलको राजाओं-सरीखे चिह्न धारण करनेवाला शूद्र मार रहा है। दोनों भूखके मारे सूख-से रहे थे। महाराज परीक्षितने उन्हें पहचानकर शूद्रवेषधारी कलियुगको डाँटा—'तुम धर्मरूपी वृषभ और पृथिवीरूपी गौको मार रहे हो?' कलियुगने देखी कि ये मुझे मार डालेगें, इसलिये वह राजाओंके चिह्न छोड़कर परीक्षितके चरणोंपर गिर पड़ा। धर्मिष्ठ परीक्षितने उसे शरणमें आया हुआ देख तथा उसकी अनुनय-विनय सुनकर उसको जानसे तो नहीं मारा, परन्तु अपने राज्यसे बाहर निकल जानेका आदेश दे दिया। जब उसने यह प्रार्थना की कि 'आपके राज्यसे तो बाहर रहनेका कहीं स्थान ही नहीं है।' तब उन्होंने जूआ, शराब, स्त्री और हिंसाके स्थान उसे रहनेके लिये दे दिये। पुनः प्रार्थना करनेपर सोना और तीसरी बार प्रार्थना करनेपर झूठ, रज, काम, मद और वैर—ये पाँच स्थान और दे दिये। कलियुग इन्हीं स्थानोंमें रहने लगा।

महात्मा और दुष्टमें यही भेद है कि महात्मा तो अपराधी को भी क्षमा कर देता है, परन्तु दुष्ट क्षमा करनेवालेके साथ विश्वासघात करता है। कलियुगने राजा परीक्षितके मुकुट, मृगया और राजापनके अभिमानका आश्रय लेकर चुपकेसे उनपर आक्रमण कर दिया। उन्होंने उसके प्रभावमें आकर एक ब्राह्मणका तिरस्कार कर दिया। यही तिरस्कार उनकी मृत्युका कारण हुआ।

परीक्षितने अपनी मृत्युकी उपस्थितिसे बड़ा लाभ उठाया और जगत्से ममता तोड़कर, राज-काज छोड़कर वे गङ्गा-किनारे जा बैठे और सात दिनके अनशनका निश्चय करके महात्माओंका सत्सङ्ग करने लगे। बाह्यदृष्टिसे देखा जाय तो परीक्षितके लिए यह बड़ा विषम समय आगया था; परन्तु अन्तर्दृष्टिसे विचार करनेपर पता चलता है कि यह घटना उनपर और सारे संसारपर भगवान्की महती कृपा थी; क्योंकि इसी घटनाके कारण श्रीमद्भागवत-जैसा महापुराण संसारको प्राप्त हो गया। क्या करने के लिए भगवान् क्या करते हैं—इस प्रश्नका उत्तर तो केवल भगवान् ही जानते हैं, हमें तो केवल फल देखकर आनन्दित होते रहना चाहिए।

श्रीमद्भागवतके श्रवणका अधिकारी कौन है? इसका उत्तर है—परीक्षित। ये संसारको छोड़कर परमात्माकी ओर जाना चाहते हैं। इसी प्रकार शुकदेवजी भी ब्रह्मानन्दका परित्याग करके भगवान्की लीलामें, कथामें रमे हुए आत्माराम पुरुष हैं। श्रीमद्भागवतके प्रवचनका अधिकारी कौन है? इसका सही उत्तर है कि जो ब्रह्मानन्दकी अनुभूति प्राप्त करके श्रीकृष्ण-लीलारसके समास्वादनमें संलग्न है। ऐसे श्रोता-वक्ताकी उपस्थितिमें जो उज्ज्वल रसका महान् समुद्र उद्वेलित होगा, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

परीक्षित भगवान्के अत्यन्त प्यारे भक्त हैं। भगवान्ने परीक्षितकी माताके गर्भमें प्रवेश करके उन्हें जीवन-दान दिया था। परीक्षित भगवान्के थे, कृतकृत्य थे, उन्हें कुछ प्राप्त करना अवशेष न था। फिर भी उन्होंने भगवान्की प्रेरणासे जगत्के हितके लिए समस्त मृत्युग्रस्त प्राणियों के उद्धारकी दृष्टिसे अनेकों प्रश्न किये और भगवान् श्रीशुकदेवके मुखसे भागवत-धर्म, पराभक्ति और परमज्ञान एवं भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन सुनकर परमानन्दका अनुभव किया। परीक्षितके प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीशुकदेवने वेदोंके सारको अपने अनुभवके रससे युक्त करके सारे जगत्को वितरण किया। श्रीशुकदेवजीका वही अनुपम दान श्रीमद्भागवतके नामसे विख्यात है, जो कि भगवान्की दयालुताका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसके दर्शन, स्पर्श, स्मरण, अध्ययन, श्रवण आदिसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और भगवान् एवं उनकी दयाका साक्षात् अनुभव प्राप्त होता है।
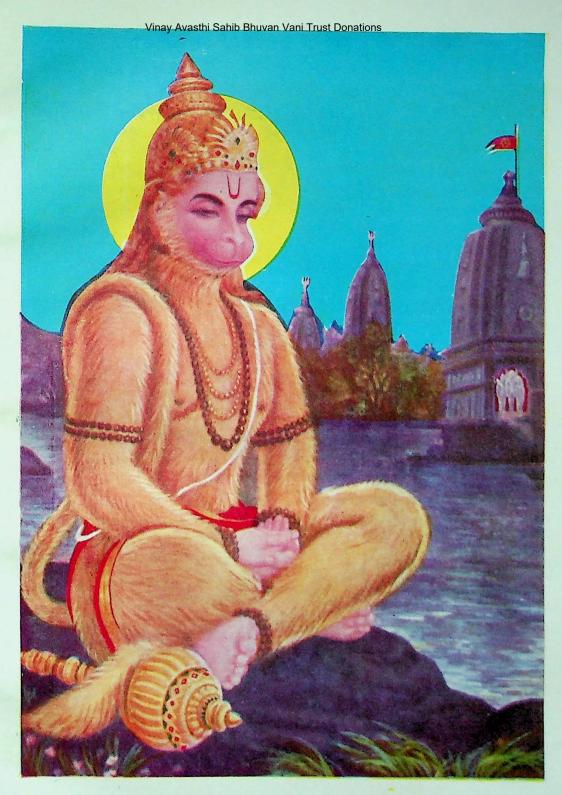
श्रीपवनपुत्र

सर्वदेवमयी सुरभि
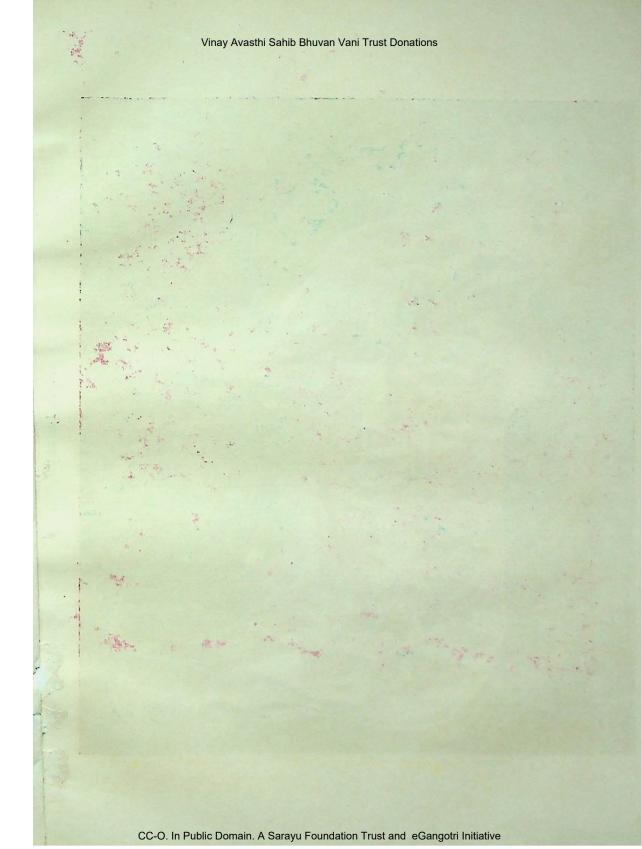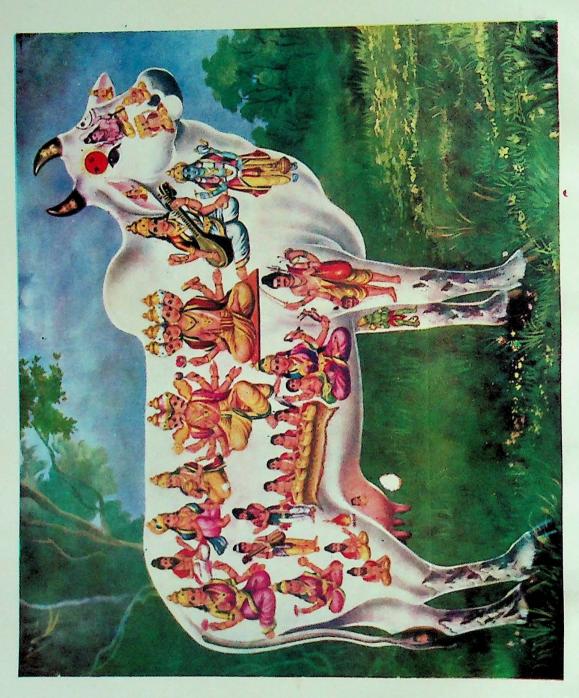
आचार्य डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

एम. ए. (सं. हि.), पी. एच. डी., डी. लिट्.,
आचार्य (नव्य व्याकरण, साहित्य, वल्लभ वेदान्त, सांख्ययोग, पुराण-इतिहास धर्मशास्त्र, फ० ज्योतिष)
साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ, शास्त्री
लब्ध स्वर्णपदक, शोध निर्देशक,

●

प्रवाचक, अध्यक्ष
प्राच्य दर्शन महाविद्यालय
वृन्दावन (मथुरा)

श्रीमद्भागवत स्वरूप

राजन्ते तावदन्यानि पुराणनि सतां भवे ।
यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृत सागरं ।।
(अ. १२. १३. १४)

श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ स्वरूप—निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुक-मुखादमृत-द्रव-संयुतम् ।।
(भा. १. १. ३)

में समझाया है । भागवत वेद रूपी वृक्षका रसमय फल है । वृक्षकी परिणति फलोत्पत्ति है, फलोत्पादनके लिए ही बीज एवं वृक्षकी सार्थकता है । वेदार्थकी चरम परिणति श्रीमद्भागवतके आविर्भावमें ही है । भागवतीय तत्व और रस सिद्धान्त प्रकरण ही वेदार्थ की चरम सार्थकता है ।

वृक्ष और फलके दृष्टान्त द्वारा अति गम्भीर सत्यकी चेष्टाको अन्तर्निहित किया है । समग्र वेदका सार है प्रणव, प्रणवकी मूर्ति है ब्रह्म गायत्री । ब्रह्म गायत्री ही फलवन्त होकर भागवतके प्रत्येक अक्षरमें विद्यमान है ।[2]

(क) जन्माद्यस्यतः—यह समग्र ग्रन्थमें बीज-स्वरूप है । गायत्री के सहित इसी श्लोककी एक वाक्यता है ।

गायत्रीमें आनेवाली कियार्हदपद—इस श्लोकमें धीमहि है । गायत्रीका प्रचोदयात् ही 'तेन' शब्द द्वारा वर्णित है ।[3] गायत्री के 'वरेण्यं' व 'भर्गः' पद ही भागवतमें—'सत्यं' परम कहे हैं । गायत्री के 'सवितुर्देवस्य' का तात्पर्य ही भागवतमें-जन्माद्यस्ययतः में हैं ।
(१।१।१)

अतः यह श्लोक गायत्रीका भाष्य स्वरूप कहा जाता है । अतः इसकी प्रामाणिकता भी सिद्ध हो गयी, क्योंकि श्रीमद्भागवतके प्रमाणके निमित्त मत्यत्स्पुराणके श्लोककी संगति भी यहाँ पूर्णरूपेण घटित हो जाती हैं—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म विस्तरः ।
वृत्रासुर कथोपेतं तद्भागवतमिष्यते ।।
ग्रन्थोष्टादश साहस्त्रो द्वादश स्कन्ध संमितः ।
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ।
(मत्स्य ५३. २०)
(अग्नि २७२,६-७)

श्रीमहाप्रभुने भी अपनी वाणीमें इसे प्रमाण कहा है—

गायत्रीर अर्थ पई ग्रन्थ आरम्भ न
सत्यं परं धीमहि—साधनं प्रयोजन ।
(चै. च. २५,१४०)

(ख) श्रीमद्भागवतके (२।९।३०-३६) श्लोकमें ज्ञान—विज्ञान—रहस्य—और तदंग ये ४ विषय आलोच्य कहे हैं । यही चतुःश्लोकी है—

ज्ञान—शास्त्रार्थावबोधका नाम ज्ञान है ।
विज्ञान—तत्वानुभूतिका नाम विज्ञान है ।
रहस्य—प्रेम भक्ति ही रहस्य है ।
तदंग—साधनभक्ति ही तदंग है ।

---

१. आर्यधान कोष पृ. ५४५(गौ. मठ)
२. वेदः प्रणव एवाग्र । (भा. ११।१।११) प्रणवः सर्व वेदेषु (गीता ८।७) प्रणव ब्रह्मका वाचक है उसका वाचक प्रणव है—पतञ्जलि—प्रणव ब्रह्मके अति निकट है—
ओमित्येतद ब्रह्मणों नेदिष्ठं नाम—श्रुतिः
(अ. १२।६।४)
३. अनेन बुद्धि वृत्ति प्रवर्त्तकत्वेन गायत्र्यर्थोपिदर्शितः—
(श्री. भा. १।१।१)

यही चार भागवतके अनुबन्ध चतुष्टय हैं। इन्हींमें समग्र शास्त्र द्वारा वर्णनीय विषयोंका प्रतिपादन है। यही चतुःश्लोकी भागवत भगवानने ब्रह्माको उपदेश की। प्रणवका अर्थ गायत्रीसे जाना जाता है।

इसी प्रकार गायत्रीका ज्ञान श्रीमद्‌भागवत चतुःश्लोकीसे जाना जा सकता है।[१] ब्रह्माने यही चतुःश्लोकी भागवत नारद नामक पुत्रको दी। नारदने वेद व्यासको दी, वेदव्यासने वर्तमान भागवतकी भित्ति रची।

अतएव गायत्री एवं चतुःश्लोकीका प्रतिपाद्य भिन्न नहीं अपितु अभिन्न है।

भागवत चतुःश्लोकी की परिणति है, अतएव वेदका परिपक्व फल है।

(ग) सत्यके २ स्वरूप हैं—

१. अमूर्त्त

२. मूर्त्त

श्रीमद्‌भागवत ब्रह्म रूपका अकृत्रिम भाष्य है—

वेदके ज्ञान काण्डात्मक उपनिषदमें प्रधानतः ब्रह्म तत्त्व ही प्रतिपादित है। एवं उपनिषदोंके सिद्धान्त समूह ब्रह्म सूत्रके अल्पाक्षरोंमें समुद्दिष्ट है। ब्रह्म सूत्रकी कदर्थनाको देखकर व्यासदेवने स्वयं उसके भाष्यकी रचना की।[२]

भागवतमें प्रधानतः ३ विषय परिवेशित हैं—

सम्बन्ध
अभिधेय
प्रयोजन।

मूल वाच्य तत्त्व ही—सम्बन्ध है।

मूल प्राप्त तत्त्व ही—प्रयोजन हैं।

प्रयोजन प्राप्तिसे जन्य कर्त्तव्य तत्त्वका निर्धारित ही—अभिधेय है।

ब्रह्म सूत्रके प्रथम सूत्र—

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इसकी भूमिकामें श्रीबलदेव लिखते हैं कि—

सर्वदोष वर्जित, प्रकृतादि स्पर्श शून्य, अनन्त गुण गणालंकृत सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण ही ब्रह्म सूत्रके प्रतिपाद्य हैं।

श्रीमद्‌भागवतके "वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं" के अनुसार पारमार्थिक वस्तु ही प्रतिपाद्य है।

भागवतके १।२।११ श्लोकमें परमतत्त्वको अद्वय एवं अखण्ड ज्ञान कहा है, परन्तु उसका प्रकाश तीन रूपमें होता है—

ब्रह्म—परमात्मा और भगवान

यह अखण्ड तत्त्वका त्रिविध प्रकाश है, वही स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ही भागवतके मुख्य प्रतिपाद्य वस्तु हैं।

पादौ यदीयौ प्रथम द्वितीयौ
तृतीय तुर्यौ कथितौ यदरू
नाभिस्तथा पंचम एव षष्ठी
भुजान्तरं दोर्युगलं तथा दन्यौ
कण्ठस्तु राजन् नवमो यदीयो
मुखारविन्द दशमं प्रफुल्लम्
एकादशो यस्य ललाट पट्टकम्
शिरोऽपि यद् द्वादश एव भाति॥
तदादिदेवं करुणा निधानं
तमालवर्ण सुहितावतारम्
अपार संसार समुद्र सेतुं
भजामहे भागवत स्वरूपम्॥

१. प्रणवेर येई अर्थ गायत्री ते सेई ह्य सेई अर्थ चतुःश्लोकी ते विवरियाछय (चै. म. २५।९२)

२. श्रीमद्‌भागवत करिवसूत्रेर भाष्य स्वरूप। उपनिषद सेई एक अर्थ (चै. च. २५।९५-९८)

भागवतके पात्र और ऋग्वेद

न केवल उपनिषदोंके पात्रोंकी चर्चा ही भागवतमें है अपितु ऋग्वेदमें भी उनकी आख्यायिकाएं हैं या वे ऋषि रूपमें मंत्रोंके द्रष्टा हैं। भागवतके पात्र जो ऋग्वेदमें हैं निम्नलिखित हैं। १म मण्डलमें—

पराशर :—शक्ति पुत्र पराशर जो भागवतकारके पिता हैं इनका उल्लेख ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें है। भागवतमें तो अनेक स्थलोंपर इनका नाम उल्लिखित है।[१]

गौतम:—रहूगणके पुत्र गौतमका उल्लेख ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें है और "भृगुर्वसिष्ठ श्च्यवनश्च गौतमो०" भा० मा० में हीं इनका उल्लेख है।[२]

कश्यप:—मरीचि पुत्र कश्यपका नाम महत्वपूर्ण है। समस्त सृष्टिके मूलमें कश्यपका नाम सादर गृहीत होता है। देव-असुर-गन्धर्व-यक्ष-किन्नर-राक्षस-मानव सभी उच्च योनियोंके ही नहीं अपितु जलचर, थलचर, और नभचर स्थावर-जंगम सभीके वे पिता हैं।[३] कश्यपके पुत्र ही वामन हुए जिन्होंने राजा बलिको छलकर तीनों लोकोंका राज्य देवोंको सौंपा था।

अम्बरीष:—भागवत नवम स्कन्धमें अम्बरीष भक्तकी कथा वर्णित है। यह क्षत्रिय वंशोत्पन्न नृपति था और भगवान् विष्णुका अनन्य भक्त था। दुर्वासा मुनि इसे शापग्रस्त कर स्वयं पछताये थे।[४]

सहदेव:—भागवतमें दो सहदेवोंके नाम उल्लिखित हैं। प्रसिद्ध युधिष्ठिरके भाई और जरासन्ध पुत्र। इनका सम्बन्ध ऋग्वेदके ऋषियोंसे अयुक्त प्रतीत होता है। किन्तु तत्व विचारके शब्द ऋषियों जैसे हैं।[५]

१. भा० भा० ३।१४ २. भा० भा० ३।१४ ३. भा० ३।१४।४३ ४. भाग०।६।५ ५. भाग० १०।७४।२५

कुत्स:—कुत्स ऋषिका ऋषियोंकी नामावलीमें है।

दीर्घतमा:—इनकी कोई विशेष गाथा भागवतमें नहीं है किन्तु उल्लेखमात्र है

लोमश:—लोमश ऋषिका भी उल्लेख आता है।

अगस्त्य:—महर्षि अगस्त्यने इन्द्रद्युम्नको शाप दिया था। गजकी योनिमें इन्हीं महर्षिकी कृपासे उसने अपना उद्धार कर लिया था। अगस्त्याश्रमका भी कई स्थानोंपर उल्लेख है, अतः यह निश्चित है कि महर्षि अगस्त्यने प्रथम मण्डलमें समागत वेदकी ऋचाओंको प्रत्यक्ष किया हो। महर्षि अगस्त्य भारतके विशिष्ट प्रसिद्ध सन्तोंमें गिने जाते हैं।

इन्द्र:—यद्यपि इन्द्र शब्दसे देवराज इन्द्रका ही ज्ञात होता है तथापि ऋग्वेदमें इन्द्रके सूक्त हैं तथा इन्द्रका अनेक बार प्रयोग किया गया है।

(१।१५।८)

लोपामुद्रा:—ऋषि पत्नियोंमें लोपामुद्राका नाम उल्लेखनीय है।

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके ऋषि

गृत्समद १:—वेदमें गृत्समद ऋषिकी चर्चा आती है। इन्द्र सूक्तमें गृत्समदके सम्बन्धमें आख्यायिका वर्णित है। एकबार असुरोंने इन्द्र देवको मारनेके लिए चारों ओरसे घेर लिया था। वहां इन्द्रदेवने गृत्समदका वेष धारणा कर अपने प्राणोंकी रक्षा की, जब वे यज्ञमें घुसे तो वैसे ही आकारके गृत्समदको देखकर विचार करने लगे कि यही कपटी इन्द्र है। तब गृत्समदने उत्तर दिया

१. भा० ११६।७

कि 'स जनास इन्द्रः' अरे मनुष्यों ! वह इन्द्र है' मैं नहीं हूं ।

भृगुः—भृगु ऋषि अग्निके पूजक थे । वेदोंमें इन्होंने सर्वप्रथम अग्निको प्रतिष्ठित किया था । भागवतमें "भृगुर्वसिष्ठः" में भृगुकी कथा है । भागवत सुननेमें जो आलस्य कर रहे थे उन्हें सादर निमंत्रण देकर भृगु लाये थे ।

त्रिदेव परीक्षा भृगु करने गये थे और विष्णु भगवान्की छातीमें लात मारकर परीक्षा भी इन्होंने ली थी ।

(भा० १०।८९)

ऋग्वेद तृतीय मण्डल

विश्वामित्रः—ऋग्वेदमें विश्वामित्र मन्त्र द्रष्टाके रूपमें आते हैं और इनकी अनेक आख्यायिकाएं भी वर्णित हैं । भागवतमें भी इनका उल्लेख है । ये हरिश्चन्द्रोंपाख्यानमें प्रसिद्ध हैं ।

(भा० १०।७४।८)

गाधिः—कुशिकके अपत्य गाधि वैदिक ऋषि हैं । भागवतमें इन्हें अनेकबार स्मृत किया है ।

(भा० भा० ३।१४)

यमदग्निः—परशुरामके पिता यमदग्नि थे । भागवत नवम स्कन्धमें इनकी कथा वर्णित है । इनकी रेणुका स्त्रीका नाम भी कई स्थानोंपर लिया है ।

(भा० १।९।६)

चतुर्थ मण्डल

वामदेवः—ऋषि ऋग्वेदके ज्ञाता हैं और भागवतमें ऋषियोंके साथ रहते हैं ।

(भा० १०।७४।८)

त्रसद्दस्युः—भागवतमें त्रसद्दस्युकी वंशावली वर्णित है किन्तु मन्त्र भागसे इनका सम्बन्ध विचारणीय है ।

(भा० ९।७।३)

पंचम मण्डल

अत्रिः—महर्षि अत्रिके नयनाश्रुसे चन्द्रमाका जन्म हुआ था । अत्रिकी पत्नी अनुसूया थी । अनुसूयाके स्नान करते समय उनकी नग्नावस्था देखकर त्रिदेवोंमें (ब्रह्मा-विष्णु-शिव) ने उपहास किया, तब पातिव्रत धर्मके प्रभावसे अनुसूयाने तीनों देवोंको अपना पुत्र बनाया । विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय, शिवके अंशसे दुर्वासा और ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा प्रकट हुआ था ।

(भा० १।९।७)

बुधः—भागवत और वेदमें यह अत्रिवंशीय कहा है । भागवतमें इसका विस्तार है । चन्द्रमाकी तारासे मित्रता थी, अतः ताराका अपहरण करके चन्द्रमा अपने साथ ले गया और वही बुध नामक देव गर्भमें आ गया । ब्रह्माकी सभामें इसका निर्णय लिया गया । वृहस्पतिका कथन था, यह मेरा पुत्र है किन्तु सभामें तारने कहा कि यह गर्भस्थ शिशु चन्द्रमाका है । चन्द्रमा अत्रिपुत्र था, लिखा जा चुका है ।

(भा० ९।१४)

षष्ठ मण्डल

भरद्वाजः—भरद्वाज ऋषिकी वंशावली भागवत नवम स्कन्धमें है । भरद्वाज ऋग्वेदके द्रष्टा हैं किन्तु इन्हें सामवेदमें गिना जाता है । इनकी शाखाके अनुयायी सामवेदी हैं । यह गोत्र सम्बन्ध किस प्रकारसे चला विचारणीय है ।

(भा० १।९।६)

वीतहव्यः—भागवतमें इनकी पृथक् कथा नहीं है । वीतहोत्रका उल्लेख है ।

(भा० १०।७४।९)

गर्गः—गर्गका उल्लेख दोनों में है ।

(भा० १०।७४।८)

सप्तम मण्डल

वसिष्ठ १:—वसिष्ठ सूर्य वंशके कुल गुरु हैं। मनुने इनको आचार्य बनाकर पुत्रेष्टि यज्ञ किया था किन्तु मनुके कन्या उत्पन्न हुई। वसिष्ठने कहा कि तुम्हारी पत्नीने यज्ञके होता ब्राह्मणोंसे कन्याके नामकी आहुतियां पढ़वाई थीं, अत: पुत्री उत्पन्न हुई है। मनुके आग्रहपर वसिष्ठने शिवकी आराधना की और शिवकी आराधनासे वह पुत्री पुत्र बनी, उसका नाम सुद्युम्न रखा गया। एकबार वह बालकोंके साथ पार्वतीके शापित वनमें गया, उस वनमें पार्वतीने शाप दे रखा था कि जो कोई पुरुष इसमें प्रवेश करेगा स्त्री बन जायगा। सुद्युम्न अपने साथियोंके सहित एवं घोड़ोंके सहित पुरुषसे स्त्री रूपमें परिवर्तित हो गया। पुन: मनुके आग्रहपर वसिष्ठने शिवकी आराधना की और शिवने एकमाह पुरुष और एक मास स्त्री बने रहनेका वरदान दिया—

"मासं पुमान् भविता मांस स्त्री तवात्मजः"
(भा० ९।१।३९)

स्त्री पुरुष दोनों रूपमें सृष्टिका आरम्भ इससे सिद्ध होता है, पश्चात् वर्गीकरण हो गया। इस प्रकार वसिष्ठकी अनेक चमत्कारी कथा भागवतमें है।

अष्टम मण्डल

कण्वः—ये शाखाके प्रवर्तक थे।
(भा० १०।७४।७)

सौभरिः—मान्धाता राजाकी ५० कन्याओंके साथ महर्षि सौभरिने विवाह किया था। ये वृन्दावनवासी थे।
(भा० ९।६)

मनुः—नवम स्कन्ध तो मनुकी वंशावलीसे भरा है। समस्त भागवतमें मनु ओतप्रोत हैं।
(भा० ९।१)

१. भा० १०।७४।७

भार्गव;—भार्गवका उल्लेख भी कई स्थानोंपर है।
(भा० १०।७४।९)

सुपर्णः—भागवतमें गरुड़के लिए प्रयुक्त है।
(भा० १२।११।१९)

नवम मण्डल

शुनः शेपः—शुनो लांगूलका भाई शुनःशेप था। ऋषि अजीगर्त इसके पिता थे। हरिश्चन्द्रको वरुणने जलोदरका श्राप दे दिया था। हरिश्चन्द्रका पुत्र अपने पिताकी रक्षाके लिए शुनःशेपको खरीदकर लाया था किन्तु मामा विश्वामित्रने रास्तेमें वरुणको प्रसन्न करनेवाला मंत्र दे दिया था। उसका उच्चारण करनेपर वरुण प्रसन्न हो गया और शुन;शेपकी मुक्ति करा दी तथा राजाका उदर रोग दूर हो गया था।

वेदमें शुनःशेपको कूपमें डालनेकी कथाएं आती है।
(भा० ९।७)

असित[1]:—इनके नाम भी दोनोंमें हैं।

रहूगणः—भागवत पंचम स्कन्धमें रहूगणका उपाख्यान है, यह तत्त्ववेत्ता था। यह राजा सिन्धु देशका निवासी था। जड़भरतजीसे इसने ज्ञान प्राप्त किया था।
(भा० ५।१०)

उशना[2] मन्यु,[3] उपमन्यु, व्याघ्रपाद-के उल्लेख भागवतमें हैं।

ययाति[2]:—ययाति नामक राजाकी कथा नवम स्कन्धमें है। वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा और शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीकी परस्परमें मैत्री थी। एकबार वे वनमें गयीं और वहां परस्परमें कलह हो गयी तथा देवयानीको शर्मिष्ठाने कूपमें ढकेल दिया। राजा ययाति मृगयाके

१. भा० १०।७४।७ २. भा० ४।१।४५ ३. भा० ३।१२।१२

व्याजसे वहाँ पहुंचे, कूपमें-से देवयानी की ध्वनि सुनकर हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाला और शुक्राचार्यकी अनुमतिसे विवाह भी किया। इन्हींके सुप्रसिद्ध यदु नामक राजाका जन्म हुआ, जिनके वंशमें भगवान श्रीकृष्णका प्राक्ट्य हुआ था। ययाति राजाने अपना वृद्धत्व यदुको दिया और यौवन चाहा, परन्तु यदुने अस्वीकार कर दिया, फलतः यदुवंशी राजाओं को गद्दीपर बैठनेका अधिकार इसने समाप्त कर दिया। इस आदेशका पालन भगवान् श्रीकृष्णने भी किया था।

ऋग्वेद और भागवत दोनोंमें यह नहुषका पुत्र स्वीकार किया है।

(भा० ९।१८)

नारदः—भागवतका प्रारम्भ नारदके द्वारा व्यासको उपदेशसे है।

(भा० १।९।६ नारद सर्वत्र व्याप्त हैं।

सप्तऋषिः—कश्यप आदि सप्तऋषियोंके उल्लेख वेद भागवत दोनों ग्रन्थमें हैं।

(भा० ५।२२।१७)

दशम मण्डल

वैवस्वत यमः—भागवतमें भी इनके वंशका वर्णन है।

(भा० ९।१)

शर्यातिः—शर्याति राजाकी कन्या सुकन्या थी। वनमें सुकन्याने महर्षि च्यवनके नेत्रोंमें काँटे डालकर ज्योति नष्ट कर दी थी, तब शर्याति राजाने अपनी पुत्री उन्हें भेंट कर दी थी। इन्होंने कई यज्ञ भी कराये थे।

(भा० ९।३)

अरुण, १ नारायण[२] का नाम महर्षियोंमें गृहीत होता है।

पुरुरवाः—राजा पुरुरवा और उर्वशीके प्रेमालापकी कथा प्रसिद्ध है।

(भा० ९।१४)

सरमाः—सरमासे सारमेयगणोंकी उत्पत्ति भागवतमें वर्णित है। वेदकी सरमासे साम्य विचारणीय है।

(भा० ६।६।२६)

मान्धाताः—युवनाश्व राजाका पुत्र मान्धाता था। यह युवनाश्वके उदरसे उत्पन्न हुआ था। राजा युवनाश्व ही एक ऐसे हैं, जिनके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हुआ। भागवतकी कथामें लिखा है कि एकबार राजा युवनाश्वने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। रातमें प्यास लगनेपर वह पुत्र प्रदान करनेवाला कलशः जल पीलिया। महर्षि वसिष्ठके आश्वासनपर राजा जीवित रहा और गर्भपूर्ण होनेपर उसके उदरको विदीर्ण कर मान्धाताको निकाला। इन्द्रने 'मान्धाता' अर्थात् मैं इसकी रक्षा करूँगा कहा, अतः मान्धाता नाम पड़ा था।

(भा० ९।६)

विश्वावसुः—गन्धर्व है।

(भा० ६।३।१४)

इन्द्राणीः—की कथा नहुषके उपाख्यानमें आती है।

(भा० ६।७)

पृथुः—वेदमें इसे वेन पुत्र लिखा है। भागवतमें भी वेनका पुत्र लिखा है। इसीके नामसे पृथिवीनाम पड़ा है। राज पृथुने पृथ्वीका दोहन किया था और १०० अश्वमेध यज्ञ किये थे।

(भा० ४।१५-२३ अध्याय)

यमीः—यम और यमी दोनोंका साथ-साथ जन्म हुआ था।

शिबिः—शिबि राजा परम उदार था।

(भा० ९।२०)

त्वष्टाः—यह विश्वरूपका पिता था। विश्वरूपकी मृत्यु हो जानेपर इसने इन्द्रको नष्ट करनेवाले पुत्रकी

---

१. भा० ९।७।३

२. भा० ५।४५।

भगवान् शंकर वृषभारूढ़

कामनासे यज्ञ किया था किन्तु स्वर दोषके कारण इन्द्रसे मरनेवाला वृत्रासुर उत्पन्न हुआ।

(भा० ६।९)

ऋग्वेद और भागवत

	मण्डल सूक्त-ऋचा	भागवत स्कन्ध-अध्याय
१. वामनावतारका संकेत	३-५४-१४	८।१८
२, शुनः शेपकी कथा	१-१९०-९ १-२४-२	९।७
३. इन्द्र-वृत्र-युद्ध	१-३२	६।१२
४. दधीचिकी हड्डीसे वज्र निर्माण	११४-१३	६।१०
५. सूर्यकी किरणसे चन्द्रमें प्रकाश	१।८४।१५	५।२२
६. मान्धाताकी रक्षा	१।११२।१३	९।६
७. जीवात्मापरमात्मा	१।१६४।२०	४।२९
८. हिरण्यकशिपुका पुरोहित शण्डामर्क	२।३०।८	७।४
९. समुद्रसे उच्चैःश्रवा घोड़ेकी उत्पत्ति	३।३५।६	८।८
१०. गायत्री मन्त्र	३।६२।१०	५।५
११. सुदासराजा	७।८३।६-७	९।२
१२. युद्धकर्ता विष्णु	८।२५।१२	१०।
१३. राजावेनके वंशज	९।८५।१०	४।१४
१४. राजा नहुषके वंशज	९।९१।२	९।१८
१५. यम-यमीसंवाद	१०।१०	९।
१६. पितृयान-देवयान	१०।१८।१ १०।८८।१५	३।२
१७. युवा-युवतियोंका वरण	१०।३०।६	४।१
१८. सपत्नीसे दुःख	१०।३३।२	४।८
१९. दध्यङ् ऋषिका सिर काटना	१०।४८।२	६।१०
२०. पुरुषसूक्त	१०।९०	२।६
२१. राजा वेन	१०।९३।१४	९।१०
२२. उर्वशी-पुरुरवा संवाद	१०।९५	९।१४
२३. देवापि-शन्तनु	१०।९८	९।२२

भागवत और उपनिषद्

श्रीमद्भागवतके विभिन्न कथानकोंका स्रोत उपनिषद् वाङ्मय है। ईश्वरके संकल्पसे सृष्टिका वर्णन तृतीय स्कन्धमें वर्णित है। तैत्तरीय उपनिषद्में भी "सोऽकामयत। बहुस्याम् प्रजायेयेति।" अर्थात् उसने इच्छा की, मैं बहुत हो जाऊँ। सतपोऽतप्यत।१

भागवतमें सृष्टि रचनाका एक क्रम है। ऐतरेयो० में लिखा हैं कि रचनाके पूर्व एक ही आत्मा परमेश्वर था। सबसे पहले जल रचा, पुनः विविध लोकोंकी रचना हुई। २ विराट्को तपाया और विराट्का मुख निर्भेदन हुआ। विराट्में मनुष्यादि देह बन गये। मुखसे वाणी हुई और वाणीसे उसका देवता अग्नि प्रकट हुआ। आदि०। भागवतका प्रसिद्ध देवासुर संग्राम वर्णन जो षष्ठ स्कन्धमें है छा० उप० में भी वर्णित है ३ किन्तु यह वर्णन आध्यात्मिक विषयोंको लेकर है। इसके अतिरिक्त भागवतका प्रारम्भ गायत्रीके 'धीमहि' पदसे है।४ गायत्री की उपासना परोरजः सवितु जति वेदा:' पंचम स्कन्धमें भी है छा० उ० में गायत्री की उपासनाका महत्व है। ५

गायत्री मंत्र ही सब सारोंका सार है। गायत्री इस लोककी शक्ति है। गायत्रीके तीन चरण हैं।

सनत्कुमार और नारदका कथोपकथन भागवत माहात्म्यमें वर्णित है । नारद भक्तिकी तरुणावस्था एवं ज्ञान वैराग्यकी वृद्धावस्थाके कारण दुःखित होकर सनत्कुमारके साथ हरिद्वारके समीप वनमें गये और वहाँ सत्संग प्रारम्भ हुआ । ६

छा० उप० में भी सनत्कुमारने नारदको उपदेश दिया है । ७ परमेश्वरकानाम सत्य है, ऐसा छा० उ० में वर्णित है और भागवतके प्रथम श्लोकमें "सत्यं परं धीमहि" सत्यको नमस्कार किया है ।

"तदह वा ब्रह्मणोनाम सत्यम्"

१. तै० उ० ६।
२. रोत० उ० १।२
३. छा० उ० १।१
४. भा० १।१।१
५. छा० उ०
६ भा० भा० १
७. छा० उ० ७।१।१
८. छा० उ० ८।३।४
९. छा० उ० ८।७।१-३

गौतम और भारद्वाज–इनका वर्णन नवम स्कन्धमें है । वृहदारण्यकोप० से आत्म सम्बन्धमें गौतम— भारद्वाज ऋषियोंका उल्लेख है । १ इस प्रकरणमें विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रिके नाम भी हैं, जो भागवतमें अनेकत्र वर्णित हैं । गालव, आंगिरस, त्वाष्ट्रविश्वरूप अश्वि, दधीच, विप्रचित्ति, जनक, पराशर्य, जातूकर्ण्यके उल्लेख भागवतमें हैं और वृह० उ० में भी । २

याज्ञवल्क्यका अनेकशः दोनोंमें उल्लेख है ।

कुरुपंचालका वर्णन भी वृह० में ३।९।१ में है ।

उपनिषदोंका मूल वेद है और वैदिक आख्यानोंसे भागवतके आख्यानोंका साम्य है ।

१. वृह० उ० २।२।४
२. वृह० उ० ३।१।२

उपनिषदों के प्रमुखपात्र और भागवत

उपनिषदोंके प्रमुख पात्रोंमें क्षत्रिय राजा एवं ब्राह्मण महर्षियोंके उपाख्यान अनुस्यूत हैं । अनेक प्राकृतिक देवगण भी मानवीकरण रूपमें चित्रित किये गये हैं । श्रीमद्भागवतमें भी उनके सम्बन्धमें कथाएं लिखी गयी हैं ।

अग्नि :—का विग्रहधारी रूप केनोपनिषद्में वर्णित है१ भागवतमें दावानल पानके वर्णनकी कथाके अतिरिक्त कई स्थलोंपर नाम्ना निर्देश है ।२

वायु :—वायुका वर्णन केनोपनिषद३ में और भागवत दोनोंमें है ।४

उमा :—उमाका नाम्ना निर्देश भी है और उसके पर्यायवाची शब्द भी उल्लिखित हैं ।५ ये शिवकी पत्नी हैं और दाम्पत्यके लिए उमाकी पूजाविधि वर्णित है ।

गौतम :—उपनिषद्७ और भागवत दोनोंमें इन्हें महर्षिके रूपमें उपस्थित किया है । ऋषियोंका जहाँ-जहाँ उल्लेख है वहाँ गौतम मुनिका नाम अवश्य दिखलाई देता है ।

भरद्वाज :—प्रश्नोपनिषद्९ में भरद्वाजको तत्वचिन्तक रूपमें रखा है । भागवतमें "मूढ़े भरद्वाजमिम्" के द्वारा

भरद्वाजकी व्युत्पत्ति भी दी है और वंश परम्पराका वर्णन भी।१०

शिवि :—शिविकी उदार नृपतियोंमें गणना है।११ महाभारतमें कपोत-श्येनकी कथाका उल्लेख है। राजा शिविने कपोतकी रक्षाके लिए अपनी जंघाका मांस श्येन रूपधारी इन्द्रको समर्पित किया। यह उशीनर देशका राजा था।१२

कौसल्य :—कोसल देशके प्रसिद्ध राजाओंमें कौसल्यका नाम है।१३ भागवतके षष्ठ स्कन्धमें इसका नाम है।१४

भृगु :—यह पुराण युगके प्रसिद्ध महर्षि हैं। इनका उल्लेख वेदमें भी उपलब्ध है "यमीदिरे भृगवः" अग्निसूक्तमें इन्हें स्मृत किया है। भागवतके माहात्म्यमें वर्णन उपलब्ध है कि सनत्कुमारने जब कथारम्भकी तो भृगु मुनिने समस्त महात्मा एवं सन्तोंको निमंत्रण देनेका कार्य हाथमें लिया।

"भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्चगौतमो'
—भा० मा. ३।१३

"कहा विष्णु को घट गयो जो भृगु मारी लात" उक्तिका मूल भागवतके दशम स्कन्धमें उपलब्ध होता है।१ भृगुके चरण चिह्नको आज भी मूर्तिके वक्ष भागपर उट्टंकित करनेकी प्रथा है।

कबन्धी :—प्रश्नोप. में (१।१) कबन्धीका उल्लेख है। भागवतमें कबन्धका (मा. ९।१०.१२)

१. के. उ. ३।३ २. भाग. १०।५८।२५
३. के. उ. ३।६ ४. अ. १०।५।१९
५. के. उ. ३।१३ ६. भाग. ९।१।२५
७. कठ. उ. ५।६ ८. भाग. ९।२१।३४
९. प्र. उ. १।१ १०. भाग. ९।८।५
११. प्र. उ. १।१ १२. भाग ८।२०।७
१३. प्र. उ. १।१ १४. ६।१५।१५

पिप्पलाद :—पिप्पलको ही भोजन करनेके कारण इनका पिप्पलाद नाम प्रसिद्ध हुआ। प्रश्नोप. १।१ के साथ माहात्म्य (३।१३) में इनका उल्लेख है। ये सनत्कुमारकी कथा सुनने गये थे।

द्वादश स्कन्धमें पिप्पलायन नामके ऋषि भी कहे हैं (१२।७।२)

प्रजापति :—प्रश्नोपनिषद् (१।१६) में प्रजापति तत्ववेत्ता है। भागवतमें अनेक प्रजापतियोंका उल्लेख है किन्तु कथा रूपमें दक्ष प्रजापति और द्वितीय दक्ष प्रजापतिके नाम उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो शिवजी के श्वसुर हैं। सती चरित्रका प्रसिद्ध पात्र प्रजापति है। द्वितीय शवलाश्व, हर्यश्व नामक पुत्रगणोंका जनक हुआ है। सृष्टि पूर्ण करनेमें इसका विशिष्ट योगदान है।

रुद्र :—प्रश्नो २।९ में रुद्रका उल्लेख है। भा. में सती चरित्र प्रभृति अनेक उपाख्यान रुद्रकी गाथाओंसे भरे पड़े हैं। रुद्रकी व्युत्पत्ति 'रोदनात् रुद्र' लिखी गयी है। जन्म लेते ही इन्होंने रुदन किया अतः ब्रह्माने इनका नाम रुद्र रखा था।

सूर्य :—प्र० उ० (२।९) में सूर्य वर्णित है। भा० के नवम स्कन्धका प्रारम्भ सूर्य कथासे है। वैवस्वत पर्यायवाची नाम है। इसकी कथाएं बहुचर्चित हैं। द्वादश स्कन्धमें द्वादश सूर्योका उल्लेख है। ये सूर्य धाता-विधाता-पूषा आदि चैत्र-वैशाख आदि द्वादश मासोंके अधिपति लिखे हैं।२

वैवस्वत :—कठोप. १।७ में वैवस्वत यमका उल्लेख है। नचिकेता वैवस्वत यमके लोकमें गया वहाँ उसे यमने ३ वरदान दिये। भाग. में वैवस्वतको यम कहा है नवम स्कन्धमें इसका उपाख्यान है।

१. भा. १०।९
२. भा. १२।११

अथर्व :—अथर्वण वेदके ज्ञाता अथर्व मुनि मुण्डकोप. १।३ में स्वीकार किये हैं और व्यासकी शाखाओंके ज्ञाता रूपमें भागवतमें। "अथर्ववित् सुमन्तुश्च" भा. १२।७।१

अंगिरा :—छा. उ. १।२।१० में अंगिराका उल्लेख है। भागवतमें अंगिरा ऋषिने शूर देशके राजाको हर्ष-शोक देनेवाले पुत्रका वर प्रदान किया है। राजाकी एक कोटि रानियोंमें किसी के सन्तान नहीं थी। अंगिराके वरदानसे पुत्र हुआ, उसे रानियोंने ईर्ष्या के कारण विष देकर मार दिया। अंगिराने राजाका शोकापनोदन करते हुए उसे अध्यात्म तत्वका उपदेश दिया है।१ भा. में अन्यत्र भी इनका उल्लेख है।२

शुनक :—छा० उ० १।९।३ में शुनकका नाम है भागवतमें शुनक पुत्रका उल्लेख है। वैसे १८ पुराणोंके श्रोता रूपमें शौनक तो अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। 'शौनक उवाच' से ही समस्त पुराण प्रारम्भ हुए हैं। भागवतका प्रारम्भ भी शौनकोंके छः प्रश्नोंके द्वारा ही पल्लवित होता है। 'कुमुद, शुनको ब्रह्मन्' अ. १२।७।३ में स्पष्ट शुनक मुनि ही है।

क्षत्ता :—छा० उप० ४।१।८ में तत्ववेत्ताके रूपमें क्षत्ताका उल्लेख है। भागवतमें तृतीय स्कन्धमें जो परम्परा चली है उस भागवत परम्पराको क्षत्ताने नया रूप दिया है।३

वसिष्ठ :—छा० उ० ५।१।२ में इनका वर्णन है। भागवतके अनेक कथानकोंमें वसिष्ठ हैं। नवम स्कन्धमें इनकी उत्पत्तिका वर्णन है। वसिष्ठ एक बड़े पुरोहितके रूपमें वर्णित हैं। सूर्य वंशसे इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।४ भगवान् श्रीरामकी कथाके मुख्य पात्र रूपमें ये जनसाधारणमें परिचित हैं। विश्वामित्रके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें इन्हें पुराणोंमें रखा गया है। भागवतमें भी इनकी शत्रुताकी कथा कही गयी है५ आडिबक युद्ध महाभारतमें वर्णित है।

आरुणि :—छा० उ० ५।३।५ में आरुणिका वर्णन है। भागवत १०।८।१८ में भी इसका वर्णन है। आरुणेयोपाख्यान महाभारतमें भी प्रसिद्ध है। आरुणिकी गुरु भक्ति प्रसिद्ध है। गुरुकी आज्ञासे यह गाय चराने जाता था, वहाँ गायोंका दूध पीकर स्थूल शरीरधारी हो गया। गुरुने परीक्षा ली और दूध न पीनेका आदेश दिया इसने वत्सोंके मुखसे टपकनेवाला झाग पीना प्रारम्भ किया। गुरुने इसका भी निषेध किया तब आकके पत्ते खानेसे अन्धा होकर विना पानीके कूपमें गिर गया। गुरुने कृपापूर्वक इसका वहाँसे उद्धार किया और सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता बना दिया। वेदस्तुतिमें "आरुणयो दहरम्" आरुणि सम्प्रदायके लोग दहर ब्रह्मकी उपासना करते हैं लिखा है। निःसन्देह यह अंश छा० उप० से सम्बन्धित है क्योंकि इस उप० में भी दहर विद्याकी बड़ी महिमा गाई गयी है।

इन्द्रद्युम्न :—छा० उ० ५।१४।१ में तथा भागवत ८।४।७ में इसका उल्लेख है। इन्द्र द्युम्न नामक राजा गज-ग्राह युद्धमें वर्णित है। यह पाण्ड्य देशका राजा था। एक बार यह मौन व्रत लिए भगवदाराधनामें मग्न बैठा था कहींसे अगस्त्य मुनि आये परन्तु इसने आतिथ्य नहीं किया। उन्होंनेअपमान देखकर इसे हाथी होनेका शाप दिया था।

सनत्कुमार :—छा० उ० ७।३।१ में उल्लिखित और है भागवतके प्रमुख वक्ता हैं। नारद जब समस्त भूतलपर भ्रमण करते वृन्दावन आये और वृन्दावनमें भक्तिसे भेंट हुई तो उसके कष्टको दूर करनेके लिए नारद सनत्कुमारके पास गये और उन्होंने आनन्दवनमें भागवत पुराणका सप्ताह पारायण सुनाया, जिसे श्रवण कर भक्तिका कष्ट दूर हुआ।१

---

१. भाग. ६।१४-१५ अध्याय २. भाग. ११।१९।९
३. भाग. ३।१।१ ४. भाग. ९।१
५. भाग. ९।१३

---

१. भागवत माहात्म्य १

प्रसिद्ध हिरण्याक्ष-हिरण्य कशिपु एवं रावण-कुम्भकर्णके जन्म कथानक सनत्कुमारसे मिले हैं। सनत्कुमारके शापके कारण ही जय-विजय नामक भगवानके पार्षद उक्त असुरोंके रूपमें जन्मे थे। ये भगवानके प्रिय रूपमें चित्रित हैं और प्रायः चार भाई सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार साथ-साथ रहते हैं। पूर्वजोंके पूर्वज होनेपर भी सदा ५ वर्षकी अवस्था वाले बालकके समान रहते हैं।

सृष्टि उत्पन्न करनेके ब्रह्माके अनुरोधके उल्लंघन करनेके कारण इनका शरीर बालकोंके समान ही रहा।

ब्रह्मदत्त :—वृह० उ० १।३।२४ में तथा भागवत ६।२१।२५ में चर्चित है। ये शुकमुनिके दौहित्र हैं अतः ब्रह्मवेत्ता होना स्वाभाविक है।

गार्ग्य :—वृह० उ० २।१।४ तथा भा. ६।२१।१६ में इनका उल्लेख है। अन्यत्र कालनेमिको गार्ग्य पुत्र कहा है।

याज्ञवल्क्य :—वृह० उ० २।४।१ तथा भा. ६।१२।३ में इनकी कथा है। एकबार याज्ञवल्क्यने वैशंपायनसे कहा कि आप अपने समस्त शिष्योंसे प्रायश्चितकी न कहें। इकला मैं ही समर्थ हूँ। वैशंपायन प्रायश्चित्त करानाचाहते थे याज्ञवल्क्यकी अहंवादितासे उन्होंने शाप दिया और याज्ञवल्क्यने पठित विद्या उगल दी। पुनः सूर्यनारायणकी उपासनासे नवीन यजुष् ग्रहण किये और शुक्ल यजुर्वेदके द्रष्टा ऋषि बन गये।

शुक्ल कृष्ण यजुर्वेद के भाग कर्ताके रूपमें याज्ञवल्क्यकी भागवतमें विस्तृत चर्चा है।१

उपनिषदोंमें याज्ञवल्यकी कात्यायनी-मैत्रेयी पत्नियोंका नाम भी सादर गृहीत है। भागवतमें मैत्रेयीका उल्लेख ४।१।४८ में है।

कौशिक :—वृह० २।६।१ भाग. ६।८।४८ में इनका उल्लेख है। कौशिक विश्वामित्रकी अनेक कथा हैं। कुशिक ऋषिकी सन्तानका नाम कौशिक पड़ा। चरुके व्यत्ययके कारण क्षत्रिय भार्याका चरु ब्राह्मणीने खाया, ब्राह्मणीका चरु क्षत्रियाणीने खाया अतः परशुराम तो जमदग्निके घर क्षत्रिय धर्मा प्रकट हुए और कुशिकके घर ब्राह्मणत्व विशिष्ट धर्मा विश्वामित्र प्रकट हुए थे।)

आग्निवेश्य :—वृह० २।६।२ तथा भा. ६।२।२१ में उल्लिखित है। इनकी कोई विशिष्ट कथा भागवतमें नहीं है।

पाराशर्य :—वृह० २।६।२ में तथा भागवतमें १०।७४।८ एवं पराशर नाम "योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च" माहा० ३।१४ में एवं अन्यत्र अनेक प्रसंगोंमें है। पाराशर्य व्यासका नाम है। भागवतके रचयिता भी पाराशर्य हैं। ब्रह्मसूत्र रचयिता भी यही हैं। इन्हीका नाम बादरायण है।

जातूकर्ण्य :—वृह० २।६।३ एवं भाग. ६।२।२१ में इनका उल्लेख है। "जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः" भा. १२।६।५८ में भी स्पष्ट जातूकर्ण्यका उल्लेख कर वैदिक परम्पराके निर्वाहक रूपमें इसे रखा है।

विश्वरूप :—वृह० २।६।३ भा. ६।६।४४ मे उल्लिखित मुनिका नाम है। विश्वरूपके तीन मस्तक थे जिनसे वह अन्न-सुरा और सोम-रस पान करता था। यह त्वष्टाका पुत्र था और देवताओंने इसे कुछ दिन अपना आचार्य मनोनीत किया था। यह सुर-असुर दोनोंसे सम्बन्धित था और असुरोंकी ओर रुचि होनेके कारण उनकी वृद्धिकी कामनाके लिए हवन कर्म करता था। एकबार इन्द्रने पता लगाकर इसके तीनों मस्तकोंका उच्छेद किया। जिनसे कपिंजल-कलविंक और तित्तिर पक्षी उत्पन्न हो गये। इन्द्रको ब्रह्म हत्या लगी, जिसे बादमें स्त्री-जल-भूमि और वृक्ष चारोंमें विभक्त किया।

---

१. भाग. १२।६।६२

यह विश्वरूप तान्त्रिक था। इन्द्रको नारायण कवच विद्याको इसीने प्रकाशित किया था। उपनिषदोंमें चर्चित विश्वरूपके साथ जोड़नेका कारण वहाँ त्वष्टाका उल्लेख है।

त्वाष्ट :—बृ० २।६।३ में नाम आया है और भागवत ६।७।२५ में अतः विश्वरूपको ब्रह्मवेत्ता मानना पड़ता है।

अश्विनी :—ये युगल देव हैं। बृह० २।६।३ एवं भा० ६।३।१६ में वर्णित हैं। भागवतमें ये च्यवनकी अन्ध चक्षुको ज्योति प्रदान करते हैं, वृद्धत्व दूर करते हैं।

दधीचि :—बृह० २।६।३ भा. ६।११।२० में वर्णित हैं। देवगण इनसे अस्थि माँगते हैं और उनका वज्र बनाते हैं। इसी वज्रसे प्रसिद्ध दैत्य वृत्रासुरका विनाश करते हैं। ये अथर्ववेदके तत्वज्ञ मुनि थे।

सनक :—बृह० २।६।३ तथा भा ३।१२।४ में इनका उल्लेख है। सनत्कुमारके ये भाई हैं।

परमेष्ठी :—बृह० २।६।३ तथा भा० २।३।६ में इनका उल्लेख है।

स्वयभू :—बृह० २।६।३ भा० २।७।२ में वर्णित हैं।

जनक :—बृह० ३।१।१ भा० ६।१३।१३ में चर्चित हैं। प्रसिद्ध सीता देवीके पितृ रूपमें समस्त जनवर्गमें समादत हैं।

शाकल्य :—बृह० ३।६।२४ भा० १२।६।५७ में उल्लेख है। "शाकल्यस्तत्सुतः" में वह वेद शाखा प्रवक्ता हैं।

आत्रय :—बृह० २।६।३ तथा भाग. माहा० ३।६ में अत्रिज पिप्पलादा:" अत्रि पुत्र आत्रेय ही हैं।

उपनिषदोंके तथा भागवतके स्थल विशेष

ब्रह्मलोक :—कठोपनिषद् (६।५) में ब्रह्मलोकका वर्णन है। भागवत में तो ब्रह्मा नामक देव ब्रह्मलोकसे ही अपने भक्तोंको दर्शन देने आते हैं। भागवतके अनेक स्थलोंमें ब्रह्मलोकका वर्णन है।१

भूः भुवः स्वः—छान्दोग्योपनिषद्में भूः भुवः स्वः लोक रूपमें भी वर्णित है।२

वैसे ये तीनो व्याहृतियाँ हैं।

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्याम्
भुवर्लोकोऽस्य नाभितः

(भा० २।५।३८

श्लोकमें तीनों लोकोंका उल्लेख है। देवगण स्वर्गसे गर्भस्तुति करने आये, वहीं लौटकर गये (भा० ८०।२।४२)

नैमिषारण्यः—छा० उ० १।२।१३ में नैमिषारण्यका उल्लेख है। यह स्थल इतना पवित्र है कि इसका वर्णन १८ पुराणोंमें उपपुराणोंमें,अधिपुराणोंमें, तथा समग्र कथा साहित्यमें उपलब्ध होता है। इसकी महत्ता इस कारण भी है कि समग्र ऋषियोंने कथा यज्ञके लिए निरापद भूमिकी कामनासे भगवान्से प्रार्थना की। उन्होंने अपना एक मनोमय चक्र बनाकर वैकुण्ठसे छोड़ा एवं ऋषियोंसे कहा कि जिस स्थानपर चक्रकी नेमि रुक जाय वहाँ आप लोग बैठकर श्रवण यज्ञ करें। सीतापुरके समीप आजकल यह स्थान है। इसे नैमिषारण्य कहते हैं। श्रीमद्-भागवतके कारण यह जन-जनमें प्रसिद्ध हो गया है। प्रसिद्ध सत्यनारायणकी कथा यहीं हुई थी, अतः यह अति प्रसिद्ध स्थान बना है। ईश्वरने नेमिश असुरको इस स्थानपर मारा था, अतः यह स्थान प्रसिद्ध हो गया। नैमिषारण्यमें सहस्त्रों वर्ष बैठकर शौनक एवं सूतने विभिन्न पौराणिक कथाओंको प्रकट किया था।

१. भा. २।५।३६,
२. छा० उ० १।८।५

उपनिषदोंमें उल्लेख होनेसे इसका महत्व और भी बढ़ा है, यह निःसन्देह है। भागवतमें कई स्थानोंपर इसका उल्लेख है।[1]

पंचालदेशः—छा० उ० ५।३।१। में पंचाल देशका उल्लेख है तथा भागवत ४।२५।२१ में इसका उल्लेख है। इसे ही कुछ विद्वान् पंचाल देश मानते हैं और पांचाली शब्द द्रोपदीके लिए प्रसिद्ध है। वैसे कई स्थानोंपर कुरु-पंचाल देश साथ-साथ वर्णित हैं। श्रीकृष्णने हस्तिनापुरसे द्वारकाकी यात्रा पंचाल देशमें प्रविष्ट होकर की थी।

भा. १।१०। ३४

काशीः—वृह० उप० २।१।२ में काशीका उल्लेख है। श्रीमद्भागवतके ६।७।१४ में काशीका उल्लेख है इतना ही नहीं, इसके सम्बन्धमें भागवतमें कई उपाख्यान हैं प्रसिद्ध सान्दीपनि आचार्यको 'काश्यं' लिखकर काशी निवासी स्वीकार किया है। सान्दीपनि आचार्य उज्ज-यिनीमें निवास कर विद्यादान करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामने इन्हींसे विद्या अर्जित की थी।

काशीको कृष्णके सुदर्शन नामक चक्रने जलाया था, जैसे हनूमान्‌ने लंका जलाई थी।

काशीपति भूतनाथका अनेकत्र उल्लेख है।

कुरुदेशः—छा० उ० १।१०।१ में कुरुदेशका वर्णन है। प्रसिद्ध कौरवोंका नाम इस कुरुदेशसे सम्बन्धित है। कुरु नामक राजर्षिने जिस भूमिपर यज्ञादि किये थे वह कुरुक्षेत्र स्थान बना। कुरुदेशकी सीमा व्यापक थी। कुरुका उल्लेख भागवतमें कई स्थलोंपर वर्णित है।

'कुरु जांगल पंचालान् शूरसेनान् सयामुनान्'

भा. १।१०।३४

में कुरुके साथ कुरुक्षेत्र भी पड़ा है।

मद्रदेशः—वृह० ३।१।१३ में मद्रदेशका वर्णन है। यह स्थान सुप्रसिद्ध पाण्डवोंके भाई नकुल-सहदेवके कारण ख्याति प्राप्त है। पाण्डुकी दो पत्नी थीं—कुन्ती और माद्री। कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर-अर्जुन-भीम और माद्रीके पुत्रोंका नाम नकुल और सहदेव था। महाभारत भागवत आदि प्रसिद्ध ग्रन्थोंमें इनकी चर्चा बहुधा आती है।

सूर्यलोकः—छा० उ० १।८।५। में सूर्य लोकका वर्णन है। भागवतमें देवोंके लोकमें सूर्य लोकका वर्णन आता है। भा. ५।२२।५

चन्द्रलोकः—प्रश्नोपनिषद् १.९ में चन्द्रमाके लोकका वर्णन है। भागवतमें सूर्य लोकके ऊपर चन्द्रलोकका वर्णन उपलब्ध होता है।

"एवं चन्द्रमा अर्क गभस्तिभ्य उपरिष्टात् लक्ष योजनत उपलभ्यमानः"

भा० ५।२२।८

देवलोकः—वृह० उ० १।५।१६ में देवलोकका वर्णन है। भागवतमें कंसके कारागारमें देवगण देवलोकसे भगवान्‌की स्तुति करने आते हैं। देवलोकका विभिन्न कथानकोंमें उल्लेख मिलता है। इसे ही स्वर्ग लोक या दिव शब्द कहा गया है—

"देवा प्रतिययुः दिवम्" भा० १०।२।४२

मनुष्य लोकः—वृह० १।५।१६ में मनुष्य लोकका वर्णन मिलता है। भागवतमें मर्त्य लोक या मनुष्य लोककी ही समग्र श्रीकृष्ण परक कथाएँ हैं।

भू-लोक ही मनुष्य लोक है। भू-लोकका वर्णन भा० ११।२४।१२ में है। भारतवर्षका ११।२।१७ तथा अन्य अनेक स्थानोंपर वर्णन है।

नक्षत्र लोकः—वृह० ३।६।१ में नक्षत्रलोकका उल्लेख है। भागवत पंचम स्कन्धमें शिशुमार चक्रका वर्णन (खगोल वर्णन) नक्षत्र लोकका ही वर्णन है।

भा० ५।२३।४

१. भा० ३।२०।७

प्रजापति लोकः—बृह० ३।६।१ में प्रजापति लोकका वर्णन है। भागवतमें यह लोक प्रजापति ब्रह्मासे सम्बन्धित है अतः यह ब्रह्मलोकका पर्यायवाची शब्द बनाकर व्यवहृत किया है। 'परमेष्ठी: प्रजापतिः' यह ब्रह्माके लिए ही व्यवहृत है। लोक रूपमें भा० ५।२३।३-५ में व्यवहृत है।

विदेह—बृ० ३।१।१। में प्रसिद्ध तत्ववेत्ता विदेह राजाकी आख्यायिका वर्णित है। विदेह एक प्रसिद्ध स्थान है, इसे जनक राजाके परिवारसे संयुक्त माना गया है। भगवान् श्रीकृष्णका परम प्रिय भक्त श्रुतदेव विदेह देशमें ही रहता था। एक बार भगवान्ने विदेहकी यात्रा की और मैथिलदेशके राजा बहुलाश्वका मनोरथ भी पूर्ण किया।

'स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमो'

भा० १०।८६।१४

इस यात्रामें श्रीकृष्णकी पूजा आनर्त, धनु, कुरु जांगल, कंक, मत्स्य पंचाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोसल, आदि देशके देशाधिपोंने की थी।

भा १०।८६।२०

विदेह नगरका उल्लेख भा० ११।८।२२ में है।

(ब्रह्मलोकका ११।२३।३० में वर्णन है)

ब्रह्मसूत्रके प्रमुख पात्र

ब्रह्मसूत्रोंमें किसी ऋषिका वंश वर्णन नहीं है और न किसी आख्यायिकाको ही इसमें प्रमुखता दी गयी है किन्तु विभिन्न सिद्धान्तोंके स्थापनमें जिनका उल्लेख परम आवश्यक समझा गया है, उन्हें ही इसमें उल्लिखित किया है। ऋषियोंके नाम इस प्रकार हैं:—

बादरायणः—(ब्रह्म सूत्र ४।३।१५)

उक्त सूत्रमें बादरायणका नामोल्लेख करते हुए कहा है कि उपनिषदोंमें ब्रह्मकी प्रतीक उपासनाका वर्णन है, ऐसा उनका मत है।

बादरायण व्यासका नाम है और भागवतके तो रचयिता भी यही हैं।

बादरिः—बादरिका उल्लेख ४।४।१० में है। बादरिका कथन है कि उस लोकमें स्थूल शरीर नहीं मिलता केवल मनसे ही भोगोंको भोगता है। 'बादरि' बादरायणसे भिन्न आचार्य हैं। इनका नाम्ना निर्देश भागवतमें नहीं मिलता। भा० ३।४।४ में बदरीका उल्लेख अवश्य है। बादरिका नाम बदरि शब्दसे संयुक्त किया जा सकता है।

आश्मरथ्यः—'अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः' १।२।२९

में आश्मरथ्य नामक आचार्यका उल्लेख है। भक्तों-पर अनुग्रह करनेके लिए देश विशेषमें ब्रह्मका प्राकट्य होता है अतः कोई विरोध नहीं है। यह आश्मरथ्यका मत है।

'अश्मकान्मूलको जज्ञे' भा० ९

में अश्यमक शब्द प्राप्त होता है किन्तु इसका उक्त ऋषिसे कोई सम्बन्ध रहा हो, निश्चय नहीं कहा जा सकता है।

काशकृत्स्नः—अवस्थितेरितिकाशकृत्स्नः १।४।२२

काशकृत्स्न आचार्यका मत है कि प्रलयकालमें सम्पूर्ण जगत्की स्थिति परमात्मामें होती है।

भा० (बंगला सं०) ४।१३।१६ में कृत्स्न शब्द मिलता है। सम्भव है काशके साथ वह जुड़ा हो।

औडुलोमिः—आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते' औडुलोमि आचार्य मानता है कि कर्त्तापन ऋत्विक्का है क्योंकि वह यजमान द्वारा वरण किया जाता है, हां फल यजमानको प्राप्त होगा, ऋत्विक्को नहीं।

औडुलोमिका मत भा.,१।४।२१ में भी प्रदर्शित किया है।

महर्षि पाणिनि ने भी इनकी व्युत्पत्ति उडुलोमन् शब्दसे प्रदर्शितकी है।
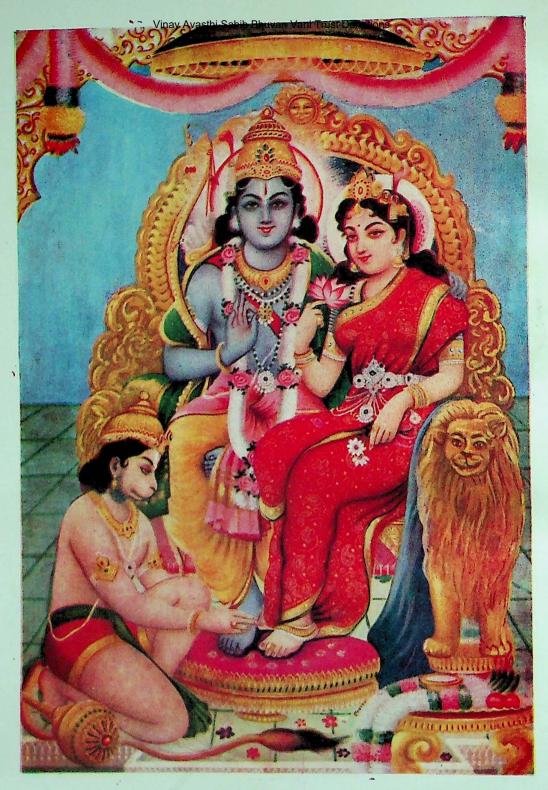
श्रीसीता-राम

काष्र्णाजिनिः—३।१।९ में काष्र्णाजिनिका पक्ष प्रस्तुत किया गया है।

जैमिनिः—ब्रह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ४।४।५

सूत्रमें जैमिनि आचार्यका मत रखा गया है।

मुक्तात्मा ब्रह्मके सदृश रूपसे स्थित होता है ऐसा आचार्य जैमिनिका मत है। इसके अतिरिक्त १।३।३१, ३।४।४०, ३।४।१८, १।४।१८ १।२।२८ आदिमें जैमिनि आचार्यका मत उद्धृत किया गया है।

श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें लिखा है कि व्यासने जैमिनि नामक शिष्यको सामवेदकी शाखा दीं।

सामनां जैमिनये प्राह तथा छन्दोग संहिताम्
भा० १२।६।५३

जैमिनेः सामगस्यासीत' १२।६।७५ में भी जैमिनिको सामवेद ज्ञाताके रूपमें स्मृत किया है तथा भा० १।४।२१ में 'सामगो जैमिनिः कविः' लिखा है।

आत्रेयः—भागवतमें अत्रि सम्प्रदाय उपलब्ध है। अत्रिका प्रसिद्ध कथा है। मुख्य पात्र जैमिनि और बादरायण है जिनका श्रीमद्भागवतसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस अध्यायका प्रयोजन दोनों व्यक्तियोंके एक कर्तृत्व को सिद्ध करनेके लिए किया है। सम्पूर्ण उपनिषदोंका अनुशीलन करनेसे निष्कर्ष यह देखा गया कि विभिन्न अल्पज्ञात उपनिषदोंके बहुतसे पात्र तो भागवतमें उपलब्ध हैं। उनकी पुनरावृत्तिसे ग्रन्थका कलेवर बढ़ जाता और अध्ययनकी उपयोगितामें कोई विशेष महत्व न रहेगा इस विचारसे प्रसिद्ध उपनिषदोंके मुख्य पात्र ही यहाँ तालिका रूपमें प्रस्तुत किये गये हैं।

ब्रह्मसूत्रोंमें न तो अधिक पात्र हैं न स्थान।

पात्रोंके आधारपर उपनिषदोंका आश्रय लेकर ऊहापोह करके स्थानोंका अन्वेषण करना मुख्य ध्येय नहीं है, अतः केवल दिग्दर्शन मात्र कराके इसे यहीं विश्राम दिया गया है। उपनिषदोंके पात्रोंका अध्ययन भागवतके वैशिष्ट्यका द्योतन करानेवाला है अतः अध्ययन सार्थक ही रहा है।

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणांका निर्वचन

पाराशर्य पुनः पुराणनिचयं वेदार्थ सारान्वितम्,
स्त्री शूद्र प्रतिवोधनाय च विदां वेदान्त शास्त्रं मुदे।
श्रीगीता वचसां विधाय विवृतिं ज्ञान प्रदीप प्रभा,
लोकैर्लोकमतिं समुज्ज्वल रुचिं लोके वृतार्थो दधौ।।
वेदं प्रमथ्य जलधिं मति-मन्दरेण
कृष्णावतार ! भवता किल भारताख्या
येनोदहारि जनतापहरां सुधावै
तं सर्व वैदिक गुरुं मुनिमानताः स्मः।।
वेदान्तसूत्र महिमा किमु वर्णनीया
युक्त्यानिरीश्वर मतानि निरस्य सम्यक्।
संस्थाप्य सेश्वर मतं श्रुतिभिः वृता य
ल्लोकाहरेर्भजनतः सुख मुक्तिभाजः।।*

*वेदान्त सूत्र भक्तिरूपसिद्धान्तीं–श्रीसारस्वत गौड़ीय मिशन प्रतिष्ठान (बंगला)

ब्रह्मसूत्रके रचियता वेदव्यास हैं' इन्हींका एक नाम बादरायण है। अतः इन्हें बादरायणसूत्र और व्याससूत्र भी कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र रचनाके सम्बन्धमें एक आख्यायिका स्कन्ध पुराणमें आती है ।

द्वापर युगमें जब वेदसमूह समाप्तप्राय हो गया था तब चर्वाकि, बौद्ध, कपिल, प्रभृतिने वेद वाक्यों का अपनी मतिके अनुसार अर्थ करके लोकको परमार्थके मार्गसे च्युत करनेका प्रयास किया ।

इस अनर्थको देखकर देवगण हरिकी शरणमें गये और इस अनर्थ निवारणकी प्रार्थना की, तव भगवान्ने कृष्णद्वैपायनके रूपमें अवतार लिया ।

व्यासने दुष्ट मत निराकरणके लिए चतुरध्यायी ब्रह्मसूत्र या उत्तरमीमांसाका आविष्कार किया । वेदान्तसूत्रके और भी कई नाम हैं—

१. ब्रह्मसूत्र, शारीरिकसूत्र, व्याससूत्र, बादरायणसूत्र, उत्तरमीमांसा एवं वेदान्तदर्शन । चैतन्यमहाप्रभुको 'वेदान्तसूत्र' नाम प्रिय था जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है:—

प्रभुकहे, वेदान्त सूत्र ईश्वर वचन
व्यास रूपै कैल ताहा श्री नारायण,
भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा करणापाटव
ईश्वरेरवाक्ये नाहि दोष एई लव ।

(चै. च. आदि ६।१०८-१०६)

भगवद्गीतामें भी लिखा है—

"वेदान्तकृद्वेदविदेवचाहम्"

(गीता १५।१५)

वेदान्त शब्दका अर्थ है वेदका अन्त—चरमसिद्धान्त । श्रीश्रीलप्रभुपादने महाप्रभुके उक्त वाक्यकी व्याख्यामें लिखा है कि—वेदान्त शब्दकी व्याख्यामें हेमेन्द्र कोषकारका मत यह है—ब्राह्मणोंके सहित उपनिषत् अंश ही वेदान्त या वेदावशिष्ट या वेदशेष भाग है अर्थात् वेदसमूह का ही अन्त वेदान्त है । वेदका चरमोद्देश्य जिस शास्त्रमें प्रदर्शित हुआ है उसे ही वेदान्त कहते हैं ।

वेदान्त सूत्र प्रस्थानत्रयमें 'न्याय प्रस्थान' के नामसे भी पुकारा गया है । उपनिषद् श्रुतिप्रस्थानमें एवं गीता भारत—पुराणादि स्मृति प्रस्थानमें माने जाते हैं ।

वेदान्त अर्थ—वेदान्तमें वेद शब्द प्रथम आया है यह शब्द विद् धातुसे बना है । यह कर्म वाच्य धातु है । इससे चलू प्रत्यय होकर वेद शब्द निष्पन्न होता है । विद् धातुके अन्य अर्थ भी हैं—

वेत्तिवेद विदि ज्ञाने वित्तेविदिविचारणे
विद्यते विदि सत्तायां लाभे विन्दति विन्दते ।

साधारणतः विद् धातुका अर्थ ज्ञान या अनुभव है । "वेदयतिधर्म ब्रह्म च वेदः" अर्थात् जो शास्त्र धर्म और ब्रह्मसत्तत्वको बताता है उसे वेद कहते हैं ।

श्रीजीवगोस्वामीने भी वेद शब्दपर विचार करते हुए लिखा है:—

"यश्चानादित्वात् स्वयमेव सिद्धः,
सएव निखिलैतिह्य मूलरूपो
महावाक्यसमुदायः शब्दोऽत्रगृह्यते
स च शास्त्रमेव, तत्त्ववेद एव ।[१]

फलतः शब्दमय शास्त्रावतार ही वेद है । वेदके दो भाग हैं—एक अंश कालम है "संहिता" तथा दूसरेका नाम है "ब्राह्मण" । वेद साधारणतः छन्दोमय है । छन्दोमय श्लोकको ही मन्त्र कहते हैं तथा मन्त्रकी सभिष्टका लयसूक्त है । सूक्तोंकी समष्टिको ही संहिता कहा गया है ।

वेदके 'ब्राह्मण' भागमें यज्ञादिके मन्त्र तथा नियमोंका उल्लेख है । ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः गद्यलिखित हैं । इसके

१. सर्व्व संवादिनी—तत्वसन्दर्भ

अतिरिक्त वेदके एक भागको 'आरण्यक' भी कहते हैं। वेदके चतुर्थ शेष अंशका नाम 'उपनिषद' श्रुति या वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदोंको वेदान्त कहनेका तात्पर्य यही है कि इसमें वेदका चरमसिद्धान्त निरूपित है।

उपनिषद् शब्दका अर्थ भी यही हैः—

"ब्रह्मणा उपसमीपे निषीदति अनया इत्युपषनिद ।"

अर्थात् जिस शास्त्रके साहाय्यसे साधक मुक्त होनेके लिए भगवानके समीपमें पहुँचनेमें समर्थ हो उसे ही उपनिषद कहते हैं।

उपनिषद्—शब्द उप उपसर्ग पूर्वक निपूर्वक 'षद्लृ' धातुसे विषप् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है।

"उपस्थिततत्वात् ब्रह्मविद्यां निश्चयेन तन्निष्ठतया ये द्रष्टानुश्रविक विषय वितृष्णः तेषां संसार बीजस्य सद् विशरणकर्त्री शिथिलयित्री अवसादयित्री विनाशयित्री ब्रह्मेन मयित्रीति"२

वेद समुदाय श्रीनारायणके ही प्रश्वासोंसे उत्पन्न हुआ है। अतः वेदको अपौरुषेय कहा जाता है। छान्दोग उपनिषदमें ऐसा लिखा है—

"एतस्य वा महतो भूतस्य निःश्वसितयेतद् यद्वै ऋग्वेदः"

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके शक्त्यावेशमवतार श्रीकृष्ण द्वैपायन वेद व्यासने वेद और वेदसार उपनिषदोंके तात्पर्यको लेकर ही ब्रह्मसूत्र या वेदान्त सूत्रकी रचनाकी है। सूत्रका तात्पर्य यह हैः—

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्धिश्वतो मुखम् ।
अस्तोममनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥१

२. चैतन्य चरितामृत आदिलीला—२ य प्ररि. टीका अनुवाद
१. (क) स्कन्द पुराण, (ख) वायु पुराण

श्रीधर स्वामीने ब्रह्म सूत्रकी व्याख्या इस प्रकारकी है—

"ब्रह्म सूत्रयते सूत्रयते सूत्रयते एभिरित ब्रह्मसूत्राणि"

सांख्य-पातञ्जल न्याय वैशेषिक और पूर्व मीमांसा आदि सकल ग्रन्थ 'सूत्राकार' में ही ग्रंथित हैं।

श्रीवेदव्यासने अपने ब्रह्मसूत्र निर्माणमें अन्य भी ऋषियोंके मतोंको उद्धत किया है। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

आत्रेय—आश्यरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णजिनि
काशकृत्स्न, जैमिनि वादम् ।

इससे यह सिद्ध होता है कि वेदव्याससे पूर्व वे महर्षि ब्रह्मसूत्रोंकी आलोचना कर चुके थे।

श्रीवेदव्यास रचित इन्हीं ब्रह्मसूत्रोंको सम्पूर्ण आचार्योंने प्रामाणिक ग्रन्थके रूप में स्वीकार किया है। इसे उत्तर मीमांसा तथा दर्शन शास्त्र भी कहा जाता है। दर्शन शब्दका अर्थ है देखना, प्रत्यक्ष करना, अवलोकन करना, और साधन द्वारा वस्तुका साक्षात्कार करना, इसे ही दर्शन कहा जाता है। फलतः जिन शास्त्रोंके द्वारा परमेश्वरका साक्षात्कार या अनुभव करें उन्हें दर्शनशास्त्र कहते हैं। उस दर्शनकी कथा उपनिषदोंमें प्राप्त होती है "आतमा वा अरे द्रष्टव्यः" इस तत्वज्ञान वा तत्वदर्शनका एकमात्र उपाय श्रीभगवानकी कृपा ही समझनी चाहिये।१

वेदान्त सूत्रका अर्थ ज्ञान परम कठिन है। विभिन्न लोकमें इसके विभिन्न अर्थकी सम्भावनाको देखकर श्रीनारद महर्षिकी प्रेरणासे महर्षि वेदव्यासने ही इसका प्रथम भाष्य बनाया। यह भाष्य ही 'श्रीमद्भागवत पुराण' के नामसे विख्यात है। यह बात गरुड़ पुराण आदिसे भी स्पष्ट है—

"भाष्योंऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः
गायत्री भाष्य रूपो सौ वेदार्थपरिवृंहितः ।।

श्रीमहाप्रभु एवं उनके अनुयायी गौडीय वैष्णव भी इसको ही प्रमाण मानते हैं। वेदान्तका अकृत्रिम भाष्य भागवत है ऐसा उनका निर्णय है।

कालान्तरमें वेदान्त सूत्रके अनेक भाष्य हुए हैं।

श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और निम्बादित्य प्रमुख सात्वत वैष्णावाचार्योंके भाष्य तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

श्रीरामानुजके भाष्यका नाम 'श्रीभाष्य'। इन्होंने विशिष्टाद्वैत मतवादका प्रचार अपने भाष्य द्वारा किया।

"चित् और अचित्विशिष्टि ब्रह्मका एकत्त्व ही विशिष्ट अद्वैतत्त्व है।

श्रीरामानुजके पश्चात् उनके परवर्ती शिष्योंने भी अनेक भाष्यों की टिप्पणी की है।

श्रीमध्वाचार्य कृत भाष्यके ३ भाष्योंका परिचय मिलता है।

१. ब्रह्मसूत्र भाष्य, अनुव्याख्यानम्, अनुभाष्यम्।

श्रीवेदव्यासने मध्वको प्रत्यक्ष दर्शन दिया था और इन्हें भाष्यकी प्रेरणा दी थी। इनके मतमें जीव और ईश्वरमें भेद है। तथा जीव और जीवन में भी भेद है। ईश्वर और जड़में भेद है। जीवन और जड़में भेद है तथा जड़ और जड़में भी भेद है। श्रीमध्वा चार्यके परवर्ती अनुयायी आचार्योंने विपुल रचना द्वारा केवलाद्वैतवादका खण्डन किया है।

श्रीविष्णु स्वामी रचित भाष्यका नाम 'सर्वज्ञसूक्ति' है। इन्होंने शुद्धाद्वैत वादका प्रचार कया। श्रीवल्लभाचार्यने इसी मतका प्रतिपादन व प्रसार किया था। श्रीश्रीधरस्वामी इसी मतके प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। श्रीधरस्वामीको केवलाद्वैतवादका मानना भ्रम है। भक्तिरक्षक श्रीधर स्वामिपाद श्रीनृसिंहके सेवक थे। श्रीधर स्वामीकी कृतिकी प्रमाणिताके सम्बन्धमें एक आख्यायिका आती है कि एकबार श्रीधरस्वामीने अपनी कृति विश्वनाथके मन्दिरमें काशीमें रखी तो श्री विश्वनाथके हस्ताक्षर इस प्रतिपर मिले जिसमें निम्न श्लोक लिखा था—

अहं वेद्मि शुकोवेत्ति व्यासोवैत्तिवानवा
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्री नृसिंह प्रसादतः ।।

श्रीधरकी भावार्थ दीपिका टीका, तथा गीताकी टीका सर्वजन्य प्रसिद्ध है। श्रीचैतन्य तो श्रीधरके बड़े ही भक्त थे।

श्रीनिम्बार्काचार्यने—भेदाभेद वादका प्रचार किया। इनके भाष्यका नाम—"वेदान्त पारिजात सौरभ" है। इनके मतानुसार 'ब्रह्म, जीव और जगत स्वरूपतः और धर्मतः भिन्न-भिन्न हैं। यह भेद और अभेद समभावसे सत्य नित्य और अविरुद्ध है।

पूर्वोक्त वैष्णवाचार्य चतुष्टयके अक्तिरिक्त श्रीशंकराचार्यका 'शारीरक भाष्य' नामसे एक भाष्य है। आजकल भारतमें इसका प्रचलन ही सर्वाधिक है। इनके मतवाद का नाम 'केवलाद्वैतवाद है"। इनके द्वारा विवर्तवाद, मायावाद, अनिवार्यवाद, निर्विशेषवाद प्रभृति नामोंका प्रचार किया गया। इनके मतानुसार एकमात्र सत्य वस्तु ब्रह्म ही है। 'ब्रह्म' निर्गुण, निर्विशेष और निष्क्रिय है। जीव और जगत ब्रह्मका ही विवर्तमात्र है। इनके सम्बन्धमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

"श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।।

१. "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः"

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीसार्वभौमके लिए यह कहा था—

जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास
मायावादि भाष्य शुनिते हय सर्वनाश ॥
परिनामवाद व्यास सूत्रेर सम्मत
अचिन्त्य शक्ति ईश्वर बू जगद्रूपे परिणत
मनिपैछे अविकृते प्रसवे हेयभाव
जगद्रूप हय ईश्वर नवू अविकार ॥
आर ये ये किछू कहे सकलेई कल्पना
स्वतः प्रभान वेद वाक्ये ना करिये लछना ॥
आचार्येर दोष नाहि ईश्वर आज्ञा हईल
अतएव कल्पना करि नास्तिक शास्त्र कैल ॥

पद्मपुराणमें भी ऐसा निर्देश है कि आचार्य शंकरको ईश्वरने ही प्रेरणा दी थी कि मनुष्योंको मुझसे विमुख करो जिससे यह सृष्टि उत्तरोत्तर बढ़े—

स्वागमैः कल्पितैस्त्वंच जनान् मद्विमुखान् कुरु।१
मा चं गोपय येनस्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा ॥
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छनां बौद्धमुच्यते ।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण मूर्तिना ॥२
जीवतत्व शक्ति कृष्ण तत्व शक्तिमान् ।
गीता विष्णु पुराणादि नाहाते प्रमान ॥
(चै. च.)

चैतन्य यह भी स्वीकार करते हैं कि शंकर, शिवरूप थे और भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे अवतरित हुए थे ।

शंकर स्वयं परम वैष्णव थे । यमुनाष्टक, गोविन्दाष्टक गोपीगण महिमा, कृष्णलीला, विष्णुसहस्रनाम भाष्य तथा गीता टीकासे भी उनका परम वैष्णभवत्व स्वतः सिद्ध है किन्तु उनके भाष्य पठनको श्रीचैतन्यने सर्वनाश करनेवाला माना ।

श्रीमद्भागवत ब्रह्म सूत्रका अकृत्रिम भाष्य है । वेद अपने तीन काण्डोंके लिए प्रसिद्ध है, जिन्हें—ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड कहते हैं । ज्ञानकाण्डमें ब्रह्मतत्वका प्राधान्यतः विवेचन है । ज्ञानकाण्डका सिद्धान्त ब्रह्मसूत्रोंमें अल्पाक्षरोंमें समुद्दिष्ट है । जब ब्रह्मसूत्रोंकी कदर्थना प्रतीत हुई, तब व्यासने उसके भाष्यका प्रकाश किया । सम्बन्ध प्रयोजन और अभिधेय ये ३ विषय भागवतमें दृष्टिगोचर हैं, मूल वाच्य तत्व सम्बन्ध है । मूल प्राप्त तत्व—प्रयोजन है । प्रयोजन प्राप्ति जन्य कर्तव्य तत्वका निर्धारण ही अभिधेय है ।

ब्रह्मसूत्रोंके प्रथम सूत्र १ 'जन्माद्यस्ययतः' की व्याख्यामें बल्देव विद्याभूषणने श्रीकृष्णको सूत्रोंका प्रतिपाद्य लिखा है—

भागवतमें पारमार्थिक वस्तुको प्रतिपाद्य माना है
२ "वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवद्म्"

परम तत्व अद्वय एवं अखण्ड—ज्ञानके नामसे अभिहित किया है परन्तु वह त्रिविध रूपसे प्रकाशित है—
ब्रह्म—परमात्मा—भगवान् ।

* वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

यह अखण्ड तत्वका त्रिविध प्रकाश ही कृष्ण है एवं यही भागवत का मुख्य प्रतिपाद्य है ।

---

१. पद्मपुराण उत्तर खण्ड सहस्रनाम कथम ६२ अ- ३१ श्लोक
२. चै चरि- मध्य (६। १६६–१८२)

१. ब्रह्मसूत्र (१।१।२)
२- भाग (१।१।२)
* भाग (१।२।११)

ब्रह्मसूत्रोंका यथारूपमें भागवतमें बहुधा उल्लेख भी उनके स्पष्ट प्रभावका द्योतक है। शब्दतः साम्य एवं अर्थतः साम्य पूर्वाध्यायमें लिखा गया है।

२ 'अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणाम्' भागवतके लिए ही लिखा गया है, अन्य पुराणों के लिए ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है और न किसी अन्य पुराणके बारेमें किसी आचार्यने ही कोई प्रमाण दिया है।

३ ब्रह्मसूत्रके 'साम्बरोय' शब्दका अर्थ प्रेम है

४ भागवतमें भी 'मयिनिर्बद्ध हृदया' में लिखा है कि कि प्रीति भक्ति ही भगवानको वश करनेमें समर्थ है।

५ ब्रह्मसूत्र ३।२ में

अभिप्रेय आलोचनके उपक्रममें बलदेवने कृष्ण विषयक अनुरागके हेतु रूप भक्ति (साधन–भक्ति) का प्राधान्य स्वीकार किया है।

६ भागवतमें "स्मरन्तः स्मारयन्तश्च" में साधन भक्तिसे प्रेमाभक्तिके उदयकी ओर निर्देश किया है।

७ भागवतमें ब्रह्मसूत्र प्रभावका स्पष्ट निर्देश प्राप्त है—

सर्व वेदान्त सारं हि
श्रीमद्भागवतमिष्यते ॥

इससे भागवतको ब्रह्मसूत्रोंका भाष्य कहना उचित ही है।

यही बात गरुड़ पुराणमें वर्णित हैं—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः
गायत्री भाष्य रूपो सौ वेदार्थ परिवृंहितः।

एवं यही भाव भागवतमें भी स्पष्ट उल्लिखित है—

सर्व वेदान्त सारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते ॥
(भा. १२।१३।१२)

अतः श्रीमद्भागवत वेदान्त शास्त्रोंका सारांश सिद्ध है।

---

२. गरुड़ पुराण
३. ब्रह्मसूत्र (३।३।२८)
४. भाग
५. गोविन्द भाष्य (३।२)
६. भाग (११।३।३२)
७. भाग (१२।१३।१२)

टीकाकारोंकी श्रुतियां

वीरराघवाचार्य

द्वितीय स्कन्ध

अध्याय-श्लोक

१।५ कारणं तु-ध्येयं
आत्मावारे
अथातो
१।७ तमेवं
१।३३ नाम रूपे
२।८ यत्तुवेतत्
२।१६ तस्य तावदेव
२।२२ तासांमूर्द्धानं
२।२२ तेर्चिषि
२।२२ न तस्य प्राणा
२।२४ यथा पुष्कर
२।२४ अथ चक्षुच
२।२४ ते न प्रद्योते
२।२४ अग्निज्योतिः
२।२४ पुण्य पापो विधूय
२।२८ पृथिवी मंडं
२।३१ क्षयं तमस्य
२।३२ ये चेमेऽरण्ये
२।३५ मनसा तु

४।१७ १२।४८
७।७ १३।५
७।१४ १४।११
७।२८ १४।२६
८।१५ १६।७
९।३६ १६।१३
१०।९ १६।१८

२।३५ सत्यं ज्ञानमनन्तं
२।३५ सदेव सौम्येदमग्र
४।१६ ब्रह्मविदाप्नोति
५।१५ तस्य ह-वा
५।१५ सर्वे वेदा
५।१५ चन्द्रमामनसो
५।३५ सहस्त्रशीर्षा
६।१२
६।१८
६।१९
६।२०
७।१० स्वे महिम्नि
७।११ तस्य ह-वा
७।४० विष्णो

तृतीय स्कन्ध

७।०७ सत्यं ज्ञान
विज्ञान घन एव
परमं सौम्यं
तमेवानुविशतीति
९।२६ तदात्मान स्वयं
९।३१ अर्हसत्यं
९।७५ सत्यंज्ञान
१०।९ एताभूत मात्रा

२१।३४ २८।३८
२५।४२ ३२।७
२६।७

चतुर्थ स्कन्ध

२६।८ ३३।३
२६।४३ १।३०
२५।५८ २।२२

२८।२६
७।१६
७।२५
७।२६
७।३९
७।४०
७।४६
७।५०
७।५४
९।७
९।१३ सू.
९।१६
११।२३
११।२७
१२।४
१३।८
२०।८ सू.
२०।३०
२१।२८
२२।२१
२२।३७
२४।३७
२४।४३
२४।६१
२५।८
२६।१
२८।३२
२८।५८
२९।२४
२९।४५
२९।४८
२९।५०
२९।६८
२९।७३

पंचम स्कन्ध

२।२
६।५
७।१३
१०।१४
१०।१५
१२।३
१५।७
१७।११
१८।१३
१८।२६
१८।३५
१८।३६
१९।१२ सू.
१९।२४
२०।३२
२१।५
२२।११
२६।७

षष्ठ स्कन्ध

१।१
१।१३
१।४०
१।४२ सू.
३।३१
३।३२
६।१ सू.
६।२
६।२२
६।२६
७।२४
७।३७
७।३८
७।४०
७।४७
८।५३ सू.
९।११ सू.
९।३० सू.
९।३२
९।४७
१०।६६
११।१३
१२।१४
१३।१० सू.
१३।२६
१४।२
१४।३७
१५।९
१५।११ सू.
१५।४१
१५।४५
१५।५०
१५।५१
१५।६६

सप्तम स्कन्ध

अष्टम स्कन्ध

१।१२
२।३२
३।५
३।१६
३।३०
५।२६
५।२९
५।३२
५।३३
५।३४
५।३५ सू.
५।३६
५।३७
५।३८
५।३९
५।४०
५।४१
६।११
७।२५
७।२६
७।२७
१८।५
१९।३९
१९।४१
२४।२८
२४।५५
२४।५०

नवम स्कन्ध

१।८
१।९
२।१५
२।१७ सू.
४।८
४।४०
५।३
९।२७
१४।२२
१४।४४
१९।२९

दशम स्कन्ध

२।२६
२।३६
३।१३ सू.
३।१४
३।१५
३।१९

३।२०	१६।१२	५२।३६	८४।२६
३।२४	२०।२१	६०।११	८४।३६
३।२५	५१।२६	७४।२१	८५।४
१४।२३			

८७. सत्यं ज्ञान मनन्तं
सर्व खत्विदं ब्रह्म
सर्वे वेदायत्पद
वेदैश्च सर्वेरहमेववेद्य
अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य
नाम रूपयो निर्वहितति
सर्वाणि रूपाणि विचिन्त्यधीरः
तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत
सौम्येकेन मृत्पिण्डेन
तदैक्षत
ऐतदात्म्यमिदं सर्व
आत्मनः आकाशः सम्भूतः
तस्यैष एव शारीर आत्मा
सवा एष पुरुष विधएव

तस्य प्रियमेव
तत्सृष्ट्वा तदनु
यज्ञेन यज्ञमयजन्त
श्रोतव्यो मन्तव्यो
यतो वाचो
पुमान्न देवो न नरः
नद्यत्येह कर्मचितो लोकः
परास्य शक्तिर्विविधैव
रसो वै रसः ३४ मी
ये के चास्मात् लोकात् प्रयन्ति
तस्मात् लोकात्
स्वात्मना चोत्तरयोः सू.
नेह नानास्ति
यथा सौम्येकेन

८८।१	६।१५	१४।३३	**द्वादश स्कन्ध**
८८।४	६।१३	१५।३६	११४
एकादश स्कन्ध	६।१७	१६।२६	१।२३
३।२०	६।२१	१७।२७	१।२७
३।३६	१०।११	१६।१७	५।११
४।५	१०।१२	२१।६	१०।३१
४।७	१३।३८	२४।२२	११।१४
६।१४	१४।२५	२६।४६	

दशम वेदस्तुति की श्रीधरी-श्रुतियां

श्रुति

१०।८७-२ तत्त्वमसि
निर्गुणं निष्क्रियं
३. तः सर्वज्ञः सर्ववित्
न चासंगोह्ययं पुरुषः
तत्वौपनिषदं
मनोवाचो
विष्णोर्नुकं वीर्याणि
यन्मनोनु मनुते
स एव यद् दृग्विषये
न हृद्देश तिष्ठति
परांचखानिव्यतृणत्
१४. यतोवा
येन जातानि
यत्प्रयन्त्यमि
सत्यं ज्ञान
विज्ञानं ब्रह्म
१५. यत इन्द्रो जातो
एकं सत्
वाचारम्मणं
१६. तद्यथापुष्करपलाशे
विष्णोर्नुकं
सवाएषपुरुषो (तत्ते०)
१८. उदरं ब्रह्म
हृदयं ब्रह्म
ब्रह्माद्वैता
यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे
शतंचेका च हृदयस्य
१९. एकोदेवः सर्व
तत्सृट्वा तदेवानुप्राविशत्

२०. बुद्धेर्गुणेनात्म गुणेन
य आत्मनि तिष्ठन्
सर्व एवात्मनो
यस्य देवे पराभक्तिः
२१. यं सर्वेदेवा नमन्ति
२२. आराममस्य पश्यन्ति
असूयानामतेलोका
२४. यो ब्रह्मणं विदधाति
न तंविदाथ यद्ब्रह्म
कोअद्धावेद
कुत आजाता
अर्वागदेवी
यतोवाचो
२५. अक्षयर्यहि चाहु;
ब्रह्ममैवसन्
सदैवसौम्य
अनीशया
एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म
नेहनानास्ति किंचन
यथेह कर्म चितोलोकः
एवमेवामुत्र
आदित्यवर्णं तमसः
सयथा सैंध्रवद्यनो
अरेयमात्मानचरते
नैपातर्कॆणमतिरापनेया
२६. असतोऽधि
२७. तस्यवाक् तन्तिर्नामानि
२७. यमेवैषवृणुते
२८. अपाणिपादो
भीषास्याद्वातः

२९. यथाग्नेः क्षुद्राः	यतो वाचो निवर्तन्ते
३०. यस्यामतं तस्यमतं	तत्तुसमन्वयात १।१।४ सू.
३१. अग्नेः क्षुद्राः	शास्त्रयोनित्वात्
एकमेवाद्वितीयं	श्रुतेस्तु शब्दमूलकत्वात्
अजामेकां	तर्काप्रतिष्ठानात्
अविनाशीत्र	तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि
यथा नद्यः स्यन्दमाना	यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्यज्ञानमयंतपः
यथासौम्य मधु मधुकृतो	सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म
३२. परीत्य भूतानि	विज्ञानमानन्दं ब्रह्म
३३. तद्विज्ञानार्थं	एतस्यैवानन्दस्यान्यानि
आचार्यवान्	कोह्येवान्यात्
३४. परीक्ष्यलोकान्	आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि नं०
३६. अक्षय्यं हि	नतस्य कार्यं करणञ्चश्रूयते
अपामसोम	तत्तेजोऽसृजत्
तद्यथेहकर्माचितो	सर्वकामः सर्वरसः
एवमेवाच	यंसर्वेदेवा नमन्ति (नृ. सि. वा.)
तस्माद्वाएतस्मात्	सदेव सौम्येदण्ड
३७. यद्यस्मादिदं	आनन्द ब्रह्मणो रूपम्
सदेवसौम्येतद्	वेदाऽमेतं पुरुषं महान्तं
आत्मा वा इदेमेक	यमैवैषवृणुते
नासद् आसीन्न	एकोहवैनारायण आसीत्०
यथासौम्यैकेनात्	यस्यपृथिवी शरीरं
वाचारम्मणं	ओमित्येतद् ब्रह्मणो नेर्दिष्ट
यथा एकेन लोह् मणिना	तंत्वौपनिषदं पृच्छामि
यथा एकेन नखनिकृन्तनेन	प्रणवोह्यपरं ब्रह्म
३८. द्वासुपर्णा सयुजा	यतोवाचः
अजामेका	यो सौ सर्वेषु वेदेषु तिष्ठति (गो. ता)
३९. कामान्नृयः	प्राणं देवा
४०. एषनित्यो	तस्यै व शरीर आत्मा
४१, यदूर्ध्वमार्गि	तस्य यजुरेवशिरः
अस्थूलमनणु	तस्याद्वाएतस्मान्मनोस्याद-यो.
	तस्य श्रद्धैवशिरः

जीव गोस्वामी

	विज्ञानं यज्ञंतनुते
यस्य ज्ञान मयं तपः १	तस्माद्वाएतस्मात् विज्ञानमया०
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते	तदप्येषश्लोको भवति अह्ममेव०

तस्यैष एव शारीर आत्मा
तस्माद्वा एतस्मादात्मनः सकाशात्०
यच्चानन्द मयान्तेऽपि तस्येष्ट एव०
यो विज्ञानं तिष्ठन्
सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय
सतपोनप्यतः
सतपस्तप्त्वा इदंसर्वमसृजत्
रसोवैसः
यद्वस्योपक्रान्तं तस्यवात्मत्वं
तस्याद्वा एतस्मात्
(आनन्द मयोऽभ्यासात्) १।१।१३
(नेतरोऽनुपपत्तेः)
यदापश्चयः पश्येत रुक्मवर्ण
यन्मयं ब्रह्मपरमं
यस्य पृथिवी शरीरं
कोह्येवान्यत्
रसोवैसः
ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहं
असन्नेवसभवति
नित्योऽनित्यानां
(श्रुतेस्तु) सू. १५
त दन्यत्वाऽरम्भण शब्दादिश्च
इन्द्रो यतो वसितस्य राजा
विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं १६
यंसर्वेदेवा नमन्ति
अन्धेनतमसा १७
(ब्रह्मविदाप्नोति (तं. ३७)
सवाएषपुरुषोऽन्नरसमय
अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते ८७।२४
तस्माद्वाएतस्मात्० ८७।२८
महान् प्रभुर्वैपुरुषः (१८) ३०
(विकारावर्ति चताह्दिदर्शनयति स्थायात् ४१ (क)
ब्रह्मणोंश भूतस्तथेतरो (मोता) २०
द्वासुपर्णा सयुजासखाया
मायांनुप्रहति विधान्

यो योनिं
यंसर्वे देवानमन्ति
मुक्ताह्येनमुपासते
(मुक्तोपसृत्य व्यपदेशात् (ब्र. सू.)
अम्बुवदग्रहणात्
(वृद्धिह्रांस भाक्त्वामन्तर्भावात्)
अथपुनरेव नारायण सोऽन्यं धाम २६
यस्त्वविज्ञानवान् भवति युक्तेनमनसासह
यस्तुविज्ञानवान् भवति
यस्त्वविज्ञानवान्नर
यस्तुविज्ञानवान् भवति
विज्ञान सारथिर्यास्तु
इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थाः
महतः परमव्यक्तं
(ईक्षतेनाशब्दम् १।१।५
सऐक्षत २८
यथाग्नेः क्षुद्रा
अक्षरात् परतः परः
असद्वा इसमग्र
न सन्दृशे तिष्ठति
न चक्षुमापश्यति
यदेवैषवृणुते
मद्रूपमद्वयं ब्रह्म
यथा प्रकाशत्येक ३०
यतोवाइमानि ३६
सदेवसौम्येदमग्र ३१
अरेऽस्यमहतोभूतस्य ४३

सनातन गोस्वामी

आनन्दमयोऽभ्यासात् (सू)
अपाणिपाद इति
रसोवैसः रसंह्येवायंलब्ध्वाऽनन्दी भवति
एको वशीसर्वगः कृष्णईड्य
एकोऽपिसन् बहुधायोविभाति (तापनी)
तेध्यान योगान्द्रगतां त्त पश्यन्
गोप वेषो मे पुरस्तात् आविर्बभूव

४२ (ड) तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्द
तवाभ्यास्त न्युन्नमिगमध्ये
तत्रहि रामस्य राममूर्तिः प्रद्युम्नस्य प्रद्युम्न मूर्तिः
अनिरुद्धस्यानिरुद्ध मूर्तिः

(ट) यावीरवी कन्या चित्र आयुस्सरस्वती
वीरपत्नीधियन्द्राः या

(ठ) जजान एव व्यबाधस्पृथः प्रापश्यत्
प्राप्यमथुराँ पुरींरम्यादि सेवितां

(थ) न तस्य कार्य करणं च विद्यते

(द) परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते

(न) असावतवरतं मेध्यतः स्तुतः

विश्वनाथ चक्रवर्ती

सोऽचाभवत १४
अक्ष व्यंचातुर्मास्य याजिनः
तमेवविदित्वा
शतं चैका च हृदयस्य नाड्याः
भक्तिरेवैनं नयति सच्चिदानन्दैकरसे
नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म
एकोदेवः सर्व भूतेषु गूढ़ः
यः सर्वज्ञः सर्ववित्
यस्य ज्ञानमयं तपः
सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः
यः पृथिव्यां तिष्ठन्
सोऽकामयत बहुस्यां
सईक्षत
तत्तेजोऽसृजत्
सत्यं विज्ञानमानदं ब्रह्म
अक्षटयं वै
वाचारम्भणं विकारो १५
विष्णोर्नुकं वीर्याणि १६
एकावशीसर्वगः कृष्णईड्य
एकोऽपिसन् बहुधायो विभाति
नित्योनित्यानां १७

सएवायम् पुरुषो
तस्माद्वा (तैं)
यो विज्ञाने तिष्ठन्
रसोवैसः
महान् प्रभुर्वै पुरुषः १८
शतं चैकाचा
श्रोतव्योमन्तव्यो १९
आत्मावा अरे द्रष्टव्यः २३
यमेवैषवृणुते
व्रजस्त्रीजन (नो. ता.)
अविद्यायान्तरे वर्तमानाः २५
असतोऽधिमनो ऽ सृज्यत २६
असद्वाइदमग्र आसीत
असतो मनोऽधिसृज्यत २७
यस्यदेवेपराभक्तिः २७
नित्योनित्यानां
जुष्टं यदा पश्यत्यन्
यथाग्निः २९
यस्यामतम् तस्यमतं ३०
अजोदेब्या ३१
अजोह्येको
यथा नद्यः स्यन्दमानाः
यथा सौम्य मधु मधुः
सौम्य इमाः सर्व प्रजाः
एषोऽपुरात्मा ३२
येन संसरते पुमान्
नित्यो नित्यानां
एको बहूनां योविदधा
एतद्विष्णोः परंपद्म ३२
मथुरायां स्थितिर्ब्रह्मन् ३५
(गो. ता.)
यथोर्णनाभि : ३६
तैरहं पूजनीयोवै ४०
अस्थूलमनेणु ४१
तस्मात् कृष्ण एव०— ४६ गो. ता.

विजयध्वज

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति १
केवलो निर्गुणश्च
तुवि ग्रीवो वयोदरः
मनसा अग्रे २
स्वध्याय प्रवचने
सत्येन लभ्य;
तमेवं विद्वान्
वृहन्तो ह्योस्मिन् गुणाः ३
वृहहि दृष्टमवशोषतं—१५
(कालकायनश्रुतिः)
(निवद्वाय वृहद्रुपलः)
तम आसीत्
स एषासान्नं
(इन्द्रद्युम्न श्रुतिः)
त्यजन्तितापं यद्दते भवत्कथा
अनिशमनुश्वसन्त्य सूखोद्भूरितास्तव १७
रिपवो (पैङ्गीश्रुत्यर्थः) दृतयइव)
दृतिवत्तमसिप्रविष्टाः तवगुण प्रथमः परिहायतमः
पर्यन्ति ते पदमजस्रमनन्त सुखम्"

१८. तंप्रपदाभ्यां प्रापद्यत ब्रह्मेमें पुरुषंयत्प्रपदाभ्यां
प्रापद्यत ब्रह्मेमें पुरुषं तस्मात्प्रपेदे तस्मात् प्रपेद
इत्याक्षतेशकाः खुरा उरंस्त्रह्माः शार्कराक्षा
कस्मिन् वह मुत्क्रान्ते—
प्राण एवैनंमनु प्रविशति (हिरण्यनाभश्रुतिः)

१९. यो जीववद्योनिषु भात्यनन्तो मूढैस्त्वद्योगै
भरताधिगम्यः। निचाय्यतं शाश्वतमात्मसंस्थं
तदिच्छवोत्मन्यदधुर्महान्तः (कमठश्रुतिः)

२१. प्रक्रमवत् स्वसत्कृतंस्त्वेषु पुरुषेषु
सर्वासु सुधीषुस्थित्वा त्वां तुबहिरन्तर मच्चरणेऽपि
तत्रपुरुष वदन्त्यखिल शक्ति धृतः स्वकृतन्
निपुसीह्यगणयते गणेषुत्वामाहुर्विप्रतयं कवीनां
इति श्रुति प्रश्रयप्रायगर्भस्य प्रश्रयवदित्यस्यायमर्थः

२३. नपरिलषन्ति केचिदपवर्ग (पाठान्तर)
नकिंचिदभिवाञ्छन्ति यतयः सुसंदाश्रयाः
प्रेष्ठस्य रमणस्याप्य प्रियवःदेह दृष्टयः।

२४. असुर्यानामतेलोका अन्धेन तमसावृताः
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः।

२५. त्वं वेत्थ नापरस्ते स्वरूपं ननित्य
वाङ्भागगोग प्रियस्य कुतो ब्रह्मा
प्राप्त लोकश्च देवास्थताप्राप्ता
जनिमन्तो यतोऽस्मात्।

२६. ना सदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीदजो
नो व्योमापरो यत् किमत्वरीवः
कुहकस्य शर्मन्नम्भः कियासीःद्गहनं गभीर भी

२७. सत्वादिकं देह यथो मनश्च सत्वादि
वद्धश्चवदन्त्यसन्त परं पुमांसं
न सुरास्तुर्तैर्हि जीवः सुदृष्टाः परमार्थरूपः
त्रैगुण्यदेहेन्द्रियकामा (चैतन्यविवेके)

२८ सर्वगं येप्रपश्यन्ति ब्रह्मानन्दमजाक्षरम्
एकमेवाद्वयं नित्यं निऋतेस्तेशिरोगतोः
(यथैव कुण्डलं त्यक्त्वा नादातुं कनकांशकम
तस्यैव तदवस्यत्वात् केवला भेदतः स्फुटम्
एवं सुरासुरनरेष्वस्थितो भगवान् हरिः
नैव भेदेन मन्तव्यो जीव भेदे तु सत्यपि
ये तथाभिन्न शेषं पश्यन्ति परमर्षयः
ऋतप्राप्तिविरुद्ध त्वात् संसार निऋते शिरः)
(गारुड़े)

२९. परिवयसे पशूनिव
(हम यह पौराणिक श्लोक होने परभी श्रुतिमान रहे हैं)

३०. वर्ष भुजोखिल यह भी श्लोक है
तदेवं विद्वान्
खण्डाधीशाः सार्वभौमस्य यद्वष्येशाद्याः
कुर्वते तेऽनु शास्ति' त्वं मुक्तिदो बन्ध दोऽतो
मतो नरस्त्वं ज्ञानदोऽज्ञानदश्चासि विष्णोः
(शाण्डिल्य श्रुतेः)

आत्मानंमुक्तिदं विष्णुंयदि पुंसउदीक्षयेत्
सुप्रसन्नस्तथा बन्धस्ततएवेति सेत्स्येति ।
इति स्मृति गृहीत श्लोकस्यार्थमत्र)

३१. एकमेवाद्वितीयम्
नेहनानास्ति किंचन
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते
तथा द्रवते चापि स्वतन्त्रो नापरो
स्वतन्त्रो नापरः कश्चिद्विष्णोः प्राणपतेः प्रभोः

३२. मुच्यते तत्वसम्बुद्धादाचार्यात् पुरुषो भवात्
एतावेव स्वतो बद्धौ परमः प्रहतिस्तथा
(कलापश्रुत्यर्थः)
देशतः कालतश्चैव सम व्याप्तावजावुभौ
ताभ्यामुभय योगाभ्यां जायन्ते पुरुषाः परे ॥
(कौटल्य श्रुति)
सम्यग्ज्ञानवदाचार्यान् मुच्यते पुरुषो भवात्
द्वावेव नित्य मुक्तौतु परम प्रहृतिस्तथा ।

३३. यो नः पिता जनिता याविधाता धामानिवेद भुवनानि विश्वा। योदेवानां नामधी एकएवतं सम्प्रश्नं भुवनायन्त्यन्यात अयाजनाद्रविणं समस्या ऋषयः पूर्वे जनितारो न भूता असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते मे भूतानि सम कृण्वन्निमानि
ब्रह्मेशेन्द्रादि सन्नाम्नां येर्थभूतागुणामताः
पूर्ती शितृत्व द्रष्टत्व प्रमुखास्ते हरेः सदा ॥
अतक्ष्तुसर्व नामासौ सर्वकर्ता च केशवः
त्वयितद्वय श्लोक है ।
"ततेतिनात" श्रुतिः
आनन्दत्वादनाभास वुत्कृष्टत्वादुनामकः
एतन्नामद्वयं विष्णो ज्ञात्वा पापैः प्रमुच्यते ॥
नाम्नः सम्बुद्धिरसूचि ये गुणाः

३४. यस्ये देव पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ ।
तस्यैतेकथिता त्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ॥
देवा अपिस्कुयोनाद्यायतन्ते सर्वसाधनैः ।
पुत्रदारादिभिः सार्धं नोच्वसन्तीह संसृतो
गुरोऽरनुग्रहमृते साधनं न हरेः प्रियम् ।
गुरूपदेशात्तुर्हरिं प्राप्नोत्येवनसंशयः । इत्यादिस्मृति

३५. नास्त्यकृतः कृतेन

३६. ब्रह्मा ज्ञात्वेति लोक प्रवृत्ति प्रवर्ततां
कोनु मोक्षं ददाति अतोब्रह्मोपासते
साधुधीरा नाहंभावस्तेषु रुद्राधिवास ॥
महाभाग्यं तु कैवल्यं ज्ञानांकः प्रहास्यति ।
अतः सन्तोविजानन्ति हरिं तेत्वनहंकृताः ॥
इतिसंदितिश्लोकस्य

३७. यज्जीवमीशं प्रवदन्ति तर्कैस्तच्चेश्वरो
वचनं सन्दधाति
नासीदादौ मरणे नो भविष्यन्
मृषाततो ह्रीशितृत्वं स्वयेषु (श्रु)
अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।
अन्धेनैवनीयमानाः यथान्धा ।

३८. ये जगत् प्रवदन्त्ज्ञा जीवादन्येश वर्जितन्
तेषामपितु तां वाचमीश एव ददात्यजेः
न च तर्कैर्भवेदाशो जीवो वेद विरोधितः ॥
(इतिस्मृत्यर्थवेन श्रुत्यन्तरमुद्धतम्)

३९. स्मरन् ब्रह्म गुणांन्नित्यं मुक्तौब्रह्मसरूपतां
दुर्मनां प्रकृतिं त्यक्त्वा हृत्वा चान्यां दुरन्वयान्
याति तच्च परेशानात् सहि पूज्यो य पूजकः
तस्यैकस्य स्वतन्त्रत्वात् स चानन्त गुणो विभुः ।

४ . यथा का भयनानो योकामो निष्काम
निषिद्ध काकयुक्तानांमसतां तुविशेषतः
दुर्ज्ञेयो भगवान् विष्णुर्हृदिस्थोऽस्मृत हारवन्

४१. जानाति प्रकृतिर्विष्णु ज्ञेयोविष्णुश्च निर्गुणः ।
तावुभौन विजानन्ति ऋते ब्रह्म परंपराम् ॥
(महोपनिषद)
अन्ये सर्वे श्रिया बद्धा. श्रीर्बद्धा विष्णु नैवतु
बन्धश्चविष्णु तन्त्रत्वं मुक्तानाञ्चश्रियस्तथा ॥
(इतिगारुड़)

वल्लभाचार्य

८ श्लोक
सर्वे वेदायत्पद १

नेहनानास्ति—२
अन्येनप्राणाः
(ब्रह्मविधीप्रतिया)
आवृत्तिरसकृदुपदेशात् म. १।१)
अरूपमस्पर्श १४
यत्येवाइमानि—१५
अमृतंवैवाचावदति
शान्तोदान्त—१६
योनः शपा—१७
यमे नः सपत्नः
यो मां द्वेष्टि
यज्ञेनयज्ञ
तस्यपुरुष
तत्सृष्ट्वा—१६
(गुणं प्रतिष्ठा सू. १।२।११)
सत्वताच्च
कोह्येवान्यत—२०
सर्वे वेदा
अस्यैवानकस्य
यस्यामतं—२४
नासदासीद
अक्षम्य्यंह्वै—२५
आदित्यवर्णं
यः सर्वज्ञः
सत्यं ज्ञान
स आत्मानं—२६
तत्सृष्ट्वा
वाङ्मनानि—२८
यतोवाचो—४१
असङ्गोह्ययं—२६
यथावृक्षस्य—३०
ताभिन्नाकाश
एतस्यैवक्षरस्य
(साच प्रशासनात १।३।१०)

शुकदेव

तत्त्वौपनिषद १
शास्त्रयोनित्वात (सू.)
१।१।३
जुष्टं पश्यत्यन्यमीशं
(तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् (१।१।७)
निष्कलं निष्क्रियं
केवलो निर्गुणश्च
अस्थूलमनणु
एतस्माज्जायते प्राण—२
यतोवाइमानि
आनन्दाद्धयेव
(अथातोब्रह्म जिज्ञासा) १।१।१
यतो वाचो निवर्तन्ते
सर्वे वेदा
सर्वगन्धः
यः सर्वज्ञः
नेह नानास्ति
परास्य शक्तिः
(अधिकन्तुभेद निर्देशात् (२।१।२२)
जीवोल्प शक्तिः (भालवेत्रश्रु)
एषोणुरात्मा
(तद्गुणसारत्वात् २।३।२६)
(ज्ञात एव २।३।२६)
बहिर्द्ष्च्द्द्ष्टे
यथोद्यानखनतात्
तथाहेय गुण०
यथा न क्रियते
सत्यं ज्ञान
स्वाभाविकी
हिरण्य गर्भः सम १५
(तत्तुसमन्वयात्)
योवायो तिष्ठन्
तमेवभान्तं
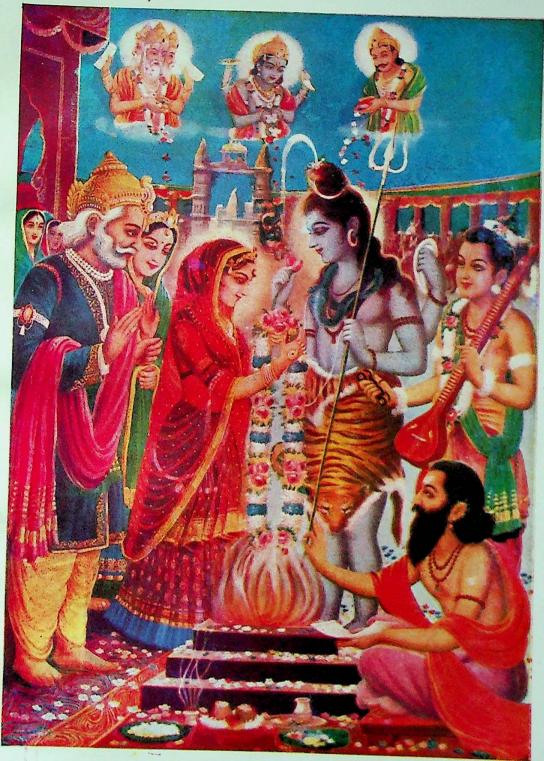
उमा - महेश - विवाह

यतोवाइमाति
(जन्माद्यस्य सू.)
यथोर्णनामिः
सन्मूलाः
वाचारम्भणं
त्यजन्ति तापं १६ (इन्द्रद्युम्नषु) १६
यथापुष्कर १६
यो नः शपादशपत
योमां द्वेष्टि
यज्ञेनयज्ञ
तस्य पुरुष
अनिशमनु—१७
आनन्दाद्ध्येव
उदरं ब्रह्म (शार्कसश्रु) १८
ये चारुणयस्ते
तयोर्हव
एकोदेवः—१६
योजीववत्—२० (कमठत्रु)
अंशोह्येष परस्य
(अंशोनाना व्यपदेशात् सू.)
ब्रह्मदाशा
भक्तिवशः पुरुषो—२१ माठर श्रु
सर्वस्य शरणं सुहृत्—२२
योऽन्यां देवतामुपास्ते (छान्दां)
तमीश्वराणां
नतस्यकार्यं
एकोहवै
जीवशावाभासेन
आत्मनि श्रुते
अजोह्येको
प्रहृति पुरुषं
सदेवसौम्य
(अथातो ब्रह्म सं) २३
इदानीं आत्मावा अरे
यतोवाचो—२४
विष्णोर्नु कं
यो ब्रह्माणं
वेदोवा
द्वावजावीशनीशो —२५
स एवैक उद्भवे
एषदेवो०
नेहनानास्ति
सन्मूलाः—२६
भोक्ताभोग्यं
श्रुण्वन्तोऽपिवहवोयं न बिदुः —२७
यमैवेष
सर्वनेयं प्रपश्यन्ति
वायति नाद्रयः
नैनं सामाऋचो
नछन्दांसि
स्वराद ईशः —२८
अपाणिपादौ
स्वाभाविकी
तेनु शास्तित्वं
तदैक्षवहुस्याम् —२६
(अंलमत उपपत्ते, सू ३।१२।३७
अणोरणीयान्
संसारवन्ध
अक्षरात् परतः
लीलो द्वावहरि —३०
(अशोनानाव्यपदेशात् २-३-४२)
अन्तः प्रविष्ट
अणुह्येष आत्मा
अणु नश्चक्षुषः
यस्यामतं
अजावेका —३१
तस्माद्वा
यथाग्निः
यथासौम्य
यथानद्यः (प्रश्नो)

संसारबन्ध –३२
अविद्यायां (मुण्डक)
यंसर्वेदेवा (नृसिंह)
विश्वम्भरं महाविष्णु (रामतापनी)
यस्मात् स्व भक्तानां
सत्पुण्डरीक नयनं–भो. ता.
समित्पाणिः—३३
यस्यदेवे
मथूरायां —३५
सदेव —३६
तदैक्षत
नारायणाज्जायते
नैषामतिः
यथोर्णनाभिः
सौम्येनाः सर्वाः
ऊर्ध्व मूलोर्वाक्
अविद्यायामन्तरे
यः सर्वज्ञः —३७
स्वाभाविकी
यं देव देवकी
य आत्माऽपहत
नेहनानास्ति
असत्यमाहु
तस्माद्वा
तमीश्वराणां –३८
परास्य शक्तिः
सर्वे वेदा—४०
सर्वस्यवशी
तमेवभान्तं
य ऊर्ध्व मार्गे—४१
सत्यं ज्ञान
स्वाभाविकी—४६
सऐक्षत
अन्तःप्रविष्ः—५०

तस्यतावदेवचिरं
न तस्य कश्चित जनिता
संसारबन्ध

श्रीनिवास सूरी

एषोणुरात्मा
क्षरात्मा नातीशते
तदन्तः प्रविश्य
सच्च
एषसर्वभूता
सदेवसौम्य
आत्मा नमामी
न चतेतनमश्चा०
नोरनाद्यन्तं
यतोवाचो
आनन्दं ब्रह्मणो
तस्य वाएतस्य महतो १२
स्वाभाविकी १४
प्रधान क्षेत्रज्ञः
यः पृथिव्यां
यस्य पृथिवी
य आत्मनि
यस्यात्माशरीरं
य आत्मानमन्तरो
यमयति यस्याव्यक्तं
एकोनारायणः
यतोवाइमानि
यस्याक्षरं शरीरं
सत्यं ज्ञानमनत
सदेवसौम्य १५
वाचारम्भणं
तस्माद्वा एतस्मात् १७
सवा एष पुरुषः
तस्य प्रियमेव शिरः
तदनुप्रविश्य

एष सर्व भूतान्तरात्मा
(वैश्वानरः साधारयशब्दाविशेषात)
१।२।२५
शतंचैका च
तदनुप्रविश्य १६
(अंशंनानात्वव्यपदेशात्) स.
दधातिसक्रन्मानः-२१
तद्धैदन्तं ह्यव्याहृत २५
क्षरं प्रधानं
तद्यथेह
ऐतदात्म्यमिदं
विषयाविष्टः-२६
मनस्सतुविशुद्धेन
तत्सृष्ट्वा
यस्यात्मा शरीरं
य आत्मानमन्तरा
यस्याव्यक्तं शरीरं
तदात्यागं स्वयमनुसत
तद्वैतत् सुक्तं
रसोवैसः
आदित्यवर्ण २८
परभयत्राति
भीषास्माद्वातः
नाययात्मा प्रवचनेन २९
यमेवैषवृणते
(उतक्रान्ति नत्यागती नामा ३०
सू. २।३।२३
तेन प्रद्योतेनैवआत्मा
अन्तः प्रविष्टः
यथानद्यः ३१
नित्योनित्यानां
प्रकृति पुरुषं चैव
सर्वं खत्विदं ब्रह्म
न तत्र रथा न रथ ३६
सूर्याचन्द्रमसौ ३७

वाचारम्भणो
उततमारेश
वाचारंमणं
यथा सोम्येकेन लोह
यथा सौम्येकेन नाव
अन्तः प्रविष्टः
येनाश्रुतं
ज्ञाज्ञोद्वावनीशो ३८
परास्य शक्तिः
भोक्तंचभोग्यं ४१
यस्यपृथिवी

राधारमण

१. आस्कूलत्र नव्य ह्रस्वदीर्घ
२. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्
सर्व खाल्विदं ब्रह्म
१७. ब्रह्मविदाप्नोति
सवा एष पुरुषोऽन्न
२६. असद्वाइदमग्र

कविचूड़ामणि

यः सर्वज्ञः सर्ववित यस्य ज्ञानमयन्तपः
सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः
यः पृथिवव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरः
सोऽकामयत बहुस्यां
स ऐक्षत्
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म
यः सर्वज्ञः सर्ववित्
एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने
ऋचंवाचंप्रपद्ये
मनोवाचं प्राण तान्यात्मने
एवं विदित्वा मुनिर्भवत्येतमेव
१४. यो सौसर्वेषु वेदेषु तिष्ठति (नो. ता.)
तस्माद्वा

नेह नानास्ति
वेदान्तकृद्
यतो वा इमानि
यो ब्रह्माणं विदधाति
य आत्मनि तिष्ठन्
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म
यः सर्वज्ञः
१५. इन्द्रोयातो वसितस्य
अग्निर्मूर्द्धा
१६. श्रृणु तस्य ब्रह्मण ज्ञान
यथा पुष्कर पलाशे
१७. असुर्यानाम
ब्रह्मविदान्पोति (वै)
सवाएष
तस्याद्वा
(प्राणमय) यएषप्राणमयः
(पुरुष) मनोमयः
(विज्ञानमय) तस्माद्वाएतस्मानानोमया-
दन्योऽन्तर
विज्ञानं यज्ञं तनुते
तस्माद्वा एवस्मात्—आनन्दमयः
यः प्राणमन्तरो
य आत्मनि तिष्ठन्
योऽन्तश्चरति
१८ शतं चैकाहृदयस्य
१९. एकोदेवः
२०. चरणं पवित्रं
२१. यं सर्वे देवा नमन्ति
२२. आराममस्य पश्यन्ति
असूर्यानाम
२३. न वा अरे सर्वस्य
२५. सदेवसौम्य
अथयो आत्मकामो
समानवृक्षें पुरुषो
एक एवहि
२६. असतोऽधि अन्योऽसृजत्
२७. तस्यवाकतन्ति
नायमात्मा
२८. अपाणिपादो जवनो
प्राणस्य प्राण
भीषास्माद्वातः
२९. असद्वा
यथाग्निः
३०. आराग्रमात्रोह्य् परो
अत्य तिष्ठत्
अविधयोमृत्यु
काममयो यं पुरुषः
तमेव विदित्वा
एक एवहि भूतात्मा
यस्यामतं मतं
यः पृथिव्यां तिष्ठन्
३१. अजामेका
तस्माद्वा
यथानद्यः
३२. आचार्यवान् पुरुषोवेद
३३. परीक्ष्य लोकान्
३४. परीक्ष्य लोकान्
यदासर्वे प्रमुच्यन्ते
कामः संकल्पे
यथासमो मनुष्याणां
—मात्रात्रु५ जीवन्ति
३५. आत्मावा अरे
तद्वारातदक्षरं
३६. (समाम्नायोऽर्थस्य तन्निमित्तत्वात्)
एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म
अक्षयंवै
३७. आत्मावाइदमेक
यथासौम्येकेन
३८. द्वासुपर्णा
३९. कामान् यः कामयते

३९. नैनंपाप्मा पापो
४०. एषनित्यो महिमा
४१. सहोवाच यदूर्द्धवम्
यस्मिन्नाकाशे सर्वमोतं प्रोतं
४१. अस्थूलमनणु
४९. (शब्द ब्रह्मण ब्रह्म) न्याय

वीरराघव

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म १
सर्वं खल्विदं ब्रह्म
सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यः
अनेन जीवेनात्मनानु प्रविश्य० २
नामरूपयोनिर्रहताते
सर्वाणिरूपाणि विचिन्त्य धीरः
तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत
सर्वं खिल्विदं ब्रह्म
तज्जलानिशान्त उपासीत
सौम्येकेन मृत पिण्डेन १५
तदैक्षत १७
एतदात्मामिदं सर्वं
आत्मनः आकाशः सम्भूत
तस्यैष एव शारीर आत्मा
सवा एष पुरुष विध एव
तस्य प्रियोमेवारविः
तत्सृष्ट्वातदनुप्राविशत्
यज्ञेनयज्ञमयजन्तदेवाः २०
श्रोतव्यो मन्तव्यो
यतोवाचो २४
पुमान्न देवौ न नरः २५
तद्यथेह कर्माचित्तोलोकः
परास्य शक्तिर्विविधैव
रसोवैसः २६
तेन प्रद्योतेनैष आत्मा ३०

ये के चास्मत् लोकात् प्रयन्ति
तस्मात् लोकात्
(स्वात्मना चोत्तरयोः) सू.
रसोवैसः ३४
नेहनानास्ति ३६
यथा सौम्यकेन ३७
सदैवसौम्येदमग्र आसीत् ३७
नासदासीनो
यथासौम्यके
स्तब्धोस्युत्तमा
नासदासी

रामानुज

यतोवाइमानि भूतानि जायन्ते २
लोकवत्तु लीला कैवल्यम् सू.
जन्माद्यस्य यतः सू.
नास्त्यकृतः कृतेन
पिबन्तयेनामाविरमामविज्ञाताः
अजोह्यैको जुषमाणो० १४
लोकवत्तुलीला कैवल्म्
अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्
आत्मानमन्तरोयमयती
सोऽकामयत
रसोवैसः
तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत
सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म
आनन्दं ब्रह्म
अव्यक्तमक्षरे लीयते अक्षरं तमसि १५
वाचारम्भणं विकारो
कारणन्तु ध्येयम्
तत्सृष्ट्वा १७
तदनुप्रविश्य
स सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः १८
आदित्य वर्णतमसः

तद्विष्णोः परम पदन्
सैष सम्प्रसादो
परं ज्योति रूपं सम्पद्य
समानं वृक्षं परिषष्वजाते
यतोवाचो ० २१
नसदासीन्नोसदासीत्तदानी , २४
तदनु प्रविश्य
आदित्य वर्ण तमसः २५
अपाणि पादो २८
परास्य शक्तिः
भीषास्माद्वातः
अन्तः प्रविष्टः ३०
(तद् गुणसारत्वाद्व्यपदेशः सू.)
यतोवाइमानि ३७
यद्यस्मादिदं विश्वं
नासदासीन्नो सदासीत्
यथासाम्येकेन मृत् पिण्डेन
यथा एकेन लोहमणिना
यथा एकेन नख निकृन्तेनन
अन्यदेव ताद्विदितादथो ४१
अस्थूलमनणु

श्रीधरी टीकामें समागत श्रुतियां

ब्रह्मसूत्र स्मृति

भागवत श्लोक	श्रुति (अष्टटीकापृष्ठ)	स्मृति	ब्रह्मसूत्र
जन्माद्यस्य			
१।१।१	'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' तैत्तरीयोपनि० (पृ२ पं. १) ग ईक्षत (लोकानुत्सृज) यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व तदात्मानं स्वामयुक्त पृ ४ पं. ४८, ७ अनु. आद्यश्रुति	मनः सर्वाणि भूतानि' आद्यवली ६ अनु ६ श्रुत्यैकदेशः (ऐतरेयो प. १ ख. १ ब्राह्मणम्)	जन्माद्यस्ययतः १।१।१ (महा भा. शान्ते. दानधर्मोत्तर विषय सहस्रनामे १३ वचनं
निगम०			
१।१।३	'रसोवैस.'		
१।२।८ (अंका)	अक्षय्योहि वै चातुर्मास्य याजिनः		
१।५।१४	(१५) नकर्मणा नप्रजया धनेन	व्यवसायात्मिकाबुद्धिः (गीता)	
१।६।२६	अस्यमहतो भूतस्य	(कैवल्योपनिषद् ४ ब्राह्मण)	
१।७।१६			अग्निदोगरदश्चैव
१।७।४५	अर्धोवा एष आत्मनो यत्पत्नी		

१।७।५३	जायापती अग्निमादधीयातां	
१।७।५३		आततायिनमायान्तं १।७।५३
१।९।३५		सेनयोरुभयोमध्ये
१।९।२३	दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या	एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये (गीता)
१।१०।३६	अन्योवा एष प्रातरुदेत्ययः	
	असौवानाविष्ठो (विजय ध्वजः)	यावन्नछिद्यते नालं
१।११।१४		आमान्नं वा प्रजातीर्थे
१।१३।३७		पुत्रे जाते व्यतीपासे
१।१।६		शोकाक्रान्तः
२।१।३६	नामरूपे व्याकरवाणि	ओमित्येकाक्षरं
	पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मां	येन शुक्लीकृताहंसाः
	सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्व	
	(टिप्पणी श्रीधर)	
२।२।७	यथा पशुरेवायं सदेवानाम्	
२।२।८	अंगुष्ठमात्रं पुरुषं मध्य आत्मनि (सिद्धान्त)	
२।२।२४	तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय (टिप्पणी) (आथर्वण)	
२।२।३२	निर्भिद्य मूर्धन् विसृजेत् परंगतः	
	यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते	
	तेऽर्चिभिरभिसंभवन्ति	
	नकर्ममिस्तां गतिमाप्नुवन्ति	
२।५।११	न तत्र सूर्योभाति	
	(मुण्डकोपनिषद् २।१०)	
२।५।३५	सहस्रशीर्षा (आद्य)	
२।५।३७	ब्राह्मणोऽस्य	
२।५।३८	ताभ्याआसीदन्तरिक्षं	
२।६।१२	पुरुष एवेदं सर्व	

अहं भवानसे २६।१५ तक प्रत्येक में श्रुत्यंश

२।६।१६	समूमिम्	
	(असौ प्राण आदित्यः)	
२।६।१७	उतामृतत्वस्य	
२।६।१८	एतावानस्य	
	पादोऽस्यविश्वाभूतानि	

२।६।१९ त्रिपादस्यामृतं दिवि (३।१२।६)
२।६।२० त्रिपादूर्ध्वमुदैत
ततो विष्वङ व्यक्रामत्
२।६।३० चन्द्रमा मनसो जातः
२।६।३५ सहस्रशीर्षा (उक्तः) आधीऋचा)
२।६।३७ ब्राह्मणोऽस्य मुख (उक्तः)
२।६।२१ तस्याविराडजायत
२।६।२२ यत्पुरुषेण हविषा
२।६।२७ यज्ञेन यज्ञमयजन्त
२।६।१ सप्तास्यासन् (स्व कल्पित)
२।६।२८ तेन देवा अयजन्त
२।६।३५ योअस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
२।७।६ — पुंनाम्नोनरकाद्यस्मात्
२।७।४० विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम्
२।७।४७ द्वितीयाद्वै भयम् (वृ. १।४।१)
२।९।२२ यस्य ज्ञानमयं तपः (मु. १।१।९)
२।९।३२ अहमेवासमग्र (छा० ७।२४।१)
२।१०।११ — आपो नाराइतिप्रोक्ता आपो वै नर सूनवः ।
२।१०।२४ त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि (ऐतरेयोपनिषदि)
२।१०।४४ तस्माद्वा एतस्मादाकाशः संभूतः सोऽकामयत
२।१०।४५ निष्कलं निष्क्रियं शान्तं
३।१।१३ — त्यजेदकं कुलस्यार्थे
३।१।३४ मनः पूर्वरूपं वागुत्तररूपम् — आत्मा बुद्धया पाणिनीय शिक्षा
३।५।२७ — विष्णोस्तु त्रीणिरूपाणि (सात्वततन्त्र)
३।५।३१ आकाश शरीर ब्रह्म
३।५।४८ ता एनमब्रुवन्यातन नः
३।६।१० यस्य ज्ञानमयं तप
३।८।१८ सोऽपश्यत् पुष्करपर्णे
३।९।१७
३।९।१९ — यत्करोति यदश्नासि (गीता)
३।१०।२० अथेतरेषां पशूनामशना पिपासे — यस्मात् क्षरमतीत० (गीता)

३।१२।२		अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनि-वेशाः (पातंजल योगसूत्र)
३।१२।४१		
३।१२।४४	भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो	एवं व्याहृतयः प्रोक्ता व्यस्ता (आश्वलायन)
३।१२।४५		
३।१५।३४		कामः क्रोधस्तथालोभः (गीता)
३।१७।१८		यदाविशेत् द्विधाभूतं (पिण्ड सिद्धि)
३।१९।२२	त्रयोऽस्यपादा	
३।२०।१२		तत्रे—विष्णोऽस्तु त्रीणिरूपाणि
३।२०।२३	सजघनादसुरानसृजत्	
३।२०।२९	साऽह्नो रात्र्योः सन्धिरभवत् ।	
३।२१।३४	बृहद्रथन्तरे पक्षो को. १।५	
३।२१।३४	"स्तोम आत्मा"	
३।२२।१६	गृभ्णामिते सौभगत्वाय हस्तं	
३।२२।१९		यावदपत्योत्पत्तिस्तावद्गार्हस्थ्यम् (भाषाबन्धसमयः)
३।२३।४७		पुमान् पुंसोऽधिके (स्मृतिः)
३।२५।४२	भीषास्माद्वातः पवते	
३।२६।२	तमेवविदित्वातिमृत्युमेति	
३।२६।५	अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां	
३।२८।३	श्वेता० ४।५	
३।२ ।८		द्वौ भागौ पूरयेदेनौ (स्मृति)
३।२८।३४		उरूजंघान्तरादाय
३।३१।२४	असंगोह्ययं पुरुषः बृ० ४।३।१५	यतो यतो निश्चरति (गीता)
३।३२।७	सूर्यद्वारेण तेविरजाः प्रयान्ति (मु०१।२।११)	
३।३२।१०		ब्रह्मणा सहतेसर्वे
३।३२।३२		ते प्राप्नुवन्तिमामेव
४।१।५९		अर्जुनेतु नरावेशः
४।३।४३	वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पतिसवेन यजेत बृह. ६४।३	
४।५।२१	ऐन्द्रापौष्णश्चरुर्भवति	
४।६।३८		
४।७।१९	बृहद्रथन्तरेपक्षौ कौ० १।५	तर्जन्यंगुष्ठयाग्रे

४।७।२६	द्वितीयाद्वैभयं भवति (बृ० ४।१।२	
४।७।२६		अहं ब्रह्मा च शर्वश्च
४।७।४१	स एष यज्ञ: बृ० १।४।१७	चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च (स्मृतिः)
४।११।२२	कामोऽकार्षील् कामः करोति	चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा।
४।११।२३	कोअद्धावेद (वाष्कल मंत्रो० १०)	षड्भिर्विराजते योऽसौपञ्चधा
४।१३।३५	यज्ञोवै विष्णुः	हृदयेनव ।।
४।१८।१		ओदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं (बृहस्पतिः)
४।१९।१		सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्यो (स्मृतिः)
४।१९।१२		आयुक्तः प्रतिमुक्तश्च(अमरकोषः)
४।२१।३४	यज्ञोवै विष्णुः	
४।२१।३६	एतस्यैवानन्दस्यान्यानि बृह० ४।३।३२	
४।२१।४२		प्रशस्ता चरणं नित्यं
४।२२।२		ऊर्ध्वप्राणा ह्युत्क्रामन्ति
४।२२।२८		दृश्चानुरंजितं
४।२२।३२	आत्मनस्तुकामाय सर्वप्रियं भवति (बृह० २।४।५)	
४।२२।४०	ननुंब्रह्मविदाप्नोति	
४।२३।१४		संपीड्य सीवनीं
४।२३।१७		इन्द्रियाणांहि (ना०)
४।२४।३७	हंसः	
४।२४।४०	एषवै	
४।२४।६४	तयोरन्यः पिप्पलं	
४।२५।२३	अन्नमयं हि	
४।२५।४७	तस्माद्दक्षिणेऽर्ध	
४।२८।३३	तद्विज्ञानार्थं	
४।२८।५१	द्वासुपर्णा	
४।२९।३७	तरतिशोकमात्मवित्	
४।२९।५६		
५।१।२		शरीरजैः कर्मदोषैः
५।१०।२	नेहनानास्ति किंचन	शुचीनांश्रीमतांगेहे (गीता)
५।१२।८	वाचारम्भणं विकारो	
५।१६।११		पुण्यषड्भगयादत्ते

५।१८।१५	संवत्सरो वै प्रजापतिः	
५।१८।२६	तस्य वाक् तन्तिर्नामानि दानाम्नि	
५।१८।२७	ता अहिंसन्ताहममुकमस्म्यहमुकमामि	
५।१८।३२	सर्वं खल्विदं ब्रह्म	
५।२०।८	सुपर्णोऽसिगरुत्मान् त्रिवृत्ति शिरः	
५।२०।३५		कोटिद्वयं त्रिपंचाशत् (शैवतन्त्रे)
५।२१।८	अद्धयोवा एष प्रातरुदेत्यपः	वायु पुराणे ५।२२।७
५।२२।१२	अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टात्	
५।२६।२६	न्यग्रोधास्त्रिभिराहुत्य	
६।१।१३		मनसिश्चन्द्रियाणां च
६।१।४०	अस्य महतो भूतस्य निःश्वसित	
६।१।४२	आदित्य चन्द्रावनिलोऽनलश्च स्मृतिः	सकृदुच्चरितं येन हरिरित्क्षर द्वयं स्मृतिः
६।२।१९		हरिर्हरतिपापानि
६।४।३२	अपाणिपादः	
६।४।३४		यो यो यां यां तनुं भक्तः
६।४।४६	शिरोवाएतद्यत्प्रवर्ग्यः	ये यथामां (गीता)
६।५।२०		मोक्षंराब्रह्मबुद्धीनां जीवमाया-वराकिनां (वाचऽकूट संग्रह)
६।५।३७	जापृण्वानावै ब्राध्यायः	ऋणानि त्रीण्यपाहुत्य (मनुः)
६।५।४०	यदहरेवविरजेत्तदहरेवप्रव्रजेत् यदि नेतरथा ब्रह्मचर्यादेव	
६।६।४२	पुरुषत्वे चाविरामात्मा	
३।७।२२		ब्राह्मणंकुलसंपन्नं भक्तं विष्णो
६।९।१	विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः	
६।९।११	तस्मादाद्यो न परिचक्ष्या	
६।९।१२	यदब्रवीत् स्वाहेन्द्रशत्रोवर्धस्व	मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतोवा (शिक्षा)
६।९।१८	सइमांल्लोकानावृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम्	
६।९।२०		महाभये परित्राणमन्यतो
६।९।३८	नेति नेति	
६।९।४५		कृषिर्भूर्वाचकाशब्दोणश्चनिर्वृत्ति वाचकः (निरुक्ते)
६।९।५२	अश्वस्यशीर्ष्णा प्रवदीमुवाच	
६।१०।३३		द्वाविमौपुरुषौ लोके
६।११।३४	वार्त्रहत्यायशवसेपृतना वाह्याय च	
६।१६।९	तदात्मानं स्वयमकुरुत	कर्षयन्तः शरीरस्थ (गीता)

६।१६।४२		
६।७।२३		भूतभावोद्भवकरो विसर्गः (गीता)
६।१८।४	पुरीष्यासो अनयः पंच वा एतेऽनयो यच्चित्तयः	
६।१८।७	सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः	
७।२।३७		अव्यक्तादीनिभूतानि (गीता)
७।२।४५	प्राणोवैमुख्यः	
७।३।३२	अक्षरात् परतः परः	
७।५।२७		ब्रह्महा क्षयरोगीस्यात् (याज्ञ.)
७।६।२६		त्रैगुण्यविषयावेदा (गीता)
७।७।१९	अविनाशी वारेऽयमात्मा आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धः एकः ऋचो अक्षरे परमेव्योमन् निरवद्यं निरञ्जनम् एकमेवाद्वितीयम् विज्ञातारमरे केन विजानीयात् यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम् निष्कलं निष्क्रियंशान्तं आत्मज्योतिः सम्राडिति होवाच सइमांल्लोकानसृजत् सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म असङ्गोह्ययं पुरुषः	
७।७।२४	पूर्णस्यपूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते यतोवाइमानि भूतानि	
७।७।२६		यत्करोषि यदश्नासि (गीता) भक्तया मामभिजानाति (गीता)
७।७।४०		यन्नदुःखेनसंभिन्नं
७।७।४०	तद्यथेहकर्मचितोलोकः क्षीयते	
७।८।१८		कौन्तेयप्रतिजानीहि तेषामहंसमुद्धर्ता
७।९।१०		धर्मश्चसत्यंच दमस्तपश्च (सनत्सुजातोक्ताः)
७।९।१८	देवाह्वैप्रजापतिमब्रुवन्	
७।९।३१	वाचारम्भणं विकारोनामधेयं	
७।९।४७	स ऐक्षत	

७।६।४६	किमर्थावियमध्ये कामहे	यदातिमोहकलिलं (गीता)
७।१०।६	यदासर्वे प्रमुच्यन्ते	तदधिगमुत्तरपूर्वा (न्यायात्)
७।१०।१३	तत्सुकृत दुष्कृते विधूनुतः	
७।११।७		श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः (याज्ञ)
७।११।२४		वेदोऽखिलोधर्ममूलं (मनुः)
७।११।२८		नमस्कारेणमंत्रेण (याज्ञ०)
७।११।३०		आशुद्धेः संप्रतीक्ष्योहि
		रजकश्चर्मकारश्च
७।१३।५		निद्रादौ जपस्यान्ते (योगग्रन्थ)
		पुष्ययुक्ता पौर्णमासी
		(त्रिकांड्यां)
७।१५।३०		प्रत्यक् स्फूर्तिरसत् स्फूर्तिः
		(सर्वज्ञसूक्त)
७।१५।४०	आत्मानं चेद्विजानीयात्	द्वन्द्वाहतस्य गार्हस्थ्यं
	आत्मानं रथिनंविद्धि	
७।१५।५०	इतितुपंचभ्यायाहुतावयः	
	सइमास्तेजोमात्रा	
	तस्यएतस्य हृदयाग्रं	
७।१५।५६	ते धूममभिसंभवन्ति	
	ते अर्चिभिरभिसंभवन्ति	
७।१५।६२	त्रय आवसथत्रयः स्वप्नाः	
८।१।१०	ईशावास्यमिदं विश्वं	
८।१।११	चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्	
८।२।४	चक्षुषश्चक्षुरुत	
८।२।५	आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्	
८।२।७	तमेवविदित्वातिमृत्यु मेति	
८।२।११	सन्यास योगाद्यतयः	
८।२।१३	पूर्वमेवाहमिहासम्	
८।२।११	तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्	
८।२।१६	सोऽकामयत बहुस्याम	
८।.।११	य आत्मनि तिष्ठन्नात्मने	
८।५।२६	अनेजेदेकं मनसो जवीयो	
८।५।२६	यद्वाचानभ्युदितं येन	
८।५।२६	द्वासुपर्णा सयुजा सखाया	

८।५।३७	सैषात्रय्यविधानतपति य एषोऽन्तरादित्ये	
८।५।१४	ब्राह्मणोऽस्य मुख कलि	
८।६।८	अनाविराविरासेयं नाभूताभूदिति ब्रुवन् ब्रह्माभिप्रैति निव्यत्वं विमुत्वे भगवत्तनौ: (श्रीधरस्यैवेदं इति टिप्पणीकार:) निर्गुणं सगुणंचैव शिवंहरिपराक्रमै: स्तुवन्तस्तु प्रजेशाना नामान्यन्ताऽन्तरं तयो: (श्रीधरया)	
८।७।२६	अग्नि: सर्वा: देवता:	
८।८।३६	ऋद्धिकामा: समासीरन्	
८।६।१५		अहतं यन्त्रनिर्मुक्तमुक्तवास: स्वयंभुवा शस्तं तन्माकालिकेपु तावन्मात्रे न सर्वदा (स्मृति:)
८।१२।४०	अपांकेनेन नमुचे: शिर इन्द्रो कर्तयत्	
८।१३।४		त्वयिकिंचिना (श्रीधर:)
८।१६।३१	चत्वारि श्रृंगात्रयो अस्यपादा	चत्वारि श्रृंगेतिवेदा (यास्क:)
८।१६।३८	नमोहिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने योगेश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे श्लोकोऽयं श्रीधरप्रणीत इतिप्रतीयते (टिप्पणी (श्रीधर:)	
८।१७।८		आयत्नेतात्रिनिर्जित्य (श्रीधर:)
८।११।२६	यज्ञोवैविष्णु:	
८।१८।५	अभिजिन्ताम नक्षत्रम्	
८।१६।३८	ओमितिसत्यं नेत्यनृतम् परागवा एतद्रिक्तमक्षरम् तस्मात् कालएव दधात्	
८।१६।४०	एवमेवानृतंयद्यमात्मान ओमितिसत्यं नेत्यनृतं	
८।१६।४१	परागवा एतद्रिक्तमक्षरं	
८।१६।४२	अथैतत् पूर्णमभ्यात्मं	
८।१६।४३	तस्मात् कालएवदधात्	
८।२२।३		वर्णिनांहि वधोयत्रतत्र (याज्ञ०) आपदर्थेधनंरक्षेद
८।२४।२६	विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं	

८।२४।२९	विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं	
८।२४।२९	न ते विष्णोजायमानोनजातो	
८।२४।४८	यदरोदीत्तरुद्रस्य रुद्रत्वं	
९।३।१२	ऐन्द्रवायवं गृह्णाति	
९।४।८	उच्छेषणभागो वै रुद्रः	
९।४।११	नामानेदिष्ठंशंसति नामानेदिष्टं .	
९।४।४०	अपोऽश्नाति तन्मैवाशितंनैवानशितम्	
९।५।५	स ऐक्षत	
९।७।८	हरिश्चन्द्रो हवैध्वस ऐक्ष्वाकोराजा पुत्रआस	
९।७। ५	अन्नमयंहि सौम्यमनः	
९।१३।६	कुम्भेरेतः सिषिचतुः समानम्	
९।१४।२२	अमृतं वा आज्यम्	
९।१४।२७		महानिशाद्वघटिके
९।१४।४४	शमीगर्भादग्निं चयनम्	
९।१४।४५	उर्वश्यस्यापुरसि पुरूरवाः	
९।१६।२९	तस्य हविश्वामित्रस्यैकशतं पुत्राआसुः— एकएवऋषि यवित् प्रवरेष्वनुवर्तते	
९।१६।३४	कस्यनूनं कतमस्यामृतानाम्	
९।२०।२२	पुंनाम्नो नरकाद्यत् पितरं त्रायते सुतः तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेवस्वयंभुवा हिरण्येन परीवृतान्, कृष्णान् शुल्कदतो मृगान्	
९।२२।१५		दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते
९।२२।२५	अपि तस्य तलिप्सुदेवतः गुरुप्रयुक्ता ऋतुमतीयात्	
९।२४।१९		ककुरभानंशुचिकंवलाग्र (पराशरः)
९।२४।२६		भजमानाच्यविदूरस्थः (पराशरः)
९।२४।२७		तस्यापिकृतवर्मशलधनु० (पराशरः)
१०।२।२५	सत्यं च समदर्शनम्	
१०।३।१४	तत् सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्	
१०।५।११		सूताः पौराणिकाः प्रोक्ताः

१०।८।५		वेदुपचितमन्यजन्ममि० (जातकै)
१०।१२।३७		कौमारं पंचमाब्दान्तं
१०।१३।२०	सर्वं विष्णुमयं जगत्	
१०।१४।१४		
१०।१४।२३	पूर्वमेवाहमिहासमिति	
		नराज्जातानिनाराणि आपोनाराइतिप्रोक्ता
१०।२३।२६		प्रणश्यति (गीता)
१०।२८।२		कलायां द्वादशीदृष्ट्वा
१०।३६।४		
१०।४०।३		देहोसवोक्षामनवोभूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परंयत् (हंसगुह्ये)
१०।४०।५	सप्रथमः स प्रकृतिर्विश्वकर्मा	
१०।४०।१५	दृश्यते त्वग्रयाबुद्ध्या मनसैवाऽनुद्रष्टव्यः	
१०।४०।२७	यदेतत् भूताण्यन्वाविश्च	
१०।४२।३२	यद्भयो० य उदगान्महतोऽर्णवात्	
१०।४५।३४		६४ कला
१०।५२।१८		राक्षसोयुद्धहरणात् (स्मृति)
१०।५६।११		चतुर्भिर्ब्राह्मिभिर्यः गुणं
१०।५६।३८		पत्नीदुहितरश्चैव (या० स०)
१०।५६।२७	पूर्वमेवाहमिहासमिति	
१०।५६।३३		कन्यापुरे सकन्यानां शोडषातुल विक्रमः
१०।६०।६		देव सिद्धासुरादीनां नृपाणां च जर्नादन
१०।६०।३८	एतस्यैवानन्दस्यानात्मनि भूतानि	देवत्वे देवदेहेमं मनुष्यत्वे च मानुषी । द्विषन्न न भोक्तव्यं (पराशरः)
१०।६६।३०	यज्ञस्य देवमृत्विजम्	अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्मम्
१०।७४।२१	ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्	कृषिर्भू वाचकः शब्दः
१०।७८।३५	अनामगोत्रं	यत्करोषि यदश्नासि (गीता)
१०।७८।३६	अंगादंगात् संभवसि	
१०।८४।१२	यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते	

श्रीभद्रकाली

१०।८४।१७	वाचारंभणं विकारो	
१०।८४।२६	यावतीर्वैदेवता	
१०।८४।३१	ननु–कर्मणानप्रजया	
१०।८४।३९	जायमान्येवै ब्राह्मण	ऋणानित्रीण्यपाकृत्य
१०।८५।७	न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र०	यदादित्यगतं तेजो
१०।८७।२	यः सर्वज्ञः सर्ववित्	
	सर्वस्य वशीसर्वस्येशानः	
	यः पृथिव्यां तिष्ठान् पृथिव्या आन्तरः	आदित्यां देवतायुक्ता
	सोऽकामयत बहुस्यान्	स्व बुद्धयारज्यते येन
	स ऐक्षत	
	तत्तेजोऽसृजत्	
	सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म	
१०।८७।१४	यतो वा इमानि भूतानि	
(१)	यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं	
	य आत्मनि तिष्ठन्	
	सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म	
	यः सर्वज्ञः सर्ववित्	
१०।८७।१५	इन्द्रोयातोऽवसितस्यराजा	
	अग्निर्मूर्धादिवः	
	वाचारमणं विकारो	
	सर्वं खल्विदं ब्रह्म	तद्यथा पुष्करपलाश आपो न
१०।८७।१६	नकर्मणा लिप्यते पापकेन	
	तत्सुकृत दुष्कृते विधुनुते	
	एतं हवाव न तपति	
	किमहं साधुवा करवम्	
	किमहं पापमकरवम्	
१०।८७।१७	असुर्यानामते लोका	
	न चेदवेदीन् महती विनष्टि	इहचदवेदी दथसत्यमस्ति
	ये तद्विदुरमृतास्ते	(युण्डकोप ०)
१०।८७।१७	सवाएषपुरुषोऽन्नरसमयः	
१०।८७।१८	उदरं ब्रह्म	
	शतं चैकाहृदयस्य नाडयः	
१९	एकोदेवो सर्व भूतेषु गूढः	
२०	सयश्चायं पुरुषे यश्चासवादित्ये	

स एकः
तत्वमसि
यस्यदेवे परामक्तिर्यथादेवे
(श्वेताश्वतरोप० गी०)

२१ यं सर्वदेवा नमन्ति
२२ आराममस्य पश्यन्ति
नतं विदाथय इमाजजान
नीहारेण
२३ आत्मावाअरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः
२४ यतोवाचोनिवर्तन्ते
को अद्धावेदकइह
अनेजदेकं मनसो
न तं विदाथ
२५ सदेव सौम्येदमग्र आसीत्
ब्रह्मैवसन् ब्रह्माथेति
अनीशया शोचति मुह्यमानः
अविद्यायामन्तरे वर्तमानः
एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म
एक एवहि भूतात्मा
२६ असतोऽधि मनोऽसृजत्
२७ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म
नेहनानास्ति किंचन
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति
तस्यवाक् तन्तिर्नामानिदामानि
देहान्तेदेवः परं ब्रह्म
यमेवैष वृणुत
यस्य देवे पराभक्तिः
२८ अपाणिपादो जवनोगृहीता
भीषास्माद्वातः पवते
२९ यथाग्निः क्षुद्राविस्फुलिंगा
असद्वा इदमग्र आसीत्
इहचेदवेदीदथसत्यमस्ति (मुण्डकोप०)
३० यस्या मतं तस्यमतं
अवचनेनैप्रोवप्रो च

सहतूष्णीं बभूव
यदिमन्यसे सुवेदेति
३१ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
तस्माद्वाए तस्मात्
सोऽकामयत
यथाग्ने क्षुद्रा
एकवेवाद्वितीयं
अजामेका
अविनाशी वारेऽययावमी
यथा सौम्य मधु
ते यथातत्र न विवेकं
यथानद्यः स्यन्दः मानः
३२ परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्
उपस्थायप्रथमजामृतस्य
३३ तद्विज्ञानार्थ
आचार्यवान् पुरुषोवेद
नैषा तर्केण मति
प्राकृतौसत्कृतैश्चव मध्यपद्याक्षरैस्तथा
देशभाषादिभिः शिष्यं वोधयेत् सगुरुः स्मृतः
३४ परीक्ष्यलोकान्
यदासर्वे प्रमुच्यन्तै
अथमर्त्योऽमृतो
एतस्यैवानन्दस्यान्यानि
३५ श्रोतव्योमन्तव्यः
एकमेवाद्वितीयं
विज्ञानमानन्द
अचक्षुरश्रोत्रम्
३६ अक्षय्यं हवै
अपामसोममृता
तद्यथेहकर्मचितो
तस्माद्वासतस्मात्
३७ यतोवा इमानि
सदेवसौम्य
आत्मावाइदमेक

नासदासीन्नोसदासी
यथासौम्येकेन
वाचारमणं विकारो
एकेन लोहमणिना
एकेन नखनिकृन्तनेन
द्वासुपर्णा सयुजा
३९ कामान् यः कामयते
४० एषानित्यो महिमा
४१ यदूर्ध्वं मार्गि दिवो — वैराग्यमाद्यं १०।८६।१६
४२ अन्यदेव ताद्विदितादथो
अन्यत्र धर्मात्
अस्थूलमनणु
११।२।३६ — यत्करोषियदश्नासि (गीता)
११।३।२० तद्यथेह कर्माचितो लोकाः — दैवीह्येषा गुणमयी (गीता)
आततत्वात् (तन्त्रे)
३६ प्राणस्यप्राणमुत चक्षुश्चक्षुस्त
यतोवाचोनिवर्तन्ते
ननु तंत्वौपनिषदं
यद्वाचानभ्युदितं येन
यन्मनो न मनुते
न चक्षुषा पश्यति
अथात् आदेशोनेति नेति
अस्थूलदनणु
यतो वाचो निवर्तन्ते
यद्वाचानभ्युदितं
३७ वाचारम्मणं
३९ यद्वैतन्न पश्गति पश्यचैतद् द्रष्व्यन्
४४ तं वा एतं चतुर्हुतः
४५ मृत्वापुनर्मृत्युमापद्यन्ते
४६ यो वासतदक्षरमी वदित्वागार्ग्यस्माल्लोकात्
प्रैतिसकृपणः
तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति
ब्रह्मचर्येणतपया श्रद्धया यज्ञेनानाशकेन
स्वर्गकामो यजेत्

११।४।२	विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि	
४।५		यामिमांपुष्पितां वाचं (गी०)
६	अपामसोमममृताऽअभूम	
	अक्षय्यं हवै चातुर्मास्य याजिनः	
	य चन्नोषणां न शीतं	
११	ऋतौभार्यामुपैयात्	
	हुतशेषं भक्षयैत्	
११	इमामगृणन् रशना मृतस्य	अप्राप्तविधिरेवायं
	पंचपंचनखाः भक्ष्याः	(तंत्रवार्तिके)
	(ऋतु स्नातांतुयो भार्या संनिधौ)	
१४	वायव्यं श्वेत मालभेत्	यागेदविहिताहिंसः
		मांस भक्षयिताऽमुत्र
११।५।१७	असुयानामते लोका	
११।५।५१		हीनजाति परिक्षीणां
११।६।३		ननुश्रुतिस्स्मृति मर्मबाज्ञै
११।६।११	यस्यै देवतायैहविर्गृहीतं स्यात्	होम्यांपदाभ्यां जानुभ्यां
११।६।१३	चरणं पवित्रं विततं पुराणं येनपूत	
११।२।१०	तस्यह्न देवाश्चअभूत्याईशते	यस्मात्क्षरमतीतोऽहं
११।६।१५	अक्षरात् परतः परः	
११।७।२१	पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा सहिप्रज्ञानेन	
११।७।४३	तत्वमसि	
११।६।१२		मनसोवृत्तिशून्यस्य (योगशा०)
११।६।२२	वायुर्वैगौ तमसूत्रं वायुनावै	
११।६।२८	पुरुषत्वे चाविस्तरात्मा	
	ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्	
११।६।३१	तदभिज्ञं गुरुं शान्तं मुमुपासीत्	
	तस्मात् गुरुं प्रपद्येत्	
११।१०।१४	विलक्षणः स्थूल सूक्ष्मत्वात्	
११।१०।२६	क्षीणेपुण्येमृत्युलोके विशन्ति (कल्पित)	
११।१०।३०	भीषास्माद्वातः पर्वते	
११।११।४		यथैकस्मिन् घटाकाशे
११।११।६	ऊर्ध्वमूलमवाक् शाखं	ऊर्ध्वमूलमधः शाखं (गीता)
	द्वासुपर्णा सयुजा सखाया	
११।११।६		तत्ववित्तु महाबाहो

		प्रकृतेः क्रियमाणानि यः
११।११।१५		कंटकैर्वितुदति चंदनैर्यश्च(याज्ञ०)
११।११।३०		षड्भिर्मासोपवासैस्तु
११।१२।४०	चत्वारि वाक्परिमितापदानि	विष्णोर्निवेदितान्नेन
११।१३ २२	वाचारमभणं विकारो	यासामित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती (अभियुक्त श्लोके)
११।१३।२७		सत्वाज्जागरणं विद्या
१२।१४।६		मोक्षार्थो न प्रवर्तते
११।१४।२६	तमेव विदित्वाति	यावत् कीर्तिर्मनुष्यस्य
		अन्तर्लक्ष्यो (योगशा०)
११।१५।१६		यइमापूरयेद्वायुं
११।१५।३४		ऐश्वर्यस्य समग्रस्य
११।१५।३६	एष त अन्तर्याम्यमृतं	जन्मौषधितपः मन्त्रा (पत.)
११।१६।११	बुद्धेर्गुणेनात्म गुणेन	
११।१६।२६	अर्धोह्वा एष आत्मनो यत्पत्नी	
१६ १६।२७	अभिजिन्नामनक्षत्रमुपरिष्टात्	
११।१६।३७		मलप्रकृतिरविहृतिः) सा०का०
११।१७।१६		लब्धेनवेनवेनांद्ये(नारदपु०)
११।१८।१६		माधूकरेतु नैवेद्यं (स्मृति)
११।२०।२	नानुध्यायेद्बहूनशब्दान्	
११।२१।८		सर्वैपुण्यतमोदेशः
११।२१।२७	कश्चिद्धवा अस्माल्लोकात् प्रेत्य आत्मनि	पिबनिम्बं पदास्यामि
११।२।२८	न तं विदाथयइमाजजान	
११।२१।२९	कर्मणा पितृलोकः	नाकामस्यक्रिया
११।२१।३४		फलश्रुतिरियंनृणां
	चत्वारिवाक्परिमिता	
११।२२।४३	तस्माद्वाएतस्मात्	
११।२३।६		आत्मानंधर्मक्तोच (स्मृति)
११।२३।४३	मनसा ह्येवपश्यति	
११।२३।४८	मनसोवशेसर्वमिदं	
११।२४।७	तस्माद्वाएतस्मात्	मृल्लोह विस्फुलिंगाद्यै
११।	अन्नमयं हि सौम्यमनः	

११।२४।२२ तस्माद्वा एतस्मात्

११।२५।५ हयेजाये मनसा तिष्ठ धोरेवचांसि मिश्राकृणवाव
हैनु न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मवस्करन्
पतरे चाहन्
(ऐलनेयहीमन्त्र ९ स्कन्धमें अहोजायेतिष्ठ०)

११।२६।१६ पुरुरवो मामृथा माप्रतप्तो मात्वा वृकासो
अशिवासउक्षन् नवैस्त्रैणानि सख्यानिसन्ति
साला वृकाणां हृदयान्वेता

११।२७।२१ पाद्यैश्यामाकदूर्वायव
विष्णु क्रान्तादिरिष्यते

११।२७।२३ योवेदादोश्वरः प्रोक्तो
गन्धपुष्पाक्षत यवकुशाग्रतिल
सर्वथा

११।२७।३१ सुवर्ण धर्मं परिवेदनमा
दूर्वा चेति क्रमादर्प्या द्रव्याष्टक
मुदीरितं

जितंते पुंडारीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन
जाति लवंग कंकोलैर्मतमा
चमनीयकम्

सहस्रशीर्षा
इन्द्रं नरो नेमधिता हृवन्ते
(आदि० शव्देन) राहिणादीन

११।२७।३६ विस्तासेच्छ्रायतस्तिस्रो
मेखलाश्चतुरंगुलाः
हस्तेमात्रां भवेद्गर्तः
सयोनिवेदिका तथा

११।२७।४० आघातै—प्रजापतयेस्वाहा
इन्द्रायस्वाहा
आज्यभागौ—अग्नयेस्वाहा
सोमायस्वाहा

११।२७।४१ अग्नेयस्विष्टकृतेस्वाहा

११।२८।१५ सुप्ते हरि नहश्यन्ते

११।२८।२१ वाचारम्भणं
सर्वं खल्विदं

११।२८।२६ यस्यात्तदेषां न प्रियं

११।२८।३५	यतोवाचोनिवर्तन्ते
	केनेषितं पतित
	नेहनानास्ति किंचन
	इन्द्रोमायामिः
११।२९।४७	तद्वामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
	अति व्रज्यगतिस्स्रो मामेवासितः परम्
११।१२।३२	अग्नौप्रस्ताहुतिः सम्यक्
११।५।३	अंगादंगात् संभवसि
४	आत्मना पितृ पुत्राभ्यामनुमेयो भवाप्ययौ
१२।७।६६	ऋभिपूर्वार्द्धं दिविदेवदूयते
१२।११।१४	प्राणोवैमुख्यः
१९	सुपर्णोसिगरुत्मान्
	यज्ञोवैविष्णुः
१२।११।३०	सूर्यं आत्माजगस्तस्थु
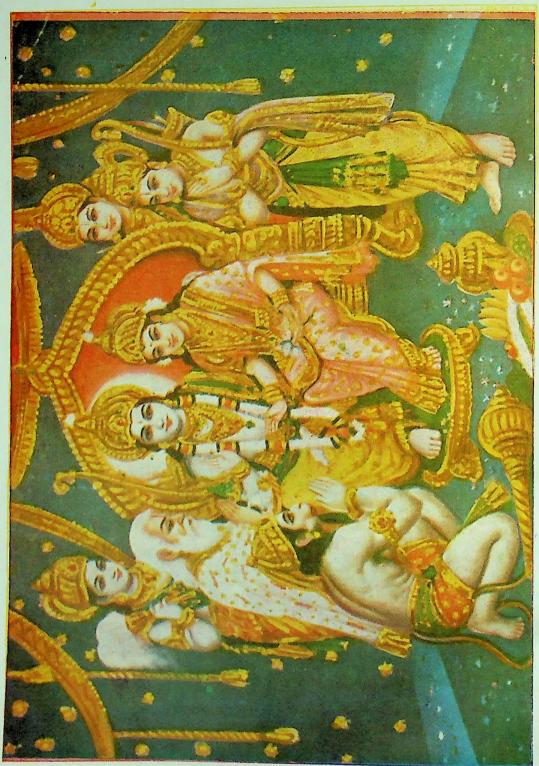
श्रीराम-पञ्चायतन

श्रीमद्भागवत और गीता

श्रीमद्भगवद्गीताका जो कुछ चरम सत्य है भागवत उसकी मूर्ति है। कारण कि गीतामें कहे गये तत्व भागवतमें ही प्रस्फुटित हुए हैं।

गीतामें—श्रीभगवान्ने—"इति ते सर्वमाख्यातं"
१८।६३

के द्वारा इति शब्दका प्रयोग किया है। जिसका तात्पर्य है, जो कुछ कहना था कह दिया। परन्तु १८वें अध्यायके ६५वें ६६वें श्लोकमें पुनः "सर्वगुह्यतमं भूयः" कहकर—

मन्मना भव मद्भक्तो इत्यादि २ श्लोक कहे हैं।

गीताके इन्हीं श्लोकोंमें अन्तर्निहित सत्य छिपा है, वही श्रीमद्भागवतके 'शारदीयरास रजनी' में श्रीकृष्णके अन्तर्ध्यानके बाद—गोपीगणोंकी अवस्थामें—

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिका
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः।

में दर्शनीय है।

(भा. १०।३०।४४)

सर्वधर्म परिहारका जीवन्त रूप—गोपियोंका बनमें आगमन है।

(भा. १०।३२।२२, एवं १०।४७।६१

इसलिये गीता यदि उपनिषद रूपी गायोंका दूध है तो भागवत उसी दूधके मथनेसे प्रकटित नवनीत है।

अतः वेदार्थ—सूत्रार्थ—गीतार्थ सबकी परिपूर्ति श्रीमद्भागवतमें है—

क्या भागवत अपौरुषेय है—

भागवत अपौरुषेय है। वह वेदव्यास रचित नहीं।

परन्तु वेदव्यासके हृदयमें भगवत् कृपासे स्फुरित है।

अपौरुषेय वाक्य मात्र ही प्रमाणादि दोष लेशोंसे शून्य है, अतएव सर्व प्रमाण शिरोमणि (भा. १।३।४४) श्रीसूत इसे 'पुराणार्क' कहकर अज्ञानान्धकार नाशनमें इसकी उपयोगिताका ज्ञान करते हैं।

लीलास्तवमें—श्रीपाद सनातनने इसे श्रीकृष्ण स्वरूप कहा है। प्राचीन शास्त्रकारोंने इसे श्रीकृष्णके तुल्य ही घोषित किया है।

श्रीमद्भागवतके ६ प्रश्न (षट् सम्वाद)

श्रीशौनक सूत, गोस्वामी के पासमें जाते हैं और उनसे प्रश्न करते हैं—

१. पुरुषको ऐकान्तिक श्रेय क्या है?
२. आत्मा किस प्रकार प्रसन्न होती है?
३. भगवान्का देवकी गृहमें अवतारका प्रयोजन क्या है?
४. उनकी लीला कितनी है?
५. उनके अवतार कौन-कौन हैं?
६. श्रीकृष्णके अन्तर्ध्यान हो जानेपर धर्म किसकी शरणमें गया?

इन्हीं ६ प्रश्नोंके उत्तरमें समग्र भागवतकी प्राप्ति है। इसके वक्ता और श्रोता भी विभिन्न हैं—

+ श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति सूत और शौनकको षट् संवादके अन्तर्गत नहीं मानते।

वक्ता	श्रोता
१. श्रीनारायण	ब्रह्मा
२. नारद	व्यास
३. शुकदेव	परीक्षित
४. सूत	शौनक

प्रथम स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें प्रथम ४ प्रश्नोंके उत्तर हैं।

तृतीय अध्यायमें ५वें का उत्तर है।

षष्ठ उत्तरमें समग्र भागवत ही आ जाती है। श्रीकृष्णका प्रतिनिधित्व भागवत ही कर रही है।

भागवतमें प्रधानतः १० विषयोंका वर्णन है—

सर्ग (मूल सृष्टि)

विसर्ग (प्रलय)

स्थान (सृष्टि पदार्थके उत्कर्ष विधान)

पोषण (भक्तगणोंपर अनुग्रह)

ऊति (कर्मवासना)

मन्वन्तर—

ईशानुकथा (हरि और तद् भक्तगणोंके चरित)

निरोध (सशक्ति शयन)

मुक्ति (स्वरूप अवस्थिति)

आश्रय–श्रीहरि।

दशम श्रीहरि ही तत्व निधान और शास्त्रोंके तात्पर्य हैं—

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्मवाद और परमात्मवाद स्थल-स्थलपर वर्णित है। परन्तु भगवत वाद ही विशिष्ट स्थान पाता है। भक्त और भगवान्‌के विविध लीला विलासका ही नाम भागवत है। भगवदवतार असंख्य हैं—

पुरुषावतार–गुणावतार–लीलावतार–युगावतार
शक्त्यावेशावतार–मन्वन्तरावतार–कल्पावतार इत्यादि।

[1]ये समस्त अवतार नित्य चिन्मय अप्राकृत परमानन्द स्वरूप हानोपादान रहित, ज्ञान मात्र और सर्व गुण पूर्ण हैं।[2]

इन सब अवतारों में श्रीकृष्ण का भी उल्लेख है परन्तु ये अवतारी हैं। सर्वविध ऐश्वर्य और माधुर्य परिपूरित परतत्व हैं। लीला-प्रेम-वेणु और रूप माधुर्य श्रीकृष्णमें ही अनन्य साधारण हैं।

श्रीमद्भागवत, रसिक और भावुक जनों द्वारा संवेद्य है—

यह अतुलनीय रस ग्रन्थ है और दार्शनिक ग्रन्थोंका शिरोमणि है।

एक ही ग्रन्थमें भावुक—दार्शनिक और रसिक साहित्यिककी सर्वथा परितृप्ति विश्व साहित्यमें अतुलनीय है।

भागवतका यही अनन्य सुलभ गौरव है कि वह एकाधारपर ही रसिक और भावुकगणोंको प्रत्येकको रसास्वादनके लिए आह्वान करता है।

---

१. लीलास्तव—सनातन रचित १८—२५ इसमें ३७ अवतारोंके नाम लिखे हैं।

२. महावाराह पुराणमें—सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादान रहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥
परमानन्द सन्देहा ज्ञान मात्राश्च सर्वतः।
सर्वे सर्व गुणैः पूर्णाः सर्व दोष विवर्जिताः॥

जिस जीवमें दोनों योग्यताएं हों वही भागवतका सर्श्रेष्ठ आस्वादक है। उस कालमें श्रीशुकदेव एवं कलियुगमें श्रीमहाप्रभूजीके पार्षदगण इसी प्रकारके आस्वादक हुए हैं।

नायक

इस ग्रन्थका मुख्य नायक उपनिषद् पुरुष, रसिक शेखर श्रीकृष्ण एवं उनकी सर्वश्रेष्ठ आराधिका आस्वादिका महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठकुरानी हैं।

इन्हीं भावमयी रसमयी श्रीराधारानी कृपाके आधारपर ही भागवत रसास्वादन सम्भाव्य है।

भागवतके अधिवेशनका स्थान

१. शम्यप्रास—सरस्वती के पश्चिम तटपर[१]

२. नदी गंगा—जिस स्थलमें वृन्दावनसे आई हुई यमुनाजी से गंगाजी मिली है प्रयागराज[२] अर्थात् प्रयागराज

३. नैमिषारण्य[३]—यहाँ उग्रश्रवा नामक सूतसे शौनकोंने कथा श्रवण की।

४. आनन्दवन[४]—गंगाद्वारके समीप आनन्द वनमें सनत्कुमारने नारदजीको कथा सुनाई।

५. तुंग भद्रा तटपर[५]—तुंग भद्रा नदींके किनारे गो कर्णने अपने भाई धुन्धुकारी के उद्धारार्थ भागवत कथाका परायण किया।

६. सखीस्थलपर[६]—यह स्थान वृन्दावन गोवर्धनके समीप था यहीं उद्धवजी ने गोपियोंसे कथा कही।

७. शुकस्थल[७]—मुजफ्फरनगरसे १७ मील या विजनौरसे ७ मील गंगा तटपर यह स्थान है यहाँ भागवतजीका द्वितीय अधिवेशन हुआ था।

८. हस्तिनापुर—मेरठ जिलाके हस्तिनापुर स्थानसे ५ मील दूर गंगा तटपर राजा परीक्षितने शुकदेवजीसे कथा श्रवण की थी।

---

१. अ. १।७।२-८
२. भा. १।१९।५-६
३. भा. १।१।४-५
४. पद्मप. भा. मा. ३।४
५. पदध्म मी. मा० ४।१६
६. स्कन्द प. भा. मा. २।२४, ३।६१
७. विमलानन्द सरस्वती

श्रीमद्भागवतके टीकाकारोंके नाम

(जिनके नाम हैं पर टीकाओं के नाम नहीं मिलते)*

१. अघयदीक्षित (११ स्कन्ध)
२. एकनाथ
३. कविकर्णपूर गोस्वामी
४. कृष्ण भट्ट
५. कौर साधू
६. चक्र चूड़ामणि
७. जनार्दन भट्ट
८. जयराम
९. नाराणतीर्थ
१०. निकुंजविलासी
११. नीलकण्ठ सूरि
१२. पुण्यारण्य (श्रीतत्वसन्दर्भः)
१३. भेदवादिन
१४. मधुसूदन आचार्य
१५. महेश्वर तीर्थ
१६. रामनारायण
१७. वनमाली
१८. वनमाली भट्ट
१९. वामन
२२. वासुदेव भट्ट
२१. विजय तीर्थ
२२. विष्णुस्वामी (भावार्थ दीपिका)
२३. वेतनारायण
२४. व्रजभूषण
२५. शंकरनारायण शास्त्री
२६. शिगंराचार्य
२७. श्रीनिवासाचार्य
२८. सत्याभिनवतीर्थ
२९. सुधीन्द्र यति (माधव)
३०. हरि वरद

श्रीमद्भागवत सम्बन्धमें निबन्धादि

ग्रन्थ	लेखक
१. अनुक्रमः	वोपदेव
२. आनन्द वृन्दावन चम्पू	कवि कर्णपूर गोस्वामी
३. उद्धव सन्देशः	श्रीरूपगोस्वामीपाद
४. कैवल्य दीपिका	हेमाद्रि
५. गोपाल चम्पू	श्रीजीव गोस्वामी पाद
६. गोविन्द मंगल	दुःखी श्यामदास (गौड़ भाषा)
७. जयोल्लास निधिः	अप्पय दीक्षित

* टीकाओं की सूची अन्तिम खण्डमें दी जारही है। क्योंकि टीकाओंकी सूची कई स्रोतों के प्राप्त हुई है।

८. तत्वसन्दर्भः	जीव गोस्वामीपाद
९. तन्त्र भागवतम्	
१०. दुर्जन मुख चपेटिका	काशीनाथ
११. दुर्जनमुख चपेटिका	रामाश्रय
१२. परमात्म सन्दर्भः	श्रीजीवगोस्वामीपाद
१३. पाखण्डध्वंसन भास्कर	विश्वनाथसिंह देवराज
१४. प्रीति सन्दर्भः	श्रीजीवगोस्वामीपाद
१५. भक्तितरंगिणी	वैद्यनाथ पाण्डे
१६ भक्तिभागवतम्	अनन्तदेव
१७. भक्तिरत्नावली	श्रीविष्णुपुरी
१८. भक्ति सन्दर्भः	श्रीजीवगोस्वामीपाद
१९. भगवत्सन्दर्भः	" "
२०. भगवन्नामकौमुदी	श्रीलक्ष्मीधर
२१. भागवत-कथा	
२२. भागवत-कथा संग्रह (दशम)	केशव शर्मन्
२३. भागवत चम्पः	अभिनव कालिदास
२४. भागवत तत्व दीपिका	श्रीवल्लभ दीक्षित
२५. भागवत तत्व भास्करः	शिवप्रकाश सिंह
२६. भागवत निर्णय सिद्धान्त.	दामोदर
२७. भागवत पुराण तत्व संग्रह	रामानन्दतीर्थ
२८. भागवत पुराण संग्रह दृष्टान्तावली	
२९. भागवत पुराण प्रामाण्यम्	विश्वेश्वरनाथ
३०. भागवत पुराण मंजरी	रामानन्दतीर्थ
३१. भागवत पुराण स्वरूप शंकानिरासः	पुरुषोत्तम महाराज
३२. भागवत पुराणाशयः	रामानन्दतीर्थ
३३. भागवत भूषणम्	गोपालाचार्य
३४. भागवत रहस्यम्	वृन्दावन गोस्वामी
३५. भागवत वादितोषिणी व्यास रचित है वोपदेवकी नहीं	गनेश
३६. भागवत विचारः	धरणीधरः
३७. भागवत विचार.	शशिभूषण चक्रवर्ती
३८. भागवत व्यवस्था (भागवत और देवी भागवतमें विचार)	काशीराम केशवराम
३९. भागवत शंका निवारण मंजरी	शिवसहाय

४०.	भागवत शंका निरासवादः	पुरुषोत्तम
४१.	भागवत शरणम्	
४२.	भागवत संग्रहः	
४३.	भागवत सन्दर्भः	श्रीजीवगोस्वामी
४४.	भागवत सिद्धान्त विजयवादः	रामकृष्ण
४५.	भागवतार्थमरीचिमाला	श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर
४६.	भागवतोत्पलः	
४७.	मंगलार्थशतकम्	रामनारायण
४८.	मुक्ताफलम्	वोपदेव
४९.	मुक्तिरत्नम्	कृष्णानन्द
५०.	विद्वद्विनोदिनी	अनूपनारायणतर्क शिरोमणि
५१.	श्रीकृष्णप्रेम तरंगिनी	श्रीरघुनाथ भागवताचार्य (गौड़ भाषा)
५२.	श्रीकृष्ण मंगल	श्रीमाधवाचार्य
५३.	श्रीकृष्णलोला स्तवः	श्रीसनातन गोस्वामीपाद
५४.	श्रीकृष्णविजय	श्रीमालाधर वसु (गौड़ भाषा)
५५.	श्रीकृष्ण सन्दर्भः	श्रीजीवगोस्वामीपाद
५६.	संक्षेप भागवतामृतम्	श्रोरूप गोस्वामीपाद
५७.	सिद्धान्त दर्पणम्	श्रीवलदेव विद्याभूषण
५८.	हरि चरित्रम्	
५९.	हरि भक्ति तरंगिनी	केशव पंचानन भट्टाचार्य
६०.	हरि भक्ति मंजरी	वनमाली भट्ट
६१.	हरि लीला	वोपदेव
६२.	हरिलीला व्याख्या	हेमाद्रि
६३.	हरिलीला विवेकः	मधुसूदन सरस्वती

उपर्युक्त भागवतानुप्राणित साहित्यके अवलोकनसे यह निश्चित है कि श्रीमद्भागवतने संस्कृति साहित्यके भण्डारकी अनुपम वृद्धिकी है यदि इस साहित्यसे संयुक्त ग्रन्थोंकी गणनाकी जाय तो सहस्रशः ग्रन्थोंकी तालिका निर्मित होगी। अतः श्रीमद्भागवत महापुराणने भारतवर्षकी अनुपरूय संस्कृत ज्ञान राशिको जो योगदान दिया है वह चिरस्थायी है तथा सर्वदा रसिकों, तत्वज्ञों एवं काव्यरस प्रेमियोंको यह ग्रन्थ अपना अमृत रस प्रदान करता रहेगा। संस्कृतके भव्य भवनमें झांकनेपर भागवतके जगमगाते प्रोज्वल प्रकाशकी किरणोंसे द्रष्टा अपनी चक्षुओंको आल्हादित करता रहेगा और अपने संतृप्त मस्तिष्कमें अलौकिक शक्तिका अनुभव करता रहेगा।

—०—

श्रीमद्भागवतका उल्लेख जिन ग्रन्थोंमें मिलता है

ग्रन्थका नाम	लेखकका नाम
१. अग्निपुराण	
२. अद्वैतानन्द सागर	
३. अष्टाविंशति तत्वं	रघुनन्दन
४. अहल्या कामधेनु	केशवदास
५. आचार रत्न	मनिराम दीक्षित
६. आन्हिक शेखर	नागोजि भट्ट
७. उत्तर गीता भाष्य	गौड़पाद
८. कलिधर्म प्रकरण	
९. काल दिनकर	
१०. कालनिर्णय	माधवाचार्य
११. कालनिर्णयदीपिका	
१२. कालनिर्णय विवरण	नृसिंहाचार्य
१३. कूर्म पुराण	
१४. क्षीर निधि	
१५. क्षेमेन्द्र प्रकाश	
१६. गरुड़ पुराण	
१७. गीता भाष्य	अभिनव गुप्त
१८. पूर्ण प्रज्ञ दर्पण	श्रीमाधवाचार्य
१९. प्रबोध सुधाकर	श्रीशंकराचार्य
२० प्रयोग पारिजात	
२१. ब्रह्म वैवर्त पुराण	
२२: भक्ति प्रकाश	वाचस्पति मिश्र
२३. भक्ति सूत्र	शाण्डिल्य
२४. भोजन प्रकरण	
२५. मत्स्य पुराण	
२६. मथुरा सेतु	
२७. महाराजीय	
२८. माठर वृत्ति	सांख्यकारिका
२९. रामतापिनी व्याख्या	नारायण
३०. ,, ,, ,,	आनन्द वन
३१. ललित टीका	भास्कर राज
३२. वराह पुराण	
३३. वामन पुराण	
३४. वासुदेव सहस्रनाम भाष्य	श्रीशंकराचार्य
३५. विधान पारिजात	अनन्त भट्ट
३६. विष्णु पुराण	
३७. विष्णुसहस्रनाम भाष्य	श्रीशंकराचार्य
३८. वेदान्त तत्व सार	श्रीरामानुजाचार्य
३९- व्यवहार मयूरख	नीलकण्ठ भट्ट
४०. व्रत खण्ड	हेमाद्रि
४१. शिवतत्व विवेक	अप्पय दीक्षित
४२. शिव-पुराण	
४३. श्राद्ध मयूरव	नीलकण्ठ भट्ट
४४. सम्वत्सर प्रदीप	
४५. संस्कार कौस्तुभ	अनन्तदेव
४६. सच्चरित मीमांसा	
४७. सदाचारबृहस्पति व्याख्या	
४८. सार संग्रह	रामानुज
४९. स्कन्द पुराण	
५०. स्मृति कौस्तुभ	
५१. स्मृत्यर्थ सागर	

—:०:—

श्रीमद्भागवतका अधिकपाठ और पाठभेद

चतुर्थ स्कन्ध अष्टमाध्यायमें दो श्लोकोंकी व्याख्या वीर राघवाचार्यने की है, अन्य टीकाकारोंने कुछ भी चर्चा नहीं की वे श्लोक हैं—

क्वयात्येको भवान् वत्स हित्वा स्वगृहमृद्धिमत्
लक्षयेत्वावमत्याङ्ग सन्तप्तं स्वजनोत्थया ।

ध्रुव उवाच ।

किमेतद्भगवन् ध्यानाद् दृष्टं किं योग राधसा
नोत्सहे सुरुचेर्वाचा समाधानुं मनः क्षतम् ।

४।१६।१८ के आगे—

एष दोग्धा महींवीरो शासतामोजसौषधीः
समां करिष्यते चेमां धनुष्कोट्या समन्ततः ।

इसी श्लोककी टीका मध्व सम्प्रदायाचार्य विजयध्वज एवं निम्बार्क सम्प्रदायाचार्यशु. कसुधीने की है । जीव-गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती आदिने प्रतीक मात्र रखकर उपेक्षा की है । ज्ञात होता है कि श्रीधर स्वामीकी टीका न होनेके कारण उक्त गौड़ीय आचार्योंने इन श्लोकोंकी टीका नहीं की होगी ।

४।२०।३१।के आगे दो श्लोक अधिक लिखे हैं—

ते साधु वणितं राजन्नाशास्से न यदाशिषः
स्वर्गापवर्गनरकान् समं पश्यति मत्परः ॥
प्रीतोऽहं ते महाराज रोषं दुरत्यजमत्यजः
मदादेशं श्रद्धधानस्तन्महयं परमर्हणम् ।

इन्हें विजयध्वजाचार्यने भी मान्यता दी है ।

१।२।१६ के आगे—

पतिं वः पृच्छत भटाधर्मेऽस्मिन् यदि संशयः
सवेद परमं गुह्यं धर्मस्य भगवान् यमः ।

(वि

६।७।२३ के आगे—

अद्यश्वोवापरश्वो वा हन्तस्ति बल शालिनः ।

६।१६।२२ के आगे—

ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्तच साध्वन्नैर्द्वादशात्मवित् ।
तेभ्यो दद्यात्तिलान् राजन् सोदपात्रान् मुदान्वितान् ॥

७।१।५ के आगे—

जिह्वां लब्ध्वापि योविष्णु कीर्तनीयं न कीर्तयेत् ।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणि स नारोहति दुर्मतिः ॥
तस्माद्गोविन्द माहात्म्यमानन्द रस सुन्दरम् ।
श्रृणुयात्कीर्तयेन्नित्यं स कृतार्थो न संशयः ॥
तस्मादिमां कथां पुण्यां गोविन्द चरणाश्रिताम् ।
महापुण्यप्रदां यस्माच्छृणुष्व नृपसत्तम ॥

७।४।२३—

ओं नमो भगवते तुभ्यम्पुषाय महात्मने ।
विशुद्धानुभवानन्द सन्दोहाय यतोऽभयम् ॥

७।१४।१—

साधुपृष्टं महाराज लोकान् साध्वनुगृह्णता
एतत्तुभ्यंप्रवक्ष्यामि नैष्कर्म्यं कर्मणो यतः ।

८।१।१—

यत्र धर्माश्च विविधाश्चातुर्वर्ण्याश्रिताः शुभः ।[1]

कुल टीकामें ३१ श्लोक अधिक हैं जो तालिकामें स्पष्ट हैं—

---

१. सम्प्रति उपलब्ध गीताप्रेस गोरखपुर संस्करणमें भी ये पाठ अनुपलब्ध हैं ।

भूमा - नारायण

अधिक पाठ तालिका

	१।१४।५	
	३।३१।१	
(वि.)	४।८।२६	(२)
	४।२०।३१	(२)
	४।१६।१८	
(वि.)	४।२०।३१	(२)
	६।२।१६	(१)
	६।१६।२२	
	७।१।५	
(वि.)	७।४।२३	१
(वि.)	७।१४।१	१/२
(वि.)	८।१।१	१
	६।४।१०	
	६।२०।२२	
१०।१।६३	असुराः सर्वएवैते	१/२
१०।६।८		१/२

१०।७।२		
१०।१३।३६		
१०।११।२०	ततश्चास्तं गते	१
१०।१३।४८		
१०।१६।५	कृष्णः प्रोत्तुंगमारुह्य	१
१०।२३।३२	श्रवणात् दर्शनात्	१
१०।२८।५	अक्ष्णोर्वा यश्च	१/२
१०।२८।७	प्रजा वयमनुग्राह्या	१/२
१०।३७।१	विशाल नेत्रो	१
१०।४८।२	काम शास्त्र कृतालेखैः	१/२

८ श्लोकोंमें वीरराघव—विजयध्वज साम्य है।

और २२ श्लोक वीर राघवने माने हैं जो विजयध्वजके अधिक श्लोकोंसे पृथक् हैं।

विजयध्वजके अधिक श्लोक

१।८।१	३ श्लोक
१।६।४५	१
१।१३।१६	१
१।१५।१६	१
३।२६।२४	१
३।२६।५०	१/२
३।२१।४	१
४।४।३०	२
४।८।४	१
४।८।२६	२
४।११।३४	१
४।२०।७	१
४।२०।३१	२
४।२२।४०	३

८।१	१
८।१२	५
६।३।३२	१/२
६।१४।६	१
६।१४।१२	२
१०।६।८	१/२
१०।११।१८	१-१/२
१०।५०।१०	११
१०।५०।१२	४-१/२
१०।५०।१५	७-१/२
१०।५०।२४	१७
१०।५०।४१	३३—१ अध्याय
	६५—२ अध्याय
	७२—३ अध्याय

४।२४।६७	१
४।२५।२०	१
४।२६।४५	२
४।३३।२२	४
५।१३।२५	२
६।२।१७	२
६।२।१६	१
६।८।४०	१
६।१०।२०	१/२
७।१।७	१
७।१।११	१
७।४।२३	१
७।६	५
७।६।८	१
७।७।२७	२
७।१०।४	१/२
७।१०।६	१
७।१४।१	१/२
७।१४।३	१

	२४-१/२ ४ अध्याय
५०।५५	१-१/२
५१।२१	२
५२।५	६-१/२
५२।६	१६
५२।२०	२-१/२
५२।३६	१
५२।३८	१
५२।४२	१
५३।१	१
५३।३३	१
५३।३८	श्रीशुक उवाच
५३।३६	१/२
५३।४०	१/२
५३।५०	१/२
५४।२६	१/२
५४।३३	१ तथा रुक्मिण्युवाच
५४।१६	श्रीशुक उवाच
५७।१०	४-१/२
५७।१४	१-१/२
५७।३०	१

अधिक पाठ

५८।४	४
५८।६	६
२३	३
२८	१/२
३६	१
५६।१	६
१२	११
२०	७
३२	१
३१	१/२

८६।१	१३
८६।२५	४
८६।३२	१२
६०।१६	१
६०।२१	१
६०।२८	१३
११।६।२१	१

लगभग ३५० श्लोक अधिक

५९ के आगे ६ अध्याय—अधिक हैं किन्तु भागवतमें वे आगे पीछे हैं केवल ३ अध्याय विजयध्वजकी गणनाके अनुसार ६५-६६-६७ ही अधिक हैं। इनमें क्रमशः—५१, ४९,

३५ श्लोकके अध्याय-३ अधिक हैं।

– ५५ में (विज. ६८ में ४

६६ वीं (६९ में) १५

८२ (७०) १० (१०।३०।१४। से २३ श्लोक तक प्रक्षप्त १० श्लोक)

६०—में (७५)	४	७८।	४-१/२
६८।४	१/२	७८।४	२-१/२
७०।३३	१	७८।१०	४
७६।४	१८-१/२	७८।१३	४
७७।१	१	७८।१५	५
७७।१२	१८	७८।३३	१/२
३२	८	८०।	११

—:०:—

पाठान्तर तालिका

स्क. अ. श्लो.	श्रीधर	वीर राघव	विजयध्वज
प्रथम स्कन्ध			
१।४	नैमिश–नैमिष		
१।५	हुताग्नयः		हुताशनाः
१।७	परावरविदो		परावर विदः
१।११	श्रद्दधानानां		भद्रायपूतानाम्
१।१४	स्वयं भयं		स्वयं भवः
१।२३	वर्मणि		कर्मणि
२।१	संहृष्ट		संप्रष्ट
२।४	जयम्		ग्रन्थम्
२।६	प्रतिहता		व्यवहिता
२।८	कथासुयः		कथाश्रयाम्
२।१०	जिज्ञासा		जिज्ञासोः
२।१५	यदनुध्यासिना		यदनुध्यायिनः

२।३४	भावयत्येष		भावयन्नेष
३।१४	दुग्ध्रेमा		दुग्धवान्
५।२	अपि—अयि		
१।१६	भवान्—भवन्		
५।२५	लेपाननु		लेपाद्यनु
५।३६	इमं स्वनिगमम्		स्व धर्म नियमम्
७।१८	अक—अर्कः		
८।३३	अजस्त्वं—	अर्भत्वम्	
९।३०	सहस्त्रणी	सहस्त्रिणी.	
९।३१	व्यथः	श्रमः	
११।२७	अनुग्रहेषितं	अनुग्रहोषितं	
१३।१२	क्रमशो		भ्रमतो
१३।१३	नन्वप्रियं		तत्वप्रियम्
१३।३६	नाहं वेद्मि व्यवसितं		अहं च व्यवसितो राजन्
१५।१९	ऋतवान्	ऋभुमान्	
१६।११	शण्डिः	शौरि.	
१६।२४	विलम्बित	विडम्बित	

द्वितीय स्कन्ध

७।२५	ककुव्जुष ऊढ	ककुब्जय रूढ़	
७।११	मखमय	अमृतमय	
७।२१	अवावरुद्धं	अवापरुद्धं	
७।४२	तरन्ति च	तरन्त्यथ	

तृतीय स्कन्ध

१।१५	श्वसानः	श्मशानः	
२।३	समाहुताः	समाहृताः	
३।२०	पीयूष कुलयया	सुधा प्रवाह रूपया	
३।२०	चरित्रेण	चारित्रेण	
४।१४	अनुग्रहमाजनोऽहं	अनुग्रहत्यपात्रं	
४।२६	संराध्य		संगाढः
४।२७	प्लावितोरु		
४।२८	अधिरथ	अतिरथ	
४।२९	नूनम्	स्फीतम्	
४।३१	नार्दितः		निर्जितः

४।३६	स्वः		द्यु
४।३६	सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः	सिद्धोहोभिर्भागवतर्षभः	
५।१	अभितृप्तः	अभितृप्तं	
५।४	संराधित	आराधित	
५।४	विशवर्त्भ		दिशशर्मवर्त्म
५।११	निःश्रेयसार्थेन	निःश्रेयसार्थाय	
५।२३	शक्त्युपलक्षणः	शक्त्युपलक्षितः	
५।२७	मनोमयः		मनोभवः
५।२७	तमोनुदः		तमोनुदन्
५।३६	वरावरं		परात्परं
५।४७	रात्मभिःस्म	रात्मनिस्वे	
५।४९	ततो	तत्ते	
५:५०	यदनुग्रहाणाम्	त्वदनुग्रहाणाम्	
६।२८	आत्यन्तिकेन	औत्पत्तिकेन	
५।३९	भगवतो माया	भागवती माया	
७।१६	आभात्यपार्थ	यद्भात्यपार्थ	
९।१३	ह्रियते	प्रियते	
९।१३	ध्रियते		क्रियते
१०।१	विभुः		
१०।२	वदस्व		भास्त्रयस्व
१०।१७	प्रभो	प्रभोरिति	
११।१६	विदः	विदु	
११।२८	अनुपिधीयन्ते		अनुविलीयन्ते
१२।३	अन्यां	अन्यान्	
१३।३४	रध्वरा	अन्धय इति	
१४।१	तमुद्यताजलि	समुद्धतांजलि	
१४।१४	आर्तोप		आप्तो
१५।२	हतोलोके		हृतोलोक
१५।१०	वर्धते	एधते	
१५।२५	हृद्युपरिनः	द्युचितसत्	
१६।१०	दुहितः	दुहितुः	
१६।११	उपाहृत	उपाकृत	
१६।१५	क्षुभित	कुपित	

१७।२३	क्षीवान्	वलीयान्	
१६।२२	विनाशयत	विनाशयन्	
२३।३६	स्तनीम्	स्तनम्	
२४।४७	भागवती गतिः	भागवींर्गतिं	
२५।१ ;	उदासीनम्		उदासीनाग्
२५।३६	प्रयुङ्क्ते		प्रयुञ्जे
२५।३७	मायाविनस्ता		माययाचिता
२५।१६	येचेह		येह
२५।४४	स्थिरम्		स्थितम्
२६।४३	उन्दनं		ओन्दनम्
२८।३२	देह	दह्र	
२६।५	अनुविद्धया	अनुवद्धय	
२६।१६	मद्धर्मणो	मद्धर्मिण	
३१।२२	दशमास्यः	दशमास्यं	
३१।२४	असृङ्ग्	असृग् दिग्ध्रे	
३१।३६	(क) ऋक्षः	ऋष्यः	
	(ख) हतत्रपः	गतत्रपः	
३३।८	त्वामहं		त्वाद्धाह्म
३३।६	मातृवत्सलः	पितृवत्सलः	
३३।१२	सतीं		उशतीम्
३३।३०	मर्गणाचिरतः	मार्गणाविरह्म	

चतुर्थ स्कन्ध

१।११	मनुः	प्रभुः	
१।१२	पत्नयः	क्षतः	
१।५२	गुणोत्पत्तिः	गुणोत्पत्ती	
१।६४	वयुनां धारिणीं	मेधां वैतरणीं	
२।२०	दूषितः	रूषितः	
२।३०	विधारणं	विधरणम्	
३।२३	नमसा	मनसा	
१८।१३	तथापरे		तलो परे
६।४	कृतागसि	कृतागसा	
६।५	भवे	भवं	
६।७	यस्य	तस्य	
६।८	पुरद्विषः	पुरारेः	

६।६	मन्त्रयोग	योगमन्त्र	
६।१०	गणावृतैः	गुणान्वितैः	
६।२१	वृक	मृग	
६।२२	तरादया	करीदया	
६।३४	पयस्त	परीतम्	
६।३४	सनंदनाद्यै	सनन्दोद्यै	
६।४०	वन्दितांघ्रिः	वन्दितांघ्रिम्	
६।५६	नयत्र	ननीयत	
७।८	तद्यदाह	तद्यथाह	
७।१६	कर्मसन्तानयामास	कर्मानुवर्तयामास	
७।२५	सादनोत्तमं	साधनोत्तमम्	
१०।३	अद्रौ	आजौ	
११।२८	मधुच्युतं	मधु[illegible]तां	
१८।१३	तथापरे		ततो परे
२०।१६	समचित्त		समवृत
२०।२८	जनन्यां		जगत्यान्
२१।१६	उदग्रपात्		उउग्रेवाग्
२१।१४	भगवम्		भागम्
२१।४१	पर्युगुः		वयुगु
२१।४६	व्यनक्ति		व्यनक्षी
२२।४३	साधूच्छिष्टम्		साधु दत्तम्
२३।३६	विजयाभिमुखो		संग्रामाभिमुख
२४।६	महाभागो	महाबाहो	
२४।४०	अर्थलिंगाय	शब्दलिंगाय	
२४।५२	नोन्तरघं		नोतुरघं
२४।६७	यद्विना	यद्विनो	
२५।५४	ईशस्कृता		उपस्करा

पंचम स्कन्ध

२।१२	मन उन्नयनौ	मनसोन्नयौ
३।५	जायात्मज	जायादि प्रदेषु
४।३	तस्य	यस्य
८।२२	दृषिते	दूषित्वा
८।२३	पद	पात
११।१	सहामनन्ति	समामनन्ती

१३।१८	स्वबंधने		वनेचरान्
			१३।१० से १६ पर्यन्त
			भेद[1]

पंचम स्कन्ध

१४।१४	बर्हिष्मतः	बर्हिष्ठान् १४।२७ से ३५ तक श्रीधरसे व्युत्क्रम	
२०।६	अविशेषेण	स्वमानेन	
		२१।४ से १० श्लोक पर्यन्य श्रीधर विभेद	
२२।५	मासः		मासान्
२२।७	सम		समान
२३।३	परिच		परितश्च
२६।३	अथेदानीं	यथेदानीं	
	वैंशसे	वैशसने	
	वा अन्धान्	बालान्धान्	

षष्ठ स्कन्ध

२।२६	धर्मघ्नाः	धर्मज्ञाः	
३।२४	दृष्टिः	दृष्टः	
३।२७	वयं	भयम्	
३।३३	एवरजः	पुनारजः	
४।८	अहो	आहौ	आदौ
४।१२	गुह्य	गुह्य	
६।६	पालकाः	बालकाः	
७।२५	सभाजित	सभावित	
८।२६	स्तोत्र	स्तोम	
८।४१	नमस्यन्ति	नपश्यन्ति	
६।५३	दध्यङ्		कृतग्रं
१०।६	अनु	नूनं	नूनम्
१०।६	उपासितः	उपाहितः	
१२।२७	लेलिहः		लिलेह
१२।२६	निर्जरयन्	निर्दरयन्	

नोट—१. आचार्य विजयध्वज पंचम स्कन्धमें २४ अध्याय मानते हैं—

(क) ५।१३।१४ श्लोक १८वीं संख्याके आगे

(ख) ५।१४।३७ के आगेके श्लोक १३वें अध्यायमें हैं।

(ग) २०।१८ से ४६ श्लोक पर्यन्त अनेक शब्द परिवर्तन

(घ) मूलके २३वें अध्याय समाप्ति पर विजयध्वजका २२ समाप्त

१३।१०	संचोदितः	सम्बोधितः	
१३।१५	भोगे	भाग	
१३।१६	देव		भूतः
१४।१	मतिः		रतिः
१ ।५८	मुदित	गृदित	
१५।२४	कर्मभिः	कर्मभि १८।१३[1]	
१८।१५	इल्वलम्	इल्वलः	
१८।५३	वीरवती	वरवती	
१६।६	प्रीयेथामे	प्रियेधामे	

सप्तम स्कन्ध

१।१६	दुखग्राह	दुखग्राह्य	दुखग्राह्य
२।१७	कटोदक	करोदक	
२।५०	प्रलोभन्	प्रलोभनम्	
३।७	तवाभिभूः		तवप्रभो
४।३६	अलभ	परम	
४।३८	सन्धत्त	सन्दध	
४।४५	पुत्रान्	पुत्रेषु	
५।११	स्वः परश्च	परः स्वश्च	
५।१३	दुरत्यय	दुरन्वय	
५।१५	सेवकः	सेवकम्	
६।३	यथादुःखम्	यथा सुखम्	
६।१७	कामदृशां	वामदृशां	वामदृशं
८।६	कुलभेद	कुलच्छेद	
८।२८	वर्त्मभिः	वर्मभिः	
८।३१	पार्ष्णिभिः	प्राणिभिः	प्राणिभिः
८।३८	मनवः	मनुः	
६।१३	न च	तव	
६।४१	अद्य		सत्वम्
६।४३	त्वद्वीर्य		त्वत्तीर्थम्
६।५०	अर्हत्तम	महत्तम	
११।७	स्मृतं	स्मृतिः	
११।१३	द्विजोऽजो	द्विजोवै	
१३।१०	स	स्व	

१. वीरराघवाचार्यका यहाँ पर्याप्त पाठान्तर है।

१३।१८	कल्यो	कल्य:	
१३।२२	सम्भावनीय:	सम्भाषणीय:	
१३।२६	अध्यात्मना	अध्यात्मता	
१४।६	मक्षिका:	विमक्षिका:	
१४।४०	संश्रद्धाय		संश्रद्धया
१५।२३	दुपासया		दुपाश्रयात्
१५।२५	ह्यंजसा		मनसा
१५।२६	असद्भि:	अभिसन्धि:	अभिसन्धि:
१५।२७	वै		यं
१५।२८	नियम		निगम
१५।२६	ह्यर्था		विद्या
१५।२६	विडम्बका:	विडम्बिन:	विडम्बिन:
१५।४१	सृष्टन्		धाम
१५।४८	सुत		पुन:
१५।५०	सूक्ष्म	भूष्म	भूष्म:
१५।५३	नादेतं		नादेतु
१५।५७	ज्योतिस्त्व	ज्योतिश्च	ज्योतिश्च
१५।५८	आवाधितो	अबाधित	अबाधित[१]
१५।६८	भवान्महार्षा	भगवन्महर्षि:	

अष्टम स्कन्ध

१।२०	ऊर्ज	और्ज	
१।२३	पवन:	सवन:	
१।२७	पृथु: ख्याति:	वृषा ख्याति:	
२।५	कन्दर:	द्रोणय:	
२।१६	कुल	कलं	
२।२६	घृणी	गृणान्	
२।५	लोकेषु	लीनेषु	
१।.६	भावेन	भावाय	अवाय
३।१७	नमोऽलयाय	मनोलयाय	
३।२५	मोक्षम्	मोक्षणम्	
३।२६	ततन्	हृत:	

---

१. सप्तम स्कन्धमें आचार्य विजयध्वजने १६ अध्याय माने हैं। अन्य सभीने १५ अध्याय स्वीकार किये हैं।

५।१४	सम्प्रष्टो भगवानेवं	विष्णुरातेन संपृष्टो	
५।२९	य	यत्	
५।३०	तितर्ति	पिपर्ति	
५।४१	मुखं	मुखात्	
५।४४	दूतये	भूतये	
४। ६	भगवान्	भवान्	
६।११	व्यवाये	व्यपाये	
६।१२	वदन्ति	धियन्ति	
६।२८	क्षोभात्	क्ष्वेलात्	
६।३७	ईक्षया	कटाक्षैः	
७।१५	भगवद्वशा	मघवद्वशा	
७।१७	कर्ण	कण्ठ	
७।१९	व्यत्तिरेकान्वयो		व्यतिरेकान्वयौ
७।२०	सत्		तत्
७।२१	त्रयंस्वयन्		त्रयाश्रयन्
७।२८	सर्व		स
७।२९	निषदः		निषत्
७।३०	सांख्यात्मनः		साक्षान्मनुः
	मिषु		मृडयैः
७।३२	गरा		हरा
७।३३	परुषं		वपुषं
७।३५	न परं		नापरं
७।३६	पीड़ितः		मीडितः
७।४३	जल		गत
८।९	मानवाः	दानवाः	
८।११	माधवौ	माधवं	माधवं
८।१३	योगी		योगात्
९।१	सुराः पात्रं		सुधा पात्रं
९।२	वर्यासि		वर्योसि
९।७	ईडितः		ईरितः
१०।१	यत्ताः	दृप्ताः	
१०।२	साशया		कातराः
११।३२	गणैः		गुणैः
११।४१	ऋतसेन		धृतसेन
	ब्रह्मापेतो		ब्रह्मरातः

११।५०	तर्पति	अवर्ति
१२।५२	अनुक्तमं	अकारणम्
	अजस्रभावा	अवाह्यभावा
१६।७	फेरुराज	प्रेतराज
१८।२१	कच्छ्	वत्स
१६।६	नात्मानं	आत्मानम्
२०।३६	गोयते	जीवतः
२१।२	नियमान्विता—	नियमान्विताः
२१।१४	अनिच्छतो—	अनिच्छन्तो
२१।३०	यावद्वर्षति—	यावदग्निश्च
२४।१८	समाधत	समाधाय
२४।३०	पृथगात्मनां	पृथगात्मयोः
२४।३१	चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम्—	चिकीर्षि कान्त जन प्रियः प्रभुः

नवम स्कन्ध

१।१२	नभगं	नाभागं
२।२२	रम्भ	दम्भ
२।२३	भलन्दन	हलन्दन
३।२१	अंव	अम्ब
४।२५	समर्द्धयन्ति	नवर्द्धयन्ति
६।१२	आह्वत	आहूत
६।२६	अन्तर्हित	अन्तर्हितः
११।२८	सवृन्दं	संवतेति
१२।१०	उरुक्रिय	उरुक्षित
१३।१०	शोक	मोह
१३।१५	सुधृत्	सुहृत्
१३।१६	विश्रतुः	विधृतः
१३।२३	समरथः	हेमरथः, सत्यरथः
१४।३	विप्रोषध्युडुगणानां	विप्रोषध्यम्बुगर्भाणाम्
१४।६	त्यंज	गर्भम्
१४।३४	अहो	अपि
१४।३५	सुदेहः	सुदेवः
१५।६	मत्वातया	मन्वानया
१५।१५	रजसः	
१५।१७	नारायणस्यांशं	नारायणांशम्
१६।७	कूप	रूप

९।२०।१२	जन्मेजयो—	जन्मेजयोऽभवत्	:
२०।२२	पुत्रोनयति—	पितरं पुत्रो नयत्येकं	
२०।२५	सामनोयं—	दीर्घतम समिति	
२०।२७	गुरूमायियों—	गुरुमाभिनामिति	
२०।३३	चास्खलितं प्राणान्—	जायासुतान् प्राणान्	
२१।९	आहृत्या—	आतिथ्या	
२१।१५	माया	मायां	मायां
२१।२०	वृहत् शत्रस्थ	वृक्षतक्षत्रात्	
२१।२५	सयोगी	योगीशो	योगीशो
२१।२६	प्राच्यः	प्राप्य	
२२।६	कुशाम्बं	कसुम्भ	
२२।३२	मणिपूर	मृणालूकं	
२२।३८	क्रियाज्ञान	परंज्ञानं	
२२।४०	कविरथःकुविरथः	चकुविरथः	चकुविरथः
२४।२	कृति	क्रतुः	
२४।३	सृष्टिः—	वृणिः	
२४।५	कुरूवशादनः—	कुकुरकस्ततः	
२४।१६	धर्मवृद्धः—	धृष्ट वर्मश्च	
२४।३२	शुचिम्	शुचिः	
२४।४१	कंकायामानकाज्जातः—	वकः कंकान्तुकंकायाम्	
२४।४३	शालादीन्—	सात्वादीत्	
२४।४४	कंकश्च	आवकः	
२४।५०	विपृष्टो—	त्रिपृष्टः	
२४।५१	सुवंशाधाः—	सुधन्वाद्याः	
२४।६४	विक्रमलीलया—	विभुगलीलया	

दशम स्कन्ध

१।४	विनापशुघ्नात्		विनातिमुग्धात्
१।५	रति	मति	
१।१३	च्युतं		सृतम्
१।१८	क्रन्दती	रुदन्ति	रुदन्ति
१।३४	वहसे	नयसे	
	कर्मानुगोऽवशः	कर्मवशानुगः	
१।३९	पर्वणि	कर्मणि	
१।४५	दीनवत्सलः	दीन वत्सल	
१।५३	प्रसन्न-प्रसार्य	प्रहृष्ट	

१।५४	साह	त्वाह	
२।१८	मनस्तः		नमस्त
२।१९	न रेजे		विरेजे
२।२०	ज्ञान		धूत
२।२१	यदर्थतत्रो		यथार्धतंत्रो
२।२५	वृषणं	धिषणं	
२।२१	विधः		शिफः
२।४२	मनिदं		मविदन्
३।२४	दीपः		दीपम्
३।३१	हितत्	ययेतत्	
३।२८	मांसदृश		मादृशांतवं
३।३६	तीव्र	मद्रे	
३।४९	शृंखलैः	शृंखलाः	
४।१२	हिंसीःअहिंसी		
४।१५	इवापत्यं	इवोपेत्य	इवोपेत्य
४।१६	कान् लोकान्		कांल्लोकान्
४।२०	यथा	यदा	
४।२५	समनुतप्ततस्य		वचनमाश्रित
४।२८	विशुध्धम्	विश्रब्धं	विशुद्धन्
४।३४	दीनाः	भीताः	भीताः
४।३५	संवृतान्	सन्नतान	सन्नतान्
५।१	दैवज्ञान	वेदज्ञान्	
५।३२	अनुज्ञाप्य	अनुज्ञाय	
६।१७	निःस्वनित	निःश्वासित	
६।२२	केशवस्त्वदुर	केशवत्युदर	
६।३८	जननी	जगती	
७।१	एवं स ववृधे	एवंविधानि	
७।२०	प्रणोदितः	प्रचोदितः	
	ईरयन्	पूरयन्	
७।२१	दिशः	देश	
७।३०	प्रतिहृता	परिगृह्य	
७।३५	इदम्	जगत्	
८।९	भवेत्	महान्	
८।१८	महा भागाः	महाभाग	
८।१९	गोपायस्व	गोपाय	

८।२५	शृंङ्गयाग्नि	दंष्ट्रयाहि	
८।२६	अधृष्ट	आकृष्ट	
९।६	संजात	सजात	
९।१८	स्व	स	
९।२१	भूतानां	पोतानां	
१०।१	देवर्षेस्तमः	देवर्षिः कुपित	
१०।५	भगवान्	गतवान्	
१०।१३	परमंजनम्	परमाजनम्	
१०।१७	विशुद्धयति		सिध्यति
१०।३४	वीर्यैः		तिर्यग्
१०।३०	भगवान्	भगवन्	
१०।३९	ब्राह्मण	ब्रह्मण	
१३।३०	अस्नुपयाः-आस्नुपयाः		
११।४०	पतिः	गतिः	
१३।४३	स आत्मनि	-सआत्मभः	
१३।५६	उद्धृत्य	उद्धृतः	
१४।४०	अर्कमर्हन्	आर्कसुमहन्	
१४।४७	प्रोद्दाम	प्रोध्मात	
१५।८	धन्येयमद्य		१९वीं संख्यापर
१५।२०	सुबलस्तोक	सुबलाशोक	सुबलाशोक
१५।२३	वीर्यो		तीव्रो
१५।२६	वांछास्ति		वांछासीत्
१६।६०	भुज्यतां		भुज्येते
१७।१२	लेलिहः		लेलिहा
१७।१६	नगा गावो		नरा नार्यो
१७।२१	तदाशुचि	तदाशुविपिनो	
१८।२	मायया	रूपिणे	
१८।४	द्रुममण्डल	द्रुमपिप्पल	
२०।६	प्रीणनं	प्राणिनान्	
२१।१४	अमीलित	मीलित	
२४।५	अस्त्यस्व	अस्तस्व	
२४।१९	आजीव्यैकतरं भावं		२४वीं संख्यापर
२८।७	मामकेन	पितरं	
२९।४	कान्तोजव		कार्तस्वरे
२९।१४	अव्यय		अव्यक्त

२६।१८	करवाणि	करवाम	
२६।२८	कृत्वा मुखानि		न्यक्कृत्यवक्र
३०।३३	के आगे—मूल-टीका में परिवर्तन		
३१।२	शरदुदाशये		संख्या ६ पर
३१।२१	मा		सा
३३।२३	युतः		ययौ
४१।१	ब्रह्मन्—ब्रह्म	(पाठ भेद है)	
४४।१५	उरुक्रम—उरुक्रमं		
४८।१	प्रियम्	प्राप्तिम्	
५०।१	प्राप्ति	प्रास्ति	प्रास्ति
५१।२०	शृण्वानः	शृण्वान्	पर्याप्त अन्तर
५१।२३	स्वायं	स्वयन्तं	
५१।३७	सम्भावितः	सभाजितः	
५१।४३	सद्विषः	विद्विषः	
५१।५०	स्त्वा	त्वाम्	
५१।५२	ते	चेत	
५१।६९	षडमित्र		उरुकृच्छ
५२।७	विधानेन		विवाहेन
५२।१६	श्रियोमात्रां		इन्दिराशाम्
५२।१९	कन्यामुपाहरत		तत्पारमागमत्
५२।२०	कृष्ण		विष्णु
५२।३८	धीरा		व्रीडा
५२।४१	परीतः		समेतैः
५२।४४	अन्तिकम्	गृहन्	
५४ २४	चात्र		चारे
५५।०	विजयध्वजा० ने इसे ६८ वें श्लोकपर विवेचन किया है		
५६।११	सर्वाधि		सर्वेऽपि
५६।१४	गिरिं		विलम्
५६।२५	विनिष्पात	मुष्टिनिर्घात	
५७।१३	अवीतो		वीरो
५७।३१	उदाहृतम्		गदाभृतः
५७।३४	मत्वा		दूतैः
५८।१९	सर्वं		कन्यां
५८।४६	हतदर्पान्	भग्नदर्पान्	

भगवती सिन्धुसुता

५८।२१	संश्रयः		वत्सलः
५६।१४	वर्मणः	वष्र्मणः	५९ में पर्याप्त भेद १
६१।१३	वीरः	भानुः	
	अनन्तमूर्तिना	आनन्द मूर्तिना	
६४।६	माधवं	मानुषम्	
६५।११	जहिम		हिन्म
६५।१३	पुरः		परः
६८।१६	कुमत्यया	कुमत्यया	
६८।२६	असभ्याः		अख्यां
६८।४७	कोपः-कोप		
७०।६	बद्धं बद्धं		पद्म पद्म
७०।१५	पाणीः		पाणिम्
७१।१०	पाक-कर्म		कर्म
७१।२७	जवा		जला
७५।५	दुपद्जाः	द्रुपदजः	
७७।३१	ज्ञानैश्वर्य स्त्वखंडितः	ज्ञानैश्वर्यस्यहात्यनः	
७८।६	गदा		गाढ
८२।१८	ईप्सया—इषुणा		
८३।१२	जनत्वम्	जनीत्वम्	
८३।६६	अच्युतो	अच्युते	
८४।२५	एवंत्वानाममात्रेषु	एवंत्वा	माश्रितं ब्रह्मन्
८५।१०	त्वि	त्वाम्	
८५।३४	रामः कृष्ण	राम कृष्णौ	
८५।३६	पुनह्यंदम्बु	पुनात्पदोम्बुहि	
८५।३७	ताम्बूलः	स्रग्धूपः	
८७।६	स्वायम्भुव		स्वायम्भुवं

१. अ. ५९ के पश्चात् विजय ध्वजने ६ अध्याय रखे है जो वर्तमान आठ टीका पाठमें संगत नहीं है किन्तु व्युत्क्रमसे ३ अध्यायोंकी कथा मिल जाती है और तीन अध्याय नवीन है, विजयध्वजके अनुसार वह विपर्यय ६५वें अध्यायसे है, आठ टीकाका अध्याय ६०वां है। नये तीन अध्यायोंमें (अर्थात्' ६५-६६-६७में) क्रमशः ५१, ४६, ५३ श्लोक अधिक हैं, इनकी कथा भागवतके साथ संगत है। विजयध्वजके ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५ भागवतमें अध्याय ५५, ६६, ८२, ८४, ८५ में दो ६०वें पर हैं। आठ टीकामें अप्राप्त कथा अ ६५—कृष्णका सत्यभामाके साथ स्वर्गगमन एवं देवगणोंसे युद्ध

८७।१४	गुणाः		गुणः
८९।१६	तदन्वितं—चतुर्विधम्		

एकादश स्कन्ध

१।१	जविष्ठम्		यविष्ठम्
१।२	नृपान्		परान्
१।३	गतोप्यगतं		यत्तोत्यगत
१।४	स्तम्ब		संव
१।६	सर्वं		यदोः
१।२३	मशल्ये		शल्येषु
२।४	वर्त्मनाम्	धर्मणाम्	
३।१३	वायुना		वारिणा
३।२०	सतुल्यः		अतुल्यः
३।२६	कर्म		काय
३।२८	वृत्तम्		पूर्तं र्
३२१	भक्त्या		भक्ता
३।३५	तदवेहि		तदवैहि
४।१३	ते	ता	
५।५०	वितन्यते		वितन्वती
९।६	रहसि		हृपदि
१३।२	वृद्धात्		शुद्धात्
९।२६	चिकीर्षणा	चिकीर्षुतया	
१३।४	दशैते		नवैते
१३।७	देहः		वेदः
१३।१९	तितीषया		विनिश्चयम्
१४।२१	श्वपाकानपि		सकाममपि
१५।२५	वृत्तीः	वृत्ति	वृत्ति
१५।२६	उदकं		उदकैः
१५।३०	व्यजनैः	व्यजनाः	
१५।३२	कासा	पुनः	पुनः
१६।१	त्राण		प्राण
१६।२६	अजः		पुमान्
१६।३२	परा		पुरा
१७।३	प्रभो		भवान्

१७।७	शुकोवाच		उवाच
१८।१९	पावितं-याचितम्		याचितम्
१९।१८	परिणाम		फलरूप
२०।३	नृणाँ		नुस्यात्
२०।१०	काम		मांस
२१।४३	प्रसीदति	प्रशाम्यति	प्रशाम्यति
२२।४	युक्तं च	युक्तय	युक्तय
२२।५	हेतु	हेतुः	हेतुः
२२।३१	ध्यायत्	ध्याय	
२२।४६	विपाक		विकार
२५।२०	त्रिषु सन्ततम्		त्रिष्वसंगतम्
२६।३२	सन्तोर्वाग्	सन्तो तस्यात्	
२७।११	पावनीम्		पावनः
२८।२०	त्रियवस्थम्		त्रिपदस्थम्
२८।२३	विशारदेन		विवेकबुद्ध्या
२९।४५	अपहन्तुं		अपहर्तुः
३०।९	परमोभवः		परमोदया
	स्वस्थ		स्वच्छ

द्वादश स्कन्ध

१।३४	अपरो-अपरान्	
२।१९	साधु-असाधु	
२।३५	वंशो-वंशा	
३।:	अस्य-अथ	
३।३७	ननांद-ननन्दु	
४।९	वेगोत्थः-वेगोर्वै	
६।१६	जन्मेजयः	जनमेजयः
६।३०	दम्भीत्यमया	दुर्भाव्यतया
६।३०	यद्विवाद	यद्विकारो
६।३१	श्रेयश्च	वचश्च
६।७४	वाजः	वाजि
६।७५	सुन्वान्	सुमन्वान्
६।७६	द्विजः	द्विजा
६।७७	कौशत्यः	कौसल्यः
	पौष्यञ्जिजश्च	पौष्यं जिः

६।७८	प्राच्यान्	उदीच्यान्
६।७९	लोगाक्षिः	लौकाक्षिः
	कुशीदः	कुसीदः
	माङ्गलिः	लांगलिः
	कुल्यः	कत्यः
७।१	स्वकाम्	स्विकान्
७।७	शिष्यात्	पुत्रात्
७।९	सर्गोऽस्यांथ	सर्गश्चैव
७।११	मात्र	सूक्ष्म
७।१२	बीजाद्बीजं	जीवो जीवः
७।१३	कृतास्वैन	कृतेशेन
७।१६	ब्रह्म	मनुः
	वंशाः	वंश्याः
७।१८	अनुशयिनम्	अनुशायिनम्
७।१९	व्यतिरेकान्वयो	व्यतिरेकान्वयौ
	मायामयेषु	मायायर्यासु
७।२०	सत्	तत्
७।२०	वैदेहाया	वेदनात्मा
७।२१	त्रयंस्वयन्	त्रयाश्रयम्
७।२४	कौर्मच	कौर्म्यं च
७।२५	विवर्धनम्	विदीपनम्
७।२५	ब्रह्मन्निदं	ब्रह्मणैतत्
	मुनैः	मुने
८।४	अद्‌भुतं	अर्भकं
८।५	सूतकौतूहलम्	जात कुतूहलम्
८।९	नियमर्द्धये	नियमैर्युत
८।१३	योगी	योगात्
८।१६	रजस्तोकमदो	रजस्तोम मदा
८।२०	मनो	महो
८।२१	गोपद्रुम	गायन्द्रुम
८।२१	मनो	महो
८।२५	रजस्तोक	रजस्तोम
८।३४	एव	एक
८।४०	बन्धु	बद्धं

८।४७	दैवतायं	दैवतायै
८।४७	तन्	त्वन्
८।४८	आद्यः	अद्य
	अवसाद्यं	उपपद्यं
८।४९	वन्देमहां	वन्दामहे
९।२	वर्यासि	वर्योऽसि
९।९	ईडितः	ईरितः
१०।२	काशया	कातराः
१०।४	पश्येम	वश्येम
१०।५	निभृतोदझषव्रात	निभृतोनन्तृविव्रात
	वातापाये	स्तापापाये
१०।२५	वृष्टिता वृषावनि	वृष्टभयृषभावनि
११।३२	गणैः	गुणेः
११।३७	वर्यो	स्वर्य्य
११।३७	ऋतसेनैः	घृतसेनः
११।४१	पुष्यमासं	सहस्याख्याम्
११।४१	ब्रह्मोपेतो	ब्रह्मरातः
११।४३	कम्बलश्च	कम्बलाश्च
११।४६	सन्मतिन्	सद्गतिन्
१२।४	अत्रब्रह्म	यत्तद्ब्रह्म
१२।४	तत्	सत्
१२।६	ब्रह्मपर्वं	ब्रह्मर्षभस्य
१२।११	अर्वाक्सर्ग	अद्यसर्ग
१२।३०	अहेः	अहो
१२।४९	रम्यम्	पुण्यम्
१२।५०	प्रग्रणीत	यदिकहिंचिद्
१२।५२	अनुत्तमं	अकारणात्
१२।५५	भजताधिवेश्य	भजताधिवेश्य
१२।५६	पठत्यनश्नन्	पठत्यनन्य
१२।५९	ततो	पुतो
१२।६२	ऋचो	ऋषयः

—:o:—

अनेक व्यक्तिगत प्राचीन ग्रन्थगारों में रक्षित संकलित निबन्ध संस्करण

भागवत श्रीधर टीका—श्रीसनातन गोस्वामिपाद टीका सह
रामनारायण विद्यारत्न—मुर्शिदावाद १८७२ ई०
भागवत श्रीधर—ब्रह्मावर्त शर्मा—कलिकाता १८११ ई०
" श्रीधर—श्रीजीवगोस्वामी— ह्मावर्त भट्टाचार्य कलिकाता १८८० ई०
" महाराज वीरचन्द्र वर्य मानिक्य वहादुर त्रिपुरा—(१२९० बंगाल)
" श्रीधर कलिकाता—१८७७ ई०
" आद्यश्लोक त्रय—मधुसूदन सरस्वती टीकासह—गोपालकृष्ण मत, कलिकाता १८९३ ई०
" सुखबोधिनी व्याख्या—दीनबन्धु वेदान्तरत्न विभिन्न टीकावलंवन हावड़ा (१३०६ बंगाल)
" पंचानन तर्करत्न— कलिकाता—१९०२–४–२०–२७ ई०
भागवत अष्ट टीका सह—नित्य स्वरूप ब्रह्मचारी सम्पादित—वृन्दावन १९०३–८ ई०
" श्रीधर—विश्वनाथ कृत टीका—खगेन्द्रनाथ शा. कलि. १९०६–११ ई०
" रास पंचाध्यायी—श्रीश्यामलाल गोस्वामी—वैष्णव कलि० १९०७ ई०
" रास पंचाध्याय—गूढार्थ दीपिका – रत्नगोपाल भट्ट—काशी १९०८ ई०
" वंशीधर शर्मा कृत टिप्पणी (६ खण्ड) मुंबई १९८० ई०
" सिद्धान्त चन्द्रिका (राघव सूरीहृत) मद्रास १९०८ ई०
" श्रीधर वासुदेव शर्मा बम्बई १९१० ई०
भागवत १ म वीरराघव कृष्ण गुप्त कृत टीकाद्वयसह मद्रास १९१० ई०
" सुबोधिनी वल्लभ—विट्ठलनाथ टीकासह—रत्नगोपाल भट्ट काशी १९११ ई०
" रासलीला हरे गोविन्द शास्त्री (मणिप्रभा) कलिकाता १९१२ ई०
" १० म श्रीधर सनातन जीवगो. विश्वनाथ हरिपद चट्टो. कल्यानपुर १९१२ ई०
" संस्कृत भूमिकासह नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी—कलिकाता १९१३ ई०
" श्रीधर मधुसूदन गोस्वामी कृत हिन्दी अनु. नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, कलिकाता १९१८ ई०
" रासलीला—नीलकण्ठ गोस्वामी कलिकाता १९२१ ई०
भागवत मतभेद समालोचना—श्यामाचरण कविरत्न—काशी (१३३० बंगाल)
" श्रीगौड़ीय मठ सं०—श्रीमाधवाचार्य श्री विश्व० अन्वय—अनु० विवृ० कलिकाता—१९२४ ई०
" १० म श्रीधर टीका—वैष्णवतोषिणी—हरिपद चट्टोपाध्याय कलिकाता—१९२५ ई०
" हिन्दी अनुवाद सह लखनऊ १९२८ ई०
" चूर्णिका वैंकटेश्वरम् बम्बई (१८५१ बंगाल)
" मि. रामस्वामी मद्रास १९३७ ई०

भागवत श्रीजीव न्याय तीर्थ कलिकाता १९३८ ई०
" मूल श्लोक सूत्री सह—पुरीदास गोस्वामीपाद सम्पा० १९४५ ई०
" सील सनातन गो० बृहद् वै० तो० १९५१ ई०
" श्रुति कल्पलता वामन पण्डित १९३६ ई०
" सिद्धान्त प्रदीप शुकदेव धनंजयदास कलिकाता (१३४४ बंगाल)
" गीता प्रेस, गोरखपुर (१९९५ संवत)
" स्तव कौस्तुभ—भक्ति प्रदीप महाराज संक गौड़ीय मठ कलिकाता—१९५३ ई०
श्रुति—श्रुतिव्याख्या—श्रीवृन्दावन (श्रीपुरीदास गोस्वामिपाद सम्पादित्त श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती)
संशय शातनी—श्रीरघुनन्दन गोस्वामी (१८०९ शक) (ऊंडाल स्टेशन निकट गोकुलानन्द गोस्वामी गृहे रक्षित)

हिन्दी भाषामें अनूदित

भागवत १० म स्कन्ध 'हरिचरित्र' कवि लालच कृत ५६४५–४६
" (सम्पूर्ण) कृष्णदास, ५६४७–६०
" (१०म स्कन्ध गुरुमुखी लिपि— ५६५८
" (१० म–११ स्कन्ध) नन्ददास ५६६१–६२
" सम्पूर्ण भाष्य ५६६४–६६
" (१० स्कन्ध) रत्न सिंह ५६७०
" सम्पूर्ण— रमजानि ५६७१–८१
भागवत (१०म स्कन्ध) विष्णु विलास व्यास कुल महरी नारायण ५६८२–८३
" (११श स्कन्ध) सन्तदास (चतुरदासेर धात्र) ५६८४
" ए गुरु मुखी लिपि ५६८५
" अवतार लीला ५६९८
" रास पंचाध्याय टीका ५६९८
" रास पंचाध्याय—टीका—माधुर कृष्णदेव ५७००
" हरि चरित ५७१६
भागवत दशस उत्तरार्द्ध—सत्यधर्मत्तीर्थ कृत टिप्पणी (माध्व) धारोआर १९३७ ई०
" २ खण्ड सं० मद्रास १९३७ ई०
" चन्द्रशेखर प्रफुल्लचन्द्र कृत भाषान्तर—भानपुर इन्दौर— १९३७ ई०
" तामिल टिप्पणी—यज्ञराम आचार—श्रीवेंकट्— १९३७ ई०
" उद्धव संवाद मूल अनुवाद टिप्पणीसह—स्वामी माधवानन्द—अल्मोड़ा १९३९ ई०
" मलयालय लिपि—४ खण्ड— मद्रास १९४०–४२ ई०
" कन्नड़—चन्द्रशेखर शास्त्री—मैसूर— १९४४ ई०
" अग्रेजी अनुवाद (संक्षिप्त प्रभावानन्द, मद्रास १९४४ ई०
सुभाषितानि (निबन्ध) विष्णुविनायक—मराठी—मुंबई १९३० ई०

१. कालिकाता न्यसनाल लाइब्रेरी (१) निबन्ध संग्रह, (२) सर आशुतोष मुखोपाध्याय संग्रह, (३) भाः रामदास सेन संग्रह, (४) बुहार संग्रह,
२. कलिकाता एसियाटिक सोसाइटी—(१) निबन्ध संग्रह, (२) फोर्ट विलियम संग्रह, (३) इण्डियान् म्यूजियम संग्रह, (४) वालासर काटेर संग्रह, (५) निवन्ध संग्रह
३. कलिकाता बंगीय साहित्य परिषदेर—(१) निबन्ध संग्रह, (२) गोपालदास संग्रह, (३) चितरंजन संग्रह, (४) विद्यासागर संग्रह.
४. कलिकाता संस्कृत कालेज लाइब्रेरी संग्रह—
  १. कालिकाता संस्कृत साहित्य परिषद संग्रह (२) कलिकाता श्रीचैतन्यचन्द्र लाइब्रेरी निबन्ध संग्रह
  ३. बांकीपुर (पटना) ओरियन्टल पब्लिक लाइब्रेरी संग्रह (४) वराह नगर श्रीगौरांग ग्रन्थागार संग्रह
  ५. कलिकाता विश्वविद्यालय संग्रह

पारस्य (फारसी) भाषा अनूदित

भागवत (१म-१२श स्कन्द) सं० नाम नहीं बांकीपुर—१४५०
महम्मद साहेब राजत्वेर ११ अंक लिखित—बांकीपुर—१४५१
तर्जुमा ए भागवत (१०म का अनुवाद) नाम नहीं ए. एस. बी. सी. १७०६
तर्जुमा ए भागवत पुराण—१-९म का संक्षिप्तानुवाद आलम साहेब राजत्वेर २१ अंक १७७९ ई० १८ नवम्बर ए. एस. बी. सी. ६८८
तर्जुमा भागवत पुराण—समग्र (लिपिकाल) १८७० ई० ए. एस. बी. सी. ६८९

(फारसीमें अनूदित श्रीमद्भागवतके मुद्रित संस्करण)

(ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरीमें सुरक्षित पारसी भाषामें मुद्रित पुस्तक तालिका १९२२ ई०)
भागवत पुराण—पद्य अनूदित—आभानतरण्य २ खं० कानपुर (१९७० ई०)
भागवत ए शारिफ—पद्यानुवाद—राजा गिरधारीप्रसाद कर्तृक (१८८९ ई०)
रास पंचाध्यायी—हिन्दी फारसी पद्यानुवाद—अनु० अयोध्याराम-गोरखपुर (१८९४)

मुद्रित भागवत ग्रन्थ पंजी लन्दनस्थ ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी रक्षित

१८७६, १८९३, १९०८, १९२८ ई० की तालिका
श्रीमद्भागवत—मूल संस्कृत, तामिल और फारसी भाषामें अनूदित
श्रीधर स्वामिटीकासह—भवानीचरण वन्द्योपाध्याय संपादित कालिकाता—१८२७-३० ई०
श्रीधर स्वामि कृत टीकासह—मुम्बई १८३९ ई०
श्रीमद्भागवत—एवं तत्परे कर्तृक फारसी भाषाय अनू० फारिस १८४०-९८ ई०
वामन कृत मराठी टीकासह—मुम्बई १८४२ ई०
श्रीधर स्वामीकृत टीका आनन्दकुमार कविरत्न कृत व्याख्यासह कलिकाता (१८४५ ई०)
ध्रुव चरित—
मराठी टीकासह, मुम्बई १८५४ ई०
गुजराती टीकासह—मुम्बई १८५१ ई०
सनातन चक्रवर्ति कृत बंगानुवाद—रामानन्द चूड़ामणि भट्टाचार्य

श्री लाल चांद विश्वासकृत भूमिका सह—कालिकाता ११८० शाके, १८५८ ई०
श्रीमद्भागवत—श्रीधरी टीकासह—दामपुर वेंकट सुब्बा शास्त्री, भागवत सिद्धान्त चन्द्रिकामें संपादित १८५८ ई०

भागवत श्रीधरटीकासह—हरिजोत महादेव सम्पादित मुम्बई १८६० ई०
" १०म समूल गौड़ीय—पद्यानुवाद—वीरभद्र गोस्वामी सम्पादित नन्दकिशोर कविरत्न—संशोधित
" कलिकाता १८६१ ई०
" श्रीधर—तेलगु टीकासह—मद्रास—१८६२ ई०
" वेदस्तुति—श्रीधरी टीका—काशीनाथ उपाध्याय कृत सुबोधिनी, मुम्बई १८६२ ई०
" रास पंचाध्यायी—
" श्रीधर टीका काशी १८६८ ई०
" १०म गिरिप्रसाद कृत हिन्दी टीकासह—काशी १८६९ ई०
" श्रीधर—दुर्गाचरण वन्द्योपाध्याय—कालिकाता १८७० ई०

भागवत श्रीधर—वंगानुवाद—रामनारायण विद्यारत्न .. वहामपुर—१९७१ ई०
" वेदस्तुति—अन्वयार्थ दीपिका सह (संस्कृत गुजराती) पीताम्बर पुरुषोत्तम बम्बई १८७७ ई०
" ११श स्कन्ध—एकनाथ कृत—मराठी टीका—पूना १८८१ ई०
" १२ स्कन्ध—उत्कल अनुवाद कटक १८४८ ई०
" श्रीधर—भागवतार्थ दर्पण-मराठी व्याख्या सह—मुम्बई—१५९२ ई०
" भागवतप्रसाद आचार्य कृत—भक्तमनोरंजनी व्याख्या—विहारीलाल आचार्य कृत टिप्पणी सह (१३ खण्ड)
" मुम्बई १७९७ ई०
" इच्छाराम सूर्यराम देशाई कृत व्याख्या—गुजराती अनु० मुम्बई १८९७ ई०
" अन्वितार्थ प्रकाशिका—गंगासहाय कृत—कल्याण १९०१ ई०
" रामस्वरूप शर्मा कृत—कीर्ति वर्द्धिनी हिन्दी भूमिकासह—मुरादाबाद १९०१ ई०
" आर रघुनाथ राना कृत—व्याख्या सह कुम्भकोणम्—१९०३ ई०
" भागवत चन्द्र चन्द्रिका टीका—वीर राघव (विशिष्टाद्वैत) शेषाद्रि आचार्य सम्पादित—कुन्ताकोणम् १९०८ ई०
" गूढार्थ दीपिका—धनपति सूरि काशी १९०८ ई०
" मुनि भाव प्रकाशिका सह (भागवत चन्द चन्द्रिका) कृष्णागुरु कृत नरसिंहचार्य—कुमार ताताचार्य सं० मन्द्राज १९१० ई०
" सुबोधिनी—वल्लभार्य कृत काशी १९११ ई०
टिप्पणी विट्ठलनाथ
प्रकाश टिप्पणी— पुरुषोत्तमजी महाराज

निबन्ध

भागवत हरिविचार—शशिभूषण चक्रवर्ति कृत भूमिका, कलिकाता १८१४ ई०

" भूषण—गोपालाचार्य—१८७० ई०
" शंका निवारण मंजरी—हिन्दी अनुवाद मुम्बई—१८८८ ई०

लन्दन इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित

भागवत सिद्धान्त चन्द्रिका—तेलगु वेंकट शास्त्रि सम्पा, मद्रास १८५८ ई०
" १०म पदच्छेदसह—गौड़ीय भाषा—वीरचन्द्र गोस्वामी कलिकाता १८६१ ई०
" १०म (मराठी) पूना १८७० ई०
" मराठी व्याख्या जगद्धितेच्छु पाक्षिका (असं.) पूना १८७०-७६ ई०
" क्रम सन्दर्भ—ब्रह्मावर्त समाध्यायिकृत टिप्पणी सह १८७४ ई०
" श्रीधर—चित् सुखादि बहुविध प्राचीन, कलिकाता १८७७ ई०
" श्रीधर—(द्राविणी भाषामें) तामिले मुद्रित—मद्रास १९०९ ई०
" तामिले मुद्रित मद्रास १९१० ई०
" श्रीधर टीका 'श्रीकोष' मुनि भाव द्र. भाग. चन्द्र च. मद्रास—१९१४ ई०
" सारोद्धार टीका—जयतीर्थ अवधूत—मुम्बई—१९२० ई०
" सत्यानन्द तीर्थ गुरुराज सम्पा० (तैलगु) विद्याविनो. प्रेस मद्रास रामचन्द्रपुरं १९२२ ई०
" भागवत हृदयम् (तेलगु टीकासह) श्रीनिवास सं० (कोकोनाडा) १९२० ई०
" भागवत मंजरी—मंजरी परिमल—गौतम कुलचन्द्र शर्मा—१९२८ ई०
" वेदस्तुति—शंकर यशोवन्त शास्त्री—पूना १९२९ ई०
" सुबोधिनी—वल्लभाचार्य कृत—निर्णय सागर सं० १९३० ई०
" श्रीकृष्ण रासलीला—गुजराती अनुवाद—अहमदाबाद १९३० ई०
" ११श स्कन्ध (मलयालम व्याख्यासह) गोपालक नायार चिपूर १९११ ई०
" परीक्षित दास शर्मा कृत टीका (उड़िया) कटक १९१७ ई०
" १०म हिन्दी भाषा टीका—काशी १९२५ इ०
" गुजराती व्याख्या सह (असं.) अहमदाबाद १९३०-२० ई०
" भागवत हृदय
(विशेष २) ३६७ श्लोकोंका अंग्रेजी अनुवाद श्रीनिवास राउ निरुपति १९३१ ई०
मातृका क्रमे प्रधान २ विषय—पात्रसूची—मद्रास १९३२ ई०
सुबोधिनी—वल्लभाचार्य मुम्बई—१९२१-२३-२८-४३—अहमदाबाद १९४०-४२) प्रकाश व्याख्यासह सूरत १९३२ ई०
" तामिल अनुवाद—नागराक्षर—गणपति अयारु—मद्रास १९३६ ई०

———

श्रीमद्भागवतके अनुष्ठान

विश्वामित्रोक्त सप्ताह क्रम

१. संकट निवृत्थर्य सप्ताह क्रमके विश्राम संकेत—

दिन संख्या	१	२	३	४	५	६	७
अध्याय संख्या	२८	६४	४५	३८	७३	७२	१३
स्कन्धके	२ के	४	६	८	१०	११	१२
अध्याय पर विश्राम	१०	३१	१८	२४	४८	३१	१३

२. दिन वही

सप्ताह

अरिनाशनके लिए अध्याय	४८	६०	४५	६०	७२	३७	१३
स्कन्ध अध्यायपर विश्राम	३।१८	५।१५	७।१५	१०।१२	१०।८४	११।१३	१२।१३

३. अत्रिप्रोक्त–रोग निवारण के लिये

३८	६०	३८	५८	३८	५०	१३
३।१०	५।६	६।१८	८।२०	१०।३५	१०।८४	१२।१३

४. सूतोक्त पुरुषोत्तम प्राप्ति के लिये

४८	६७	३७	४८	१२	७८	४८
३।२०	५।२३	७।१५	८।२४	१०।१२	१०।८०	१२।१३

५. भारद्वाज प्रोक्त बन्धन मुक्ति के लिये

६२	५७	३८	४८	८०	३१	१३
३।२८	४।२६	७।१५	८।२४	१०।८०	११। १	१२।१३

६. वशिष्ठोक्त पुत्र प्राप्ति के लिये

५३	४३	५०	५८	५१	४१	३८
३।२८	५।३	७।८	१०।४	१०।५५	११।६	१२।१३

७. कश्यपोक्त श्रीप्राप्ति के लिये

७१	६१	५२	१५	३८	१७	४४
४।८	६।१३	७।८	१०।३४	१०।७३	१०।९०	१२।१३

मन्त्रोपासना प्रयोग

१. दाम्पत्य प्रीति तथा काम शान्तिके लिए — हृषीकेशोपासना	" ओं ह्रां.............. । "	५।१८।१८
२. आत्मशान्त्यर्थ	" ओं नमो भगवते........ ।	५।१८।२५
३. धारणार्थ कूर्मोपासना	" ओं मनो भगवते अकूपाराय........ ।	५।१८।३०
४. जीवनोद्वाहार्थ-वाराहो०	" ओं नमो भागवते............ ।	५।१८।६०
५. संकल्प सिद्ध्यर्थ—मत्स्यो०	" अवतारो हरे र्योयं............ ।	८।२४।६०
६. महाविपत्ति दूर करने के लिए	" तमूचुः............... ।	८।२०।४३
७. उल्लासप्त्यप्रार्थ	" अयेशसाया०.......... ।	६।६।४७
८. मायामोहनिवृत्यर्थ	" संसार सागरे मग्नं	महा० ६।२७
९. अहंतलनिवृत्यर्थ	" यत्कीर्तनं०.... ..... ।	२।४।१५-१७
१०. पुत्रप्राप्त्यर्थ	" सत्वत्राणधितः०............ ।	३।२४।४
११. अभयप्राप्त्यर्थ	" मा मा त्यानं०............ ।	३।२४।३६
१२. गायत्री	" ओं परो रजः०........ ।	४।७।१४
१३. नेत्ररोगनाशार्थ	" देवतिर्यङ्०............ ।	५।२०।४६
१४. यज्ञविघ्ननाशार्थ	" स प्रसीद त्वमस्माकम्............ ।	४।७।४७
१५. आत्मकल्याणार्थ	" जितं त आत्मविहर्य०................ ।	४।२४।३३
१६. अन्नवृद्ध्यर्थ	" स्व गोभिः पितृदेवेभ्यो०........ ।	५।२०।१२

१७. स्वर्गप्राप्त्यर्थ	" परस्य ब्राह्मण:………… ।	५।२०।१७
१८. धान्यवृद्ध्यर्थ	" आप: पुरुष:…………… ।	५।२०।२३
१९. आभ्यन्तर शुद्ध्यर्थ	" अन्त: प्रविश्य भूतानि०………… ।	५।२०।२८
२०. पुंसवनव्रत	" अलंतेनिरपेक्षाय०………… ।	६।१९।४
२१. पयोव्रत	" अन्वयर्तन्त यं देवता:०……… ।	८।१६।३०
२२. ज्वर शान्त्यर्थ	" नमामित्वानन्त………………।	१०।६३।२५-२८
२३. दु:खनाशार्थ	" अहं हरे तव………… ।	१२।१३।२३
२४. भगवत्प्रेमार्थ	" नाम संकीर्तनं………… ।	६।११।२४-२७
२५. आदर्शपत्नीप्राप्त्यर्थ	" तथा सन्वाहं … … ।	३।२१।१५
२६. ब्रह्मतेजप्राप्त्यर्थ	" त्वत्त: सनातनो धर्मो………… ।	३।१६।१८
२७. लक्ष्मी प्राप्त्यर्थ	" श्रियाविलोकिता……… ।	८।८।२८
२८. अभय प्राप्त्यर्थ	" ओं नमो भगवते नरसिंहाय……… ।	५।१८।८
२९. निष्काम भक्ति०	" यदि रासीश मे०………… ।	७।१७।८
३०. विश्वशान्त्यर्थ पुत्र-मनो०	" यज्ञेश०………… ।	८।१७।८
३१. बंधन मुक्त्यर्थ	" भूत भावन०………… ।	४।२२।२९
३२. व्रतपूर्त्यर्थ	" मन्त्र तस्तन्त्र०………… ।	८।२३।१६
३३. चरित्र शुद्ध्यर्थ	" ओं नमोभगवते०………… ।	५।१९।३
३४. अज्ञाननाशार्थ	" अव्रत्तं न सवया०………… ।	६।११।६
३५. वर प्राप्त्यर्थ	" व्यसनं ते०………… ।	१०।६२।१८
३६. अभिचारशान्त्यर्थ	" कृत्यानल: प्रतिहत:………… ।	१०।६७।४०
३७. बंधन मुक्त्यर्थ	" कृष्ण कृष्णा प्रमेयात्मन………… ।	१०।१०।२५
३८. सर्वापन्निवारणार्थ	" वासुदेवाय…………… ।	१०।७३।१६
३९. दारिद्रनाशार्थ	" ध्येयं सदा०…………… ।	११।५।३३
४० दुख: शान्त्यर्थ	" तामेसंकीर्तनं………… ।	१२।१३।२३
४१. विषतिवारक (१)	" देवदेव महादेव…… ……… ।	८।७।२१
४२. विद्या प्राप्त्यर्थ	" नम: शिवाय………… ।	१२।१०।१७
४३. पति प्राप्त्यर्थ (२)	" कात्यायनि………… ।	१०।२२।४
	या	
४४. एकाग्रतार्थ	" प्रसन्न वदा ओजं०………… ।	३।२८।१३-१९
४५. ब्रह्मदर्शनार्थ	" येन चेतयते विश्वं…………… ।	८।१।
४६. भवनाशार्थ	" कृष्ण कृष्ण…………… ।	११।७।२२

(१) यहांसे शिवोपासना मन्त्र हैं

(२) देवीके मन्त्र

४७. गर्भ रक्षार्थ	" पाहि पाहि…………… … ।	१।८।६
४८. आपत्तिमें प्रसन्नतार्थ	" कृष्णाय वासुदेवाय………… ।	१।८।२१
४६. भक्ति पुष्ट्यर्थ	" त्वयि मेऽनन्य………… ।	१।८।४२
५० देशविकासार्थ	" इमेजन यदा ………… ।	१।८।४०
५१. मृत्यु समय दर्शनार्थ	" स देव देवो………… ।	१।६।२४
५२. आत्म निवेदनार्थ (३)	" प्रान् दारन्सुता ब्रह्मन्………	४।२२।४४
५३. मृत्यु विजयार्थ	" मत्यो मृत्यु………… ।	१०।१
५४. वालरोग निवृत्यर्थ	" अव्यादजोंघ्र……… ।	१०।६।२२-२६
५५. पतिकी बीमारीसे रक्षार्थ	" अनुगृह्णी………… ।	१०।,१।५२
५६. संसार नाश्यर्थ	" कृष्ण कृष्ण महावीर……… ।	१०।१६।६
५७. कृष्णदर्शनार्थ	" हे नाथ रमण प्रेष्ठ……… ।	१०।३०।४०
५८. प्रेम प्राप्त्यर्थ	" अप्यङ्घ्रि मूले……………… ।	१०।३८।१६
५६. प्रेम प्राप्त्यर्थ	" नमस्ते वासुदेवाय…………… ।	१०।८०।३०
६०. पति पुर्नमिलन (१)	" तासामाविरभूच्छौरिः………… ।	१०।३२।२
६१. संकटनाशार्थ	" हे नाथ हे रमानाथ……… ।	१०।४७ ५३
६२. मस्तकपीड़ा	" दर्शयस्व महाभाग………… ।	१०।५७।३६

विभिन्न कामनाओंकी पूर्तिके लिए भागवतके चरित एवं मन्त्र*

निम्नलिखित सिद्ध प्रयोग अनेक महापुरुषों द्वारा अनुभूत एवं सफल हैं। भागवतमें स्वयं इनकी प्रामाणिकताका वर्णन है, अदितिने पयोव्रत आदिके द्वारा मनःकामनापूर्ण की थी। यहां केवल विवरणके लिए संक्षिप्त संकेत लिखा जा रहा है—

हेतु	चरितादि	स्कन्ध अध्याय श्लोक	फल श्रुतिके श्लोकांक
पितृ तृप्त्यर्थ	आत्मदेव	महात्म्य – ४-५	महा- ५।६०
हरिभक्ति	पाण्डव निर्याण	१।१४-१५	१।१५।५२
सर्वसिद्धि	देवोपासना	२।३।२	२।३।२-१०
भगवत्प्रसन्नता	ब्रह्म स्तुति	३।६।१-१५	३ ६।४०
आयुष्य	हिरणाक्ष वध	३।१३-१६।	३।१३।४८
भगवत्प्रीति	सांख्य तत्वदर्शन	३।२५-३३	३।३३।३७

(३) पुष्टि सम्प्रदायका ब्रह्म सम्बन्ध ।

(१) ३१वें अध्यायका सम्पुट : १६ दिन पाठकी विधि है।

*गुजराती—रमणलाल शा० भागवत तत्व चिन्तामणि

पापनाश	सती चरित	४।२-७।	४।६।:१
सर्वश्रेय	ध्रुव चरित	४।८-१२	४।१२।४५
भगवत्प्रेम	पृथु चरित	४।१५-२३	४।२३।३९
कर्म बन्धनाश	रुद्रगीत	४ २४।३३	४।२४।७८
जीवन्मुक्ति	पुरंजन चरित	४।२५-२९।०	४।२९।८३
ऐश्वर्यलाभ	क—विदुर मैत्रेय संवाद	४।३-४।०	४।३१।३१
	ख—भरत चरित	४।७-१४।०	४।१४।४६
स्थूलमें सूक्ष्मदर्शन	भूलोकादि चरित	५।१६-२६।०	५।२६-३९
पापनाशार्थ	शिशुमार	५।२३-४-८	५।२३-९
आपद्विनाशार्थ	नारायण कवच	६।८	६।८।३६-४२
शत्रुविजयार्थ	इन्द्र विजय	६।७-१३।०	६।१३।२३
वन्धन मुक्ति	चित्रकेतु चरित	६।१४-१७।०	६।१७।४०-४१
स्त्री सुख	पुंसवन व्रत	६।१९।०	६।१९।२५-२८
अभय प्राप्ति	प्रल्हाद	७।१-१०।०	७।१०।४६-४७
दुःस्वप्न नाश तथा मृत्युभय निवारण	गजेन्द्र मोक्ष	८।२-३।०	८।४।१४-१५
संसार दुःख निवृत्ति	अमृत मन्थन	८।५-१२।	८।१२।४६
परमगति	वामन	८।१५-२३।	८।२३।३०-३१
संकल्पसिद्धि	मत्स्यावतार	८।२४	८।२४।६०
कविबनने के लिये	नाभाग	९।४।१-१२	९।४।१२
भक्ति	अम्बरीष	९।४-५।	९।५।२७
कर्मबन्ध मोचन	रामचरित	९।१०-११।०	९।११ १३
भगवत्प्रेम	पूतनामोक्ष	१०।६	१०।६-४४
पराभक्ति	रासक्रीडा	१०।२९।३३	१०।३३।४०
कलंक निवृत्यर्थ	स्यमन्तकोपाख्यान	१०।५६-५७	
पराजय निवृत्ति	अनिरुद्ध	१०।६२-६३।०	१०।६३।५३
पापमुक्ति	पौण्ड्रक वध	१०।६६	१०।६६।४३
भगवद्भक्ति	कृष्ण गार्हस्थ्य	१०।१९।०	१०।२९।४५
पापमुक्ति	शिशुपाल वध	१०।७४	१०।७४।५४
विष्णु प्रीति	बलराम	१०।७९	१०।७९।३४
कर्मबन्ध मुक्ति	सुदामा	१०।८०-८१।	१०।८१।४१
पापनिवृत्ति	देवकी पुत्रानयन	१०।८५	१०।८५।५९
काम निवृत्ति	श्रुतिगीत	१०।८७	१०।८७।४४

शत्रु पराभव	शिव मुक्ति	१०।८८	१०।८८।४०
ईश्वर प्राप्ति	भागवत धर्म	११।२-५।	११।५।५२
द्वन्द्व निवृत्ति	भिक्षु गीत	११।२३	११।२३।६२
मुक्ति संग	यदु संवाद	११।७-९।	११।७-९।
मोह निवृत्ति	ऐल गीत	११।२६	११।२६।२६
मुक्ति	कृष्णोद्धव संवाद	११।७-२९	११।२९।४८
उत्तमगति	श्रीकृष्ण निर्याण	११।३१	१५।३१।१४
कर्माशय तथा संसार निवृत्ति	मार्कण्डेय चरित	१२।८-१०।	१२।१०।४२
ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति	महापुरुष लक्षण	१२।४।४-२६	१२।११।२६
सर्वसिद्धि	भागवत फल स्तुति	१२।१२।	१२।१२।५८-६४

नरनारायण मन्त्र	५।१९।११
नारायण मन्त्र	५।१९।११
नारायण मन्त्र	६।८।६।१० ६।५।२८
विष्णु मन्त्र	६।१९।७-८।
वासुदेव मन्त्र	१।५।३७, ४।८।५३, ८।३।२
रुद्र गीत	४।२४
नारायण वर्म	६।८।११-३४ (अनेक मन्त्रोंका संकेत)
रक्षाबन्धन मन्त्र	१०।६।२२-२९
कवच-नारायण वर्म	६।८।१२-३४
रक्षा कवच	१०।६।२२-२९

स्तव समावेश	**भागवतकी स्तुतियाँ**
१. कुन्तीकृत स्तव	१।८।१८-४३
२. भीष्म कृतस्तव	१।९।३२-४२
३. ऋषिकृत	३।१३।३४-४५
४. गर्भस्थ जीवकृत	३।३१।१२-२१
५. दक्षादि कृत	४।१।२६-४७
६. ध्रुव कृत	४।९।६-१७
७. भवकृत	५।१७।१८-२४
८. प्रजापतिकृत	७।८।४०।५६
९. प्रहलाद कृत	७।९।८-५०
१०. गजेन्द्र कृत	८।३।२-२९
११. ब्रह्म स्तव	८।५।२६-५०
१२. प्रजापतिगण कृत	८।७।२१-३५
१३. आदिति कृत	८।१७।८-१०
१४. गर्भ स्तुति	१०।२।२६-४१
१५. देवकीकृत	१०।१४।१-४०
१६. नागपत्नी कृत	१०।१६।३३-५३
१७. इन्द्र कृत	१०।२७।४-१३
१८. अक्रूर कृत	१०।४०।१-३०
१९. मुचुकुन्द कृत	१०।५१-४६-५८
२०. श्रुति स्तुति	१०।८७।१४-४१
२१. मार्कण्डेकृत	१२।८।४०-४९

इन स्तुतियोंमें वेदस्तुति वेदनाम परिपूर्ण सर्वोत्कृष्ट स्थानपर टीकाकारोंने भक्तवन्दोंने स्थापित की है। मुचुकुन्द-स्तुतिमें मायामुग्ध जीवनके स्वरूपका महत्व समझाया है।
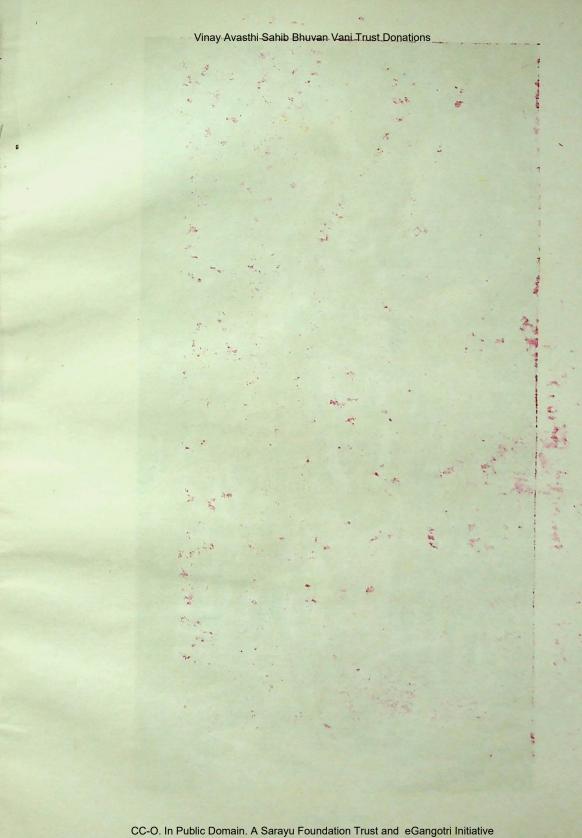
पुटनोटः– (परिशिष्टमें अन्य पाठानुष्ठान देखें) —सं०

—:०:—

कुञ्जबिहारी

१. आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी

२. डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल

३. श्री जगजीवनदास गुप्त 'जीवन'

४. पुराणाचार्य पं० श्रीनाथजी शास्त्री

५. श्री पं० हरिहर पाण्डेय पुराणेतिहासाचार्य

६. डॉ० प्रभुदयाल मीतल
(डी० लिट्, साहित्य-वाचस्पति)

श्रीमद्भागवतका सारतत्त्व

[आचार्य पं० श्रीसीताराम चतुर्वेदी]

मुक्तिकोपनिषद् में प्रसङ्ग आया है--

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम,
गोपायमा शेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवेऽताय मा मा बूया,
वोर्यवती यथा स्याम् ।।
यमेवविद्याश्रु तमप्रमत्तं मेधाविनं,
ब्रह्मचर्योपपन्नम् ।।
तस्मा इमामुमुपसन्नाय सम्यक्,
परीक्ष्य दद्याद् वैष्णवीमात्मनिष्ठाम् ।।

[ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणके पास पहुँचकर वैष्णवी ब्रह्मविद्या ने कहाकि यदि आप मुझे बलवती बनाए रखना चाहते हैं तो किसी द्वेषी कुटिल और असंयमी पुरुषको ब्रह्मविद्या न सिखाकर ऐसे व्यक्ति को भली प्रकार परखकर सिखाइए जो अपने आप इसे सीखनेके लिये आपके पास आवे, जिसने पहले से भी इस विद्याको सुन रखा हो, जो गम्भीर हो, मेधावी हो और ब्रह्मचारी हो ।] अतः ब्रह्मविद्याको ठीक-ठीक समझ पाना सबके वशकी बात नहीं है, क्योंकि 'ज्ञान पंथ' तो'कृपाकी धारा' है । उस पर चलते रह सकना सामान्य साहस, आत्मबल और कौशल की बात नहीं है । इसीलिये जब भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोकको जानेकी तैयारी करने लगे और उद्धवने उनके पास आकर परिप्रश्नों के द्वारा अपनी अनेक आध्यात्मिक शंकाओंका समाधान करा भी लिया तब भी उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से यही कहा—भगवन् ! जो व्यक्ति किसी भी प्रकार अपने मनको अपने वशमें न कर पाया हो वह तो आपकी बताई हुई योग साधना बड़ी कठिनाई से ही कर पा सकता है । इसलिये आप कोई ऐसा सीधा और सुगम मार्ग बता दीजिए जिससे मनुष्य सरलता से परम पद प्राप्त कर ले ।

उद्धव की जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें वह कल्याणकारी धर्म बताए देता हूँ जिसपर श्रद्धाके साथ चलने से मनुष्य दुर्जय मृत्युको भी जीत पा सकता है ! देखो ! मेरे भक्तको चाहिए कि वह जो भी कर्म करे सब मेरे लिये ही करे और धीरे-धीरे ऐसे कर्म करते समय भी सदा मुझे ही स्मरण करता रहे। ऐसा करनेसे कुछ ही दिनोंमें उसका मन तथा आत्मा मेरे ही धर्ममें आ रमेंगे। मेरे भक्तका कर्त्तव्य है कि जिन पुण्य स्थानोंमें मेरे भक्त साधुलोग निवास करते हों उन्हीमें वह भी जा रहे और देवता असुर तथा मनुष्योंमें मेरे जो भक्त जैसा आचरण किया करते हों वैसा ही आचरण किया करें, मुझसे सम्बद्ध जो पर्व पड़े, उन पर्वो पर सबको साथ लेकर या अकेले ही नृत्य, गीत और वाद्यादिके सहित महाराजाओंकी विभूतिके साथ सजाकर मेरी यात्रा आदिका महोत्सव करें। पवित्र अन्तःकरण वाले मेरे भक्त पुरुषका कर्त्तव्य है कि आकाशके समान जो मैं परमात्माके रूपमें बाहर और भीतर समाया हुआ हूँ उस आवरणहीन मुझ परमात्माको सभी प्राणियोंमें और अपने हृदयमें भी बैठा देखे । जो साधक भक्त ऐसी ज्ञान-दृष्टिके सहारे सब प्राणियों

और वस्तुओंमें मेरा दर्शन करता हुआ उन्हें मेरा ही रूप मानकर उनका आदर करता है और ब्राह्मण तथा चाण्डाल, चोर तथा ब्राह्मण भक्त, सूर्य और स्फुलिंग, कृपालु तथा क्रूरको समान समझता है वही सच पूछो तो सच्चा ज्ञानी है । जब साधक निरन्तर सभी नर-नारियोंमें मेरी ही भावना करता है, सबको मेरा ही रूप समझता है, तब थोड़े ही दिनोंमें उसके चित्तसे स्पर्धा, ईर्ष्या, तिरस्कार और अहंकार आदि सारे दोष दूर हो मिटते हैं । यदि अपने ही लोग उसकी हँसी भी उड़ाते हों तो भले ही उड़ाया करें, उनकी तनिक भी चिन्ता न करके और अपनेको अच्छा तथा दूसरेको बुरा समझने की भेद बुद्धि और लोक लज्जा छोड़कर उसे चाहिये कि कुत्ते, चाण्डाल, गौ औरगधे सबको पृथ्वी पर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे । जब तक सब प्राणियोंमें उसे मेरे दर्शन न होने लगें तब तक वह मन, वाणी और शरीरकी सब वृत्तियोंसे मेरी ही उपासना किया करता रहे । ऐसा अभ्यास करते-करते थोड़े ही दिनोंमें उसे सब कुछ ब्रह्मही ब्रह्म जान पड़ने लगेगा । उसके मनकी सारी उलझनें और संशय-शंकाएँ अपने आप दूर हो मिटेंगी और फिर उसे संसारके बदले में ही मैं दिखाई देने लगूँगा । मुझे प्राप्त करनेके जितने भी साधन हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ साधन यही है कि सब प्राणियों और वस्तुओंमें मन, वाणी और शरीरकी सारी वृत्तियोंसे मेरी ही भावनाकी जाय अर्थात् सब प्राणियों और पदार्थोंको मेरा ही रूप समझ लिया जाय । मेरा यह धर्म एक बार प्रारम्भ करलेने पर किसी प्रकारकी बाधा आने पर भी इसमें तनिक अन्तर नहीं पड़ेगा क्योंकि इस निष्काम धर्मको निर्गुण होनेके कारण मैंने ही इसे सबसे उत्तम माना है । इस धर्मका पालन करनेमें किसी प्रकारकी त्रुटि तो होती ही नहीं, यहाँ तक कि इस धर्मकी साधना करते हुए कोई साधक यदि भय आदि होने पर रोने-पीटने जैसे निरर्थक कर्म भी निष्काम भावसे मुझे समर्पित करदे तो उससे भी मैं प्रसन्न हो जाता हूँ और वे कर्म भी मेरे धर्म बन जाते हैं । सबसे बड़ा विवेक और सबसे बड़ी चतुरता यही है कि मनुष्य इस विनाश-शील और असत्य शरीरके माध्यमसे मुझ अविनाशी सत्य तत्व को प्राप्त करले । ब्रह्म विद्याका यह सारा रहस्य मैंने संक्षेप से तुम्हें सुना दिया है जो मनुष्योंके लिये तो क्या देवताओंके लिये भी जान सकना कठिन है ।

देखो, यह मनुष्य-शरीर बड़ी कठिनाईसे जीवको प्राप्त होता है । यहाँ तक कि देवता भी इस मानव-शरीरको प्राप्त करने के लिये तरसते रह जाते हैं क्योंकि चौरासी लाख योनियोमें यही एकमात्र ऐसा शरीर है जिसके द्वारा ईश्वर, ब्रह्म तथा परमपदको सरलतासे प्राप्त किया जा सकता है । गोस्वामी तुलसीदासजीने इसीलिये कहा—

> हरि ! तुम्ह बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
> साधन धाम बिबुध दुर्लभ तनु
> मोहि कृपा करि दीन्हों ॥

इस 'साधन-धाम' और' बिबुध दुर्लभ तनु'को पाकर भी जो मनुष्य सांसारिक मोह-मायाके फेरमें इसे नष्ट कर डालता है और इस शरीरके द्वारा परम पद प्राप्त करनेके सरलतम साधनका भी आश्रय नहीं लेता उससे बढ़कर जड़, कुबुद्धि और मूर्ख कौन हो सकता है ।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें अपने परम भक्त उद्धवको जो उपर्युक्त परम पद प्राप्त करनेका सरलतम मार्ग भगवान् श्रीकृष्णने सुझाया, वैसा ही सरल मार्ग श्रीमद्भगवद् गीताके बारहवें अध्यायमें भी भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको बताते हुए कहा था कि मेरे जो प्रेमी भक्त मुझमें अपना चित्त लगा लगाते हैं, उन्हें मैं अत्यन्त शीघ्र मृत्यु-रूपी संसार-सागर से बाहर उबार निकालता हूँ । इसलिये अर्जुन ! यदि तू अपना मन और अपनी बुद्धि मुझमें ला लगावेगा तो

तू मुझमें ही आ बसेगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है और यदि तुझसे यह न हो सकता हो और तू मुझमें अपना मन स्थापित न कर सकता हो तो अभ्यासके द्वारा मेरे गुणों के श्रवण, कीर्तन, मनन और जप आदिके द्वारा ही मुझे प्राप्त करनेका प्रयत्न कर। यदि तुझसे यह भी न हो पा सके तो जितना तू भी कर्म करता है वह सब ही मेरे लिये करता चल। इससे भी तू मुझे प्राप्त कर सकेगा। यदि तुझसे यह भी न हो सके तो अपने मनको अपने वशमें करके मुझे प्राप्त करनेके योगका आश्रय लेकर अपने सब कर्मोंका फल ही मुझे अर्पण करता चल। ऐसा त्याग करनेसे मनको पूरी शक्ति मिल जाती है।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको श्रीमद्भागवतमें और अर्जुनको श्रीमद्भागवद्गीतामें परमपद प्राप्त करनेकी सरल रीति बताई थी। उस पर चल सकना और अभ्यास करना अत्यन्त सरल कार्य है क्योंकि न तो इसमें कोई साधना करनी पड़ती, न योगाभ्यास करना पड़ता, न अन्य किसी प्रकारका शारीरिक या मानसिक क्लेश ही भोगना पड़ता। इसमें तो केवल इतनाही भर करना पड़ता है कि भगवान्में अपना मन लगा ले, सब प्राणियों और वस्तुओंको भगवान्का स्वरूप समझे और जो कुछ करे उसका सब फल भगवान्को अर्पित करता चले। इससे सरता और सरल दूसरा कौन उपाय हो सकता है?

हर्र लगै न फिटकिरी रंग चोखा आवै।

यही श्रीमद्भागवतका और श्रीमद्भगवद्गीताका सार तत्त्व है।

—:०:—

देवर्षि नारद

[डा. गोवर्धननाथ शुक्ल, अलीगढ़]

भारतीय-भक्ति-वाङ्मय में सर्वाधिक चर्चित, बहु-आयामी परम सत्तापन्न, विलक्षणतासंपन्न निस्त्रैगुण्य यदि कोई चरित्र है तो वह देवर्षि नारद का है। विश्वसाहित्य में ऐसा सर्वभूतहितेरत्त चरित्र कहीं देखने को नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में चरित्र-सर्जक महान् प्रतिभा संपन्न उर्वर कल्पनाशील किसी लेखक की लोक मंगल कारिणी मनीषा की मंगल परिणति ही नारद हैं। इसीलिए उन्हें 'ब्रह्मा का मानस पुत्र' कहागया है। देव-दानवों की स्वभाव विरोधी सृष्टियों में समानरूपसे समाहत कैतव विहीन-भूतदया संयोजक नारद का अन्यतम व्यक्तित्व 'देव तिर्यङ्नरादयः' की कल्याणकामना में निरत रहकर केवल एक ही कार्य करता है—अहर्निश भगवन्नाम कीर्तन। संभवतः भगवन्नाम के प्रभाव के कारण ही उनका व्यक्तित्व निखिल भूतनिकाय प्रिय बन गया है।

भारतीय-पुराण-साहित्य में नारद-चरित्र की अति-व्याप्ति के मूल में उनकी कोमल चित्त वृत्तिजन्य विश्व-करुणा ही है। इसीलिए वे लोक-श्रद्धा के अधिष्ठान हैं। शैव, शाक्त, वैष्णव पुराणों की अनन्त घटनाओं के मूल में देवर्षि नारद कहीं न कहीं प्रत्यक्ष किंवा परोक्ष रूप में

निश्चय ही समाए रहते हैं, जिससे घटना-संघटन में अद्भुत सहायता मिलती है और अन्ततोगत्वा वह लोक-मंगल-पर्यवसायिनी बन जाती है। नारद संबंधिनी सभी घटनाओं का तरतम सूत्र भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम से अनिवार्यतः निबद्ध रहता है। देवर्षि के व्यक्तित्वकी इस अनुस्यूतता की चर्चा पुराणोंमें तिलक[१] श्रीमद्भागवतके संदर्भोंतक ही सीमितरखी जायगी। क्योंकि अखिल पुराणों में यही ग्रन्थ सूर्य के समान तेजस्वी एवं दीप्तिमान माना जाता है।

१—श्रीमद्भागवतं पुराण तिलकं यद् वैष्णवानांधनम्।
 भा. भा. ६-८२

२—कलौ नष्ट दृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः॥ १-३-४४

श्रीमद्भागवत महापुराण चरम लोकमंगलात्मक दिव्यग्रंथ है। संसारसर्पदष्ट[1] प्राणिमात्र के लिए इसका अनुकथन ब्रह्मस्वरूप योगिराज श्री शुकदेवजी के द्वारा किया गया है। इसीलिए इसको 'निर्मल पारमहंस्य ज्ञान'[२] की संज्ञा दीगई है। इसके निरंतर सेवन से ज्ञानविराग युताभक्ति की साधना द्वारा नैष्कर्म का आविष्कार स्वयमेव होजाता है।[3] इसीलिए इस ब्रह्मसम्मित महापुराण को 'सात्वती श्रुति'[४] कहकर वेद के समकक्ष ठहराया गया है। महर्षि वादरायणकृष्णद्वैपायन व्यास जिन्हें भगवान्के अवतारों की परम्परा में सत्रहवाँ कलावतार[५] स्वीकार किया गया है—इस महापुराणके प्रणेता हैं। इस महापुराणकी कार्य वस्तु 'कैतव प्रोज्झित धर्म[६] अर्थात् फलाशा रहित धर्म-विशुद्ध प्रेम लक्षणाभक्ति—कानिरूपण हुआ है! यह फलाशा रहित विशुद्ध प्रेम लक्षणा भक्ति ही साधन-साध्य रूपा भगवत स्वरूपिणी है। इसीलिए यह निगम कल्पतरु' का आद्योपान्त रसमय फल[७] है जो जीवनके अंतिमक्षण तक सेवनीय है। ऐसे दुर्लभ किंवा-परम फल को श्रीवादरायण व्यासने देवर्षि नारदसे ही प्राप्त किया था। त्वरित इष्टसिद्धिकेलिए यह प्रसिद्ध है—तंत्र मार्ग ही सर्वाधिक सहायक होता है। अतः निःश्रेयस कीसिद्धि के लिए श्रीमद्भागवत महापुराण एक सर्वसुलभ तंत्र है। यही कारण है कि इसे सात्वततंत्र[८] भी पुकारा गया है और सात्वत संहिता भी।[९] देवर्षि ने यह सात्वत तंत्र अथवा सात्वत संहिता अपने पिता श्री ब्रह्मा जी से प्राप्त की थी।[१०] भलेही ब्रह्मा को यह ज्ञान स्वयं श्रीहरि से प्राप्त हुआ हो। श्रीहरि ने इस परम रहस्य अथवा विज्ञान समन्वित 'ज्ञान' को 'परमगुह्य ज्ञान' की संज्ञा दी थी।[1] गुह्यवस्तु की दान-परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए एकही सावधानी की आवश्यकता है—वह है—'सत्पात्र की खोज।'

सूर्य की भाँति त्रैलोक्य में भ्रमण करने वाले, प्राणवायुके समान प्राणिमात्र के अन्तकरणों के साक्षी[२] देवर्षि नारद के लिए सत्पात्र की खोज का कार्य दुष्कर नहीं था। अतः करुणाकलित-हृदय देवर्षि नारद कृष्ण द्वैपायन के आश्रमपर स्वयं उपस्थित होगए।[३] भगवतत्व-उपदेश सन्तों की स्वयं उपस्थिति तभी होती है जब साधक किंवा जिज्ञासु चरम आर्त-स्थिति को पहुँच जाय। चरम-आर्त्तता सन्त-उपलब्धि के लिए अनिवार्य शर्त है। तभी चरम-आत्मलाभ-संभव होता है। देवर्षि नारद एवं वादरायण व्यास का यह गुह्यज्ञानोपदेश ही सात्वत तंत्र किंवा श्रीमद्भागवत पुराण है। श्री नारद को अपने पिता श्रीब्रह्मासे आदेशथा कि इस संक्षिप्त 'गुह्यज्ञान' का तुम विस्तार करो[४] अतः लोक हितकारी-ज्ञानके विस्तारके

१—१२-१३-२१
२—१२-१३-१८
३—वहीं
४—१-४-७
५—१-३-२१
६—१-१-२
७—१-१-३
८—१-३-८
९—१—७—६
१०—२-७-५० सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान् विश्व-भावनः।

लिए देवर्षि की दृष्टिमें श्री बादरायण व्यास से अधिक कोई अन्य सत्पात्र नहीं था। सन्त शिरोमणि देवर्षि का बादरायण व्यास के आश्रम पर स्वयं उपस्थित होने का एक कारण यह भी था। अष्टादशपुराणों के रचयिता, वेदों के व्यासकर्ता श्री कृष्ण द्वैपायन की अभूतपूर्व प्रतिभा से नारद जी परिचित ही थे। अतः उनकी रचनात्मक सामर्थ्य भी गुह्यज्ञान की पात्रता को सिद्ध करने के लिए अलं थी। जगत् के नश्वर भोगों से नितांत वीतराग महर्षि द्वैपायन ने देवर्षि से उपदिष्ट होकर परमहंसों को प्रिय भागवतधर्मों का निरूपण करने के लिए श्रीमद्भागवत का प्रणयन कर डाला। लोक-कल्याणकारी भागवत-धर्मों के अनुपालन एवं आचरण का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रकट करने के लिए देवर्षि ने महर्षि बादरायण के समक्ष स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने पूर्वजन्मकी कथा कह डाली, जिसमें वे एक दासी पुत्र थे और संतों की जूठनके प्रभावसे निष्पाप हुए और कृष्ण लीलागान परायण महात्माओं के अशेष अनुग्रह से भगवत्कथा सुनने के उपरान्त भगवान् में उनकी रुचि जागृत हुई। शनैः शनैः रजस्तमोपहाभक्ति का उदय उनके हृदयमें हुआ। श्रद्धा-संयम-विनयसे परिपूर्ण व्यक्तित्व की संप्राप्ति पर उन्हीं महात्माओंद्वारा उन्हें वही भगवत्कथित गुह्यज्ञान का उपदेश मिला।[1] उपदेश की इस प्रथम भूमिकाने उन्हें माया के स्वरूप का बोध करा दिया। निरन्तर भगवत्स्मरण से भावरूपा प्रेमा भक्ति की प्राप्ति हुई। आदि

देवर्षि के इस आत्मकथन से बादरायण व्यास को इतना ही लाभ हुआ कि प्रेमाभक्ति के निरूपणार्थ विविध सोपानों के अनुसंधान पूर्वक श्रीमद्भागवतके चरमप्रतिपाद्य 'आश्रय' तत्व तक पहुँचने के लिए सर्गादि नौ लीलाओं के लक्षणों का वे प्रतिपादन कर सके।

१—२-६-३०
२—२-५-७
३—२-४-३२
४—२-७-५१

इस प्रकार भावनिर्जितमना, गतस्पृह देवर्षि नारद भगवद्दत्त गुह्यज्ञान के आद्य उपदेष्टा भक्त्याचार्य हैं जो अपनी स्वर ब्रह्म विभूषित देवदत्त वीणा पर भगवन्नाम का गायन करते हुए सत्पात्रों को भक्तिका दान देते हैं। और लोकहितार्थ त्रैलोक्य में भ्रमण करते हैं। देवर्षि का भगवद्भक्ति पर परम आग्रह इसीलिए है कि काम और लोभ की चोट से बार-बार घायल हुआ मन श्री कृष्ण-सेवा से ही प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव कर पाता है। यम नियमादि योगमार्गों से वैसी शान्ति उसे कदापि नहीं मिल सकती।[1]

साधना की अनन्त झंझटों से त्राण पाते हुए, काम क्रोधादि षट् विकारों से अनायास विजयी होकर जीवन को शाश्वत आनन्द का दान देना है तो वह भक्ति के सरल राजमार्ग से ही एकमात्र साध्य है—यही देवर्षि के त्रैलोक्य भ्रमण का अंतिमध्येय है। अपनी इस ध्येय की संपूर्ति के लिए सतत चेष्टाशील देवर्षि की कार्य-पद्धति पर दृष्टि डाल लेना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

देवर्षि के लोकोपकारक कार्यों की सामस्त्येन समीक्षा की जाय तो उन्हें चतुर्धा वर्गीकृत किया जा सकता है—

१—निरीक्षण—(लोक कल्याणार्थ एवं आत्म कल्याणार्थ)
२—परीक्षण
३—सूचना
४—एवं प्रसारण

निरीक्षण—श्रीमद्भागवत में देवर्षि के लिए दो उपमाएँ दी गई हैं। १—'पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीम्' एवं २—अन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी—अर्थात् वे सूर्यवत् त्रैलोक्यमें भ्रमण करने वाले हैं तथा प्राणवायुके समान सबके भीतर रहकर अन्तकरणों के साक्षी भी हैं। भारतीय आस्थामयी मनीषा नारद के ऐतिहासिक व्यक्तित्व में

१—१-५-३०

निर्भ्रान्त है। उन्हें वह संदेह की दृष्टि से नहीं देखती। किन्तु उपर्युक्त दोनों ही विशेषताओं से संपन्न व्यक्ति को मूर्तरूप भौतिकतावादीं पार्थिव बुद्धि स्वीकार नहीं कर पायेगी। परन्तु देवर्षि को निरीक्षण का जो स्वरूप पुराणों में वर्णित है उससे उपर्युक्त दोनों ही विशेषण सटीककहाते हैं। वे दानवों के क्रियाकलापों को भी देखते हैं और देवों की भी। निरीक्षण ही उनकी यथास्थान सूचनाओं का आधार है। उनकी यथास्थान सूचनाएँ—जिनसे देव और दानव दोनों ही लाभान्वित होते हैं—स्वयं निरीक्षित होती हैं। वे भगवान् की विधि-निषेधमयी सभी लीलाओं के द्रष्टा हैं, साक्षी हैं। उनका लोक-निरीक्षण पर-कल्याण-कामना से होता है—राज्यों में जाना, राजवंशों के क्रियाकलापों को देखना, सर्व साधारण के कृत्यों को देखना, उन्हें जप, उपवास व्रतादि का उपदेश देना उनके निरीक्षण के अन्तर्गत ही है। यहाँ तक कि उमा, सीतादि दिव्या नायिकाओं के वरान्वेषण उनकी प्राप्ति के उपायों का संकेत उनके लोक-निरीक्षक रूप का परिचायक है। राम-कृष्ण की अवतार लीलाओं में उनका निरीक्षण आत्म कल्याण के हेतु ही है। रामावतार में वे बार-बार अयोध्या आते हैं और भगवान् के दिव्य चरित्रों का अनुकथन देवलोक ब्रह्मलोक आदि में करते हैं। श्रीकृष्णावतारमें द्वारका के राजमहलों में भगवतलीला का निरीक्षण भी आत्मकल्याणार्थ है। इन निरीक्षणों में उनका उपदेष्टा रूप प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहता है। वे इन निरीक्षणों से भगवन्माहात्म्य का प्रचार प्रसार भी करते हैं।

परीक्षण—देवर्षि नारद, संतों, असंतों, देवों, दानवों सुरों, असुरों के, ऋषियों मानवों सभी के गुण, कर्म, स्वभाव के परीक्षक हैं। सन्तों के वे रक्षक, उनकी साधना को प्रोत्साहन देने वाले तथा उन्हें शाश्वत भयसे मुक्त करने वाले हैं। इस दृष्टि से वे सृष्टि के लोक मंगल-विधायक तत्वों के पुष्टिकर्ता है। साथ ही जयन्त, कुबेर पुत्र यमलार्जुनादि को सन्मार्ग पर लगाने वाले हैं। हिरण्याक्ष को विष्णु का रसातल का पता देने से वे हिरण्याक्ष के उद्धार-कर्ता तो सिद्ध होते ही हैं सृष्टि का मंगल विधान भी वे अनायास कर देते हैं।

देवर्षिके व्यक्तित्वकी महनीय विलक्षणता इस बातमें निहित है कि वे अनिष्ट-विनाशके मूल कारण होकर भी अनिष्ट-कारकोंके अप्रिय नहीं। इसके मूलमें देवर्षिकी चरम निस्पृहता, अपरिग्रहता एवं निर्भीकताही है। देवर्षि देश, काल. परिस्थितिके अद्वितीय ज्ञाता हैं, अतः तदनुकूल स्व-कर्तव्य निर्धारणमें उन्हें कभी बाधा उपस्थित नहीं होती। भूगोलखगोल, लोक, लोकान्तर, ग्रह-उपग्रहादि उन्हें हस्तामलक हैं। सर्वत्र उनकी अव्याहत गति है, ब्रह्माण्ड-चक्रमें चल रहे कार्य-कलापों की उन्हें पूर्ण जानकारी है, किस क्षण कौनसा कार्य किस विधिसे करना है यह उन्हें पूर्व-निर्णीतसा रहता है, इसीलिये प्रायः लोगों को भ्रम होता है कि देवर्षिका एकही व्यक्तित्व था किंवा देवर्षि नारदकी एक पौराणिक-परंपरा रही है। क्योंकि देवर्षिकी चर्चा एक विराट् व्यापक व्यक्तित्वके रूपमें पुराणोंमें विद्यमान है। रामकथा, कृष्ण कथाके वे उपदेष्टा हैं। आदि वाराहसे लेकर यावन्मात्र अवतारों की कथाओं से वे जुड़ेहुए हैं। इस दृष्टिसे वे एक महान् परीक्षक की भूमिका निभाते हैं। योग्य व्यक्तिकी पहचान कर उसे उसके अनुरूप कार्य-सौंपना देवर्षि का अन्यतम कार्य है। ध्रुव, प्रह्लाद, हर्यश्वादिको पात्रानुकूल भक्ति तथा निवृत्तिमार्ग का उपदेशदेना उनकी विचक्षणताकाही प्रमाण है। ध्रुव प्रह्लादि गृहस्थ भक्त थे। हर्यश्वादि यति-धर्मी थे। प्रवृत्तिमूलकभक्ति मार्ग एवं निवृत्तिमूलक भक्तिमार्ग दोनों ही के उपदेष्टा देवर्षिनारद हैं। किसमें किस मार्गकी पात्रता है, किंवा किसको किस मार्ग का उपदेश देना है, इसका परीक्षण करके ही वे साधक को तदनुकूल प्रवृत्तकरते हैं। इसदृष्टिसे उनकी यह विलक्षण प्रतिभा बे जोड़ ठहरती है।

१—यमादिभिर्योगपथैः काम लोभ हतो मुहुः।
मुकुन्दसेवया यद् वत् तथाऽऽत्माद्धान शाम्यति १-६-३६

दक्ष प्रजापतिके हर्यश्व नामके पुत्रोंको कूटशैलीसे निवृत्तिमार्गका उपदेश देकर उन्हें देवर्षिद्वारा गृहस्थ धर्मसे विमुख करनेका संकेत ऊपर दिया जा चुका है, इसके उपरान्त उन्हीं दक्ष प्रजापतिके एक सहस्र पुत्र जिनकी शबलाश्व संज्ञा थी—उनकोभी देवर्षिने नारायण मंत्र देकर प्रवृत्ति-धर्मसे विमुखकर दिया। इस परवे दक्षा प्रजापतिसे अभिशप्त भी होगए, परन्तु दक्षका यह उपदेश भी उन्हें वरदानही सिद्धहुआ। वे अनिकेत रहकर लोक-लोकान्तरों में चंक्रमण करतेहुए भागवत-धर्मका प्रचार एवं प्रसार और अधिक सुविधासे करते रहे। इस प्रसंगमें भागवत-कारने लिखा है–"नारदोऽमोघदर्शनः" देवर्षिका दिव्यदर्शन अमोघ होगया। वे जहाँ भी उपस्थितहुए कल्याण कारी रूपमें ही प्रसिद्धहुए। दक्षप्रसंग से देवर्षिका तितिक्षामय भागवत स्वरूप और भी निखर गया। क्षमाशील देवर्षि प्रतिकारमें शाप न देकर प्रशान्त मनसे उसे अंगीकारकर लेते हैं।

प्रवृत्तिमूलक भागवतधर्म एवं निवृत्तिमूलक भागवत धर्मके अतिरिक्त देवर्षि नारद श्रुति सम्मत वर्णाश्रम धर्मके उपदेष्टाभी हैं। भक्ति-शास्त्रके गूढ़ रहस्योंके अप्रतिम व्याख्याता देवर्षिके भक्ति-सिद्धान्तविषयक-अप्रतिमबोधके दर्शन श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धमें युधिष्ठिरके शिशुपाल-दन्तवक्त्रके भगवद्द्वेषविषयक प्रश्नकरनेपर होते हैं। देवर्षि पहलेव्यक्ति हैं जिन्होंनेभगवद् भक्तिके अनंत भेदों, उपभेदों, आसक्तियों का रहस्य जन-साधारणको सुलभकराया था। नारदीयभक्तिसूत्र भारतीय भक्तिवाङ्मयका अनुपमग्रन्थ आजभी बना हुआ है।

भगवद्भक्तिके उपदेष्टाके रूपमें देवर्षिकी चर्चा अनेकस्थलोंपरकी जा चुकी है। देवर्षि स्वयं निवृत्तिमार्गी योगिराज हैं। किन्तु श्रुतिप्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मके कठोर समर्थक हैं। उनका वर्णाश्रम-धर्मोपदेशयुधिष्ठिर संवादमें मिलता है। तात्पर्य इतनाहीकि उनका उपदेश उद्देश्य की परिस्थितिके अनुकूलही चलता है। इसी-कारणवे भक्ति सिद्धान्तके आद्याचार्य हैं।

सूचना—देवर्षिका सबसे महत्त्वपूर्णकार्य देव-दानव-नर सृष्टिके मध्य सूचनाओं का संप्रसारण है। पौराणिक आख्यानों उपाख्यानोंके गतिशील प्रवाहमें कुंठा या गतिरोधका आभास होने लगता है अथवा जिस गुह्य-रहस्यके बोधके सभीमार्ग आवृतहो जाते हैं वहाँ देवर्षि की चामत्कारिक उपस्थिति पाठक को एक अतीन्द्रियसंतोष प्रदान करती है। विदुर जी तथा गांधारीके साथ धृतराष्ट्र अचानक गायब होगए हैं। संपूर्ण राजकुल उनकी अनुपस्थितिसे शोकाकुल है, यहाँ तककि महाभारतके संपूर्ण युद्धकी विस्तृत सूचना सुनानेवाले संजयभी उसदिन महाराज युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके अकस्मात् चले जानेका पता नहीं देसके। वहाँ तुम्बरुके साथ १ नारदजी की अचानक उपस्थित और धृतराष्ट्र विषयक प्रामाणिक सूचना देना कितना शक्तिदायी सिद्ध हुआ है, यह पाठकोंसे अवदित नहीं। इसी प्रकार ध्रुव विषयक सूचना महाराज उत्तानपादको देना देवर्षिका अनुपम सूचना कार्य था। स्वयं देवर्षिके पास घटनाओंकी जानकारीके क्या साधन थे, इस विषयमें संपूर्ण पौराणिक वाङ्मयमौन है।

यथार्थ तो यह है कि पुराणकारने नभोवाणी और नारद इन दो तत्त्वोंका आविष्कार करके पुराण-साहित्यकी सरिताकी गतिको कुंठित किंवा गत्यवरोधसे बचाया है। अन्यथा इनदो तत्त्वोंके बिना पौराणिक आख्यानों-उपाख्यानोंकी क्या गति होती यह कल्पनातीत है।

प्रसारण—देवर्षि भागवतधर्मके अनुपम प्रचारक हैं। उपदेष्टा यदि घुमक्कड़ निस्स्वार्थ लोक-सेवक निस्पृही एवं अपरिग्रही हो तो उसजैसा अनुपम साधुचरित्र आदर्शलोक नायकहो नहीं सकता। भागवत धर्म ईश्वर प्रतिपादित सर्व-भूतहितकारीधर्म है।१ इसप्रकारके धर्मकी न पहले कभी कल्पनाहुई न भविष्यमें होसकेगी। यह एक व्यापक भाव है जो ईश्वर प्रणीत है।२ वर्ण–आश्रम मजहब जाति-देश, कालातीत लोकातीत भावस्थिति है, जो

---

१. श्रीमद् भाग० १-१३-३७

प्राणिमात्रमें अवस्थित है। आवश्कता है इसके उद्घाटनकी। ऐसे देशकालातीत व्यापक भावको जागृत करनेके लिए ऐसेविराट् व्यक्तित्व की आकाँक्षा बनी रहती है जो इस लोकमंगलात्मक कार्य का सुचारु संपादन कर सके। भारतीय वाङ्मयमें इस आकांक्षाकी पूर्ति देवर्षि नारदके महान् व्यक्तित्वकी परिकल्पना द्वारा की गई है। इसीलिए देवर्षिका व्यक्तित्व देवासुर तिर्यङ्नरादयः सभीके लिए आदरणीय एवं वरणीय बना हुआ है। देवर्षि भगवान्के नाम रूप लीला धाम सभीके प्रचारक है। वे स्वर ब्रह्म-विभूषिता वीणा पर भगन्नामका कीर्तन करतेहुए आत्मनिवेदनान्तभक्ति सिद्धान्तका प्रचारकरते हैं। इसीके अन्तर्गत मानवधर्म, लोकधर्म, राजधर्म सभीका समावेश हो आता है। यावन्मात्र वेदान्तादि दर्शनएवंभक्ति सिद्धान्तोंके वे उपदेष्टा हैं ही अतः सृष्टिकी शाश्वती स्थितिके जितनेभी विधान हैं उनसबके विधायकतत्त्वों से देवर्षिका नित्य-संबंध है। देवर्षिका इस दृष्टिसे-यहप्रचार कार्य सर्वतोभावेन पक्षपातरहित निखिलकल्याण-कामनाके सिद्धान्त पर आधारित है। बुद्धि तत्त्व एवं हृदय तत्त्व अथवा चिंतन एवं संवेदन शीलताका उच्चतम समन्वय देवर्षिके व्यक्तित्वमें समाहित है। यह व्यक्तित्व मानव-सृष्टि एवं देव-सृष्टिके मध्यकी ऐसी स्वर्ण-शृंखला हैं जो एक दूसरेको परस्पर संबंधित किये हुए हैं। इसीलिए उनके आर्षत्वमें देव विशेषण जुड़ाहुआ है। दोनों ही विशेषण उच्चतम सात्त्विक आचरणके द्योतक हैं।

देव-एवं मानव दो सृष्टियोंके समन्वित व्यक्तिहोकरभी देवर्षि मानव सृष्टिके अधिक निकट लगते हैं। मानसकार तुलसीने बड़ी कुशलतासे यह समन्वय स्थापित किया है। मानवोचित उनमें राग-रोष, इच्छा, दम्भ अनुपात सभी कुछ दिखाया गया है पर वह सब भगवल्लीला की हठीली भूमिका पर। परिणामतः वे पाठक की श्रद्धासे वंचित नहीं होपाते। निरीक्षण परीक्षादि नारदीय चरित्रके चारों तत्त्व यथावत्मानसमें भी अवतरित हुए हैं, परन्तु मानसके नारद यदि मानव-धरातलके अतिनिकट हैं तो श्रीमद्भागवतके नारद देव-सृष्टिके। क्योंकि वहाँ राग-रोषादि विकार कहीं उभरे हुए नहीं दीखते। वहाँ उनका विशुद्ध भागवत-स्वरूप ही प्रतिपादित हुआ है।

---

१. धर्मंभागवतंशुद्धं त्रैविद्यंचगुणाश्रयम्। ६।२।२४

२. धर्मं तु साक्षात्भगवत्प्रणीतं नवैविदुर्ऋषयोनापिदेवाः। ६।३।१९

—०—

श्रीमद्भागवतका शिशुमार चक्र

श्री जगजीवनदास गुप्त' जीवनसम्पादक—'चिन्ता हरण जन्त्री ।

आकाशमें जब बादल न हों और चंद्रमा भी न हो अथवा क्षीण चंन्द्र हो तब इस शिशुमार चक्र को भली-भाँति देखना चाहिये । कृष्ण पक्षकी तिथि १० से १३ तक चंद्रकला क्रमशः क्षीण होनेसे उसका प्रकाश घटता जाता है; कृष्ण १४ से शुक्ल १ तक चंद्रका लोप एवं शुक्ल २को चंद्र-दर्शन होता है । आगे शुक्ल ५ तक उसके प्रकाशमें थोड़ी ही वृद्धि होती है । अतः तबतक चंद्रक्षीण ही माना जाता है । क्षीण चंद्रके अल्प प्रकाशमें आकाशस्थ शिशुमार चक्र को विशेष स्पष्टतापूर्वक देखा जा सकता है । इसका रूप ऐसा है जैसे कोई बड़ा घड़ियाल (मगर) कुण्डली मार कर बैठा हो । पाश्चात्य खगोल शास्त्रमें इसका नाम 'मिल्की वे' (Milky way) अर्थात् दुग्धमय पथ है; भारतीय ज्योतिर्विद् इसे आकाश गंगाके नामसे जानते हैं । इस घड़ियालके विभिन्न अङ्गोंमें विशिष्ट नक्षत्रोंका निर्देश किया गया है । यह शिशुमार कुंडली मार कर नीचे सिर किये बैठा है, जिससे इसकी पूँछकी नोक मुखके पास है । इसकी पूँछकी नोंक पर ध्रुव है । पूँछ पर प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म नामक तारे हैं । पूँछकी जड़में धाता और विधाता नामक दो तारे हैं । उसके शरीरभाग में कमर पर सप्तर्षि हैं जिसे पाश्चात्य खगोल शास्त्रमें वृहद् ऋक्ष अर्थात् बड़ा भालू (Great-Bear) कहा गया है । घड़ियालके रूपमें कल्पित इस आकाशीय शिशुमार चक्र की कुण्डली दक्षिणावर्त है, तद्नुसार उत्तरायणके नक्षत्र इसके दक्षिण पार्श्वमें एवं दक्षिणायनके नक्षत्र इसके वाम पार्श्वमें देखने चाहिये । दोनों ओर नक्षत्र-संख्या बरावर है । शिशुमारकी पीठ पर अज वीथी (छोटी आकाश गंगा), पेटके मध्यभागमें आकाश गंगाका विशालतम तारा-समूह है; दाहिने बायें नितम्ब पर क्रमशः पुनर्वसु और पुष्य, पिछले दाहिने-बायें पैरों पर आर्द्रा और आश्लेषा, दाहिनी-वाम नासिका पर अभिजित् और उत्तराषाढ़ा, दाहिने बायें नेत्रों पर श्रवण और पूर्वाषाढ़ा, दाहिने बायें कानों पर धनिष्ठा और मूल स्थित हैं ।

मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा और अनुराधा, ये आठ उत्तरायणके नक्षत्र शिशुमार के वाम पार्श्व में तथा मृगशीर्ष, रोहिणी, कृत्तिका, भरणी, अश्विनी, रेवती, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाभाद्र पदा, ये विलोम क्रमसे दक्षिणायनके आठ नक्षत्र दाहिने पार्श्वकी पसलियोंमें हैं ।

दाहिने बायें कन्धेमें शतभिषा, ज्येष्ठा, थूथनके ऊपरी भाग पर अगस्त्य, थूथनके निचले भाग पर दोनों यम तारक स्थित हैं । ग्रहोंमें मंगलका आधिपत्य शिशुमारके मुखमें, शनिश्चरका उपस्थ पर है। उसकी पीठके ककुद पर वृहस्पतिका, वक्षस्थलमें (रात्रिमें अदृश्य) सूर्यका, हृदयमें अदृश्य नारायणका, मनमें अदृश्य चंद्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनों पर दोनों अश्विनीकुमार, श्वासनली पर बुध, गले पर राहुका आधिपत्य है । केतु अनेक हैं, कई अप्रकट, अदृश्य हैं । वे सब शिशुमारके सभी अंगोमें और समस्त तारे उसके रोमोंमें व्याप्त हैं ।

भगवान् विष्णुका यह सर्व देवमय रूप प्रतिदिन संध्योपरान्त अँधेरा होने पर जो मनुष्य मौन होकर ध्यानपूर्वक देखता और इसे प्रणाम करता है, उसके उसदिनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । (५-२३,१ से ७)

श्रीमद्भागवतका खगोल

[श्री जगजीवनदास गुप्त 'जीवन' सम्पादक चिन्ताहरण जन्त्री]

गोल (Sphere)—बिन्दु से रेखा, रेखा, से वृत्त तथा वृत्त से गोल की उत्पत्ति होती है। अर्धवृत्त को अपने स्थिर व्यास पर चारों ओर घुमाने से वह जितने घनात्मक स्थान को घेरता है उसको गोल या गोला कहते हैं। गोले के प्रत्येक बिंदु की दूरी उसके एक निश्चित स्थिर केन्द्र-बिंदु से समान रहती है।

खगोल (Celestial Sphere)—उस कल्पित रूपसे खोखले गोल को कहते हैं जिसकी भीतरी सतह पर यावत् आकाशीय तारे एवं ग्रह-पिण्डादि निरूपित किये जाते हैं और जिसका केन्द्र स्वयं द्रष्टा होता है। द्रष्टा के क्षितिजके ऊपर वाले खगोल का आधा भाग ही उसे किसी एक समय में दृश्य होता है, शेष आधा भाग क्षितिज के नीचे रहने के कारण अदृश्य रहता है। इसीलिये जब हम रात्रिमें आकाशकी ओर देखते हैं तो वह हमें एक विशाल छाता या तम्बू (Dome) सा दिखाई पड़ता है, जिसमें असंख्य तारे एवं ग्रह चमकते दृष्टिगोचर होते हैं। खगोल शास्त्रमें इन्हीं खगोलवर्ती आकाशीय पिण्डों की भौतिक संरचना, योजनात्मक गति [Linear motion] एवं कोणीय वेग [Angular Velocity] तज्जन्य काल-विधान, उनकी पारस्परिक उर्ध्वाकार स्थिति,कोणीय दृष्टि योग (Angular Aspects) आदि का अध्ययन किया जाता है। श्रीमद्भागवतके मूल प्रतिपाद्य वे परमपुरुष हैं जिनसे परिचय होने पर जिज्ञासु को यह संपूर्ण खगोल हस्तामलकवत् हो जाता है और 'कृष्णंवंदे जगद्गुरुम्' यह शास्त्र-वाक्य आत्मानुभूत हो जाता है। उन्हीं परमगुरुकी प्राप्ति कराने के उद्देश्य से रचेगये इस महापुराण में खगोल-शास्त्र का जो संक्षिप्त किंतु अत्यन्त सारगर्भित और नवीन अनुन्धान के लिए सतत उत्प्रेरक एवं हृदयग्राही वर्णन किया गया है, वह यहाँ दिया जा रहा है।

श्रीशुकदेवजी राजा परिक्षित से कहते हैं— राजन्! स्वर्ग और पृथ्वी के बीचमें जो ब्रह्माण्ड का केन्द्र है, वहीं सूर्य की स्थिति है। सूर्य और ब्रह्माण्ड गोलक के अन्तरालमें चतुर्दिक् पच्चीस करोड़ योजन का अंतर है ।।५।४३।। इस मरणधर्मा अण्डमें सूर्य वैराज रूपसे विराजमान हैं, इसीसे इनका नाम 'मार्तण्ड' है। ये हिरण्यमय (ज्योतिर्मय) ब्रह्माण्ड से प्रकट हुए हैं, इसलिये इनको 'हिरण्यगर्भ' भी कहते हैं ।।४४।। सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, अन्तरिक्ष, भूर्लोक स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भाग विभक्त होते हैं ।।४५।। सूर्य ही देवता, तिर्यक् मनुष्य, सरीसृप और लता-वृक्षादि समस्त् जीव-समूह के आत्मा और नेत्रन्द्रिय के अधिष्ठाता हैं ।।४६।।

आगे श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षित से कहते हैं:— राजन्! परिमाण और लक्षणों सहित मण्डल का कुल विस्तार हम, पहले तुम्हें बता चुके हैं; उसीके अनुसार विद्वान् लोग द्युलोकका भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना-मटर आदि के दो दलों में से एक का रूप जान लेने से दूसरेका भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भूलोक के परिणाम से ही द्युलोकका भी परिमाण जान लेना चाहिए। इन दोनों के बीचमें अंतरिक्ष है, वह इन दोनों का संधिस्थल है। इसके मध्य में स्थित ग्रह नक्षत्रों

के अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाश से तीनों लोकों को तपाते और प्रकाशित करते रहते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुव नामक क्रमशः मंद, शीघ्र और सम (मध्यमा) गतिसे स्व कक्षा में चलते हुए, ऊँचे, नीचे और समतल स्थानों में जाकर दिन रात को बड़ा, छोटा या समान (तुल्यमान) करते हैं। जब सूर्य सायन मेष राशि या तुला राशि (बसंत विषुव और शरद्-विषुव) पर आते हैं, तब दिन रात का मान समान (तुल्य) हो जाता है। जब वे तुलादि पांच राशियों में चलते हैं, तब प्रतिमास रात्रिमान एक-एक घटी कम होता जाता है और उसी क्रमसे दिनमान बढ़ता जाता है। जब सूर्य वृश्चिकादि पांच राशियों में चलते हैं तब दिन रात्रिमान में इनके विपरीत परिवर्तन होता है। इस प्रकार सूर्य के दक्षिणायन होने तक दिनमान बढ़ता रहता है एवं उनके उत्तरायण होने तक रात्रिमान ! (भौगोलिक विषुवत् रेखा के प्रदेशों में तो दिनरात्रि का मान सदैव तुल्य रहता है अर्थात् ३० घटी का दिनमान और ३० घटी का रात्रि-मान कुल ६० घटी का अहोरात्र होता है।)

पूर्वोक्त गतियोसे सूर्य के परिभ्रमण द्वारा आकाशमें बननेवाली उसके कक्षा-वृतके केन्द्रमें मानसोत्तर पर्वत कल्पित है। इसके चतुर्दिक् सूर्यकी परिक्रमाका मार्ग नौ करोड़, इक्यावनलाख योजन बतलाया गया है। उस पर्वतके पूर्वकी ओर इन्द्र की देवधानी, दक्षिणमें यमराज की संयमनी, पश्चिममें वरुणकी निम्लोचनी और उत्तरमें चन्द्रमाकी विभावरी नामक पुरियाँ हैं। इन पुरियोंमें मेरु-पर्वतके चारों ओर यथा समय सूर्योदय, मध्याह्न, सायं-काल और अर्धरात्रि होते रहते हैं; इन्हीके कारण जीवमात्रकी कार्य-प्रवृत्ति एवं निवृत्ति हुआ करती है। राजन् ! जो लोग सुमेरु-शिखर (पृथ्वीके दक्षिणोत्तर ध्रुवों) पर रहते हैं, वे उसकी गतिके अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोंकी ओर जाते हुए यद्यपि मेरुको बायींओर रखकर चलते हैं, तथापि प्रवह वायुके कारण वे उसे दायीं ओर रखकर चलते हुए जान पड़ते हैं; क्योंकि निरन्तर दायीं ओर बहन एवं सारे ज्योतिर्मण्डलको सतत घुमाने वाली प्रवह वायु भपञ्जरको पश्चिमाभिमुखही घुमाती है। इसे यों भी समझा जा सकता है कि वह पृथ्वीको ही अपने अक्ष पर पूर्वाभिमुख घुमाती है, जिससे आकाशीय समस्त ज्योतिर्मण्डल नित्य पूर्वसे पश्चिमकी ओर जाते हुए दिखाई देते हैं। जिसपुरीमें सूर्य उदय होते हैं, उसके ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें वे अस्त होते मालूम देंगे और वहाँ वे लोगों को पसीने-पसीनेकर तपा रहे होंगे, उसके ठीक सामनेकी ओर आधीरात होनेके कारण वे उन्हें निद्रावश किये होंगे। जिन लोगोंको वे मध्याह्नके समय स्पष्ट दीख रहे होंगे, वे ही सूर्यके सौम्य दिशामें पहुँच जाने पर उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे।

सूर्यदेव जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते हैं, तब पन्द्रह घटीमें वे सवा दो करोड़ साढ़े बारह लाख योजनसे कुछ पचीसहजार योजन—अधिक चलते हैं; फिर इसी क्रमसे वरुण और चंद्रमाकी पुरियोंको पार कर पुनः इन्द्रकी पुरीमें पहुँच जाते हैं। इसी भांति चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी राशिचक्रमें अन्य नक्षत्रोंके साथ-साथ उदित और अस्त होते रहते हैं। इस तरह भगवान् सूर्यका वेदमयरथ एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख, आठसौ योजनकी गतिसे चलता हुआ उक्त चारों पुरियोंमें घूमता ही रहता हैं। इसका संवत्सर नामक एक चक्र (पहिया) बतलाया गया है। उसमें मास रूप बारह अरे हैं; ऋतु-रूप छः नेमियाँ (हाल) हैं, तीन चौमासे-रूप तीन नाभि (आँवन) हैं। इस रथ-चक्र की धुरीका एक सिरा मेरु-शिखर पर है और दूसरा मानसोत्तर-पर्वत पर। इनमें संलग्न यह पहिया कोल्हू के पहियेके समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वतके ऊपर चक्कर लगाता है। इस धुरीमें एक और धुरीका मूल भाग जुड़ा हुआ है। वह लंबाईमें इससे चौथाई है। उसका ऊपरी भाग तैलयंत्रके धुरेके समान ध्रुवलोकसे संलग्न है। इस रथमें बैठनेका स्थान छत्तीसलाख योजन लंबा और नौ लाख योजन चौड़ा है। इसका जुआ भी छत्तीसलाख योजन ही लंबा है। उसमें अरुण नामके सारथिने गायत्री आदि छन्दों जैसे नामवाले सात घोड़े जोत रखे है; वे ही इस रथ पर बिराजमान भगवान् सूर्यको

ले चलते हैं। सूर्यदेव के आगे उन्हींकी ओर मुँह करके बैठे हुए अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं। भगवान् सूर्यके आगे अँगूठेके पोरुए-बरावर आकारवाले बालखिल्यादि साठ हजार ऋषि स्वस्तिवाचनके लिए नियुक्त हैं। वे भगवान् सूर्यकी स्तुति करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता भी जो कुल चौदह हैं, किंतु जोड़ेसे रहनेके कारण सातगण कहे जाते हैं—प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नामवाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मोंसे प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करने वाले आत्मस्वरूप सूर्यकी दो-दो मिलकर उपसना करते हैं। इस प्रकार सूर्यदेव भूमण्डलके नौ करोड़, इक्यावनलाख योजन लंबे घेरेकी दो हजार दो योजनकी दूरी प्रत्येक क्षणमें पार कर लेते हैं।

इस पर महाराज परीक्षितने सूर्यके उपलक्षणसे ग्रहगति विषयक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न श्रीशुकदेवजीसे पूछा,—भगवन् ! आपने बताया कि यद्यपि सूर्यदेव राशि मण्डल में सञ्चरण के समय मेरु एवं ध्रुव कोदायीं ओर रखकर चलते प्रतीत होते हैं; किंतु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणवर्त नहीं होती—इस विषय को सम्यक्तया हम कैसे समझें ?

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन ! जैसे कुम्हारके घूमते हुए चाकपर कोई चींटी आदि जंतु चाक की विपरीत दिशामें उसकी भिन्न गतिसे चलती रहे तो निजगति वशात् भिन्न-भिन्न समयमें उसचक्रके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें देखी जाती है, उसी तरह राशियों एवं नक्षत्रोंसे उपलक्षित कालचक्रमें पड़कर ध्रुव और मेरु को दायें रखकर घूमने वाले सूर्यादि ग्रहों की गति वास्तवमें उससे भिन्न ही है, क्योंकि वे कालभेद से भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रोंमें देख पड़ते हैं। वेद और विद्वान लोग भी जिनकी गतिको जानने हेतु उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदि पुरुष भगवान नारायण ही लोकों के कल्याण और कर्मों की शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह काल को बारह मासोंमें विभक्त कर बसन्तादि छः ऋतुओंमें उनके यथायोग्य गुणों का विधान करते हैं। इस लोकमें वर्णाश्रम धर्मका अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित छोटे-बड़े कर्मोंसे इन्द्रादि देवताओंके रूपमें और योगके साधनोंसे अन्तर्यामी रूपमें उनकी श्रद्धापूर्वक आराधना द्वारा सुगमतासे परमपद प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् सूर्य संपूर्ण लोकोंके आत्मा हैं। वे पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें स्थित आकाश मण्डल के भीतर कालचक्रमें स्थित होकर बारह सौर मासों को बारह राशियोंके माध्यमसे भोगते हैं। जो संवत्सरके अवयव हैं और मेष, वृषादि नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके साथ चांद्रमानेन चैत्रादि चांद्र मास शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष का, पितृमान से एकरात और एकदिन का तथा सौरमान से सवा दो नक्षत्र (एकराशि) का बताया जाता है। जितने कालमें सूर्यदेव इस संवत्सर का छठा भाग भोगते है उनका वह कालावयव 'ऋतु' कहा जाता है। उक्त कालचक्र का आधा भाग वे जितने समय में पार कर लेते हैं उसे एक 'अयन' कहते हैं तथा जितने समयमें वे अपनी मन्द, तीव्र एवं समगतिसे स्वर्ग और पृथ्वी मण्डल सहित पूरे आकाशीय राशिचक्र का चक्कर लगा लेते हैं उसे अवांतर-भेदसे संवत्सर, परिवत्सर इडावत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर कहते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा का ऊर्ध्वाधर अन्तर एक लाख योजन है। चन्द्रमा की चाल बहुत तेज है। इसलिए वह सब नक्षत्रों में [अन्यग्रहों से] अग्रगामी होजाता है। वह सूर्यके एक वर्षके मार्ग को एक मासमें, एक मास के मार्ग को सवा दो दिन में और एक पक्ष के मार्ग को एक ही दिनमें तै कर लेता है। यह कृष्णपक्षमें क्षीण होती हुई अपनी कलाओंसे पितृगण के और शुक्लपक्ष में बढ़ती हुई कलाओंसे देवगण के दिनरात का विभाग करता है तथा तीस-तीस मुहूर्तो में एक -एक नक्षत्र को पार करता है। अन्नमय और अमृतमय होने के कारण यही समस्त जीवों का प्राण और जीवन है। सोलह कलाओंसे युक्त मनोमय, अन्नमय और अमृतमय पुरुषरूप जो भगवान् चन्द्रमा हैं येही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके प्राणों का पोषण करते हैं;

इसलिए इन्हें 'सर्वमय' कहते हैं। चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अभिजित् सहित कुल अट्ठाइस नक्षत्र हैं। भगवान्‌ने इन्हें कालचक्रमें नियुक्त कर रखा है, अतः ये मेरु को दायीं ओर रखकर घूमते हैं। इनसे दो लाख योजन की दूरी पर शुक्र दिखाई देता है। यह सूर्य की शीघ्र, मंद और सम गतियों के अनुसार उनसे कभी आगे, कभी पीछे और कभी साथ-साथ रह कर चलता है। यह वर्षाकारक ग्रह है, अतएव लोकों को प्रायः सर्वदा ही अनुकूल रहता है। इसकी गति से ऐसा अनुमान होता है कि यह वर्षा-अवरोधक ग्रहों को शमित कर देता है। शुक्रगति की उपर्युक्त व्याख्याके साथ बुध की भी व्याख्या हो गई—शुक्र की ही भाँति बुध की गति भी समझ लेनी चाहिये। चन्द्रमाके पुत्र बुध और शुक्र का ऊर्ध्वाधर अन्तर दो लाख योजन है। बुध प्रायः मंगलकारी ग्रह है, किन्तु जब यह सूर्य की गति का उल्लङ्घन करके चलता है, तब बहुत आँधी, बादल और सूखे के भय की सूचना देता है। शुक्र और मंगल का ऊर्ध्वाधर अन्तर दो लाख योजन है। मङ्गल यदि वक्रगत्या न चले तो एक राशि कों तीन पक्ष में भोगता हुआ बारहो राशियों को पार करता है। यह अशुभफल ग्रह है और प्रायः अमंगल का सूचक है। मंगल और बृहस्पति का ऊर्ध्वाकार अन्तर दो लाख योजन है। बृहस्पति यदि वक्र गति से न चलें तो प्रत्येक राशि को एक वर्ष में भोगते हैं। ये प्रायः ब्राह्मण कुल के लिए अनुकूल रहते हैं। बृहस्पति और शनैश्चर का ऊर्ध्वाकार अन्तर दो लाख योजन हैं। ये प्रत्येक राशि में प्रायः तीस महीने रहते हैं। अतएव इन्हें सब राशियों को पार करने में तीस वर्ष लग जाते हैं। ये प्रायः सभी के लिए अशांतिकारक हैं। इनसे ग्यारह लाख योजन परे कश्यपादि सप्तर्षि दिखाई देते हैं। ये सब लोकों की मंगल कामना करते हुए भगवान् विष्णु के परमपद ध्रुव लोक की प्रदक्षिणा किया करते हैं। आगे श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय में श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! कुछ लोगों का कथन है कि सूर्य से दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रों के समान घूमता है। इसने भगवान् की कृपा से ही देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है। स्वयं यह सिंहिका का पुत्र असुराधम होने के कारण किसी प्रकार इस पद के योग्य नहीं है। सूर्य का जो यह अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन बताया जाता है। इसी तरह चन्द्रमण्डल का विस्तार बारह हजार योजन है और राहु का तेरह हजार योजन। अमृतपान के समय राहु देवता के वेष में सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आकर बैठ गया था; उस समय सूर्य और चन्द्रमा ने इसका भेद खोल दिया था; उस वैर को याद करके यह अमावस्या और पूर्णिमा के दिन उनपर आक्रमण करता है। यह देखकर भगवान् ने सूर्य और चन्द्रमा की रक्षा के निमित्त उन दोनों के पास अपने प्रिय आयुध सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया है; वह निरन्तर घूमता रहता है। इसलिए राहु उसके असह्य तेज से उद्विग्न और चकित-चित्त होकर मुहूर्त-मात्र उनके सामने टिककर फिर सहसा लौट आता है। उसके उतनी देर सूर्य चन्द्र के सामने ठहरने से कभी-कभी उनके प्रकाशित बिम्ब का न्यूनाधिक भाग अन्धकाराच्छन्न हो जाता है इसे ही लोग ग्रहण कहते हैं।

———

श्रीमद्भागवतोक्त वेद विभागक्रम

पुराणाचार्य पं. श्रीनाथ जी शास्त्री

सूतजी ने कहा—ब्रह्मन् ! जिस समय पूर्व सृष्टि ज्ञान सम्पादन करने के लिए ब्रह्माजी समाहित हुए उस समय उनके हृदयाकाश से एक अत्यन्त विलक्षण अनाहतनाद प्रकट हुआ। जब जीव अपनी मनोवृत्तियों को रोक लेता है तब उसे भी उस अनाहत नाद का अनुभव होता है।

हे शौनक जी, बड़े-बड़े योगी उसी अनाहतनाद की उपासना करके अन्तःकरण के अधिभूत, अध्यात्म एवं अधिदैव रूप मल को नष्ट करके वह परम गति रूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

जिसमें जन्म मृत्यु रूप संसार चक्र नहीं है उसी अनाहत से 'अकार' 'उकार' 'मकार' रूप तीन मात्राओं से युक्त ॐकार प्रकट हुआ। इस ॐकार की शक्ति से ही प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त रूप में परिणत हो जाती हैं। ॐकार स्वयं भी अव्यक्त एवं अनादि हैं और परमात्म स्वरूप होने के कारण स्वयं प्रकाश भी हैं। जिस परम वस्तु को भगवान ब्रह्म अथवा परमात्मा के नाम से कहा जाता है उसके स्वरूप का बोध भी ॐकार के नाम से होता है। जब श्रवणेन्द्रिय की शक्ति लुप्त हो जाती हैं' तब भी इस ॐकार को समस्त अर्थों को प्रकाशित करने वाले स्फोट तत्व को जो सुनता है और सुषुप्ति एवं समाधि अवस्थाओं में सबके अभाव को भी जानता है वही परमात्मा का विशुद्ध स्वरूप है। वही ॐकार परमात्मा से हृदयाकाश में प्रकट होकर वेदरूपावाणी को अभिव्यक्त करता है।

ॐकार अपने आश्रय परमात्मा पर ब्रह्म का साक्षात् वाचक हैं। और ॐकार ही सम्पूर्ण मंत्र उपनिषद और वेदों का सनातन बीज हैं।

शौनक जी—ॐकार के तीन वर्ण हैं अ, उ, और 'म, यह तीनों ही वर्ण सत्व, रज, तम इन तीन गुणों ऋक्, यजु, साम इन नामों को भूः भुवः स्वः इन अर्थों और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों वृत्तियों के रूप में तीन-तीन संख्या वाले भावों को धारण करता है। इसके बाद सर्व शक्तिमान ब्रह्माजी ने ॐकार से अन्तस्थ (य, र, ल, व,) ऊष्मा (श, ष, स, ह,) स्वर (अ से औ तक) स्पर्श (क से म तक) तथाह्रस्व और दीर्घ आदि लक्षणों से युक्त अक्षर समाम्नाय वर्ण माला की रचना की उसी वर्ण माला द्वारा उन्होंने अपने चार मुखो से होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, इन चार ऋत्विजों के कर्म बतलाने के लिए ॐकार और व्याहृतियों सहित चार वेद प्रकट किए और अपने पुत्र महर्षि मरीचि आदि को वेदाध्ययन में कुशल देखकर उन्हें वेदों की शिक्षा दी।

वे सभी जब धर्म का उपदेश करने में निपुण हो गये तब उन्होंने अपने पुत्रों को उनका अध्ययन कराया।

तदन्तर लोगों के नैष्ठिक ब्रह्मचारी शिष्य प्रशिष्यों के द्वारा चारों युगों में सम्प्रदाय के रूप में वेदों की रक्षा होती रही। द्वापर के अन्त में महर्षियों ने उनका विभाजन भी किया।

जब ब्रह्मवेत्ता ऋषियों ने देखा समय के फेर से लोगों की आयु और शक्ति बुद्धि क्षीण हो गई तब उन्होंने अपने हृदय देश में विराजमान परमात्मा की प्रेरणा से वेदों के अनेकों विभाग कर दिए।

शौनक जी इस वैवस्वत मन्वन्तर में भी ब्रह्मा शंकर आदि लोक पालों की प्रार्थना से भगवान ने धर्म रक्षा के
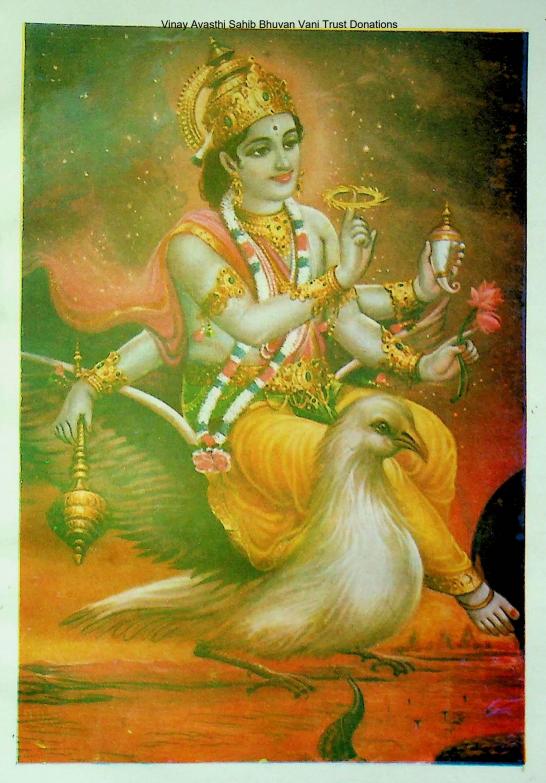
भगवान् विष्णु

लिए महर्षि पराशर द्वारा सत्यवती के गर्भ से अपने अंशांश कलारूप व्यास के रूप में अवतार ग्रहण किया और उन्होंने ही वर्तमान युग में वेद के चार विभाग किए हैं।

जैसे मणियों के समूह से विभिन्न जाति की मणि छांटकर अलग-अलग कर दी जाती हैं, वैसे महामति वेद व्यास ने मंत्र समुदाय में से भिन्न-भिन्न प्रकरणों के अनुसार मंत्रों का संग्रह करके उनसे ऋक्, यजुः, साम ओर अथर्व ये चार संहिताएं बनायीं। अपने चार शिष्यों को एक-एक संहिता की शिक्षा दी। उन्होंने वह्दवृच नाम की ऋक् संहिता पैलको निगद नाम की यजुः संहिता वैशम्पायन को साम श्रुतियों की छान्दोग्य संहिता जैमिनी को अथर्वाङ्गिरस संहिता अपने शिष्य सुमन्तु को अध्यापन कराया।

"ऋक् संहिता विभाग"

पैल मुनि ने अपनी ऋक् संहिता को दो भागों में बाँटा। एक का अध्ययन इन्द्र प्रमिति को और दूसरे का बाष्कल को कराया। बाष्कल ने अपनी शाखा के चार विभाग किए, उनको अलग-अलग बोध" याज्ञवल्क, पराशर और अग्निमित्र को पढ़ाया। परम संयमी अग्निमित्र ने अपने शिष्य माँडूकेय को अध्ययन कराया मांडूकेय शिष्य देव मित्र ने सौभरि आदि ऋषियों को वेदों का अध्ययन कराया।

मांडूकेय के पुत्र का नाम याकवल्य था। उन्होंने अपनी संहिता के पाँच विभाग करके वात्स, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर नामक शिष्यों को पढ़ाया, शाकल्य के शिष्य जातु कर्ण मुनि ने अपनी संहिता के तीन विभाग करके तत्सम्बन्धी निसत्य के साथ वलाक, पैज, वैताल और विरज को पढ़ाया।

बाष्कल के पुत्र वाष्कलि ने सब शाखाओं से एक वालखिल्य नाम की शाखा रची। उसे बालायनि भज्य, और कासार ने ग्रहण किया। इन ब्रह्मर्षियों ने पूर्वोक्त सम्प्रदाय के अनुसार ऋक् वेद सम्बन्धी वहवृच शाखाओं को धारण किया। जो मनुष्य इन वेदों के विभाजन का इतिहास श्रवण करता है वह सब पापों से छूट जाता है।

"श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्व पापैः प्रमुच्यते"

"यजुः संहिता विभाग"

बैशम्पायन के कुछ शिष्यों का नाम था चरकाध्वर्यु इन लोगों ने अपने गुरुदेव की ब्रह्महत्या जनित पाप का अनुष्ठान करने के लिए एक व्रत का अनुष्ठान किया, इसी लिए इनका नाम चरकाध्वर्यु पड़ा।

वैशम्पायन जी के एक शिष्य याज्ञवल्क मुनि भी थे। उन्होंने अपने गुरुदेव से कहा 'भगवन यह चरकाध्वर्यु ब्राह्मण तो बहुत थोड़ी शक्ति रखते हैं, इनके व्रत पालन से क्या लाभ है, मैं आपके प्रायश्चित के लिए बहुत ही कठिन तपस्या करूंगा।

याज्ञवल्क मुनि की बात सुनकर वैशम्पायन मुनि को क्रोध आ गया, उन्होंने कहा बस-बस तुम जैसे ब्राह्मणों के अपमान करने वाले शिष्य की मुझे कोई आवश्यकता नहीं हैं। देखो तुमने मुझसे जो कुछ अध्ययन किया उसका त्याग करके यहाँ से चले जाओ। याज्ञवल्क मुनि देवरात के पुत्र थे, उन्होंने गुरु आज्ञा पाते हीं पढ़ाये हुए यजुर्वेद का वमन कर दिया और वहाँ से चले गये, परन्तु ब्राह्मण को उगले हुए मंत्रों को ग्रहण करना अनुचित है इससे लोभवश तीतर बनकर चुग गये। इसी से परम रमणीय शाखा तैत्तरीय नाम से प्रसिद्ध हुई।

शौनक जी याज्ञवल्क जी ने सोचा मैं अब ऐसी श्रुतियों को प्राप्त करूं जो गुरुजी के पास भी नहीं हैं इसके लिए वह भगवान सूर्य का उपस्थान करने लगे।

हे सूर्य देव आपके दोनों चरण कमल तीनों लोकों के गुरु सदृश महानुभावों से बन्दित हैं। मैंने आपकी इसलिए शरण ग्रहण की है कि जो अब तक किसी को न मिला हो ऐसे यजुर्वेद प्राप्त हों।

जब याज्ञवल्क जी ने इस प्रकार स्तुति की तो सूर्य देव प्रसन्न होकर उनके सामने अश्व रूप से प्रकट हुए और उन्हें यजुर्वेद के उन मंत्रों का उपदेश किया जो अब तक किसी को प्राप्त न हुए थे।

"यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपंचशतैर्विभुः।
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्व माध्यंदिनादयः॥७४

इसके बाद याज्ञवल्क मुनि ने यजुर्वेद के असंख्य मंत्रों से उसकी पन्द्रह शाखाओं की रचना की। वही वाजसेनीय शाखा के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हें कण्व माध्यन्दिन आदि ऋषियों ने ग्रहण किया।

"सामवेद का विभाग"

महर्षि कृष्णद्वैपायन ने जैमिनी मुनि को साम संहिता का अध्ययन कराया। उन्होंने अपने पुत्र सुमन्तु और पौत्र सुन्वान को एक-एक संहिता पढ़ाई। जैमिनी के एक शिष्य का नाम था सुकर्मा। वह एक महान पुरुष था। उसने सामवेद की एक हजार संहिताएँ बना दीं।

"सहस्र संहिता भेद चक्रे साम्नां ततो द्विजः"

सुकर्मा के शिष्य कौशलदेश वासी हिरण्य नाम पौष्यज्जि और ब्रह्मवेत्ता आवन्त्य ने उन शाखाओं को ग्रहण किया। पौष्यज्जि और आवन्त्य ५०० शिष्य थे। वह उत्तर दिशा के निवासी होने के कारण औदीच्य सामवेदी कहलाते थे।

उन्हीं को प्राच्य सामवेद भी कहते हैं। उन्होंनें एक-एक संहिता का अध्ययन किया। पौष्यज्जि के और भी शिष्य थे 'लौगाक्षि' मांङ्गलि 'कुल्य' कुसीद और कुक्षि इसमें से प्रत्येक ने सौ-सौ संहिता का अध्ययन किया।

हिरण्य नाम का शिष्य था कृत उसने अपने शिष्यों को चौबीस संहिताए पढ़ायी। शेष संहिताए एक परम संयमी आवन्त्य ने अपने शिष्यों को दीं। इस प्रकार साम का विस्तार हुआ।

"अथर्व वेद का विभाग"

अथर्ववेद के ज्ञाता सुमन्तु मुनि थे। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य कवन्ध को संहिता पढ़ाई। कवन्ध ने उस संहिता के दो भाग करके पथ्य और वेददर्श को उसका अध्ययन कराया।

'संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान'

वेददर्श के चार शिष्य हुए शौक्लायनि' ब्रह्मवलि' मोदोष' पिप्पलायनि।

"पथ्य शिष्या नथोश्रृणु"

पथ्य के तीन शिष्य थे कुमुद, शुनक, अथर्ववेत्ता जाजलि। अङ्गिरागोत्रोत्पन्न शुनक के दो शिष्य थे बभ्रु और सैन्धवायन। उन लोगों ने दो संहिताओं का अध्ययन किया। अर्थव वेद के आचार्यों में इनके अतिरिक्त सैन्धवाय नादि के शिष्य सावर्ण्य तथा नक्षत्र कल्प, शान्ति' कश्यप, अङ्गिरस आदि कई विद्वान और भी हुए। अब मैं पौराणिकों के सम्बन्ध में सुनाता हूँ।

"एते अर्थवणाचार्याः श्रृणुपौराणिकान् मुने"

पौराणिक शिष्य परम्परा

"त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः,
वैशम्पायन हारीतौ षड् वै पौराणिका इमे"

पुराणों के छः आचार्य प्रसिद्ध हैं—त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन, हारीत। इन लोगों ने मेरे पिताजी से एक-एक पुराण संहिता पढ़ी थी और मेरे पिताजी स्वयं भगवान वेद व्यास जी से उन संहिताओं का अध्ययन किया था।

उन छः संहिताओं के अतिरिक्त और भी चार मूल संहिताए थीं। उन्हें भी कश्यप साविर्णी परशुराम जी के शिष्य अकृतव्रण और उन सबके साथ मैंने व्यास जी के शिष्य श्री रोमहर्षण जी से जो मेरे पिता थे अध्ययन किया था।

श्रीमद्भागवतके अनुसार

सूर्यवंश-चन्द्रवंश

श्री पं० हरिहर पाण्डेय पुराणेतिहासाचार्य

६. इक्ष्वाकु

७. नृग
८. सुमति
९. भूतज्योति
१०. वसु
११. प्रतीक
१२. ओघवान-ओघवतीकन्या

शर्याति
पुत्री-सुकन्या
उत्तानवर्हि–आनर्त–भूरिषेण
रेवत
रेवतीकन्या

दिष्ट

धृष्ट
धार्ष्ट्र

करूष
कारुष

१. नरिष्यन्त
२. चित्रसेन
३. ऋक्ष
४. मीढ्वान्
५. कूर्च
६. इन्द्रसेन
७. वीतिहोत्र
८. सत्यश्रवा
९. उरुश्रवा
१०. देवदत्त
११. अग्निवेश्य (जातुकर्ण्य-कानीन)
१२. ब्राह्मणकुल

पृषध्र
×

नभग
नाभाग
अम्बरीष
विरूप-केतुमान-शम्भु
पृषदश्व
रथीतर (आगे यह वंश ब्राह्मण हो गया)

कवि
×

वैवस्वतमनुपुत्र दिष्टवंश
१. दिष्ट
२. नाभाग
३. भलनन्दन
४. वत्सप्रीति
५. प्रांशु
६. प्रमति
७. खनित्र
८. चाक्षुष
९. विविंशति
१०. रम्भ
११. खनिनेत्र
१२. करन्धम
१३. अवीक्षित्
१४. मरुत
१५. दम
१६. राज्यवर्धन
१७. सुधृति
१८. नर
१९. केवल
२०. बन्धुमान
२१. वेगवान
२२. बन्धु
२३. तृणविन्दु
२४. विशाल - शून्यवन्धु - धूमकेतु - इडाविडापुत्री
२५. हेमचन्द्र
धनद (कुबेर)
२६. धूम्राक्ष
२७. संयम
२८. सहदेव
२९. कृशाश्व - देवज
३०. सोमदत्त
३१. सुमति
३२. जनमेजय
वैवस्वत मनुपुत्र इक्ष्वाकु वंश
इक्ष्वाकु के सौ पुत्र में ज्येष्ठ पुत्र
१. विकुक्षी (शशाद)
निमि
दंडक
२. पुरंजय
३. अनेना
४. पृथु

५. विश्वरंधि
६. चन्द्र
७. युवनाश्व
८. शावस्त
९. वृहदश्व
१०. कुवलयाश्व के (धुन्धुमार)
२१००० में तीन पुत्र बचे
११. द्रढाश्व-कपिलाश्व-भद्राश्व
१२. हर्यश्व
१३. निकुम्भ
१४. वर्हणाश्व
कृशाश्व
१५. सेनजित
१६. युवनाश्व
१७. मान्धाता (त्रसद्दस्यु)
१८. पुरुकुत्स
अम्बरीष
मुचकुन्द
५० कन्या
यौवनाश्व
हारीत
१९. त्रसद्दस्यु
२०. अनरण्य
२१. हयंश्व
२२. अरुण
२३. निबन्धन
२४. सत्यव्रत (त्रिशंकु)
२५. हरिश्चन्द्र
२६. रोहित
२७. हरित
२८. चम्प
२९. सुदेव
३०. विजय
३१. भरुक
३२. वृक
३३. बाहुक
३४. सगर
केशिनी (पत्नी)
सुमति (पत्नी)
३५. असमंजस
६०००० पुत्र
३६. अंशुमान्
३७. दिलीप
३८. भगीरथ

३९. श्रुत
४०. नाभ
४१ सिन्धुदीप
४२. अयुतायु
४३. ऋतुपर्ण
४४. सर्वकाम
४५. सुदास
४६. सौदास (कल्माषपाद-मित्रसह)
४७. अश्मक
४८. मूलक (नारी कवच)
४९. दशरथ
५०. एडविड
५१. विश्वह
५२. खट्वांग
५३. दीर्घबाहु
५४. रघु
५५. अज
५६. दशरथ
५७. कन्या-शान्ता राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न
५८. कुश लव अंगद चित्रकेतु तक्ष पुष्कल सुबाहु श्रुतसेन
५९. अतिथि
६० निषध
६१. पुंडरीक
६२. क्षेमधन्वा
६३. देवानीक
६४. पारियात्र
६५. बलस्थल
६६. वज्रनाभ
६७. खगड
६८. विधृति
६९. हिरण्यनाभ

७०. पृष्य
७१. ध्रुवसन्धि
७२. सुदर्शन
७३. अग्निवर्ण
७४. शीघ्र
७५. मरु
७६. प्रसुश्रुत
७७. सान्ध
७८. अमर्षण
७९. महस्वान
८०. विश्वसाह
८१. प्रसेनजित
८२. तक्षक
८३. बृहद्बल
८४. बृहद्रण
८५. उरुक्रिय
८६. वत्सवृद्ध
८७. प्रतिव्योम
८८. भानु
८९. दिवाक
९०. सहदेव
९१. बृहदश्व
९२. भानुमान
९३. प्रतीकाश्व
९४. सुप्रतीक
९५. मरुदेव
९६. सुनक्षत्र
९७. पुष्कर
९८. अन्तरिक्ष
९९. सुतपा
१००. अमित्रजित्
१०१. बृहद्राज
१०२. बर्हि
१०३. कृतंजय
१०४. रणंजय
१०५. संजय
१०६. शाक्य

१०७. शुद्धोद

१०८. लांगल

१०९. प्रसेनजित

११०. क्षुद्रक

१११. रणक

११२. सुरथ

११३. सुमित्र (यहाँ से यह वंश आगे राजगद्दी पर नहीं रहा)

इक्ष्वाकु पुत्र निमिवंश

१. निमि

२. जनक (वैदेह-मिथिल)

३. उदावसु

४. नंदिवर्धन

५. सुकेतु

६ देवरात

७. वृहद्रथ

८. महावीर्य

९. सुधृति

१०. धृष्टकेतु

११. हर्यश्व

१२. मरु

१३. प्रतीपक

१४. कृतिरथ

१५. देवमीढ

१६. विश्रुत

१७. महाधृति

१८. कृतिरात

१९. महारोमा

२०. स्वर्णरोमा

२१. ह्रस्वरोमा

२२. सीरध्वज

२३. कुशध्वज — सीता पुत्री

२४. धर्मध्वज

२५. कृतध्वज — मितध्वज

२६. केशिध्वज — खांडिक्य

२७. भानुमान

२८. शतद्युम्न

२९. शुचि

३०. सनद्वाज

३१. ऊर्ध्वकेतु

३२. अज

३३. पृरुजित्

इक्ष्वाकु पुत्रका वंश

१. अरिष्टनेमि

२. श्रुतायु

३. सुपार्श्वक

४. चित्ररथ

५: क्षेमधि

६. समरथ

७. सत्यरथ

८, उपगुरु

९. उपगुप्त

१०. वस्त्वनन्त

११. युयुध

१२ सुभाषण

१३. श्रुत

१४. जय

१५. विजय

१६. ऋत

१७. शुनक

१८. वीतिहव्य

१९. धृति

२०. बहुलाश्व

२१. कृति

२२. महावशी

———

चन्द्रवंश

१. ब्रह्मा
२. अत्रि
३. चन्द्र
४. बुध
५. पुरुरवा—(एल)
आयु
श्रुतायु
सत्यायु
रय
विजय
जय
वसुमान
श्रुतंजय
एक
भीम
अमित
६. नहुष
क्षत्रवृद्ध
रजी
रम्भ
अनेनां
५००
रभस
शुद्ध
गंभीर
शुचि
अक्रिय
त्रिककुत्
ब्रह्मकुल
धर्मसारथि
शान्तरय
७. कांचन
८. होत्रक
९. जह्नु
१०. पुरु
११. वलाक
१२. अज
१३. कुश
१४. कुशाम्बु(मूर्तरय)
तनय
—वसु—कुशनाभ
१५. गाधि
१६. कन्या-सत्यवती—
विश्वामित्र
१७. जमदग्नि
१०१ मधुच्छन्द
अष्टक-हारीतादि
१८. परशुराम
वसुमदादि

आयुपुत्र क्षत्रवृद्ध वंश
१. सुहोच
२. काश्य
कुश
गृत्समद
३. काशि
प्रति
शुनक
४. राष्ट्र
संजय
शौनक
५. दीर्घतमा
जय
६. धन्वन्तरि
कृत
७. केतुमान
हर्यवन
८. भीमरथ
सहदेव
९. दिवोदास
हीन
१०. द्युमान
(प्रतर्दन-शत्रुजित वस
ऋतुध्वज-कुवलघाश्व)
जयसेन
११. अलर्कादि
संकृति
१२. संतति
जय
१३. सुनीथ
क्षत्रधर्मा
१४. सुकेतन
१५. धर्मकेतु
१६. सत्यकेतु
१७. धृष्टकेतु
१८. सुकुमार
१९. वीतिहोत्र
२०, भर्ग
२१. भार्गभूमि
यहां तक काशिवंश
आयुपुत्र नहुष वंश
१. यति—ययाति-संयाति-आयति-वियति-कृति
पत्नी | पत्नी
शर्मिष्ठा-देवयानी
२. द्रुह्यु-अनु-पुरु
तुर्वसु-यदु
३. बभ्रु
वह्नि
४. सेतु
भर्ग
५. आरब्ध
भानुमान
६. गांधार
त्रिभानु
७. धर्म
करंधम
८. धृत
मरुत
९. दुर्मना
दुष्यन्त-पुत्रमाना
१०. प्रचेता
११. १०० पुत्रम्लेच्छ
प्राचेतस

ययाति पत्नी शर्मिष्ठा पुत्र
१. अनु
२. सभानर
चक्षु
परोक्ष
३. कालनर
४. सृंजय
५. जनमेजय
६. महाशील
७. महामना
८. उशीनर—तितिक्षु
९. शिवि–वनशमी–दक्ष
१०. वृषादर्भ–सुवीर–मद्र–केकय
ययातिपुत्र अनुवंशीय
१. तितिक्षु
२. रुशद्रथ
३. हेम
४. सुतपा
५. वलि
६. अंग
वंग–कलिंग–सुह्म–पुण्ड्र–अन्ध्र
७. खनपान
८. दिविरथ
९. धर्मरथ
१० चित्ररथ (रोमपाद
११. क्रतुरंग
१२. पृथुलक्ष
१३. वृहद्रथ — वृहत्कर्मा — वृहद्भानु
१४. वृहत्मना
१५. जयद्रथ
१६. विजय
१७. धृति
१८. धृतव्रत
१९. सत्कर्मा
२०. अधिरथ
२१. कर्ण (कुन्तीत्यक्त)
२२. वृषसेन
—:o:—

ययातिपुत्र पुरु वंश

१. जनमेजय
२. प्रचिन्वान
३. प्रवीर
४. नमस्यु
५. चारुपद
६. सुद्यु
७. बहुगव
८. संयाति
९. अहंयाति
१०. रौद्राश्व
११. ऋतुये
कुक्षेय
स्थण्डिलेयु
कृतुये
जलेयु
संततेयु
धर्मेयु
सत्येयु
व्रतेयु
संततेयु
१२. रंतिभार
१३. सुमति
ध्रुव
प्रतिरथ
१४. रैभ्य
कण्व
१५. दुष्यन्त
मेधातिथि
१६. भरत
प्रस्कण्वादि ब्राह्मण
१७. भरद्वाज
१८ मन्यु
१९. बृहत्क्षेत्र
जय
महावीर
गर्ग
नर
२०. हस्ति
दुरितक्षय
संकृति
शिनि
गुरु-रंतिदेव
त्रय्यारुणि
कवि
पुष्करारुणि
गार्ग्य
२१. अजमीढ
पुरुमीढ
द्विमीढ़
ब्राह्मण कुल

अजमीढ-वंश
२२. प्रियमेधादि ब्राह्मण
बृहदिषु
ऋक्ष
नील
२३. बृहद्धनु
२४. बृहत्काय
२५. जयद्रथ
२६. विशद
२७. सेनजित
२८. रुचिराश्व
द्रढहनु
काश्य
वत्स
२९. पार
३०. पृथुसेन-नीप
३१. १०० पुत्र
ब्रह्मदत्त
३२. विश्वसेन
३३. उदकस्वन
३४. भल्लाद
शान्ति
सुशान्ति
पुरुज
अर्क
भर्म्याश्व
मुगद्गल
यवीनर
बृहदिषु
काम्पिल्य
संजय
मुद्गलगोत्री ब्राह्मण
दिवोदास
अहल्याकन्या
मित्रेयु
च्यवन
सुदास
सहदेव
सोमक के
१००
ज्येष्ठजन्तु
पृषत्कनिष्ठ
द्रुपद्र
धृष्टद्युम्नादि
द्रोपदीकन्या
धृष्टकेतु (पांचाल्य)
शतानन्द
सत्यधृति
शरद्वान्
कृप
कृपीकन्या

१. ऋक्ष वंश
२. संवरण
३. कुरु
४. परीक्षित
सुधनु
जह्नु
निषधाश्व
५. सुहोत्र
६. च्यवन
७. कृति
८. उपचिर वसु
९. चेदिप
वृहद्रथ
कुशाम्बु
मत्स्य
प्रत्यग्रादि
१०. जरासंध
कुशाग्र
११. सहदेव
१२. (मार्जारि)सोमापि(भावीराजा)
१३. श्रुतश्रवा
१४. अयुतायु
सुरथ
विदूरथ
सार्वभौम
जयसेन
राधिक
अयुत
क्रोधन
देवातिथि
ऋष्य
दिलीप

१५. निरमित्र
१६. सुनक्षत्र
१७. वृहत्सेन
१८. कर्मजित
१९. सृतंजय
२०. शुचि (ब्राह्मण)
२१. धर्म
२२. सुव्रत
२३. धर्मसूत्र
२४. राम
२५. द्युमत्सेन
२६. सुमति
२७. सुवल
२८. सुनीथ
२९. सत्यजित
३०. विश्वजित्
३१. रिपुंजय
प्रतीप
देवापि
शन्तनु
वाह्लीक
सोमदत
भीम
चित्रांगद
विचित्रवीर्य
पत्नी
पत्नी
शल
भूरि
भूरिश्रवा
अम्बिका
अम्बालिका
दासी में
विदुर
धृतराष्ट्र
पाण्डु
कन्या
दुःशला
१०० दुर्योधनादि

भगवती दुर्गा

पाण्डुवंश

- पत्नी — (पृथा) कुन्ती
  - युधिष्ठर
    - पत्नी — पोखी — देवक
    - पत्नी — द्रोपदी — प्रतिविन्ध्य
  - अर्जुन
  - भीम
    - पत्नी — द्रोपदी — श्रुतसेन
    - पत्नी — काली — सर्वगत
    - पत्नी — हिडम्बा — घटोत्कच
- पत्नी — माद्री
  - नकुल
  - सहदेव
    - पत्नी — द्रोपदो — श्रुतकर्मा
    - पत्नी — विजया — सुहोत्र

---

१. अर्जुन

- पत्नी — २. द्रोपदी — ३. श्रुतकीर्ति
- पत्नी — उलूपी — इरावान
- पत्नी — चित्रांगदा — बभ्रुवाह्न
- पत्नी — सुभद्रा — अभिमन्यु
  - ४. परीक्षित
    - ५. जनमेजय
      - ६. शतानीक
        - ७. सहस्रानीक
    - श्रुतसेन
    - भीमसेन
    - उग्रसेन

नकुल

- पत्नी — द्रोपदी — शतानीक
- पत्नी — करेणुमति — निरमित्र

८. अश्वमेधक
९. असीमकृष्ण
१०. नेमिचक्र
११. चित्ररथ
१२. कविरथ
१३. वृष्टिमान
१४. सुषेण
१५. सुनीथ
१६. नृचक्षु
१७. सुखीनल
१८. परिप्लव
१९. सुनय
२०. मेधावी
२१. नृपंजय
२२. दूर्व
२३. तिमि
२४. वृहद्रथ
२५. सुदास
२६. शतानीक
२७. दुर्दमन
२८. वहीनर
२९. दण्डपाणि
३०. निमि
३१. क्षेमक

ययातिपुत्र यदुवंश

१. सहस्राजिय
शतजित्
हैहय
महाहय
वेणुहय
धर्म
क्रोष्टा
नल
रिपु
२. वृजिनवान
३. श्वाहि
४. रुशंकु

नेत्र
सोहंजि
महिष्मान
भद्रसेनक
कृतवीर्य
कृताग्नि
कृतवर्मा
कृतौजा
अर्जुन (सहस्रबाहु - कार्तवीर्य)
हजारों पुत्रों में से पाँच बचे
जयध्वज
शूरसेन
वृषभ
मधु
उर्जित
तालजंघ के
१०० में से बड़ा
वीतिहोत्र
मधु
वृष्णि
५. चित्ररथ
६. शशविन्दु के असंख्य पुत्र में प्रधान
७. पृथुश्रवा
८. धर्म
९. उशना
१०. रुचक
११. पुरुजित
रुक्म
ज्यामध
रुक्मेषु
पृथु
१२. विदर्भ
१३. कुश
क्रथ
रोमपाद
१४. कुन्ति
बभ्रु
१५. धृष्टि
कृति
१६. निर्वृति
कुशिक
१७. दशार्ह
चेदि
१८. व्योम
दमघोष
१९. जीमूत
शिशुपाल
२०. विकृति
२१- भीमरथ
२२. नवरथ

सात्वतपुत्र वृषिवंश

सात्वत पुत्र अन्धक वंश

अरिद्योत

पुनर्वसु

आहुक — आहुक की कन्या

देवक — उग्रसेन

देवक : देववान — उपदेव — सुदेव — देववर्धन

सात कन्या

धृतदेवा-शान्तिदेवा-उपदेवा-श्रीदेवा
देवरक्षिता-सहदेवा-देवकी

उग्रसेन : कंस — सुनामा — न्यग्रोध — कंक — शंकु — सुहू

राष्ट्रपाल — सृष्टि — तुष्टिमान् — ५ कन्या

कंसा-कंसवती-कंका
सूरभू-राष्ट्रपालिका

४१. हृदीक

देवबाहु — शतधनु — कृतवर्मा — देवमीढ

४२. शूर

शूरपुत्र वसुदेव (आनकदुंदुभि)

१ पत्नी पौरवी — सुभद्र-भद्रवाहु-दुर्मद-भद्रभूतादि

२ पत्नी रोहिणी — बल-गद-सारण-दुर्मद-ध्रुव-विपुल-कृतादि

३ पत्नी भद्रा — केशी

४ पत्नी मदिरा — नंद-उपनंद-कृतक-शूरादि

५ पत्नी रोचना — हस्तहेमंगदादि

६ पत्नी इला — उरु वल्कादि

७ पत्नी धृतदेवा — विपृष्ठ

८ पत्नि शान्तिदेवा — श्रमप्रतिश्रुतादि

९ पत्नी उपदेवा — कल्पवर्षादि१०

१० पत्नी श्रीदेवा — वृषहंस-सुवंशादि

११ पत्नी देवरक्षिता — गदादि९

१२ पत्नी सहदेवा — पुरुविश्रुतादि

१३ पत्नी देवकी —

४५. कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र, संकर्षण, हरि (श्रीकृष्ण), कन्या सुभद्रा

—:०:—

श्रीमद्भागवत और महाप्रभु वल्लभाचार्य

[डा० प्रभुदयाल मीतल डी. लिट्, साहित्य-वाचस्पति]

भागवत-महिमा

भारतीय वाङ्मयमें पुराणोंका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । इन्हें इतिहासके साथ संयुक्त रूपमें 'पंचम वेद' कहा गया है,—'इतिहास पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते' (भागवत १-४-२०) । पुराण १८ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक उपपुराण भी हैं। इन सबमें श्रीमद्-भागवत सर्वोपरि है । इसके आरंभिक मंगलाचरणमें इसको वेद रूपी कल्पवृक्षका ऐसा परिपक्व फल बतलाया है, जो शुकदेव रूपीं शुक (तोता)के मुखामृत-द्रवसे संयुक्त होनेपर अत्यधिक मधुर हो गया है । इसरसका आस्वादन भू-तलके भावुक रसिक जन ही करते हैं। १ भागवतके अन्तमें कहा गया है—'यह सर्व वेदांतोंका सार है। इसके रसामृतको पान कर जो रसिक जन तृप्त हो गये हैं, उनकी रति फिर-अन्यत्र नहीं होती हैं । २ इन उल्लेखोंसे श्रीमद् भागवत की महत्ता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

भागवत के उपसंहारमें बताया गया है कि इस महा-पुराणका प्रधान तत्व 'मुक्ति' एवं 'आश्रय'की सिद्धिस्वरूपा प्रेम लक्षणा 'भक्ति' है, और इसके प्रमुख प्रतिपाद्य साक्षात् श्रीहरि-नारायण सात्वतपति भगवान् वासुदेव कृष्ण हैं, जिनका गुणानुवाद इस 'परमहंस संहिता' में किया गया है। ३ इसके मूलमें ४ श्लोक हैं, जो 'चतुःश्लोकी भागवत' कहे जाते हैं। इनमें बतलाया है—''सृष्टिके पूर्व केवल 'मैं ही में था।' इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी 'में ही हूँ।' इसमें जो अवास्तविक होने पर भी सत्य ज्ञात होती हैं, वह 'मेरी माया हैं।' प्राणियोंके पंचभौतिक शरीरोंमें मैं आत्मा'के रूपमें 'प्रविष्ट' हूँ; और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेसे में उनमें 'प्रविष्ट नहीं भी हूँ।' यह ब्रह्म नहीं है, इस 'निषेध' की पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, इस 'अन्वय' की पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वदा और सर्वत्र स्थिति भगवान् ही वास्तविक तत्व' हैं। आत्मा अथवा परमात्माके तत्वान्वेषीको केवल इतना ही जानना आवश्यक है। ४

श्रीमद् भागवतकी रचना—प्रक्रिया और इसके विकास-क्रममूलमें उपर्युक्त 'चतुःश्लोकी भागवत' है जिसका उपदेश स्वयं भगवान् नारायणने सर्वप्रथम ब्रह्माको किया था । ब्रह्माने अपने पुत्र नारदको; और नारदने व्यासको; फिर व्यासने अपने पुत्र शुकदेवको इसे बताया

(१) भागवत, प्रथम स्कंध, प्रथम अध्याय, श्लोक ३

(२) भागवत, द्वादश स्कंध, त्रयोदश अध्याय, श्लोक १५

(३) भागवत, द्वादश स्कंध, द्वादश अध्याय, श्लोक ३

(४) भागवत, द्वितीय स्कंध, नवम् अध्याय, श्लोकं ३२, ३३, ३४, ३५
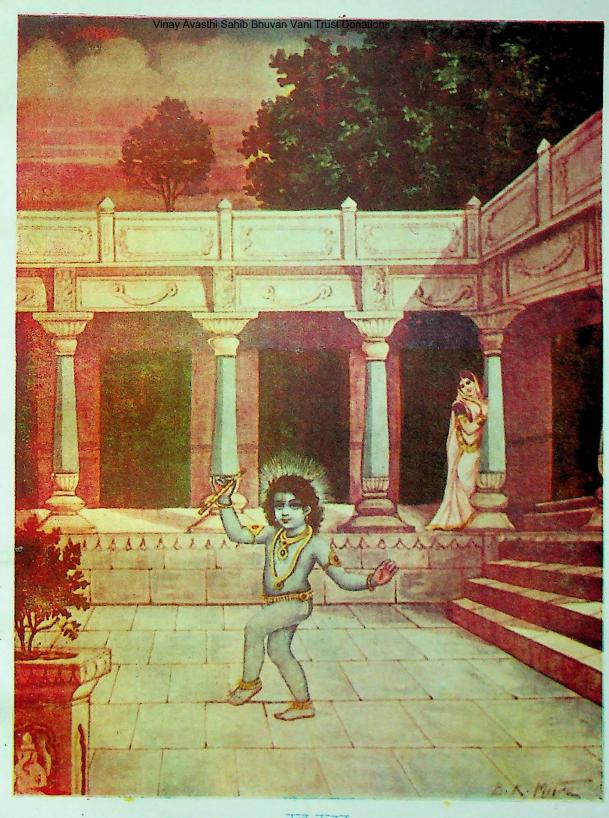
नन्द-नन्दन

था । शुकदेव जीने इसे १८००० श्लोकोंकी परमहंस संहिताके रूपमें इसका उपदेश राजा परीक्षितको किया था । इस प्रकार ४ श्लोकोंकी मूल भागवत क्रमशः विकसित होती हुई १८००० श्लोकों की परमहंस संहिता बन गई ।

इसके प्राकट्य की तिथि और संवत् के संबंधमें भी अनुसंधान किया गया है । पद्मपुराण, उत्तरखंड, षष्ठ अध्यायेके ९४ वें श्लोकसे ज्ञात होता है कि शुकदेव जी ने परीक्षितके लिए इसकी कथाका आरंभ नवमीको किया था,—'नवमीतो नभस्ये च, कथारम्मं शुकोऽकरोत ।' इतिहासकी संगतिसे कहा जा सकता है कि भगवान् कृष्णके गोलोक प्रस्थानके ३० वर्ष पश्चात्की भाद्रपद शुक्ला ९ को भागवत कथाका शुभारंम हुआ, और भाद्रपद पूर्णिमाको इसका समापन किया गया । यही भागवतके प्राकट्य-कालके तिथि-संवत् हैं ।

शुकदेवजी द्वारा प्रकटकी हुई भागवत उसी रूपमें इस समय उपलब्ध है या नहीं; इसके संबंधमें विद्वानोंमें मतभेद है । कुछ विद्वानोंका मत है, भागवतका वर्तमान रूप उतना प्राचीन नहीं है । इसका यह रूप विक्रम संवत्के पश्चात्की किसी शतीमें निर्मित हुआ है । इसके अंतः-साक्ष्यसे अनुमान किया जाता है कि भागवतको इस रूपमें किसी दाक्षिणात्य वैष्णव, विद्वानने दक्षिण भारतमें प्रस्तुत किया होगा । यह तो निश्चित है कि इसके आरंभिक प्रचारका श्रेय दाक्षिणात्य पंडितोंको ही अधिक है । प्रायः सभी पुराणोंमें थोड़े-बहुत प्रक्षेप मिलते हैं ; किंतु भागवत ही एक ऐसा पुराण है जिसमें या तो प्रक्षेप हैं ही नहीं; यदि हैं तो वे नाम मात्र को हैं ।

श्रीमद् भागवतको मनीषियों एवं विद्वन्जनोंने विभिन्न दृष्टिकोणोंसे निरखा-परखा है, और अपनी-अपनी दृष्टियोंसे इसके स्वरूपका निर्धारण किया है । किंतु हमें इस संबंधमें विद्ववर श्रीकंठमणि शास्त्रीका निष्कर्ष मान्य है । उन्होंने लिखा है, —

"भागवत लोक दृष्टिसे एक 'शास्त्र' है पौराणिकोंकी दृष्टिमें 'महापुराण' है, वेदांतियोंकी दृष्टिमें 'परमहंस संहिता' है, भक्तोकी दृष्टिमें 'सात्वत संहिता' है, तत्वज्ञों की दृष्टिमें 'समाधि भाषा' है । किंतु वैष्णवोंकी दृष्टिमें तो यह भगवान्का साक्षात् स्वरूप' है १।" पद्मपुराणमें वर्णित 'भागवत-माहात्म्य'में इसे श्रीहरिकी प्रत्यक्ष वाङ्मयी मूर्ति ही बतलाया गया है,—'तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः' (उत्तर खंड, ३-६२) ।

भागवतमें इसके वक्ता—श्रोताओंके तीन संवाद क्रम मिलते हैं, जिनका विवरण इसप्रकार है,—

१. शौनक-सूत संवाद—जो प्रथम स्कन्धके आरंभ से लेकर द्वादश स्कंधके अंत तक चलता है ।

२. परीक्षित-शुक संवाद—जो द्वितीय स्कंधके आरंमसे लेकर द्वादश स्कंधके अध्याय ६ के श्लोक ७ तक है ।

३. विदुर-मैत्रेय संवाद—जो तृतीय स्कंधके अध्याय ५ से लेकर चतुर्थ स्कंधकी समाप्ति तक है ।

भाषा, भाव और रचना सौष्ठवकी दृष्टिसे भी भागवतका अनुपम महत्व है । जहाँ यह श्रेष्ठ 'काव्य' के समान अत्यंत सरस है, वहाँ 'दर्शन'के सदृश परम गूढ़ भी है । इसकी गूढ़ताके विषयमें यह उक्ति प्रचलित हो गई है कि विद्वानोंके वैदुष्य की परीक्षा भागवतमें ही होती है,—'विद्यावतां भागवते परीक्षा ।'

श्रीमद् भागवतके स्वरूप और आकारका उल्लेख कई पुराणों में मिलता है । इनमें पद्म, स्कंद, मत्स्य एवं नारदपुराण प्रमुख हैं । इन सबके, अनुसार भागवतमें १२ स्कंध, ३३५ अध्याय और १८००० श्लोक है । वर्तमान संस्करणों में १२ स्कंध, और ३३५ अध्याय तो हैं;

किंतु श्लोक संख्या १४६१५ ही है। इस कमीकी पूर्ति कुछ विद्वान उवाचों, और पुष्पिकाओं गणना द्वारा करते हैं। उनका मत है कि यदि 'उवाच' को एक श्लोक और पुष्पिका' को डेढ़ श्लोक माना जाय, तब भागवतकी श्लोक संख्या १८००० के लगभग हो जावेगी।

१. पुष्टिमार्गीय संस्कृत वाङ्मय, प्रथम खंड, पृष्ठ-१३३-१३४

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की देन

श्रीमद् भागवत भक्ति मार्गका प्रधान ग्रंथ है। अत-एव अनिवार्य रूपसे समस्त भक्ति संप्रदायोंके आचार्योंने इसे अपनाया है; और इसको सैद्धांतिक ग्रंथका गौरव प्रदान किया है। फिर भी इसके संबंधमें महाप्रभु वल्लाभाचार्यकी देन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जहां अन्य आचार्योंने वेद, गीता और ब्रह्मपूत्र जैसे तीन परंपरागत प्रस्थान ही माने हैं, वहाँ श्रीवल्लभाचार्य जीने उनमें भागवतको भी सम्मिलिकर'प्रस्थान चतुष्टय' को मान्यता दी है। यह उनकी अभूतपूर्व देन है। इसीलिए वल्लभ संप्रदायमें भागवतके प्रति इतनी श्रद्धा है।

श्रीमद्भागवत श्रीहरि की वाङ्मयी मूर्ति है,—यह मान्यता सभी भक्ति संप्रदायों की है। किन्तु श्री वल्लभाचार्य जी ने इसका विस्तार किया है। उन्होंने भागवत के द्वादश स्कन्धों के श्रीहरि के द्वादश अंग बतलाते हुए दशम स्कन्ध को उनका हृदय सदृश माना है। इस स्कन्ध में वर्णित श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं के प्रति आचार्य जी की बड़ी आस्था थी। जब वे भागवत पर प्रवचन करते थे तब दशम स्कन्ध की कृष्णा-लीलाओं संबंधी उनका विवेचन अत्यंत मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी होता था।

श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुसार भागवत में तीन 'भाषाएँ' अर्थात् तीन प्रकार के कथन हैं। उनके नाम हैं,—१. लौकिक, २. पर मत और ३. समाधि। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है,—

१. लौकिक भाषा—इसका अभिप्राय ऐतिहासिक एवं ऐतिह्य विषयक कथनों से है।

२. परमत भाषा—इसके अन्तर्गत विभिन्न ऋषियों एवं मुनियों के कथन हैं।

३. समाधि भाषा—इसका आशय व्यास जी द्वारा समाधि अवस्था में दृष्ट एवं अनुभूत भगवत् लीलाओं के कथन से है। इसी को श्री वल्लभाचार्य जी ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है।

श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने दार्शनिक एवं भक्ति संबंधी सिद्धान्तों के प्रचारार्थ अनेक बार देशव्यापी पद यात्राएँ की थीं, जिनमें उनके लघु जीवन के बहुत से वर्ष लग गये थे। इस प्रकार पर्यटन एवं प्रचारादि में अधिक व्यस्त रहने के कारण उन्हें निश्चित होकर ग्रन्थ-रचना करने का अवकाश नहीं मिला था। फिर भी उन्होंने छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, जिनसे उनके गंभीर ज्ञान और प्रकांड पाँडित्य का परिचय मिलता है। उनके बड़े ग्रन्थों में ब्रह्मसूत्र का 'अणुभाष्य' और भागवत की सुबोधिनी टीका प्रमुख हैं। इनकी रचना आचार्यजी ने क्रमशः अपने दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैतवाद' और 'पुष्टिमार्गीय भक्ति तत्त्व' के समर्थन के लिए की थीं। उनके वे सभी ग्रंथ यात्रा-काल में रचे गये थे; और माधव भट्ट नामक एक काश्मीरी पंडित ने उन्हें लिपिबद्ध किया था। श्री आचार्य जी अवकाश के समय में अपने ग्रंथों को बोल कर लिखवाते थे; और माधव भट्ट लिखते थे।

जब श्री वल्लभाचार्य जी ने भागवत के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्कन्धों की 'सुबोधिनी टीका' कर ली, तभी उन्हें आभास हुआ कि उनका शरीर अधिक काल तक नहीं रह सकेगा; और उनके लेखक माधव भट्ट का देहावसान उनसे भी पहले हो जावेगा। फलतः उन्होंने बीच के स्कन्धों को छोड़कर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'दशम स्कंध' की टीका करना आरंभ किया; और उसे पूर्ण कर लिया। फिर वे एकादश स्कंध की टीका करने में लग गये। उक्त स्कंध के केवल चार अध्यायों की टीका ही

की जा सकी थी, तभी उनके लिपिक माधव भट्ट का एक दुर्घटना में अकस्मात देहावसान हो गया। इसपर श्री आचार्य जी ने कहा 'अब सुबोधिनी अधूरी रह गई।' भगवद्—इच्छा इतनी की ही थी १।' उसके अनन्तर श्री आचार्य जी का भी असमय में ही तिरोधान हो गया। उसके कारण 'सुबोधिनी' और दूसरे कई ग्रंथ अपूर्ण रह गये; जिनकी पूर्ति कालांतर में उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी ने की थी। इस समय भागवत के प्रथम द्वितीय, तृतीय एवं दशम स्कंधों की पूर्ण सुबोधिनी टीका श्री आचार्यजीकृत और शेष स्कंधों की श्री विट्ठलनाथजी कृत उपलब्ध है।

श्रीमद्भागवत पर विभिन्न धर्माचार्यों ने टीकाएँ की हैं; किन्तु इनमें 'सुबोधिनी' की ख्याति सर्वाधिक है। यह भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना। इसके महत्त्व का आकलन करते हुए श्री हरिराय जी ने लिखा है,—जिस व्यक्ति ने श्री वल्लभाचार्य जी का आश्रय नहीं लिया, 'सुबोधिनी' का पठन-पाठन नहीं किया; और श्रीकृष्ण की आराधना नहीं की; उसका जन्म इस भूतल पर व्यर्थ ही हुआ।— 'नाश्रितो वल्लभाधीशों, न च दृष्टवा सुबोधिनी। नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले।'

'सुबोधिनी' की रचना भागवत के अर्थ-बोध के लिए की गई है। किन्तु यह अपने नाम के अनुरूप 'सुबोध' न होकर पर्याप्त 'दुर्बोध' है। इसका कारण उसका सूचनात्मक शैली में रचा जाना है। इसे बोधगम्य बनाने के लिए श्री आचार्य जी ने 'भागवतार्थ निबंध' की रचना की थी, जो उनके ग्रंथ 'तत्त्वार्थदीप निबंध का तृतीय प्रकरण है। इसका अध्ययन किये बिना सुबोधिनी को हृदयंगम करना कठिन होता है। जिस प्रकार भागवत का दशम स्कंध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, उसी के अनुरूप उसकी सुबोधिनी टीका भी है। उसके विशद अध्ययन के लिए 'भागवतार्थ निबंध' को और सूक्ष्म परिचय के लिए 'दशम स्कंधार्थानुक्रमणिका' को आचार्य जी ने रचा था।

यह 'अनुक्रमणिका' दशम स्कंध' में वर्णित कृष्ण-लीलाओं की एक प्रकार की सूची है। इसमें ६८ श्लोक हैं, जिनमें श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं के बोधक उनके नामों का कथन किया गया हैं। इसके पाठ से दशम स्कंध का अल्प समय में ही सूक्ष्म परिचय प्राप्त होता है। श्री वल्लभाचार्य जी ने जब सूरदास और परमानन्ददास को अपने शरण में लिया था, तब उन्होंने सर्व प्रथम 'अनु-क्रमणिका' ही उनको सुनाई थी, जिससे उन्हें कृष्ण-लीलाओं का स्फुरण हुआ; और वे 'सूरदास' एवं 'परमानंदसागर' जैसे महान् ग्रंथों की रचना करने में समर्थ हो सके थे।

भागवत के दशम स्कंध में ९० अध्याय हैं। श्री वल्लभाचार्य जी ने इनमें से ८७ को प्रामाणिक और तीन को प्रक्षिप्त माना हैं। उनके मतानुसार १२ वें, १३ वें और १४ वें अध्याय प्रक्षिप्त है। इनकी रचना 'पद्मपुराण' में वर्णित ब्रह्मा-मोह और गोवत्स-हरण की कथा के आधार पर की गई है। इनके प्रक्षिप्त होने के विषय में आचार्य जी ने कई तर्क दिये हैं; जो पूर्वापर क्रम विरुद्ध और पुनरुक्ति एवं विसंगति से संबंधित हैं। प्रमुख तर्क यह है कि सृष्टि-रचना करते समय ब्रह्मा को श्रीहरि से यह वरदान प्राप्त हुआ था कि उन्हें किसी भी कल्प में मोह नहीं होगा, 'भवान् कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्मसु' (भागवत्, २-९-३६)। ऐसी स्थिति में ब्रह्मा को मोहग्रस्त बतलाना असंगत है १। फलतः ये तीनों अध्याय मूल ग्रंथ में नहीं होने चाहिए। उन्हें बाद में बढ़ाया गया है।

---

१. चौरासी वैष्णावन की वार्ता में 'माधव भट्ट की वार्ता' प्रसंग ४

१. पुष्टिमार्गीय संस्कृत वाङ्मय, प्रथम खंड, पृष्ठ १६४ तथा पृष्ठ २०५

श्रीमद्भागवतमें

प्रातः स्मरणीय

१. भगवान श्रीहरि
२. गजेन्द्र जिनका उद्धार भगवानने किया ।
३. कल्पवृक्ष
४. क्षीरसागर स्थित त्रिकूट पर्वत और उसपरके वृक्ष सरोवर
५. ब्रह्मलोक और कैलास
६. क्षीरसागर
७. श्वेतद्वीप
८. श्रीवत्स—भगवानके वक्षस्थलका चिन्ह
९. कौस्तुभमणि
१०. वनमाला
११. कौमोदकी गदा
१२. सुदर्शन चक्र
१३. पांचजन्य शंख
१४. पक्षिराज गरुड़
१५. भगवान शेष
१६. लक्ष्मीजी
१७. ब्रह्माजी
१८. देवर्षि नारद
१९. भगवान शंकर
२०. दैत्यराज प्रह्लाद
२१. मत्स्य, कच्छपादि सब अवतार
२२. सूर्य
२३. चन्द्र
२४. अग्नि
२५. ऊंकार
२६. सत्य
२७. अव्यक्त प्रकृति
२८. गौ
२९. ब्राह्मण
३०. धर्म
३१. दक्ष कन्यायें
३२. गंगा
३३. सरस्वती
३४. नन्दा
३५. कालिन्दी
३६. ऐरावत
३७. ध्रूव
३८. सप्तर्षि
३९. पुण्यश्लोक मनुष्य (८-४-१७ से २१)

भगवान नारायणके सब वस्त्र, आभूषण, आयुद्ध और पार्षद भगवत्स्वरूप ही हैं । अत: उन सबका या उनमें किसी एकका भी चिन्तन कल्याणकारी है ।

भगवान शिव तथा ब्रह्माजी भगवानसे अभिन्न हैं ।

भगवानके सब अवतार चाहे अंशावतार हों, कलावतार हों, आवेशावतार हों या पूर्णावतार हों, उनमें भगवत्ता तो पूर्ण ही है ।

सूर्य, चन्द्र, अग्नि, प्रणवादि भगवानकी विभूतियां हैं ।

दक्ष कन्याओंका नाम तथा वंश पृथक दिया जा रहा है ।

पुण्य श्लोक मनुष्कोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रहेगी । 'पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिर: ।' आदिमें वर्णित संख्या ही नहीं है । भगवानको पानेवाले सब महात्मा, तत्वज्ञानी और धर्मात्मा पुण्यश्लोक हैं । इस युगमें श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, नरसी मेहता, मीराबाई आदि पुण्यश्लोक हैं । ऐसे बहुत अधिक नाम हैं । इनमें जो भी स्मरण हों, प्रात: काल उनका स्मरण पुण्य तथा मंगल देनेवाला है ।

ब्रजेन्द्र-नन्दन

सम्पादकीय–संकलन

श्रीमद्भागवत को स्कन्ध संगति

अधिकारीका प्रश्न पहिले आता है । कोई काम, कोई विद्या, कोई साधन अधिकारी विशेषके लिए ही होता है । अतः भागवतका प्रथम-स्कन्ध अधिकार सूचित करने वाला है ।

अधिकारी के लिए साधन । अतः दूसरा स्कन्ध साधन स्कन्ध है । उत्तम अधिकारी वक्ता शुकदेवजी । अतः द्वितीय स्कन्धमें उत्तम साधनका निरूपण है ।

साधन प्रलयकालमें तो होगा नहीं । अतः साधनके सम्पूर्ण निरूपणके लिए बतलाना चाहिये कि सृष्टिकाल है । सृष्टिकी प्रक्रिया—मूल सृष्टि अर्थात् सर्गका वर्णन तृतीय सर्गमें साधनको पुष्ट करनेके लिए भी हैं । क्योंकि आत्मतत्वके बोधके लिए सृष्टिका अनुलोम–विलोम दोनों क्रमोंसे चिन्तन करना पड़ता है ।

चतुर्थ स्कन्ध विसर्ग है । मूल सृष्टिके वर्णनके पश्चात् सृष्टिकी विविधताका वर्णन तो क्रम प्राप्त ही है ।

यह सृष्टि कहाँ है ? कितनी विस्तीर्ण है ? इसमें कहाँ-कहाँ साधन सम्भव है ? इसका उत्तर देनेके लिए पंचम स्कन्धमें स्थानका वर्णन है ।

षष्ठम स्कन्धमें पोषणका प्रतिपादन है । अर्थात् सब प्रकारके लोगोंका पोषण भगवानका अनुग्रह करता है, यह बतलाया गया है ।

सप्तम स्कन्धको ऊति कहा गया है । कर्म-वासनाका नाम ऊति है । कर्म वासना कहाँ तक कर्म करा सकती है, उससे सम्पूर्ण स्थ नपर आधिपत्य मिलना सम्भव है, यह सप्तम स्कन्धमें हिरण्यकशिपुके वर्णनसे दिखलाकर, धर्माचरण ही कर्तव्य है, यह बतलानेको अन्तमें वर्णाश्रम धर्मका वर्णन किया है ।

अष्टम स्कन्ध मन्वन्तरोंका वर्णन है, क्योंकि पंचमसे स्थानका वर्णन-पोषण आदि करते आये तो यह बतलाना भी आवश्यक हो गया कि किसी एक कालमें ही यह सब नहीं होता । सब कालोंमें-सब मन्वन्तरोंमें स्थिति प्रायः एक-सी रहती है ।

नवम स्कन्ध ईशानुकथा है । सब स्थान और कालमें जो परम-आश्रयणीय हैं, उन परमपुरुषके मानव रूपमें अवतार—श्रीराम, परशुराम और श्रीकृष्णका वर्णन करनेके लिए इनके वंशोंका वर्णन है ।

दशम स्कन्ध निरोध स्कन्ध है । भगवान अवतार लेकर अपनी लीलासे जैसे सब प्रकारके जीवोंकी वृत्ति अपनेमें निरुद्ध करते हैं, यह विस्तार पूर्वक दिखलाया गया है ।

सब कालमें तो धरापर भगवान अवतार रूपमें रहेंगे नहीं । अतः जब अवतार काल न हो तो मनुष्य किन साधनोंका आश्रयण करके वृत्ति भगवानमें निरुद्ध करे और आवागमनसे छूटे, यह मोक्षके साधनोंका निरूपण एकादश स्कन्धके मुक्ति स्कन्धमें है ।

अन्तिम द्वादश स्कन्ध तो आश्रय स्कन्ध है । परमब्रह्म ही आश्रय है । उसके आश्रयणके अंग रूपसे इस स्कन्धमें पंचविध आश्रयोंका वर्णन है ।

श्रीमद्भागवतकी स्कन्धाध्याय संगति

श्रीमद्भागवत दस लक्षणयुक्त महापुराण है । इसमें बारह स्कन्ध हैं । यद्यपि विद्वद्वरेण्य श्रीबोपदेवजीने 'हरिलीला' में इस सम्पूर्ण ग्रन्थकी अध्याय संख्या ३३१ दी है, किन्तु श्रीधर स्वामीकी टीकाके अनुसार वर्तमान

प्रतियोंमें अध्याय संख्या ३३५ है। श्रीबोपदेवजीने चार अध्यायोंको पृथक न मानकर, साथके अध्यायोंमें सम्मिलित कर लिया है। 'हरिलीला' की टीकामें यह बात स्पष्ट कर दी गयी है।*

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी भी दशम स्कन्धमें वत्स-हरण लीलाको प्रक्षिप्त मानते हैं, किन्तु उन्होंने उसकी टीकाकी है। श्री विजयध्वजजीकी टीकामें पारिजात-हरण-प्रसंगमें अधिक अध्याय हैं। ऐसे ही अन्य दाक्षिणात्य टीकाओंमें भी अनेक अध्याय अधिक पाये जाते हैं।

प्राय: विद्वान श्रीधरस्वामीकी टीकाको प्रामाणिक मानते हैं। इसी टीकाके अनुसार प्रकाशकोंने प्राय: श्रीमद्भागवतकी प्रतियां प्रकाशित की हैं। अत: इसीके अनुसार अध्याय-संगति दी जा रही है। यद्यपि प्रत्येक प्रसंगमें अध्याय श्लोक संख्याकी भी संगति है, किन्तु विस्तार भयसे उसे छोड़ रहे हैं।

प्रथम स्कन्ध

इसे अधिकारी स्कन्ध कहा जाता है। इसमें कुल १९ अध्याय हैं।

इस स्कन्धमें मुख्य रूपसे तीन श्रोता अधिकारी तथा तीन वक्ता अधिकारीका वर्णन है।

१—ऋषि शौनक सामान्य (तृतीय) कोटिके श्रोता हैं और सूत लोमहर्षण भी सामान्य कोटिके ही वक्ता हैं, क्योंकि शौनकादि ऋषि स्वर्गकामी हैं। वे स्वर्गके लिए सत्र करने बैठे हैं। 'सत्रं स्वर्गायलोकाय सहस्रसममासत।' १।१।४ उनका भागवत-श्रवण मुख्य नहीं है। यज्ञके मध्यमें मिलनेवाले अवकाशमें चलता है।

सूत लोमहर्षणका भी भागवत-प्रवचन मुख्य लक्ष्य नहीं है। वे ऋषियोंके यज्ञोंमें पुराण सुनानेका काम ही करते हैं। यही उनकी आजीविका है।

इस सामान्य श्रोताके लिए एक और वक्ताके लिए दो अध्याय दिये गये हैं।

२—मध्यम श्रेणीके श्रोता हैं भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यासजी और इसी श्रेणीके वक्ता हैं देवर्षि नारद। यद्यपि व्यास और नारद दोनों ही भगवानके अवतार हैं, किन्तु श्रीमद्भागवतका श्रवण-प्रवचन उनका मुख्य लक्ष्य न होनेसे ये मध्यम माने गये हैं।

व्यासजी लोक-कल्याणके लिए चिन्तित हैं। महाभारत की रचना करके भी उनका चित्त सन्तुष्ट नहीं है। उन्हें लगता है कि अभी कुछ अपूर्णता रह गयी है। देवर्षि नारद इसी अपूर्णताको दूर करनेके लिए भगवच्चरितके सृजनका उपदेश करते हैं। अत: दोनों महापुरुष लोकहितेच्छु होनेसे मध्यम माने गये।

इस प्रसंगमें भी श्रोताके लिए एक और वक्ताके लिए दो अध्याय दिये गये हैं।

३—उत्तम श्रेणीके श्रोता हैं राजा परीक्षित। वे अन्न-जल त्यागकर गंगा तटपर आ बैठे हैं और केवल आत्म कल्याण चाहते हैं। उत्तम वक्ता परमहंस शिरोमणि श्रीशुकदेवजी। उन्हें केवल भगवानकी चर्चा और गुणगान प्रिय है।

उत्तम श्रोता परीक्षितके वंशका—जन्मजात श्रेष्ठताका परिचय देनेके लिए एक अध्यायमें अर्जुनका वर्णन, चार अध्यायमें श्रीकृष्णका वर्णन करके परीक्षितका कुल श्रीकृष्ण कृपा प्राप्त है, यह स्पष्ट करना, चार अध्यायमें युधिष्ठिरका वर्णन करके कुलकी धर्मपरायणताका वर्णन, तीन अध्यायमें परीक्षितके वैराग्यका सकारण वर्णन करके उनके उत्तम अधिकारको स्पष्ट किया गया है। अन्तिम एक अध्यायमें उत्तम वक्ता शुकदेवजीके आगमन तथा उनका सब उपस्थित महर्षियोंसे श्रेष्ठत्व सूचित किया गया। इस प्रकार इस स्कन्धमें कुल ३+३+१+४ +४+३+१ =१९ अध्याय हैं।

* हरिलीला हिन्दी टीका श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरासे ही छपी है।

द्वितीय स्कन्ध

इसे साधन-स्कन्ध आचार्योंने कहा है। इसमें कुल दस अध्याय हैं।

साधन होता ही दो प्रकारका है—सगुण परक और निर्गुण परक। दोनोंके लिए पांच-पांच अध्याय हैं।

सगुण साधनमें पहिले ही विराट्का वर्णन है, क्योंकि विश्वरूप भगवानको पहिले जानना चाहिये। इसके पश्चात् नारायणका वर्णन, सकाम-उपासना और साकारका वर्णन है। इस प्रकार प्रत्येकके लिए एक-एक अध्याय हैं।

क्योंकि सृष्टिका विचार सगुण-निर्गुण दोनों मार्गोंके साधकोंको करना है, सृष्टिका दो अध्यायोंमें वर्णन उभयात्मक है।

निर्गुण मार्गके साधकके लिए क्रमशः एक-एक अध्यायोंमें अवतारोंका वर्णन, प्रश्न (जिज्ञासा) परतत्व निरूपण और विराटका वर्णन है। निर्गुणमें निष्ठा भगवत्कृपासे ही होती है, अतः पहिले अवतार-चरित और अन्तमें 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' का ज्ञान देनेको विराटका वर्णन है।

तृतीय स्कन्ध

इसमें महापुराणका प्रथम लक्षण सर्गका वर्णन है। सर्गका अर्थ है मूल सृष्टि। इस स्कन्धमें कुल ३३ अध्याय हैं।

सृष्टि तो त्रिगुणात्मक ही होगी। अतः सात्विक-सृष्टिका वर्णन करनेके लिए ९ अध्याय हैं। इसमें विदुर-उद्धव-संवादके ४ अध्याय। उद्धव-मैत्रेय-संवादके ३ अध्याय और ब्रह्माजीको भगवान द्वारा भागवतोपदेशके दो अध्याय हैं।

राजस सृष्टिका वर्णन ३ अध्यायमें है। विविध सृष्टि, काल-वर्णनके साथ वेदोंका वर्णन और रुद्रोत्पत्ति। प्रत्येक एक-एक अध्यायमें।

तामस सृष्टिके वर्णनमें हिरण्याक्ष-चरित ७ अध्यायोंमें और एक अध्यायमें नाना प्रकारकी सृष्टि।

इस सब सर्गसे वैराग्योत्पादनके लिए ४ अध्यायोंमें कर्दमोपाख्यान और तुरीय तत्वके ज्ञानके लिए ९ अध्यायोंमें कपिलोपदेश है।

इस प्रकार ९+३+८+४+९=३३ अध्याय हैं।

चतुर्थ स्कन्ध

इसमें विसर्ग अर्थात् विविध सृष्टिका वर्णन है इस स्कन्धमें कुल ३१ अध्याय हैं।

विविध सृष्टि भी त्रिगुणात्मक ही होगी। अतः इसमें भी विभाजन त्रिगुणात्मक ही है। तामस अत्रिके तपका वर्णन एक अध्यायमें। (आराध्यके अनिश्चयके कारण इसे तामस माना गया) सती-चरित ६ अध्यायोंमें।

राजस वर्णनमें ध्रुव-चरित ५ अध्यायोंमें और वेनका चरित २ अध्यायोंमें।

सात्विक वर्णन पृथु-चरित ९ अध्यायोंमें और प्राचेतस वर्णन एक अध्याय में।

तुरीय-तत्वकी प्राप्तिके लिए ६ अध्यायोंमें पुरंजन उपाख्यान और एक अध्यायमें प्रचेताका वर्णन।

पंचम स्कन्ध

इसमें कुल २६ अध्यायोंमें स्थानका वर्णन है। जिसमें स्थानके विभाजक, शोधक तथा स्थानके नामकर्ताका वर्णन १५ अध्यायोंमें है।

स्थान-विभाजक महाराज प्रियव्रत तथा आग्नीध्रका वर्णन एक-एक अध्यायोंमें। स्थान शोधक राजा नाभिका वर्णन एक अध्यायमें और भगवान ऋषभदेवजीका वर्णन ३ अध्यायोंमें। स्थान (भारतवर्ष) के नामके कारणीभूत भरत [illegible] वंशका वर्णन ९ अध्यायोंमें।

स्थानोंके वर्णन ११ अध्यायोंमें हैं। इनमें-से जम्बूद्वीपका ४ अध्यायोंमें, अन्य द्वीपोंका २ अध्यायमें, खगोलका २ में, पातालका २ में और नरकोंका वर्णन एक अध्यायमें है।

षष्ठम स्कन्ध

यह पोषण स्कन्ध है। भगवद्नुग्रहका ही नाम पोषण है। इसमें कुल १९ अध्याय हैं।

भगवद्दनुग्रह पापी—अजामिलका पोषण करता है—(३ अध्याय) साधक हर्यश्वका पोषण करता है (३ अध्याय) असुर वृत्रका पोषण करता है (७ अध्याय) सिद्ध चित्रकेतुका पोषण करता है (४ अध्याय) और देवता मरुद्गणोंका भी पोषण करता है (२ अध्याय) यह स्कन्धमें है।

सप्तम स्कन्ध

इस १५ अध्यायके स्कन्धको ऊति स्कन्ध कहते हैं। 'ऊतयः कर्मवासना'। अतः अर्थ और भोग वासनाका निरूपण हिरण्यकशिपुके चरितसे और धर्मवासना निरूपण धर्म-वर्णनमें किया गया है। प्रत्येकका वर्णन पांच-पाँच अध्यायोंमें है।

अष्टम स्कन्ध

यह स्कन्ध मन्वन्तरोंके वर्णनका है। 'मन्वन्तराणि सद्धर्म' प्रत्येक मन्वन्तरमें कैसे धर्म-व्यवस्था किनके द्वारा रक्षित होती है, यही इस २४ अध्यायके स्कन्धका विषय है।

प्रथम मन्वन्तरके वर्णनमें भगवान यज्ञका चरितएक अध्यायमें, चतुर्थ तामस मन्वन्तर भगवान हरिके द्वारा गजेन्द्र उद्धारका वर्णन ३ अध्यायोंमें, यह चार अध्यायोंमें आश्रित-रक्षण, छठे चाक्षुष मन्वन्तरमें भगवान अजितके संरक्षणमें समुद्र-मन्थनका वर्णन, यह धर्मामृतका निरूपण ७ अध्यायोंमें, ३ अध्यायोंमें माया वर्णन करते मोहिनी अवतार तथा मन्वन्तराधिकारियोंके कार्योंका वर्णन, ९ अध्यायोंमें वामन-चरित द्वारा धर्मकी शक्तिका वर्णन और अन्तिम एक. अध्यायमें मत्स्यावतार वर्णन द्वारा धर्मके आधारभूत वेदरक्षणका निरूपण है।

नवम स्कन्ध

ईशानुकथाके इस २४ अध्यायोंमें मुख्यतः इस मन्वन्तर (वैवस्वत) में हुए श्रीराम, परशुराम तथा श्रीकृष्णके वंशका तथा प्रथम दो.के संक्षिप्त चरितका वर्णन है।

श्रीराम १२ कलाके अवतार हैं, अतः सूर्यवंशकी उस शाखाका जिसमें रामावतार हुआ, १२ अध्यायोंमें वर्णन है। एक अध्यायमें निमिवंशका वर्णन श्रीजानकीजीके कारण, ३ अध्यायोंमें परशुरामजीका चरित, नर अर्जुनके कुलके लिए एक अध्याय और ८ अध्यायोंमें यदुवंशका वर्णन, क्योंकि श्रीकृष्ण १६ कलावतार हैं, दो-दो कलाके लिए एक-एक अध्याय। श्रीकृष्णचरितका विस्तार तो दशम स्कन्धमें हैं ही।

दशम स्कन्ध

इस स्कन्धके दो भाग हैं—४९ अध्यायोंका पूर्वार्ध और ४१ अध्यायोंका उत्तरार्ध। इस प्रकार कुल ९० अध्याय पूर्णाङ्क, नौके द्वारा पूर्णताके सूचक हैं।

जड़-चेतन, सुर-असुर-मानव, पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, अज्ञ-ज्ञानी सबके मनका अपनेमें श्रीकृष्ण-निरोध करते हैं। अतः यह निरोध स्कन्ध है। इसमें कोई विभाजन नहीं। एक ओर वेणु-वादनसे निरोध है तो दूसरी ओर वेदस्तुतिमें ज्ञानियोंका और युद्ध-संहारमें असुरोंका भी '

एकादश स्कन्ध

यह ३१ अध्यायका मुक्ति स्कन्ध है। 'मुक्तिर्हित्वान्यथा-रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः' इस स्वरूप स्थितिके लिए एक अध्यायमें वैराग्यार्थ यदुकुलको शाप, भक्तिके निरूपणार्थ ४ अध्यायोंमें नवयोगेश्वरोंका उपदेश और सांख्यवर्णित २४ तत्वोंकी शुद्धि स्वरूप २४ अध्यायोंमें श्रीकृष्णका उद्धवको

उपदेश, अन्तमें स्थूल देहासक्ति की निवृत्तिके लिए एक अध्यायमें यदुकुलका नाश तथा सूक्ष्म देहासक्तिकी निवृत्तिके लिए एक अध्यायमें श्रीकृष्णका स्वधामगमन है।

द्वादश स्कन्ध

यह १३ अध्यायोंका आश्रय स्कन्ध है। 'स आश्रयः परंब्रह्म' इसकी प्राप्तिके लिए इस स्कन्धमें पंचविध आश्रयोंका निरूपण है।

१—विवेकाश्रय ३ अध्यायोंमें, क्रमशः वंशावली, कलि-वर्णन और कलि-धर्म-वर्णन। यह तीनों गुणोंसे वैराग्यका द्योतक है।

२—ज्ञानाश्रय—प्रलय वर्णन (लय-चिन्तनार्थ) ब्रह्मोपदेश—एक-एक अध्यायोंमें।

३—शास्त्राश्रय—वेद-शाखा तथा पुराणोंका वर्णन एक-एक अध्यायमें।

४—भगवदाश्रय—३ अध्यायोंमें मार्कण्डेयोपाख्यान (माया, मायाश्रय, नारायण तथा गुरु शिवका वर्णन) १ अध्यायमें मूर्ति-रहस्य।

५—भागवत-ग्रन्थाश्रय—एक अध्यायमें पूरी अनुक्रमणिका और एकमें भागवतका श्रेष्ठत्व।

—०—

श्रीमद्भागवतकी परम्परा

श्रीमद्भागवतकी दो परस्पराओंका वर्णन भागवतमें ही है।

प्रथम परम्परा—

भगवान नारायणसे ब्रह्माजीको। (२।९।३० से ३६)
ब्रह्माजीसे नारदजीको (२। अध्याय ५ से ७ तक)
देवर्षि नारदसे व्यासको— १। अध्याय ५ से ६
व्यासजीसे शुकदेवजीको—सम्पूर्ण ग्रन्थ १।७।८
शुकदेवजीसे परीक्षितको तथा सूत उग्रश्रवाको
सूतसे शौनकादि ऋषियोंको—पूरा ग्रन्थ

द्वितीय परम्परा— ३।८।७ से ९

भगवान संकर्षणसे सनत्कुमारको।
सनत्कुमारसे सांख्यायन मुनिको।
सांख्यायनजीसे देवगुरु वृहस्पति और पराशरको।
पराशरजीने पुलस्य ऋषिके कहनेसे मैत्रेयको।
मैत्रेय ऋषिसे विदुरजीको।

तीसरी परम्परा

स्कन्द पुराणके द्वितीय वैष्णव खण्डके भागवत माहात्म्यमें एक परम्परा दी है ३।२१ से ४२

इसके अनुसार परमपुरुष श्रीकृष्णसे श्रीमद्भागवत ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनोंको प्राप्त हुआ।

—:०:—

श्रीमद्भागवतमें पुरुषार्थका प्रयोजन

१. धर्मका प्रयोजन

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥
१।२।८॥

धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवानकी लीला कथाओंके प्रति अनुराग उदय न हो तो वह धर्माचरण केवल श्रम ही श्रम है।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥
१।२।९॥

२. अर्थका प्रयोजन—

धर्मका फल है मोक्ष । उसकी सफलता अर्थ प्राप्तिमें नहीं है । अर्थका (धनका) प्रयोजन केवल धर्मके लिए है । भोग-विलास धनका प्रयोजन नहीं है ।

३. कामका प्रयोजन—

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥
१।२।१०॥

भोगका प्रयोजन इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है, उसका प्रयोजन केवल जीवन-निर्वाह है ।

जीवनका प्रयोजन भी तत्व-जिज्ञासा है । इस लोकमें कर्म करके स्वर्गादि पाना जीवनका प्रयोजन नहीं हैं ।

तात्पर्य यह है कि जीवन-निर्वाह हो सके, इतनाही भोग चाहिये । धन हो तो उसकी सार्थकता धर्मका फल है भगवत्कथामें प्रेम और जीवनकी सफलता है तत्व-जिज्ञासा । अतः मनुष्य जीवनका ही प्रयोजन मोक्ष है ।

—:०:—

श्रीमद्भागवतमें आयी परिभाषाएं

१. ब्रह्म, परमात्मा या भगवान—

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥
१।२।११।

तत्ववेत्ता लोग जिस अद्वितीय ज्ञानको तत्व कहते हैं, उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान कहते हैं ।

२. जन्म-मरण—

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ।
तन्निरोधोस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥
द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षायोग्यता यदा ।
तत्पंचत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥
३।३१।४४-४५॥

जीवनका उपाधिरूप लिंग शरीर तो मोक्षपर्यन्त उसके साथ रहता है। तथा पंचभूत, इन्द्रियां और मनसे

युक्त सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर-इन दोनोंका संगठित होकर कार्य न करना प्राणीकी मृत्यु हैं। दोनोंका साथ-साथ प्रगट होना जन्म है।

पदार्थोंकी उपलब्धिका स्थान यह स्थूल शरीर है। इसमें जब किसी पदार्थको ग्रहणकी योग्यता नहीं रहती तो यही इसकी मृत्यु है। स्थूल शरीरमें 'यह मैं हूँ' इस अभिमानके साथ शरीरको जानना जन्म है।

३. जीव—

एवं पंचविधं लिंग त्रिवृत् षोडशविस्तृतम्।
एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥
४।२९।७४॥

पंचतन्मात्राओंसे बना और सोलह तत्वोंवाला यह त्रिगुणमय लिंग शरीर ही चेतना शक्तिसे युक्त होकर जीव कहा जाता है।

४. महापुरुष—

महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता।
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥
५।५।२॥

महापुरुष वे हैं जो समचित्त (दुःख-सुख, यश-अयश, मानापमानमें समचित्त रहते) परमशान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचार सम्पन्न हों।

५. जन्म-मृत्यु किसकी ?

शोकहर्षभय क्रोधलोभमोहस्पृहादयः।
अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः॥
११।२८।१५॥

शोक, हर्ष, भय, क्रोध, मोह, इच्छा आदि तथा जन्म और मृत्यु ये सब अहंकारमें ही होते हैं, आत्मामें नहीं।

६. मृत्यु—

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत् स्मरेत् पुनः।
जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्त विस्मृतिः॥
११।२२।३८

विषय (देह) में अत्यन्त दृढ़ अपनत्व हो जानेसे प्राणी अपने पूर्व देहका स्मरण नहीं करता। यही किसी भी कारणसे शरीरकी अत्यन्त विस्मृति मृत्यु कहलाती है।

७. जन्म—

जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद।
विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः॥
११।२२।३९॥

उदार उद्धव ! विषयरूप (दृश्य शरीर) को सर्वभावसे अपना मैं स्वीकार कर लेना जन्म कहा जाता है। यह जन्म स्वप्नके मनोरथ (शरीर) के समान है।

११।१९ की परिभाषाएं

भगवान श्रीकृष्णने उद्धवके पूछनेपर एकादश स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें श्लोक ३३ से ४४ तक बहुत बातोंकी परिभाषा दी है। यहाँ मूल संस्कृत श्लोक न देकर केवल वह परिभाषा दी जा रही हैं।

यम—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय (चोरी न करना), ४. असंग (आसक्त न होना), ५. लज्जा, ६. असंचय (अनावश्यक संग्रह न करना), ७. आस्तिकता, ८. ब्रह्मचर्य, ९. मौन (वाणीका संयम), १०. स्थिरता, ११. क्षमा और १२. अभय।

नियम—१. शौच, २. मानसिक पवित्रता, ४. जप, ५. तप, ६. हवन, ७. अतिथि सत्कार, ८. भगवत्पूजन, ९. तीर्थयात्रा, १०. परोपकार, ११. संन्तोष, १२. गुरु-सेवा।

शम—भगवानमें बुद्धिका लगना।

दम—इन्द्रियोंको संयमित रखना।

तितिक्षा—(स्वतः आये) दुःखको सह लेना।

धृति—जीभ (स्वाद) और उपस्थ (काम प्रवृत्ति) को जीतना।

दान—किसीको भी (अपराध करनेपर भी) दण्ड न देना परमदान है।

तप—कामनाओंका ही त्याग कर देना।

शौर्य—चित्तकी सहज वासनाको जीत लेना।

सत्य—सबमें समभाव रखना। समत्वका दर्शन।

ऋत—सत्य (और) मधुर वाणी।

शौच—कर्मोंमें आसक्ति न होना

सन्यास—त्याग।

धन—धर्म ही अभीष्ट (सच्चा) धन है।

यज्ञ—ऐश्वर्यमय भगवान ही यज्ञ हैं।

दक्षिण—ज्ञानोपदेश ही सच्ची दक्षिणा है।

परमबल—प्राणायाम।

परमलाभ—भगवद्‌भक्ति प्राप्त होना।

विद्या—आत्मामें भेद दृष्टिका मिट जाना।

लज्जा—दुष्कर्मोंसे दूर रहना।

श्री —निरपेक्षतादि गुण ही श्री (शोभा) हैं।

सुख —दुःख सुखसे पार हो जाना।

दुःख —विषयोंसे सुख पानेकी अपेक्षा।

पण्डित—बन्धन और मोक्षको ठीक समझनेवाला।

मूर्ख—देहाभिमानी।

मार्ग—मुझे (भगवानको) प्राप्त करानेवाला साधन।

कुमार्ग—चित्तका विक्षेप।

स्वर्ग—चित्तमें सत्वगुणका उदय।

नरक—तमोगुणका बढ़ना।

बन्धु—गुरु रूपमें विद्यमान भगवान ही बन्धु हैं।

गृह—मनुष्य शरीर ही गृह है।

धनी—वह जिसमें उत्तम गुण हैं।

दरिद्र—जो असन्तुष्ट है।

कृपण—जिसकी इन्द्रियां अपने वशमें नहीं हैं।

समर्थ—जो विषयोंसे अनासक्त हैं।

असमर्थ—विषयोंमें आसक्त।

—×—

श्रीमद्भागवतके अनुसार

भगवानके अवतार

(काल क्रमानुसार)

१. भगवानका विराट् विश्वरूप—सृष्टिकी आदिमें।
२. ब्रह्माजी (भगवान नारायणके नाभि कमलसे) सृष्टिकी आदिमें।
३. ब्रह्माजी के संकल्पसे—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—सृष्टिकी आदिमें।
४. देवर्षि नारद (ब्रह्माके मानस पुत्र) (सृष्टिकी आदिमें ही।)
दशावतारोंमें प्रथम— ५. भगवान वाराह—स्वायम्भुव मन्वन्तर प्रारम्भ होनेसे पूर्व।
६. नर-नारायण—(धर्म एवं मूर्तिसे) स्वायम्भुव मन्वतरमें।
७. भगवान कपिल—(ब्रह्माजी के मानस पुत्र कर्दम तथा स्वायम्भू मनुकी पुत्री देवहूतिसे)
८. दत्त—ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि अत्रि तथा कर्दमजीकी कन्या अनसूयासे—स्वायम्भुव मन्वन्तरमें।
९. भगवान यज्ञ—महर्षि रुचि तथा स्वायम्भू मनुकी पुत्री आकूतिसे उसी प्रथम मन्वन्तरमें।
१०. भगवान हंस—सनकादिको उपदेश करनेके लिए— प्रथम मन्वन्तरमें।
११. भगवान ऋषभ—महाराज नाभि तथा मेरु देवीसे— प्रथम मन्वन्तरमें।
१२. हयशीर्ष—ब्रह्माजी के सत्रमें, इन्हींकी नासिकासे वेद उत्पन्न हुए— प्रथम मन्वन्तरमें।

भगवान हंसके पश्चात् ध्रुवको दर्शन देनेके लिए एक अवतार हुआ, उसे, विराटको और ब्रह्माजी को तथा नारदजीको न गिननेपर चौबीस अवतार होते हैं। वैसे तो 'अवताराह्यसंख्येया' (१-३-२६) भगवानके असंख्य अवतार हैं। केवल वर्तमान कल्पके मुख्यावतारोंकी ही यह गणना है।

१३. आदिराज पृथु—वेनके शरीर मन्थनसे प्रकट— प्रथम मन्वन्तरमें।
दशावतारोंमें द्वितीय—१४. भगवान नृसिंह—प्रह्लादकी रक्षाके लिए— चतुर्थ तामस मन्वन्तरमें।
१५. भगवान हरि—गजेन्द्रकी रक्षाके लिए— चतुर्थ तामस मन्वन्तरमें।
१६. भगवान अजित—समुद्र-मन्थन करके अमृत प्रकट करनेवाले— षष्ठम चाक्षुष मन्वन्तरमें।
दशावतारोंमें तृतीय— १७. भगवान कच्छप—समुद्र-मन्थन समय मन्दराचल धारणार्थ— " " "
१८. भगवान धन्वन्तरि—अमृत लेकर प्रकट हुए— " " "
१९. भगवान मोहनी—दैत्योंको मोहित करके देवताओंको अमृत पिलाया। " " "
दशावतारोंमें चतुर्थ— २०. भगवान वामन—दैत्यराज बलिसे इन्द्र पद लेकर इन्द्रको दिया। " " "

दशावतारोंमें पंचम—	२१.	भववान मत्स्य—चाक्षुष मन्वन्तरके पश्चात जल प्रलयके समुद्रमें ।	वर्तमान सप्तम मन्वन्तरसे पूर्व जल प्रलयके समय ।
दशावतारोंमें षष्ठम—	२२.	भगवान परशुराम—त्रेता युगके प्रारम्भमें ।	वर्तमान सप्तम मन्वन्तरके तृतीय त्रेता में ।
दशावतारोंमें सप्तम—	२३.	भगवान श्रीराम—वर्तमान सप्तम मन्वन्तरके बीते त्रेताके अन्तमें ।	
	२४.	भगवान व्यास—वर्तमान सप्तम मन्वन्तरके बीते द्वापरके प्रारम्भमें ।	
दशावतारोंमें अष्टम—	२५.	श्रीबलराम-श्रीकृष्ण—वर्तमान सप्तम मन्वन्तरके बीते अट्ठाइसवें द्वापरके अन्तमें ।	
	२६.	भगवान बुद्ध—सिद्धार्थ गौतम बुद्ध भागवत वर्णित बुद्ध नहीं हैं। भागवतके वर्णनसे लगता है कि वर्तमान सप्तम मन्वन्तर की तृतीय चतुर्युगीमें जब भगवान शिवने त्रिपुरका नाश किया था, उस समय यह अवतार हुआ था ।	
दशावतारोंमें अन्तिम—	२७.	भगवान कल्कि—यह अवतार वर्तमान कलियुगके अन्तमें होना है । इसमें अभी लगभग चार लाख सैंतीस हजार वर्ष बाकी है ।	

श्रीमद्भागवतमें वेदोंके नाम

भागवतके अनुसार वेद एक ही था । भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायनने यज्ञके प्रयोजनसे एक ही वेदके चार विभाग (सम्पादन) किये । इसीसे उनका नाम व्यास या वेदव्यास पड़ा । वेद, निगम तथा वृहत् नाम वेदोंका आया है ।

१. ऋग्वेद—बहवृच संहिता व्यासजीने अपने शिष्य मैल को दी ।

२. यजुर्वेद—निगद (गद्य) वैशम्पायनको ।

३. सामवेद—छन्दोग (गीतिमय) जैमिनीको ।

४. अथर्ववेद—(आंगिरसी संहिता) सुमन्तुको ।

यजुर्वेदके दो भेद हो गये । वैशम्पायनको प्राप्त परम्परा पीछे तैत्तरीय संहिताके रूपमें कृष्ण यजुर्वेद कहलायी ।

याज्ञवल्क्यने भगवान सूर्यसे सीधे ही यजुर्वेद प्राप्त हुआ । यह शुक्ल यजुर्वेद परम्परा कही गयी ।

इनके अतिरिक्त—

१. सात्वतन्त्र (पांचरात्र संहिताएं) आगमके भाग हैं । चार उपवेद हैं—

१. आयुर्वेद

२. धनुर्वेद

३. गान्धर्ववेद

४. स्थापत्यवेद

५. महाभारतको पंचम वेद कहा जाता है । यह इतिहास है ।

———

श्रीराम

श्रीमद्भागवतके अनुसार—

१८ पुराण—उनकी श्लोक संख्या

पुराण	श्लोक संख्या
१. ब्रह्मपुराण	दस हजार
२. पद्मपुराण	पचपन हजार
३. विष्णुपुराण	तेइस हजार
४. शिवपुराण	चौबीस हजार
५. श्रीमद्भागवत	अठारह हजार
६. नारदपुराण	पच्चीस हजार
७. मार्कण्डेय पुराण	नौ हजार
८. अग्निपुराण	पन्द्रह हजार चार सौ
९. भविष्य पुराण	चौदह हजार पांच सौ
१०. ब्रह्मवैवर्त पुराण	अठारह हजार
११. लिंग पुराण	ग्यारह हजार
१२. वाराह पुराण	चौबीस हजार
१३. स्कन्द पुराण	इक्यासी हजार एक सौ
१४. वामन पुराण	दस हजार
१५. कूर्म पुराण	सत्रह हजार
१६. मत्स्य पुराण	चौदह हजार
१७. गरुड़ पुराण	उन्नीस हजार
१८. ब्रह्माण्ड पुराण	बारह हजार

इस प्रकार सब पुराणोंमें कुल मिलाकर चार लाख श्लोक हैं।

क—इसमें विष्णुपुराणके साथ विष्णु धर्मोत्तर पुराण मिलानेपर श्लोक संख्या पूरी होती है। नहीं तो उपलब्ध विष्णुपुराण छोटा है।

ख—शिवपुराण दो प्रकारका मिलता है खण्डात्मक और संहिता रूप।

ग—कुछ विद्वान देवी भागवतको महापुराण मानते हैं। उसमें भी अठारह हजार श्लोक हैं, किन्तु उसमें श्रीमद्भागवत जैसा गाम्भीर्य नहीं है। महापुराण श्रीमद्भागवत ही है।

घ—भविष्य पुराणके तो कई पाठ मिलते हैं और वे परस्पर भिन्न हैं।

ङ—नारद पुराण वृहन्नारदीय पुराण सहित ही पूरा होता है।

पुराणोंके पाठके सम्बन्धमें व्यापक शोधकी आवश्यकता स्पष्ट लगती है। छपे पुराणोंमें प्रक्षिप्त, प्रेसकी भूलें भी बहुत हैं। उनके लुप्तांश भी ढूंढे जाने चाहिये।

—:०:—

स्वाम्भुवमनुकी पुत्रियोंका वंश

स्वायम्भुव मनुके तीन पुत्रियां थीं—आकूति. देवहूति और प्रसूति।

इनमें से आकूतिका विवाह प्रजापति रुचिसे हुआ। मनुपत्नी शतरूपाने यह विवाह पुत्रिका धर्मके अनुसार किया। अर्थात् कन्याका पुत्र अपने नानाकी सन्तान माना जायगा।

रुचि और आकूतिसे युग्मज सन्तान हुई। इसमें पुरुष स्वयं भगवान यज्ञ थे और स्त्री दक्षिणा थीं।

पुत्रिका धर्मसे विवाह होनेके कारण यज्ञको मनुने अपना पुत्र बना लिया और दक्षिणा प्रजापति रुचिकी पुत्री रहीं। फलतः इनका गोत्र बदल गया।

यज्ञका दक्षिणासे विवाह हो गया। इनसे बारह पुत्र उत्पन्न हुए।

१. तोष, २. प्रतोष, ३. सन्तोष, ४. भद्र, ५. शान्ति, ६. इडस्पति, ७. इध्म, ८. कवि, ९. विभु, १०. स्वह्न, ११. सुदेव और १२. रोचन।

ये तुषिता नामक देवगण कहे गये। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें उत्पन्न हुए और स्वारोचिष मन्वन्तरके भी देवता रहे।

स्वायम्भुव मनुकी दूसरी पुत्री देवहूतिका विवाह ब्रह्माजीके मानस पुत्र महर्षि कर्दमसे हुआ। इनके नौ पुत्रियां हुई और सबसे छोटे पुत्रके रूपमें भगवान कपिलने इनसे अवतार लिया।

देवहूतिकी पुत्रियोंका विवाह तथा वंश विस्तार पृथक् दिया जा रहा है।

मनुजीकी तीसरी पुत्री प्रसूतिका विवाह प्रजापति दक्षसे हुआ। इन प्रजापति दक्षकी सन्तानोंसे त्रिलोकी परिपूर्ण हुआ है। इनका वंश-विस्तार भी पृथक दिया जा रहा है।

देवहूतिकी कन्याओंका वंश

महर्षि कर्दम और देवहूतिसे नौ कन्यायें उत्पन्न हुई। उनके विवाह इस प्रकार हुए—

१. कलाका मरीचिसे

२. अनुसूयाका अत्रिसे

३. श्रद्धाका अंगिरासे

४. हविर्भूका पुलस्त्यसे

५. गतिका पुलहसे

६. क्रियाका क्रतुसे

७. ख्यातिका भृगुसे

८. अरुन्धतीका वशिष्ठसे

९. शान्तिका अथर्वासे।

ये मरीचि, अत्रि आदि सब ब्रह्माजीके मानस पुत्र और प्रजापति हैं।

१. इनमें-से महर्षि मरीचिकी पत्नी कलाके दो पुत्र हुए - कश्यप और पूर्णिमान। इनकी सन्तानोंसे ही विश्व परिपूरित है।

इनमें पूर्णिमानके विरज और विश्वग दो पुत्र तथा देवकुल्या नामक कन्या हुई। यही दूसरे जन्ममें श्रीहरिके चरणोंसे निकली गंगा हुई।

२. महर्षि अत्रिकी पुत्री अनुसूयासे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवने ही अंशावतार लिया। इनमें ब्रह्माजीके अंशसे

चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्त तथा शिवके अंशसे दुर्वासा ऋषि हुए।

३. महर्षि अंगिराकी पत्नी श्रद्धासे सिनीवाली, कुहू और राका ये तीन कन्यायें (रात्रिकी अधिदेवता) उत्पन्न हुईं।

दो पुत्र हुए उतथ्य और वृहस्पति (देवगुरु) ये स्वारोचिष मन्वन्तरमें विख्यात हुए।

४. महर्षि पुलस्त्यने हविर्भू नामक पत्नीसे दो पुत्र उत्पन्न किये—अगस्त्य और विश्रवा।

इनमें अगस्त्यजी दूसरे जन्ममें जठराग्निसे और एक जन्ममें कुम्भसे उत्पन्न हुए।

विश्रवा मुनिकी इडविडा नामक पत्नीसे यक्षराज कुबेर उत्पन्न हुए। इन्हींकी दूसरी पत्नी केशिनीसे रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण उत्पन्न हुए।

५. महर्षि पुलहकी पत्नी गतिसे तीन पुत्र हुए—कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु।

६. महर्षि क्रतुकी पत्नी क्रियाने ब्रह्म तेजसे देदीप्यमान साठ सहस्र बालखिल्य नामक ऋषियोंको जन्म दिया।

७. महर्षि वशिष्ठकी पत्नी अरुन्धती का दूसरा नाम ऊर्जा था। इनसे सात विशुद्ध चित्त ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए। चित्रकेतु, सुरोचि, विरज, मित्र, उल्बण, वसुभृद्यान और द्युमान।

वशिष्ठजीकी दूसरी पत्नीसे शक्ति आदि कई पुत्र हुए।

८. अथर्वा मुनिकी पत्नी शान्ति (चित्ति) ने दधीचि नामक तपोनिष्ठ पुत्र उत्पन्न किया। इन्हीं दधीचिजीका दूसरा नाम अश्वसिरा पड़ा।

९. महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिसे धाता और विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा भगवान नारायणकी परायण श्री इनकी पुत्री हुई।

धाताका विवाह मेरु ऋषिकी कन्या आयातिसे और विधाताका विवाह उसीकी बहिन नियतिसे हुआ।

धाताके पुत्र मृकण्ड और विधाताके प्राण हुए। इनमें-से मृकण्डके पुत्र हुए मार्कण्डेय और प्राणके पुत्र वेदशिरा नामक मुनि हुए।

महर्षि भृगुके एक तीसरे पुत्र हुए कवि। उनके पुत्र उशना (शुक्राचार्य) हुए।

प्रसूतिकी कन्याओंका वंश

स्वाम्भुव मनुने अपनी तीसरी पुत्री प्रसूतिका विवाह ब्रह्माजीके मानस पुत्र प्रजापति दक्षसे किया। इनसे सोलह कन्यायें उत्पन्न हुई।

इनमें-से तेरहका विवाह धर्मसे हुआ।

एक अग्निको विवाही गयी।

एक पितृगणोंको विवाही गयी।

एक (सती) का विवाह शंकरजीसे हुआ।

इनमें-से सतीको कोई पुत्र नहीं हुआ। पिता द्वारा शंकरजीके अपमानसे क्षुब्ध होकर उन्होंने योगाग्निसे अपना शरीर भस्म कर दिया।

अग्निकी पत्नी स्वाहाने अग्निके ही अभिमानी देवता पावक, पवमान और शुचिको उत्पन्न किया।

इन तीनोंसे पैंतालिस प्रकारके अग्नि उत्पन्न हुए। अतः ये पैंतालिस, इनके तीन पिता और पितामह अग्नि ये कुल उन्चास अग्नि कहलाये। वेदज्ञ ब्राह्मण वैदिक यज्ञोंमें इनके नामोंसे आग्नेयी इष्टियां करते हैं।

पितृगणोंसे दक्षकुमारी स्वधाका विवाह हुआ था। उनसे अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सोमप और आज्यप इन पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई। इनमें साग्निक और निरग्निक दोनों प्रकारके पितर हैं।

स्वधासे धारिणी और वयुना नामक दो कन्यायें हुई। वे दोनों ज्ञान-विज्ञानमें पारंगत थीं।

धर्मका वंश

धर्मकी पत्नियों तथा सन्तानोंके नाम ध्यान देने योग्य हैं। उनका सम्बन्ध जीवनसे है। क्रमसे उन पत्नियोंके नाम तथा उनके पुत्रोंके नाम नीचे दिये गये हैं।

धर्मपत्नी		पुत्र
१. श्रद्धा	से	शुभ
२. मैत्री	से	प्रसाद (निर्मलता)
३. दया	से	अभय
४. शान्ति	से	सुख
५. तुष्टि	से	मुद
६. पुष्टि	से	स्मय (गर्व)
७. क्रिया	से	योग (प्राप्ति)
८. उन्नति	से	दर्प (घमण्ड) यह स्मयसे बड़ा है।
९. बुद्धि	से	अर्थ
१०. मेधा	से	स्मृति
११. तितीक्षा	से	क्षेम (कल्याण)
१२. (लज्जा)	से	प्रश्रय (नम्रता)
१३. मूर्ति	से	ऋषि नर-नारायण

श्रीमद्भागवतमें उत्तानपादका वंश

ब्रह्माजीके एक दिनमें सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग (चारोंको मिलाकर एक महायुग कहा जाता है) १००० बार बीतते हैं। तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। अतः मानव वर्षोंसे ब्रह्माजीका एक दिन ४३, २०, ००, ००, ००० वर्षोंका होता है, क्योंकि एक महायुग अर्थात् चारों युग ४३, २०, ००० वर्षोंका होता है। इस अवधिमें १४ मनु होते हैं। एक मनु लगभग ७१ चतुर्युगी रहते हैं। इसी समयको कल्प कहते हैं।

इस समय एक ब्रह्माजीके दिनका लगभग आधा बीत चुका है (उनकी आयु उनके अपने दिनोंके ३६० दिनका एक वर्ष गिनकर १०० वर्षकी है। उनमें-से ब्रह्माके ५० वर्ष बीत चुके हैं। उनके इक्यानवें वर्षके प्रथम मासका यह प्रथम दिन चल रहा है। इस दिनमें ६ मनु हो चुके हैं। वर्तमान वैवस्वत नामक यह सप्तम मन्वन्तर चल रहा है। इनमें भी ७१ चतुर्युगी होती हैं। उसमें-से २७ चतुर्युगी बीत चुकी हैं। वर्तमान अट्ठाइसवीं चतुर्युगीका चतुर्थ युग कलियुग चल रहा है।

श्रीमद्भागवतमें कथाका प्रारम्भ इस कल्पके प्रथम मन्वन्तर स्वायम्भुव मन्वन्तरसे होता है। षष्ठम स्कन्धसे पूर्व पंचम स्कन्ध तकी कथा उस प्रथम मन्वन्तरकी है। अतः उस कालका कोई चिह्न धरापर पाया नहीं जा सकता। उसके पश्चात् तो जल-प्रलय होनेका वर्णन है। यह वंशावली प्रथम मन्वन्तरकी है।

भगवान नारायणसे ब्रह्माजी। ब्रह्मासे स्वायम्भुव मनु, इन मनुके दो पुत्र थे उत्तानपाद और प्रियव्रत। यहां उत्तानपादका वंश दिया जा रहा है। प्रियव्रतका वंश पृथक दिया गया है।

उत्तानपादके दो पत्नी थीं, सुरुचि और सुनीति। सुरुचिका पुत्र उत्तम अविवाहित ही यक्षों द्वारा मारा गया। अतः वंश सुनीतिके पुत्र ध्रुवसे आगे चला। वंशावली भी प्रधान पुत्रकी ही दी गयी है।

ध्रुवके पुत्र वत्सर और उत्कल। वत्सरकी पत्नी स्वर्वीथी के ६ पुत्र, १. पुष्पार्ण, २. तिग्मकेतु, ३. इष, ४. ऊर्ज, ५. वसु, ६. जय।

पुष्पार्णकी दो पत्नियोंमें प्रभाके पुत्र प्रातः, मध्यंदिन और सायं। दूसरी पत्नी दोषाके पुत्र प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट।

व्युष्टकी पुष्करिणी नामक पत्नीसे सर्वतेजस, उनके पुत्र चक्षुकी पत्नीका नाम आकूति। उसके पुत्र मनु हुए। मनुकी पत्नी विरजाके ग्यारह पुत्र हुए।

१. पुरु, २. कुत्स, ३. त्रित, ४. द्युम्न, ५. सत्यव्रत, ६. ऋतव्रत, ७. अग्निष्टोम, ८. अतीरात्र, ९. प्रद्युम्न, १०. शिवि, ११. उल्लभुक।

उल्लभुककी पत्नी पुष्करिणीके ६ पुत्र हुए—१. अंग, २. सुमनस, ३. ख्याति, ४. क्रतु, ५. अंगिरस, ६. गय।

इनमें-से अंगकी पत्नी सुनीथासे वेन हुआ जो ऋषियों द्वारा मारा गया। उसका शरीर-मन्थन करनेसे निषाद और भगवान पृथु आदिराज उत्पन्न हुए।

पृथुकी पत्नी अर्चिके विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक ये पाँच पुत्र हुए। बड़े भाई विजिताश्वने चारों भाइयोंको चार दिशाओंका राज्य दे दिया। पृथ्वीके समस्त राजकुल उन्हींकी सन्तान हैं। इसमें हर्यक्ष पूर्वके, धूम्रकेश दक्षिणके वृक पश्चिमके और द्रविण उत्तरके नरेश हुए।

विजिताश्वकी पत्नी शिखण्डिनीसे पावक, पवमान और शुचि ये तीन अग्नि उत्पन्न हुए। महर्षि वसिष्ठके शापसे इन्हें मनुष्य योनिमें आना पड़ा था। विजिताश्वने इन्द्रसे अन्तर्धान विद्या प्राप्त की थी। इससे उनका एक नाम अन्तर्धान हो गया था। अपनी दूसरी पत्नी हविर्धानीसे उनके ६ पुत्र हुए—बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य, जितव्रत।

वर्हिषदका ही दूसरा नाम प्राचीन वर्हि हुआ। समुद्र कन्या शतद्रुतिसे इनके एक नाम तथा आचार वाले दस पुत्र हुए। इनको प्रचेता कहा जाता है।

प्रचेताओंको मारिषा नामक वृक्ष कन्या (वार्क्षी) से उसी प्रजापति दक्षने चाक्षुष मन्वन्तरमें जन्म लिया, जो पहिले ब्रह्माजी के पुत्र थे और शिवका अपमान करके मारेगये थे। क्योंकि वर्तमान मन्वन्तरमें धर्म, अधर्म के वंशके, सम्पूर्ण प्राणियोंकी माताओं (लोकमाताओं) के यही पिता हैं, अतः इन सर्वलोक मातामहका वर्णन करनेके लिए ही इस वंशावली का प्रयोजन है। लोकमाताओं तथा उनकी सन्तानका नाम निर्देश आगे करेंगे।

प्रियव्रतका वंश

स्वायम्भुव मनुके दूसरे पुत्र प्रियव्रत हुए। इन्होंने ही भूमण्डल (ब्रह्माण्ड) को सप्तद्वीप, नौ-खण्डों में विभाजित किया। इनके वंशके परिचयसे सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डका परिचय होता है।

प्रियव्रतकी पत्नी बर्हिष्मती (विश्वकर्माकी पुत्री) के दस पुत्र और एक कन्या थी। कन्याका नाम उर्जस्वती। इसका विवाह शुक्राचार्यसे हुआ। इसीकी पुत्री देवयानी हुई।

प्रियव्रतके दस पुत्रोंमें तीन ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हुए। इनके नाम हैं—१. महावीर, २. सवन और ३. कवि।

शेष सातमें-से प्रत्येक एक-एक द्वीपोके अधिपति हुए।

१. आग्नीध्र क्षार समुद्र से घिरे जम्बूदीप के अधिपति हुए। जम्बूद्वीप ही वर्तमान पृथ्वी है। शेष ६ द्वीप सूक्ष्म जगतके हैं। उनका वर्णन आलंकारिक है।

२. इध्म जिह्व—इक्षु रसके समुद्रसे घिरे प्लक्ष द्वीपके स्वामी।

३. यज्ञवाहु—सुरोदसे घिरे शाल्मलि द्वीपके स्वामी।

४. हिरण्यरेता—घृतोदसे घिरे कुश द्वीपके स्वामी।

५. धृतपृष्ठ—क्षीरोदसे घिरे क्रौंच द्वीपके स्वामी।

६. मेधातिथि—दधिमण्डोदसे घिरे शाक द्वीपके स्वामी।

७. वीतिहोत्र—शुद्धोदसे घिरे पुष्कर द्वीपके स्वामी।

भूगोल वर्णनमें इध्म जिव्हसे लेकर वीतिहोत्री तकके वंशका वर्णन है। यहां आग्नीध्रका जो इस धराके स्वामी हुए, उनका वंश वर्णित है।

आग्नीध्रने पूर्वचित्ति अप्सरासे जो ब्रह्मलोकसे आयी थी, विवाह किया। इनके नौ पुत्रोंका नाम उनकी पत्नियोंके साथ दिये गये हैं। इनकी सब पत्नियां सगी बहिनें थीं। सब मेरु पुत्री थीं।

१. नाभि—मेरुदेवी, २. किम्पुरुष—प्रतिरूपा, ३. हरि-वर्ष—उग्रदंष्ट्री, ४. इलावृत—लता, ५. रम्यक—रम्या, ६. हिरण्मय—श्यामा, ७. कुरु—नारी, ८. भद्राश्व—भद्रा, ९. केतुमाल—देववीति।

आग्नीध्रके पुत्रोंके नामोंपर ही जम्बूद्वीपके नौ खण्ड हुए। जो जहांका शासक हुआ, वह खण्ड उसके नामपर हुआ।

एक मत यह भी है (जो ठीक लगता है) कि वर्तमान पृथ्वी जम्बूद्वीपका केवल अजनाभ वर्ष है। जिसके स्वामी नाभि थे। इसीका नाम ऋषभदेवजीके पुत्र भरतके राजा होनेपर भारतवर्ष हो गया। शेष ८ खण्ड सूक्ष्म जगतके ही हैं।

आग्नीध्रके पुत्रके रूपमें भगवान ऋषभदेव प्रकट हुए। उन्होंने देवराज इन्द्रकी पुत्री जयन्तीसे विवाह किया। उनके सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े भरत थे। शेष नौ पुत्र अजनाभ वर्षके नौ खण्डोंके स्वामी हुए। उनके नामपर ही खण्डोंका नाम पड़ा। ये नाम हैं—१. कुशावर्त, २. इलावर्त, ३. ब्रह्मावर्त, ४. मलय, ५. केतु, ६. भद्रसेन, ७. इन्द्रस्पृह, ८. विदर्भ, ९. कीकट।

राजा भरतने विश्वरूपकी कन्या पंचजनीसे विवाह किया। उनके पांच पुत्र हुए—१. सुमति, २. राष्ट्रभृत, ३. सुदर्शन, ४. आवरण, ५. धूमकेतु।

भरतके पुत्र सुमतिकी ही एक पदवी ऋषभ हुई और उसीसे जैन धर्मकी प्रवृत्ति हुई, यह वर्णन भागवत ५-१५-१ का है।

सुमतिकी पत्नी वृद्धसेनासे अजित। उसकी पत्नी असुर्यासे देवद्युम्न। इस प्रकार जो आगेका वंश हैं, उसका संक्षिप्त वंश-वृक्ष नीचे है।

सुमति — वृद्धसेना
|
अजित — असुर्या
|
देवद्युम्न—धेनुमती
|
परमेष्ठी— सुवर्चला
|
प्रतीह —सुवर्चला(यही नाम इसका भी था)
|
प्रतिहर्ता—स्तुति
|
अजभूमा—ऋषिकुल्या
|
उद्‌गीथ—देवकुल्या
|
प्रस्ताव —नियुत्सा
|
हृदयज —
|
विभु —रति
|
पृथुषेण —आकूति
|
नक्त —
|
द्रुति —
|
गय —गयन्ती
|
चित्ररथ—सुगति-अवरोधन
(उर्णापत्नी)

|
सम्राट—उत्कला
|
मरीचि—विन्दुमती
|
विन्दुमान—सरघा
|
मधु —सुमनसि

धीरव्रत—भोजा
|
मन्थु —प्रमन्थू
(सत्या)
|
भौवन —दूषणा
|
त्वष्टा —विरोचना
|
विरज —विषूचि
|
शतजित् आदि १०० पुत्र और कन्या
प्रियव्रतके वंशमें विरज ही अन्तिम राजा हुए।

श्रीमद्भागवतमें—दक्ष प्रजापतिका वंश विस्तार

इस वंश-विस्तारकी महत्ता है। प्रजापति दक्षकी कन्याओंसे ही देव-दैत्य, मनुष्यादि समस्त सृष्टि हुई हैं। अतः दक्ष-कन्याओंके वंश-विस्तार ज्ञानका अर्थ है सृष्टिकी मूल परम्पराका ज्ञान।

ब्रह्माजीके मानस-पुत्रके रूपमें प्रजापति दक्षकी उत्पत्ति हुई थी। उनकी पुत्री सतीका विवाह भगवान शंकरसे हुआ था। शंकरजीसे दक्षका द्वेष हो गया, अतः दक्ष-यज्ञमें सतीने देहत्याग किया। वीरभद्रने यज्ञका नाश कर दिया, दक्षका सिर काटकर हवन कर दिया। दक्षके धड़पर बकरेका सिर लगाकर उन्हें शंकरजीने पुनः जीवित कर दिया। (यह सब कथा विस्तारसे 'शिवचरित' में है)

दक्षको अपने बकरेके सिरके कारण और भगवान शंकरका अपराधी होनेसे बहुत ग्लानि हुई। उन्होंने वह शरीर त्याग दिया। यही दक्ष मनु पुत्र उत्तानपादके वंशमें उत्पन्न हुए। यह परम्परा अन्यत्र दी जा रही है।

दक्षने प्रजापति पंचजनकी पुत्री असिन्कीसे विवाह किया। उससे उन्होंने पहिले हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किये। इन सबको नारदजीने उपदेश करके विरक्त बना दिया। तब दक्षने फिर एक हजार शबलाश्व नामक पुत्र उत्पन्न किये। इन्हें भी नारदजीने उपदेश किया। ये भी विरक्त हो गये। इससे क्षुब्ध होकर दक्षने नारदको शाप दे दिया कि वे कहीं भी एक मुहूर्तसे अधिक स्थिर नहीं रह सकेंगे।

ब्रह्माजीके द्वारा सान्त्वना दिये जानेपर प्रजापति दक्षने साठ पुत्रियाँ उत्पन्न कीं। इन्हीं पुत्रियोंकी सन्तान परम्परासे त्रिलोकी परिपूर्ण हुई है।

प्रजापति दक्षने अपनी कन्याओंका विवाह इस प्रकार किया——

(क) दस कन्याओंका विवाह धर्मसे किया।
(ख) तेरह कन्याओंका विवाह महर्षि कश्यपसे किया।
(ग) सत्ताइस कन्यायें चन्द्रमाको दीं।
(घ) दो कन्यायें भूत नामक ऋषिको दीं।
(ङ) दोका विवाह अंगिरा ऋषिसे किया।
(च) दोको कृशाशाश्वसे विवाहा।
(छ) शेष चारसे कश्यपजीने ही तार्क्ष्य नामसे विवाह कर लिया।

अब इनमें-सेप्रत्येकका वंश विस्तार पृथक-पृथक दिया जा रहा है।

(क) धर्मराजका वंश

प्रजापति दक्षने अपनी जिन दस पुत्रियोंका विवाह धर्मसे किया, उनके नाम हैं—भानु, लम्बा, ककुभ, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता और संकल्पा । इनकी सन्तानोंका वर्णन क्रमशः दिया जा रहा है ।

१. भानु—इनका पुत्र देवऋषभ और उसका पुत्र, इन्द्रसेन हुआ ।

२. लम्बा—इनका पुत्र हुआ विद्योत और उससे मेघगण हुए ।

३. ककुभ—इसका पुत्र संकट, उसका कीकट और उसके पृथ्वीके सब दुर्गा (किलों) के अभिमानी देवता हुए ।

४. जामि—इनका पुत्र स्वर्ग और उसका पुत्र नन्दी हुआ ।

५. विश्वा—विश्वेदेव इनके पुत्र हुए । वे निःसन्तान हैं ।

६. साध्या—साध्यगण इनके पुत्र हुए । उनसे अर्थसिद्धि नामक पुत्र हुआ ।

७. मरुत्वती—मरुत्वान और जयन्त ये दो पुत्र इनके हुए । इनमें-से जयन्तको भगवान वासुदेवका अंश उपेन्द्र कहा जाता है ।

८. मुहूर्ता—इनसे मुहूर्तोंके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए । वे अपने-अपने मुहूर्तके अनुसार फल देते हैं ।

९. संकल्पा—संकल्प इनका पुत्र है और उसका पुत्र है काम ।

१०. वसु—इनके आठ पुत्र हुए । ये अष्ट वसु कहे जाते हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु, और विभावसु ।

यह सम्पूर्ण देव सृष्टि है । इसमें काल, पदार्थ तथा भावोंके अधिदेवता हैं । उनकी उत्पत्ति एवं सन्तान-परम्परा जाननेका उपयोग है । जैसे काम संकल्पका पुत्र है । कोई संकल्प उठेगा तब उसके अनुरूप कामना होगी ।

वसुओंकी सन्तति परम्परा

१. द्रोण—इनकी अभिमति नामक पत्नीसे हर्ष शोक, भय आदि (मनोवृत्तियोंके) अभिमानी देवता उत्पन्न हुए ।

२. प्राण—इनकी पत्नीका नाम ऊर्जस्वती । उससे सह, आयु और पुरोजव नामके पुत्र हुए ।

३. ध्रुव—धरणी इनकी पत्नीने नाना नगरोंके अभिमानी देवता उत्पन्न किये ।

४. अर्क—इनकी पत्नी है वासना । इनसे तृष्णा आदि पुत्र हुए ।

५. अग्नि—इनकी धारा नामक पत्नीसे द्रविण आदि बहुतसे पुत्र हुए । अग्निसे ही कृत्तिका पुत्र स्कन्ध (कार्तिकेय) हुए । उनसे विशाख आदिका जन्म हुआ ।

६. दोष—शर्वरी नामक इनकी पत्नीसे श्रीहरिका अवतार शिशुमार (नक्षत्र मण्डलका अधिदेव) हुआ ।

७. वसु—इनकी पत्नी थीं अंगिरसी । इनसे शिल्पकलाके आचार्य विश्वकर्मा हुए । विश्वकर्माकी पत्नी कृतीसे चाक्षुष मनु हुए । उन मनुके पुत्र विश्वदेव तथा साध्यगण हैं ।

८. विभावसु—इनकी पत्नी उषाके तीन पुत्र हुए—व्युष्ट, रोचिष्, आतप । इनमें-से आतपके पंचयाम (दिवस) नामक पुत्र हुआ । इसीके कारण सब जीव अपने-अपने कार्योंमें लगते हैं ।

दक्ष-कन्याओंका वंश

(ख) महर्षि कश्यपसे जिन तेरह दक्ष कन्याओंका विवाह हुआ, वे लोकमाता है । उन्हींसे सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई । उनके नाम हैं—

अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि।

(ग) कृत्तिका आदि सत्ताइस नक्षत्राभिमानिनी कन्याओंका विवाह प्रजापति दक्षने चन्द्रमासे किया था। इनमें-से रोहिणीसे विशेष प्रेमके कारण चन्द्रमाको दक्षने क्षय होनेका शाप दे दिया। फिर दक्षको प्रसन्न करके चन्द्रकी एक-एक कला शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन बढ़नेका वरदान मिला। नक्षत्राभिमानी देवियोंसे कोई सन्तान नहीं हुई।

(घ) दक्ष प्रजापतिकी पुत्रियोंमें-से दोका विवाह भूतसे हुआ था। उनमें-से सरूपाने कोटि-कोटि रुद्रगण उत्पन्न किये। इनमें एकादश रुद्र मुख्य हैं। इनके नाम रुद्रके वर्णनमें गये हैं।

(ङ) महर्षि अंगिरासे प्रजापति दक्षकी दो पुत्रियोंका विवाह हुआ था।

इनमें-से प्रथम पत्नी स्वधासे पितृगण उत्पन्न हुए।

द्वितीय पत्नी सतीने अथर्वांगिरस नामक वेदको ही अपना पुत्र स्वीकार कर लिया।

(च) कृशाश्वको व्याही गयी दो दक्ष पुत्रियोंमें-से—
प्रथम अर्चिसे धूम्रकेशका जन्म हुआ।

द्वितीया धिषणासे चार पुत्र हुए—वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु।

(छ) तार्क्ष्य नामसे कश्यपजी ने चार दक्ष कन्याओंसे विवाह किया।

उनकी सन्तान इस प्रकार हैं—

१. पतंगी—इससे पक्षियोंका जन्म हुआ।

२. यामिनी—इससे शलभ (पतिंगे) उत्पन्न हुए।

३. विनता—इनके ज्येष्ठ पुत्र अरुण सूर्यके सारथि हैं।

दूसरे पुत्र गरुड़ भगवान विष्णुके वाहन हैं।

४. कद्रू—इनसे नाग उत्पन्न हुए।

इन लोकमाताओंकी सन्तानोंका वर्णन क्रमशः दिया जा रहा है—

१. तिमि —इनकी सन्तान जलचर जीव हैं।

२. सरमा —इनकी सन्तान सिंह, व्याघ्र, कुत्ते आदि हिंसक पशु हैं।

३. सुरभि — इनकी सन्तानोंमें गाय, भैंस आदि दो खुरवाले पशु हैं।

४. ताम्रा —बाज, गीध आदि शिकारी पक्षी इनकी सनातन हैं।

५. क्रोधवशा—इनकी संतति सर्प, बिच्छू आदि विषैले प्राणी हैं।

६. मुनि —इनसे अप्सरायें उत्पन्न हुईं।

७. इला —इनकी संतति वृक्ष, लतादि हैं।

८. सुरसा —इनसे यातुधान (राक्षस) उत्पन्न हुए। श्रीरामचरित मानसमें—'सुरसा नाम अहिनकी माता।' है। वहाँ क्रोधवशाको सुरसा कहा गया है।

९ अरिष्टा —इनसे गन्धर्वोंकी उत्पत्ति हुई।

१०. काष्ठा —इनसे एक खुरवाले घोड़े उत्पन्न हुए।

११. दनु —इनके इकसठ दानव पुत्र हुए। उनमें प्रधानोंके नाम दिये गये हैं—

१. द्विमूर्धा, २. शम्बर (इसे प्रद्युम्नने मारा), ३. अरिष्ट (वृषभ रूपमें रहता था। श्रीकृष्णने मारा), ४. हयग्रीव (भगवानने हयशीर्ष अवतार लेकर मारा), ५. विभावसु, ६. अयोमुख, ७. शंकुशिरा। ८. स्वर्भानु (यही अमृत पीते

समय श्रीहरिके चक्रसे कटा तो सिर राहू और धड़ केतु हो गया), ९. कपिल, १०. अरुण, ११. पुलोमा (इनकी पुत्री शची इन्द्राणी हैं।), १२. वृषपर्वा (इनकी पुत्री शर्मिष्ठासे ययातिके द्वारा पुरु आदि उत्पन्न हुए), १३. एकचक्र, १४. अनुतापन, १५. धूम्रकेश, १६. विरूपाक्ष, १७. विप्रचित्ति, १८. दुर्जय।

दानवेन्द्र मय भी इसी वंशमें हुए हैं। स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभासे नमुचिने विवाह किया था।

दनुके पुत्र वैश्वानरकी चार कन्यायें थीं।

उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका।

इनमें-से उपदानवी का विवाह हिरण्याक्षसे हुआ था। हयशिराका विवाह क्रतुसे हुआ। पुलोमा और कालकासे कश्यपजीने ही ब्रह्माजीकी आज्ञासे विवाह कर लिया। इन दोनोंसे पौलोम और कालकेय नामक साठ हजार दानव उत्पन्न हुए। उन्हींका दूसरा नाम निवात कवच था। ये यज्ञमें विघ्न डालते थे। अर्जुनने स्वर्ग जाकर इनको मार डाला।

विप्रचित्तिकी पत्नी सिंहिका के गर्भसे एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें ज्येष्ठ राहु (स्वर्भानुके सिरका अधिष्ठाता) हुआ। शेष सौ पुत्र केतु हुए।

विशेष—भागवतके अनुसार केतु सौ हैं। अभी विज्ञान बहुत थोड़े केतुओंका पता लगा सका है।

१२. दिति—इनके दो ही पुत्र थे। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। इनका वंश दैत्य कहलाया।

पीछे दितिके ही गर्भसे उनचास मरुद्गणोंका जन्म हुआ। उन्हें इन्द्रने देवता बना लिया।

हिरण्यकशिपुकी पत्नी कयाधू जम्भ नामक दानवकी पुत्री थी। उससे चार पुत्र हुए—संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद। इनकी सिंहिका नामकी एक बहिन भी हुई। उसका विवाह दानव विप्रचित्तिसे हुआ।

संह्लादकी पत्नी कृतिसे पंचजन नामक पुत्र हुआ।

संह्लादकी पत्नी धमनिसे वातापि और इल्वल हुए। इस इल्वलने ही वातापिको पकाकर महर्षि अगस्त्यको खिला दिया था।

अनुह्लादकी पत्नी सूर्म्यासे वाष्कल और महिषासुर उत्पन्न हुए।

प्रह्लादके पुत्र हुए विरोचन। उनके पुत्र हुए दैत्यराज बलि। बलिकी पत्नी अशना (विन्ध्यावली) से सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें वाणासुर ज्येष्ठ था।

दितिके दूसरे पुत्र हिरण्याक्षकी पत्नीका नाम था रुषाभानु। उसके नौ पुत्र हुए—१. शकुनि, २. शम्बर, ३. धृष्ट, ४. भूत-सन्तापन, ५. वृक, ६. कालनाभ, ७. महानाभ, ८. हरिश्मश्रु और ९. उत्कच।

१३. अदितिका वंश

विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण; मित्र, शक्र और त्रिविक्रम ये बारह पुत्र अदितिके हुए। इनको ही आदित्य कहा जाता है।

१. विवस्वानकी पत्नी संज्ञासे श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु, यमराज और यमुनाका जन्म हुआ।

संज्ञाने ही घोड़ीका रूप धारण करके भूलोकमें दोनों अश्विनीकुमारोंको जन्म दिया।

विवस्वानकी दूसरी पत्नी छायासे शनैश्चर, सावर्णि मनु और तपती नामक कन्या उत्पन्न हुई। तपतीने संवरणसे विवाह किया।

२. अर्यमाकी पत्नी मातृकासे चर्षणी नामक पुत्र हुए। ये कर्तव्याकर्तव्यको जाननेवाले थे। इन्हींके आधारपर ब्रह्माजीने मनुष्योंमें वर्णोंकी कल्पना की।

३. पूषाके कोई सन्तान नहीं हुई। जब दक्ष भगवान शंकरकी निन्दा कर रहे थे, तब पूषा दांत दिखाते हँसने लगे। इससे वीरभद्रने उनके सब दांत तोड़ दिये। तबसे पूषा पिसा हुआ अन्न ही खाते हैं।

४. त्वष्टाकी पत्नी रचना दैत्योंकी छोटी बहिन (दितिकी पुत्री) थीं। इनसे सन्निवेश और विश्वरूप उत्पन्न हुए।

इन तीन सिरवाले विश्वरूपको ही देवताओंने अपना पुरोहित बनाया था और पीछे इन्द्रने वज्रसे इनका सिर काट दिया।

इसके पश्चात् त्वष्टाने यज्ञ करके वृत्रको उत्पन्न किया। वृत्र महाभागवत था। यह युद्धमें इन्द्रके द्वारा मारा गया।

५. सविताकी पत्नी पृश्निसे आठ सन्तान हुई। सावित्री, व्याहृति, त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य और पंचमहायज्ञ।

६. भगकी पत्नी सिद्धिसे महिमा, विभु और प्रभु ये तीन पुत्र हुए। इनके अतिरिक्त आशिषा नामकी एक कन्या हुई।

७. धाताकी चार पत्नियां थीं—कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति। इनके क्रमसे सायं, दर्श, प्रातः और पूर्णमास—ये चार पुत्र हुए।

८. विधाताकी पत्नी क्रियासे पुरीष्य नामक पांच पुत्र हुए। ये पांचों ही अग्नि हैं।

९. वरुणकी पत्नी चर्षणीसे भृगुजीने पुनः जन्म लिया। इससे पहिले वे ब्रह्माजीके पुत्र थे।

आदि कवि वाल्मीकिजी भी वरुणके ही पुत्र हैं। तपस्या करते समय इनके ऊपर दीमकोंकी मिट्टी जम गयी। तब वल्मीकिसे निकलनेके कारण इनका नाम वाल्मीकि पड़ा।

उर्वशीको देखकर वरुण और मित्रका वीर्य स्खलित हो गया। उसे इनलोगोंने घड़ेमें रख दिया। उस घड़ेसे अगस्त्य और वसिष्ठ ऋषिका जन्म हुआ।

१०. मित्रकी पत्नी रेवतीसे तीन पुत्र हुए—उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल।

११. शक्र (इन्द्र) की पत्नी शची पुलोमाकी पुत्री थीं। उनसे तीन पुत्र हुए—जयन्त, ऋषभ और मीढ्वान।

१२. उरुक्रम (वामन) भगवान अदितिके तपसे प्रसन्न होकर उनके छोटे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। दैत्यराज बलिसे तीन पग पृथ्वी मांग कर विराट् रूपसे त्रिभुवन माप लिया और वह इन्द्रको दे दिया।

इन उरुक्रम भगवानकी पत्नी कीर्ति थीं। उनसे वृहच्छ्लोक नामक पुत्र हुआ। उसके सौभग आदि कई सन्तान हुई।

श्रीमद्भागवतमें—अधर्मका वंश (४-८-२,३,४)

अधर्मके वंशमें कोई मर्यादा नहीं होती। अतः प्रायः भाई-बहिनोंमें ही विवाह हुआ है।

इस वंशको जानकर व्यक्ति अपने प्रति सावधान रहे—पतनसे बचे, यही पुराणका तात्पर्य है।

अधर्मका विवाह हुआ मृषासे।

दम्भ और माया ये इनकी दो सन्तानें। क्योंकि निऋति (नरकके) देवता सन्तानहीन हैं, उन्होंने इन्हें दत्तक ले लिया।
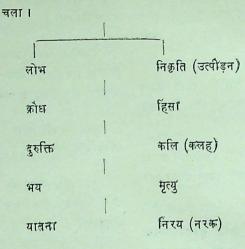
श्रीमद्भागवतमें

मन्वन्तराधिकारी

प्रत्येक मन्वन्तरमें मनु, मनु पुत्र, देवता, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवानका अवतार होता है। क्योंकि सौ अश्वमेध यज्ञ जिसने पहिले किया हो, वह चक्रवर्ती नरेश ही जन्मान्तरमें इन्द्र पद प्राप्त करता है, इसीसे उसे शतक्रतु या शक्र (शतका श और क्रतुका क्र लेकर) कहते हैं। अतः यदि किसी मन्वन्तमें कोई जीव इन्द्र पदका अधिकारी न हो तो उस मन्वन्तरमें जो भगवानका अवतार होता है, वही इन्द्रपद भी सम्हालते हैं। इस कल्पके प्रथम मन्वन्तरमें यही स्थिति रही है।

इन षडविध अधिकारियोंमें-से मनु धर्मका प्रतिपादन करते हैं। मनु पुत्र पृथ्वी की प्रथम शासन व्यवस्थाको प्रारम्भ करते हैं।

सप्तर्षिगण कालके द्वारा लुप्त श्रुतियोंका साक्षात्कार करके पुनः उनका प्रचलन करते हैं।

देवता संसारके विभिन्न कार्यों—तत्वोंके संचालक संरक्षक बनते हैं और इन्द्र देवाधिप होकर त्रिभुवनका मानसिक शासन तथा स्वर्गका भोग करते हैं।

भगवान अवतार लेकर तत्वज्ञान, दर्शन तथा आध्यात्मिक साधन मार्गकी स्थापना, साधकोंका तथा देवताओंका भी संरक्षण करते हैं।

एक कल्पमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। वर्तमान कल्पके अब तकके सात और आगे आनेवाले सात मन्वन्तरोंके इन अधिकारी (कारक) पुरुषोंका संक्षिप्त विवरण श्रीमद्-

भागवतके अनुसार दिया जा रहा है। मन्वन्तरोंका नाम उनके मनुओंके नामके अनुसार ही है।

१. मनु —स्वायम्भुव, ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। इनकी पत्नीका नाम शतरूपा है।
मनुपुत्र —उत्तानपाद और प्रियव्रत।
सप्तर्षिगण—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ। ये सातों महर्षि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं।
अवतार — भगवानका यज्ञ नामक अवतार हुआ।
इन्द्र —इस प्रथम मन्वन्तरमें कोई जीव इन्द्र होने योग्य नहीं था।
भगवान यज्ञने ही इन्द्र पद स्वीकार किया।
देवता —इस मन्वरमें याम नामक देवगण थे।

२. मनु —स्वारोचिष, ये अग्निके पुत्र हैं।
मनु पुत्र —द्युमत्, सुषेण, रोचिष्मत् आदि।
सप्तर्षिगण —उर्जस्तम्भादि सप्तर्षिगण हुए।
अवतार —वेदशिरा ऋषिकी पत्नी तुषितासे भगवानने अवतार लिया।
उनका नाम विभु है। आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे।
उन्हींके आचरणसे शिक्षा लेकर ८८ हजार ऋषियोंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन किया।
इन्द्र —रोचिष्मान् नामक इन्द्र हुए।
देवता —इस मन्वन्तरके देवताओंको तुषिता कहा गया।

३. मनु —उत्तम। ये प्रियव्रतके पुत्र थे। उत्तानपादके भीं एक पुत्र ध्रुवके सौतेले भाई उत्तम थे किन्तु यहां उनकी चर्चा नहीं है।
मनु पुत्र —पवन, सृंजय, यज्ञ होत्रादि।
सप्तर्षिगण —महर्षि वशिष्ठके प्रमद आदि सात पुत्र।
अवतार —धर्मकी पत्नी सूनृतासे भगवानका अवतार सत्यसेन नामका हुआ। इस मन्वन्तरके इन्द्रके सखा बनकर इन्होंने यक्ष राक्षसादिका नाश किया।
इन्द्र —सत्यजित् नामक इन्द्र हुए।
देवगण —सत्य, वेदश्रुत, मद तथा सत्यव्रत देवगण थे।

४. मनु —तृतीय मनु उत्तमके सगे भाई तामस मनु हुए। ये महाराज प्रियव्रतके द्वितीय पुत्र हैं।
मनु पुत्र —पृथु, ख्याति, नर, केतु आदि दस पुत्र हुए।
सप्तर्षिगण —ज्योतिर्धाम आदि सप्तर्षि हुए।
अवतार —हरिमेधा ऋषिकी पत्नी हरिणीसे भगवान प्रकट हुए। इनका नाम हरि हुआ। इन्होंने ही ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्रका उद्धार किया।
इन्द्र —इस मन्वन्तरके इन्द्रका नाम त्रिशिख था।
देवता —सत्यक, हरि और वीर नामक देवगण थे। इनके अतिरिक्त विधृतिके पुत्र वैधृति नामके भी देवता थे। कालके द्वारा नष्ट प्राय वेदको इन्होंने धारण किया। इससे इनका नाम वैधृति पड़ा।

५. मनु —महाराज प्रियव्रतके पुत्र और तामस मनुके सगे भाई रेवत मनु हुए।
मनु पुत्र - अर्जुन, बलि, विन्ध्य आदि।
सप्तर्षिगण—हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्व बाहु, शुभ्र आदि।
अवतार —शुभ्र ऋषिकी पत्नी विकुण्ठासे भगवानका वैकुण्ठ नामक अवतार हुआ। भगवती रमाकी प्रार्थनापर इन्होंने ही वैकुण्ठ (रमा वैकुण्ठ) धामकी रचना की।

इन्द्र —विभु नामक इन्द्र थे।
देवता —भूतरय आदि देवगण थे ।

६. मनु —महाराज चक्षुके पुत्र चाक्षुष मनु हुए ।
मनु पुत्र —पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि ।
अवतार —वैराजकी पत्नी सम्भूतिसे भगवानने अजित नामक अवतार लिया। इन्होंने ही समुद्र-मन्थन कराया । कूर्म, धन्वन्तरि और मोहिनी रूप इन्होंने ही लिया।
सप्तर्षिगण—हविष्यमान्, वीरक आदि ।
इन्द्र —मन्त्रद्रुम ।
देवता —आप्य आदि ।

७. मनु —भगवान सूर्य (विवस्वान) के पुत्र वैवस्वत श्राद्धदेव वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके मनु हैं । इनकी पत्नी त्वष्टाकी पुत्री संज्ञाने दो रूप और लिए– छाया और बड़वा (घोड़ी) का ।
मनु पुत्र —इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, नभग, धृष्ट, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करुष, पृषध्र, वसुमान्, निमि, सुद्युम्न (यह पीछे इला हो गया।)
सप्तर्षिगण—कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ।
अवतार —महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिसे देवताओंके छोटे भाई रूपमें भगवानने वामन अवतार लिया ।
इन्द्र —इस मन्वन्तरके इन्द्रका नाम पुरन्दर है।
देवता —आदित्य (आदितिके १२ पुत्र) आठ वसु, ११ रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, ऋभुगण ।
विशेष —महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारः मनवस्तथा । मद्भावा मानसा जाताः
येषां लोकमिमाः प्रजाः ।।
—गीता—१०

इसमें पूर्व अर्थात् प्रथम मन्वन्तरके सात महर्षि, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु भगवानने गिनाये । ये सातों महर्षि प्रजापति हैं। सनकादि चारों कुमारोंसे तो कोई प्रजा हुई नहीं। चार मनु गिनाये जो मानसजात हैं या भगवद्भावसे उत्पन्न हैं। इनमें प्रथम स्वायम्भुव मनु ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। अग्नि और सूर्य दोनों भगवद्भाव हैं—अतः अग्निके पुत्र द्वितीय मनु स्वारोचिष तथा सूर्य पुत्र वैवस्वत तथा सावर्णि (सप्तम तथा अष्टम मनु) ही इस चारकी गणनामें आते हैं।

८. मनु —भगवान सूर्यके छायासे उत्पन्न पुत्र सावर्णि ।
मनु पुत्र —निर्मोक, विरजस्क आदि ।
अवतार —इस मन्वन्तरमें भगवान वामन ही सक्रिय होंगे । वही पुरन्दरसे लेकर इन्द्र पद बलिको देंगे -
इन्द्र —प्रह्लादके पौत्र बलि ।
सप्तर्षिगण—गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य; ऋष्यशृंग और कृष्ण द्वैपायन व्यास । ये सब अमर हैं और सप्तम मन्वन्तरमें (अभी) तपोनिरत हैं ।
देवता —सुतपा, विरज, अमृतप्रभ आदि ।

९. मनु - वरुणके पुत्र दक्षसावर्णि ।
मनु पुत्र —भूतकेतु, दीप्तकेतु आदि ।
देवता —पारा, मरीचिगर्भ आदि ।
इन्द्र —अद्भुत नामक ।
सप्तर्षिगण—द्युतिमानादि ।
अवतार —आयुष्मान्‌की पत्नी अम्बुधारासे ऋषभ नामसे अवतार होगा। यही अद्भुतको इन्द्र बनावेंगे ।

१०. मनु —ब्रह्मसावर्णि; ये उपश्लोकके पुत्र होंगे ।
मनु पुत्र —भूरिषेण आदि ।

सप्तर्षि —हविष्मान्, सुकृति, सत्य, जय, मूर्ति आदि।
देवगण —सुवासन, विरुद्ध आदि।
इन्द्र —शम्भु। कोई जीव इन्द्र योग्य न होनेसे शंकरजी ही इन्द्र रहेंगे।
अवतार —विश्वस्रजकी पत्नी विषूचीसे भगवान विष्वक्सेन नामसे अवतार लेकर शम्भुसे मैत्री करेंगे।

११. मनु —धर्मसावर्णि। ये अत्यन्त संयमी होंगे।
मनु पुत्र —सत्य, धर्म आदि दस पुत्र होंगे।
देवता —विहंगम, कामगम, निर्वाण रुचि आदि।
इन्द्र —वैधृति नामवाले।
सप्तर्षि —अरुण आदि।
अवतार —आर्यककी पत्नी वैधृता (इन्द्रमाता) से धर्मसेतु नामका अवतार होगा।

१२. मनु —रुद्रसावर्णि।
मनु पुत्र —देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ।
इन्द्र —ऋतधामा।
देवता —हरित आदि।
सप्तर्षि —तपोमूर्ति, तपस्वी, आग्नीध्रक आदि।
अवतार —सत्यसहाकी पत्नी सूनृतासे स्वधामा नामक अवतार होगा।

१३. मनु —देव सावर्णि, ये जितेन्द्रिय होंगे।
मनु पुत्र —चित्रसेन, विचित्र आदि।
देवता —सुकर्म, सुत्राम आदि।
इन्द्र —दिवस्पति।
सप्तर्षि —निर्मोक' तत्वदर्श आदि।
अवतार —देवहोत्रकी पत्नी वृहतीसे योगेश्वर नामक अबतार होगा।

१४. मनु —इन्द्र सावर्णि।
मनु पुत्र —उरु, गम्भीर बुद्धि आदि।
देवता —पवित्र, चाक्षुष आदि।
इन्द्र —शुचि।
सप्तर्षि —अग्नि, वाहु, शुचि, शुद्ध और मागध आदि।

अबतार —सत्रायणकी पत्नी वितानासे वृहद्भानु नामक अवतार होगा। परमहंस संहिता भागवतके वक्ताकी रुचि मनु पुत्र, सप्तर्षि, देवतादिके नाम गिनानेमें नहीं है। अतः इनके एक-एक, दो-दो नाम ही दिये हैं। सब मन्वन्तरोंमें भगवानका अवतार होता है, यही बतलाना यहां अभीष्ट था।

श्रीमद्भागवतका भूगोल–सुमेरु

'यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ।५।१६।१ इस सबको पृथ्वी मानकर भागवतका यह भूगोल है ।

१. यह जम्बूद्वीप कमलकोशके अभ्यन्तर कोशके समान कमल पत्रके जैसा समवर्तुल है और दस हजार योजन विशाल है।

इसमें नववर्ष हैं। इनको विभक्त करनेवाले आठ मर्यादा गिरि आठों दिशाओंमें हैं ।

इसके मध्यमें इलावृत है । उसके केन्द्रमें कुल गिरिराज सुमेरु है । सुमेरु इलावृत या पृथ्वीकी कर्णिकाके समान है ।

इस इलावृतके उत्तर नील, श्वेत और शृंगवान पर्वतों द्वारा विभक्त रम्यक, हिरण्मय तथा कुरु ये तीन खण्ड हैं ।

इलावृतके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय इन तीन मर्यादा पर्वतोंसे विभक्त तीन खण्ड हैं—हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा भारतवर्ष (अजनाभवर्ष) ।

इलावृतके पूर्वमें माल्यवान, गन्धमादन, नील नामक तीन मर्यादा गिरियोंसे विभक्त तीन खण्ड हैं—निषध, केतुमाल, भद्राश्ववर्ष ।

मेरुके चारों ओर चार अवष्टम्भ (मेरुको स्थित रखनेवाले) चार पर्वत हैं—मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद। इन पर्वतोंपर क्रमशः आम्र, जामुन, कदम्ब और बटके चार अत्यन्त विशाल वृक्ष हैं। चार ह्रद हैं इनपर क्रमशः दूध, मधु, इक्षुरस और मधुर जलके। इन्हींपर चार देवोद्यान हैं—क्रमशः नन्दन (इन्द्रका) चैत्ररथ (वरुणका) वैभ्राजक (अग्निका) और सर्वतोभद्र (कुबेरका)

इस वर्णनसे ही स्पष्ट है कि यह सम्पूर्ण वर्णन स्थूल पृथ्वी का नहीं है । इसमें देवलोक सम्मिलित हैं । अतः पृथ्वीमें ही इनकी संगति नहीं लग सकती ।

भूगोलका मैं ज्ञाता नहीं हूँ। भागवतके वर्णनका संक्षिप्त अनुवाद यह इसलिए है कि भूगोलके विद्वान इसके अन्वेषणकी ओर ध्यान दें ।

मेरुकी कर्णिकाके समान बीस पर्वत (शिखर) उसपर चारों ओर स्थित हैं । इनके नाम हैं—१. कुरंग, २. कुरर, ३. कुसुम्भ, ४. वैकंक, ५. त्रिकूट, ६. शिशिर, ७. पतंग, ८. रुचक, ९. निषध, १०. शिनीवास, ११. कपिल, १२. शंख, १३. वैदूर्य, १४. जारुधि, १५. हंस, १६. ऋषभ, १७. नाग, १८. कालंजर, १९. नारद (बीसवेंका नाम नहीं है ।)

मेरुके पूर्वमें जठर और देवकूट, पश्चिममें पवन तथा पारियात्र, दक्षिणमें कैलास, करवीर, उत्तरमें त्रिशृंग एवं मकर पर्वत हैं ।

मेरुके ऊपर भगवान ब्रह्माकी सम चतुर्भुजाकार स्वर्णपुरी है । उसकी आठों दिशाओंमें आठों लोकपालोंकी पुरियाँ हैं ।

भगवान वामनके विराट बनकर सम्पूर्ण त्रिलोकी मापते समय उनके ऊपर उठे वामपादके अंगुष्ठ नख लगनेसे इस ब्रह्माण्डका बाह्यावरण तनिक फट गया था । (तबसे हमारे इस ब्रह्माण्डका नाम वामन-ब्रह्माण्ड पड़ गया ।) बाह्यावरण फटनेसे जो बाह्य जल धारा (ब्रह्मद्रव) भीतर प्रविष्ट हुई वह स्वर्गके भी ऊपर उतरी । उस स्थानको विष्णुपद कहते हैं । वह ध्रुव लोक है । वहांसे वह धारा सप्तर्षि लोकोंमें आयी । वहांसे चन्द्रमण्डलको
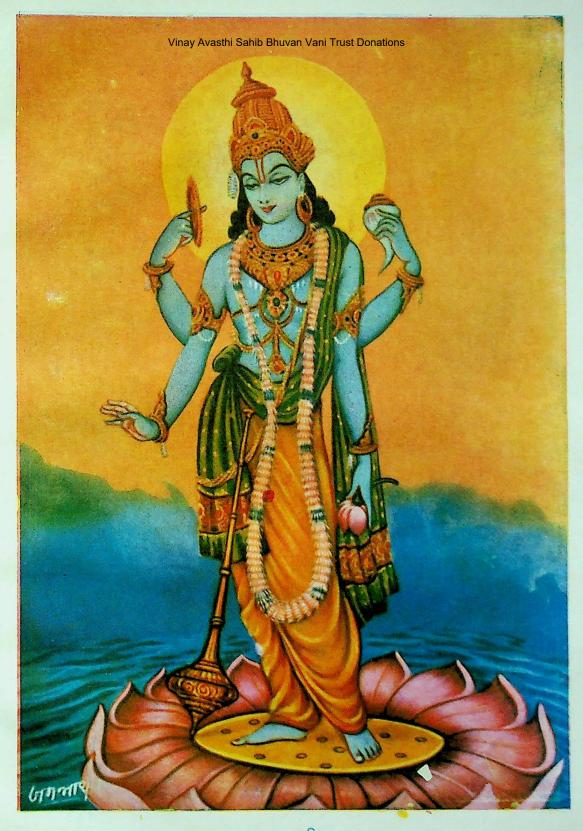
भगवान विष्णु

एक और छोड़ती ब्रह्म लोकमें आयी। वहांसे उसकी चार धारायें हो गयीं। उनके चार नाम हुए—१. सीता, २. अलकनन्दा, ३. चक्षु, ४. भद्रा।

१—सीता ब्रह्मलोकसे केसराचलपर आयी, वहांसे गन्धमादन पर्वतपर होती भद्राश्ववर्षमें होकर पूर्वमें क्षार समुद्रमें मिली।

२. चक्षु ब्रह्मलोकसे माल्यवान पर्वतपर आकर केतु माल वर्षमें होती पश्चिम समुद्रमें मिली।

३. भद्रा ब्रह्मलोकसे उत्तर मेरुपर आकर उत्तर कुरुवर्ष होती उत्तर समुद्रमें मिली, इतना सब वर्णन अपार्थिव है।

४. अलकनन्दा ब्रह्मलोकसे हेमकूटपर आकर वहांसे भारतवर्षमें होती दक्षिण समुद्रमें मिली।

विभिन्न खण्डोंमें उपासना

श्रीमद्भागवत भूगोल, इतिहास या किसी लौकिक विद्याका ग्रन्थ नहीं है। भागवत परमहंस संहिता है। अतः इसमें जो भूगोल है भी, वह यह सूचित करनेके लिए है कि सृष्टिके समस्त खण्डोंमें भगवानकी उपासना होती है। किस खण्डमें किनके द्वारा भगवानके किस रूपकी उपासना होती है, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे है। मंत्र, स्तुति आदि भागवतमें ही देखें।

१. इलावृतमें भगवान भव देवी भवानी और उनकी सखियोंके साथ रहते हैं। वे भगवान शेषकी उपासना करते हैं। (५-१७-१५ से २४)

२. भद्राश्ववर्षमें धर्मके पुत्र भद्रश्रवा भगवान हयशीर्षकी उपासना करते हैं। (५।१८।१ से ६)

३. हरिवर्षमें दैत्यराज प्रह्लाद भगवान नृसिंहकी उपासना करते हैं। (५।१८।७ से १४)

४. केतुमाल वर्षमें भगवान नारायण कामदेव रूपमें रहते हैं। भगवती रमा रात्रिमें प्रजापतिकी कन्याओं (लोकमाताओं) के साथ और दिनमें उनके पतियोंके साथ भगवानके इस काम रूपकी उपासना करती हैं। (५।१८।२४ से २८)

५. हिरण्मय वर्षमें पितरोंके अधिपति अर्यमा यहांके निवासियोंके साथ भगवान कच्छपकी आराधना करते हैं। (५।१८।२९ से ३३)

६. उतर कुरु वर्षमें भगवती भू देवी कुरुओंके साथ भगवान बाराहकी पूजा करती हैं। (५।१८।३४ से ३९)

७. किंपुरुष वर्षमें श्रीहनुमानजी किम्पुरुषोंके साथ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामकी आराधना करते हैं। (५।१९।१ से ८)

८. भारतवर्षमें देवर्षि नारदजी (हिमालय के दिव्य-क्षेत्र कलाप ग्रामके) वर्णाश्रम माननेवाले लोगोंके साथ ऋषि रूपमें आकल्प तपोनिरत भगवान नर-नारायणकी आराधना करते हैं। (५।१९।९ से १५)

ये नौ खण्ड जम्बूद्वीपके हैं। इनमें भी भारतवर्ष (वर्तमान सम्पूर्ण पृथ्वी) ही कर्म क्षेत्र है। शेष ८ खण्ड दिव्य (सूक्ष्म) हैं। वे स्वर्गमें जिनके पुण्य शेष हैं—उनके पुण्य फल भोगके क्षेत्र (भोगलोक) हैं। (५।१९।१९ तथा ५।१७।५)

विभिन्न द्वीपोंमें उपासना

१. सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका बिभाजन सात द्वीपोंमें माना गया है। उसमें प्रथम जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंकी उपासनाका वर्णन ऊपर आ चुका।

२. दूसरा द्वीप प्लक्ष है। इस द्वीपके अधिपति महाराजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्वने अपने सात पुत्रोंको द्वीपके सात भाग करके उनका राज्य दे दिया। उन पुत्रोंके नामपर ही द्वीपके सातों भागोंके नाम हैं—

१, शिव, २, यवस, ३, सुभद्र, ४, शान्त, ५, क्षेम, ६, अमृत, ७, अभय। यह द्वीप इक्षुरस सागरसे घिरा है।

इस द्वीपमें सात पर्वत हैं—मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल।

सात ही महानदियां हैं—अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, सत्यम्भरा।

यहाँ जो चातुर्वण्य व्यवस्था है, उसमें वर्णोंके नाम हैं—हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन, सत्यांग।

इस द्वीपके लोगोंकी आयु सहस्र वर्ष होती है। यहाँ त्रयी (वेद) के अनुसार भगवान सूर्यकी आराधना होती है। इसी द्वीपके प्लक्ष (पाकर) पर गरुड़जीका आवास है।

३. तीसरा द्वीप शाल्मली है। यह सुरोदसे घिरा द्वीप प्रियव्रतके पुत्र यज्ञबाहुको पितासे मिला। उन्होंने इसके सात भाग करके अपने सात पुत्रोंको दे दिया। पुत्रोंके नाम-सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञातके नामसे ही उनके राज्यके नाम पड़े। इस द्वीपमें भी सात मर्यादा पर्वत तथा सात महानदियां हैं।

पर्वत—स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुत।

नदियां —अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा, राका। इस द्वीपमें वर्णोंके नाम हैं—श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर, एषन्धर।

यहाँ भगवानकी सोम (चन्द्र) रूपमें वेदके द्वारा पूजा होती है।

४, कुशद्वीप घृतोदसे घिरा है। इसके अधिपति प्रियव्रत पुत्र हिरण्यरेताने भी द्वीपको अपने सात पुत्रोंमें विभक्त किया। उनके नामपर ही उन भागोंके नाम हैं—वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभि गुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, वामदेव।

द्वीपके सात मर्यादा गिरि हैं—चक्र, चतुः शृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण।

सात महानदियां हैं—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता, मन्त्रमाला।

यहां वर्णोंके नाम हैं—कुशल, कोविद, अभियुक्त, कुलक।

यहांके लोग कर्म कौशल (यज्ञविधि) द्वारा भगवान अग्निका यजन करते हैं।

५, क्रौंच द्वीप क्षीरोदसे घिरा है। इसके मध्यमें क्रौंच नामक पर्वतराज है। यह वरुणके द्वारा रक्षित है।

प्रियव्रत पुत्र घृतपृष्ठने अपने सात पुत्र—आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पतिको द्वीपके सात भाग करके दिये। उनके ही नामपर उन भागोंके नाम पड़े।

यहांके मर्यादा गिरि हैं—शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हिण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र।

नदियां हैं—अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती, और शुक्ला।

यहां वर्णोंके नाम हैं—पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक।

यहांके लोग अर्घ्यदान विधिसे जल रूप भगवानकी पूजा करते हैं।

६, शाकद्वीप दधिमण्डोदसे घिरा है। प्रियव्रतात्मजने मेधातिथिने अपने सात पुत्रोंमें इसे बाँट दिया। उनके

नामपर उन भागोंके नाम पड़े—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वधार।

यहांके मर्यादा पर्वत—ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस।

महानदियां—अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृषि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रश्रुति, निजधृति।

यहांके लोग प्राणायाम परायण हैं और वायु रूप भगवानकी उपासना करते हैं।

७. सप्तम द्वीप पुष्कर स्वादूदकसे घिरा है। इसके मध्यमें कोटिदल प्रकाशमय वृहत पुष्कर (पद्म) है जो भगवान ब्रह्माका आसन है। इस द्वीपमें मानसोत्तर नामक एक ही मर्यादा गिरि है। इसीपर चारों दिशाओंमें चारों लोकपालोंकी पुरियां हैं।

इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रत पुत्र वीतिहोत्रने अपने पुत्र रमणक और धातकिको इसका शासक बनाया।

इस द्वीपके लोग कर्मयोग तत्पर होकर भगवान ब्रह्माकी अपने कर्म द्वारा आराधना करते हैं।

विशेष—

प्लक्षादि पांच (जम्बू और पुष्करको छोड़कर) द्वीपोंके लोगोंको आयु, इन्द्रियशक्ति, ओज, सहनशक्ति, बल, विक्रम उत्पत्तिसे इन्हें प्राप्त होता है। सबमें त्रेतायुग के समान काल रहता है।

स्पष्ट है कि पुष्कर द्वीप ब्रह्मलोक है और जम्बूद्वीपका भारतवर्ष (अजनाभ वर्ष) पृथ्वी भू-लोक है। जम्बूद्वीपके ही दूसरे खण्ड भुवर्लोकके भाग हैं। शेष पाँच द्वीप तो भुवर्लोकसे ब्रह्मलोकके अन्तराल में हैं। अतः वे स्थूल जगतके भाग नहीं हैं। उनके पर्वत, नदियां आदिका वर्णन भी लाक्षणिक है।

श्रीमद्भागवतमें भारतवर्ष वर्णन

श्रीमद्भागवतमें सम्पूर्ण पृथ्वीको भरतखण्ड कहा है और भारतवर्षके नामसे ही हमारे भारतका वर्णन है।

केवल भरतखण्ड (पृथ्वी) कर्मलोक है, किन्तु भारतवर्ष तो मुक्तिदाता क्षेत्र है। देवता भी यहां जन्म लेनेकी आकांक्षा करते हैं (५।१६।२० से २८)

भारतके पर्वत—१. मलय, २ मंगलप्रस्थ, ३. मैनाक, ४. त्रिकूट, ५. ऋषभ, ६. कूटक, ७. कोल्लक, ८. सह्य, ९. देवगिरि, १०. ऋष्यमूक, ११. श्रीशैल, १२, वेकंटाचल, १३. महेन्द्रगिरि, १४. वारिधार, १५. विन्ध्याचल, १६. शुक्तिमान, १७. ऋक्षगिरि, १८. पारियात्र, १९. द्रोणाचल, २०. चित्रकूट, २१. गोवर्धन, २२. रैवतक, २३. ककुभ, २४. नीलगिरि, २५. गोकामुक, २६. इन्द्रकील, २७. कामगिरि।

इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों पर्वत हैं।

नदियां—१. चन्द्रवसा, २. ताम्रपर्णी, ३. अवटोदा, ४. कृतमाला, ५. वैहायसी, ६. कावेरी, ७. वेणी ८. पयस्विनी, ९. शर्करावर्ता, १०. तुंगभद्रा, ११. कृष्णा, १२. वेण्या, १३. भीमरथी, १४. गोदावरी, १५. निर्विन्ध्या, १६. पयोष्णी, १७. तापी १८. रेवा, १९. सुरसा, २० नर्मदा, २१ चर्मण्वती, २२. महानदी. २३. वेदस्मृति, २४. ऋषिकुल्या, २५. त्रिसामा २६ कौशिकी, २७. मन्दाकिनी, २८. यमुना, २९. सरस्वती, ३०. दृषद्वती, ३१. गोमती, ३२. सरयू, ३३. रोधस्वती, ३४. सप्तवती, ३५. सुषोमा, ३६. शतद्रू, ३७. चन्द्रभागा, ३८. मरुद्वृधा, ३९. वितस्ता, ४०. असिक्नी, ४१. विश्वा। महानद—१. सिन्धु, २. अन्ध, ३. शोण।

इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों नदियां हैं।

नोट—पर्वतों तथा नदियोंमें बहुतोंके नाम बदल गये हैं। उनका वर्तमान नाम तथा स्थान शोधका विषय

है। कोई विद्वान इसपर सप्रमाण प्रकाश डालेंगे तो उनके विवेचनका 'श्रीकृष्ण-संदेश' स्वागत करेगा।

उपद्वीप—महाराज सगरके पुत्रोंने अश्वके अन्वेषणके समय जो पृथ्वी खोदी, उससे ये द्वीप बन गये हैं। इनके नाम हैं—

१. स्वर्णप्रस्थ, २. चन्द्रशुक्ल, ३. आवर्तन, ४. रमणक, ५. मन्दरहरिण, ६. पांचजन्य, ७. सिंहल (वर्तमानकी लंका), ८. लंका (लकद्वीप समूह)

इन द्वीपोंके वर्तमान नाम, स्थानका विवेचन भी कोई भूतत्ववेत्ता करेंगे तो कृपा होगी।

श्रीमद्भागवत में पातालोंका वर्णन

सूर्यके नीचे राहु (स्वर्भानु) की स्थिति है। यह छाया (सिंहिका) पुत्र होनेसे छायारूप है (पृथ्वीकी छाया जो गगनमें पड़ती है, उसका अधिदेव राहु है।)

राहुसे नीचे सिद्ध विद्याधरों चारणों (उपदेवताओं) के लोक हैं। उसके नीचे वह आकाशका भाग है जहां तक वायु है, उसमें यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत गणादि रहते हैं। उसे अन्तरिक्ष कहते हैं। उसके नीचे जहां तक हंस. भास, बाज, गीधादि उड़कर पहुँच सकते हैं, वह भाग पृथ्वी ही माना जाता है।

भूमिके भीतर सात लोक हैं। ये भी दिव्य हैं, अतः इन्हें पृथ्वीके धरातलपर किसी ओर नहीं पाया जा सकता। इनको बिलस्वर्ग कहा जाता है। इनका संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है। ये क्रमशः अधिकाधिक भूमिकी गहराईके वर्तुलाकार स्तर हैं।

इन भूमिके भीतरके लोकोंमें स्वर्गसे भी अधिक वैभव है।

यहां भवन, उद्यान, वृक्ष, लता, सरोवरादि सब हैं। यह लाक्षणिक वर्णन है।

१. अतल—दानवेन्द्र मयका पुत्र बल यहांका स्वामी है। यह महामायावी ९६ मायाओंको उत्पन्न करनेवाला है। यहां केवल विलास है और विलासिनी स्त्रियां हैं। उनके सम्पर्कमें आया जीव मदान्ध हो जाता है।

२. वितल—इसमें भगवान शिव हाटकेश्वर रूपसे अपने भूतगणोंके साथ रहते हैं। भगवती भवानीके साथ यह उनका अन्तःपुर जैसा है। शिववीर्यसे यहीं हाटक सुवर्ण उत्पन्न होता है।

३. सुतलके अधिपति दैत्यराज बलि हैं। इनके अनुगत दैत्य यहां रहते हैं। बलिके द्वारपर भगवान वामन रूपमें सदा गदा लिए उपस्थित रहते हैं। इस मन्वन्तरके अन्त होनेपर सावर्णि मन्वन्तरमें भगवान वामन बलिको स्वर्गमें इन्द्र बनावेंगे।

४. तलातलमें दानवेन्द्रमय रहते हैं, उन परम शिव भक्तकी महादेवजी सदा रक्षा करते हैं।

५. महातल अनेक सिरवाले क्रोधवश नामक सर्पोंका लोक है। ये सब सर्प लोकमाता कद्रूके पुत्र हैं।

६. रसातलमें दैत्य, दानव, निवातकवच राक्षस रहते रहते हैं। ये सब जब त्रिपुर था तो उसकी स्वर्णपुरीमें रहते थे। स्वभावसे ही ये देवशत्रु हैं। महाबली एवं महासाहसी हैं।

७. पातालमें इस नागलोकके स्वामी रहते हैं। शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर, देवदत्त आदि इनमें मुख्य हैं। इनके अधिपति वासुकी हैं। इनके भोग (देह) बहुत विशाल हैं। सब मणिधर एवं अनेक सिर हैं। पातालसे भी नीचे सहस्रशीर्ष कमलतन्तु श्वेत भगवान शेषकी स्थिति कही गयी हैं।

(८-५—७ध्याय २४-२५)

श्रीमद्भागवतमें लोकोंके नाम

ऊपरके लोक

१. महीतल (भूर्लोक-पृथ्वी)
२. नभस्तल (भुवर्लोक, भूतप्रेतादिका)

३. स्वर्लोक (स्वर्ग-देवताओका)
४. महर्लोक (तपस्वियोंका)
५. जनलोक (सिद्धयोगियोंका)
६. तपोलोक(महर्षियोंका)
७. सत्यलोक (ब्रह्मलोक)
८. वैश्वानरलोक (अग्निका)
९. ध्रुवलोक
१०, शिशुमारचक—विष्णुलोक
११. यमलोक

पृथ्वीसे नीचेके लोक

१. अतल
२. वितल
३. सुतल
४, तलातल
५. महातल
६. रसातल
७. पाताल

—पातालके भी मूलमें भगवान शेष,

इन लोकोंके निवासियोंका वर्णन पृथक है।

ऋतुओंके नाम

१. शरद
२. हेमन्त
३. शिशिर
४ वसन्त
५. निदाध (ग्रीष्म)
६. पावस (वर्षा)

पावस और वर्षाको आयुर्वेद-शास्त्र दो मानता है और शरद, शिशिर दो ऋतु नहीं मानता है, किन्तु भागवतमें तो शरद ऋतुका वर्णन कई बार आया है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित नरक

यमलोकमें सैकड़ों हजारों नरक हैं (५-२६-३७) यहां केवल मुख्योंकी ही नामावली, यातना प्रकार, गिनाये गये हैं।

नरकका नाम	कैसे पापी जाते हैं	कैसी यन्त्रणा मिलती है
१. तामिस्र	जो दूसरोंका धन, स्त्री हरण करते हैं।	भूख-प्यास, डण्डेसे मारना आदि
२. अन्धतामिस्र	परस्त्री सेवी	बहुत ऊपरसे कठोर भूमिपर बार-बार पटकना।
३. रौरव	दूसरोंसे द्वेष-केवल कुटुब पोषी	उसके द्वारा मारे सताये प्राणी नोच-नोचकर खाते हैं।
४. महारौरव	पशु हिंसक	वे प्राणी गीध जैसे रूपमें उसे काटते नोचते हैं।
५. असिपत्रबन	पाखण्ड पथ पकड़ने वाला	तलवारकी धार जैसे तीखे पौधोंके वनमें लाकर कोड़ोंसे पीटते हैं। भागनेपर अंग कटते हैं।
६. सूकरमुख	जो शासनाधिकारी निरपराधको दण्ड देते हैं	गन्नेके रस निकालनेके समान यन्त्रोंमें डालकर उन्हें पीसते हैं।
७. अन्धकूप	जो दूसरोंकी आजीविका छीनता है।	दीर्घकाल तक अन्धकूपमें डाल देते हैं। वहां उसे अनेक जन्तु काटते हैं।
८. क्रमिभोजन	जो उचित वितरण किये बिना खाता है।	कीड़ोंसे भरी गन्दगीमें पड़ता है। उसे कीड़े और वह कीड़ोंको खाता है। सन्तप्त लौह मूर्तिसे बांध देते हैं।

९. सन्दंशस्तप्त	जो अनाचार करता है	लौह कटकके खम्भेपर उसे रगड़ते हैं।
१०. वज्र कण्टकशाल्मली–	जो बलात् धर्म मर्यादा तोड़ता है।	गन्दगी भरी वैतरणी में डाल देते हैं। वहां उसे कीड़े नोचते हैं।
११. इषुवेध	जो अनाधिकार शिकार करता है	उसे यमदूत बाणोंसे बींधते हैं।
१२. सारमेयाद–	जो गांवमें आग लगाता है, किसीको विष देता है।	उसे वहां कुत्ते नोचते हैं।
१३. अवीचिरय	जो झूठी गवाही देता है	ऐसे स्थानोंमें डाला जाता है जहा धातु जल लहरियों सी लहराती और अंग-अंग काटती रहती है।
१४. जो विश्वाससे शरणमें आयेको मारता है		यमदूत उसे बाण भालेसे मारते हैं।

यहां बहुत थोड़े नरकोंका विवरण है। मनुष्य जब मरता है तो स्थूल शरीर छूट जाता है। सूक्ष्म शरीर (इन्द्रियां और मन) तथा कारण शरीर (देहाभिमानयुक्त अविद्या) रहती है। इस सूक्ष्म शरीरको तुरन्त आतिवाहिक देह मिलता है।

आतिवाहिक देह वायु प्रधान होने परभी स्थूल देहके ही आकार जैसा होता है। भूत-प्रेत, पितर इसी देहमें रहते हैं।

यदि बहुत पुण्यात्मा हुआ तो स्वर्ग जाता है। वहां आतिवाहिक देह बिना जाने भोग देहमें बदल जाता है। जैसे युवा शरीर कब वृद्ध हुआ, पता नहीं लगता। यह भोग देह ज्योति प्रधान होता है। इसमें भोग दीर्घकाल चल सकता है। जैसे मिष्ठानका स्वाद सैकड़ों वर्ष लगातार लिया जा सकता है। उसमें पेट भरनेसे बन्द करनेकी विवशता नहीं है।

यदि पापी हुआ तो यमलोक जाता है। यहां अनजाने ही उसका आतिवाहिक देह यातना देहमें बदल जाता है। यमराज के निर्णयानुसार उसे उसके पापोंका फल भोगने नाना नरकोंमें भेजा जाता है। यातना देहमें काटने, जलाने, मारनेकी पीड़ाका अनुभव बराबर होता रहता है: किन्तु मूर्छा या मृत्यु नहीं होती। देह अग्निमें, उबलते तेलमें डाला जाय या टुकड़े-टुकड़े काटा जाय, न मरता न नष्ट होता। केवल वैसी पीड़ाका अनुभव होता रहता है।

श्रीकृष्णके ११४ नाम

१. अच्युत
२. अधोक्षज
३. अजनाभ
४. अज
५. अनन्त
६. अवर्ता
७. अनिरुद्ध
८. अम्बुजेक्षण
९. अविचनगोचर
१०. अकिंचन वित्त
११. अरविन्दाक्ष
१२. अप्रमेयात्मा
१३. अखिलावास
१४. आदिपुरुष
१५. ईश्वर
१६. ईश
१७. उरुक्रम
१८. केशव
१९. कृष्ण
२०. कौस्तुभकण्ठ
२१. कमलनाभ
२२. कमलेक्षण
२३. कंसारि
२४. कालिय-कदन
२५. केशि-निषूदन
२६. कैटभारि
२७. करुणासिन्धु
२८. कृपणवत्सल
२९. खगेन्द्रध्वज
३०. गरुड़ध्वज
३१. गरुड़ासन
३२. गदाधर
३३. गदाग्रज
३४. गिरिधर
३५. गोविन्द
३६. घनश्याम
३७. चक्रपाणि
३८. चक्री
३९. जनार्दन
४०. जगत्पति
४१. जगदीश्वर
४२. तीर्थपाद
४३. तीर्थकीर्ति
४४. दयार्णव
४५. दीनबन्धु
४६. दीनवत्सल
४७. दीननाथ
४८. देवदेव
४९. नारायण
५०. नन्द-नन्दन
५१. पुरुषोत्तम
५२. परमसत्य
५३. पुण्यश्लोक
५४. पवित्रकीर्ति
५५. परमात्मा
५६. पुण्यश्रवण कीर्तन
५७. परमपुरुष
५८. प्रियश्रव
५९. देवकीनन्दन
६०. नन्द-नन्दन
६१. नलिननयन
६२. पद्मपलाशलोचन
६३. पुष्कराक्ष
६४. पुण्डरीकाक्ष
६५. पद्मनाभ
६६. पंकजनाभ
६७. पुराणपुरुष
६८. प्रणतार्तिहा
६९. बनमाली
७०. नटवर
७१. बलानुज
७२. भगवान
७३. भक्तवत्सल
७४. जगन्नाथ
७५. मेघश्याम
७६. माधव
७७. महायोगी
७८. मुकुन्द
७९. मधुसूदन
८०. मधुद्विष
८१. मायेश
८२. यज्ञेश
८३. यज्ञपुरुष
८४. रमाश्रय
८५. रमेश
८६. रमाकान्त
८७. रथांगपाणि
८८ यशोदानन्दन
८९. लोकेश
९०. लोकनाथ
९१. लोकभावन
९२. वासुदेव
९३ विष्वक्सेन
९४. योगेश
९५. योगेश्वर
९६. विश्वात्मा
९७. विश्वेश
९८. विश्वभावन
९९. विभु
१००. विष्णु
१०१. विश्वमूर्ति
१०२. वैकुण्ठ
१०३. वृषण
१०४. शिपिविष्ट
१०५. श्रीनिवास
१०६. श्रीवत्साक
१०७. शौरि
१०८ शार्गधन्वा
१०९. स्वराट्
११०. सात्वतपति
१११. सर्वात्मा
११२. सर्वदर्शन
११३. हरि
११४. हृषीकेश

श्रीकृष्णकी पटरानियोंके पुत्र

(श्रीमद्भागवतसे)

रुक्मिणीजीसे	जाम्बवतीजीके	कालिन्दीजीके	मित्रविन्दा(शैव्या)जीके
१. प्रद्युम्न	१. साम्ब	१. श्रुत	१. वृक
२. चारुदेष्ण	२. सुमित्र	२. कवि	२. हर्ष
३. सुदेष्ण	३. पुरजित	३. वृष	३ अनिल
४. चारुदेह	४. शतजित्	४. वीर	४. गृद्ध
५. सुचारु	५. सहस्रजित्	५. सुबाहु	५. वर्धन
६. चारुगुप्त	६. विजय	६. भद्र	६. उन्नाद
७. भद्रचारु	७ चित्रकेतु	७. एकल	७. महाश
८. चारुचन्द्र	८. वसुमान्	८. शान्तिदर्श	८ पावन
९. विचारु	९. द्रविड़	९. पूर्णमास	९, वह्नि
१०. चारु	१०. क्रतु	१०. सोमक	१०. क्षुधि

सत्यभामाजीके	सत्याजीके	लक्ष्मणाजीके	भद्राजीके
१. भानु	१. वीर	१. प्रघोष	१. संग्रामजित्
२. सुभानु	२. चन्द्र	२. गात्रवान	२. वृहत्सेन
३. स्वर्भानु	३. अश्वसेन	३. सिंह	३. शूर
४. प्रभानु	४. चित्रगुः	४. बल	४. प्रहरण
५. भानुमान्	५. वेगवान	५. प्रबल	५. अरिजित्
६. चन्द्रभानु	६. वृष	६. ऊर्ध्वग	६. भय
७, वृहद्भानु	७. आम	७. महाशक्ति	७. सुभद्र
८. रतिभानु	८. शंकु	८. ओज	८. वाम
९. श्रीभानु	९. वसु	९. सह	९. आयु
१०. प्रतिभानु	१०. श्रीमान् कुन्ति	१० अपराजित	१०. सप्तक

सोलह हजार रानियोंमें प्रमुख रोहिणीजीके केवल दीप्तिमान, ताम्र और तप्तका नामोल्लेख है।

भगवान नारायण

श्रीकृष्णकी पटरानियाँ

(श्रीमद्भागवतके अनुसार)

१. रुक्मिणी

क्योंकि ये विदर्भ नरेश राजा भीष्मककी पुत्री थीं, इनका वैदर्मी नाम भी आया है।

श्रीकृष्णने इनका हरण किया तब जब इनसे विवाह करने शिशुपालकी बारात आ चुकी थी। हरिवंश पुराणके अनुसार इनका पहिले स्वथंवर होना था। उसमें भी श्रीकृष्ण गये थे, पर 'कन्या स्वयंवरमें नहीं आना चाहती' यह कहकर राजाओंको भीष्मकने विदाकर दिया था। (पूरी कथा 'श्रीद्वारिकाधीश' में दी गयी है)।

२. जाम्बवती

ब्रह्माजीके मानसपुत्र ऋक्षराज जाम्बवन्तकी कन्या हैं। स्यमन्तक मणि ढूंढने श्रीकृष्ण जब जाम्बवान-जीकी गुफामें पहुँच गये, तब द्वन्दयुद्धमें हारकर जाम्बवानने मणि तथा अपनी कन्या भी उन्हें दे दी।

३. सत्यभामा

ये द्वारिकाकेही यादव सत्राजितकी पुत्री है 'स्यमन्तक मणि श्रीकृष्णने मेरे भाईको मारकर ले ली,' यह झूठा कलंक सत्राजितने लगाया था, किन्तु मणि मिलनेपर अपनी पुत्री व्याह दी।

४. कालिन्दी

भगवान सूर्य (विवस्वान) की संज्ञा नामक पत्नीसे उत्पन्न ये यमराजकी सगी बहिन और यमुना सरिताकी अधिदेवता भी हैं। ये पुराणपुरुषकी प्राप्तिके लिए तपकर रही थीं। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ गये तब इन्हें ले आये। द्वारिका लाकर विवाह किया।

५. मित्रविन्दा

इनका एक नाम शैव्या आया है (१०-८३-६) द्रौपदीने श्रीकृष्ण महारानियोंको सम्बोधन किया है, उसमें कौसला, शैव्या और रोहिणी ये नाम ऐसे आये हैं जो पहिले नामोंसे भिन्न हैं, किन्तु सब महारानियोंने अपने विवाहका जो वर्णन किया, उनमें ये नाम नहीं है। क्योंकि ये उन्हीं महारानियोंके दूसरे नाम हैं। द्रौपदीके सम्बो-धनमें मित्रविन्दा नाम नहीं है। वहां शैव्या नाम है। ये श्रीकृष्णकी बुआ राजाधिदेवीकी पुत्री थीं। इन्हें स्वयंवर सभासे श्रीकृष्ण हरण कर लाये।

६. सत्या

दक्षिण कौमलके नरेश नग्नजितकी कन्या होनेसे इन्हे नाग्नजिती और कौसला भी कहा गया है।

श्रीकृष्ण सात उद्दण्ड वृषभोंको नाथ कर इन्हें प्राप्त कर सके। स्मरण रखने योग्य है कि उस समय अयोध्या (उत्तर कोसल) के नरेश बृहद्बल थे, जो महाभारत युद्धमें अभिमन्युके हाथ मार गये। (९-१२-८)

७. भद्रा

श्रीकृष्णकी बुआ श्रुतकीर्ति कैकय देशमें व्याही थीं। उनकी पुत्री भद्राको उसके भाई सन्तर्दन आदिने प्रेमपूर्वक श्रीकृष्णसे विवाह दिया।

८. लक्ष्मणा

मद्र नरेश वृहत्सेनकी पुत्री लक्ष्मणाके लिए भी मत्स्य--वेधकी घोषणा थी। श्रीकृष्णने मत्स्यवेध करके इनसे विवाह किया।

ये आठ श्रीकृष्णकी पटरानियां हैं। इनके अतिरिक्त भौमासुरको मारकर वे सोलह सहस्र एक सौ राजकन्यायें ले आये, उन सबकी नामावली दे पाना सम्भव नहीं है।

रोहिणी—उन्हीं सोलह सहस्र एक सौ रानियोंमें प्रमुख थीं। अत: महारानियोंके पुत्रोंका नामोल्लेख करते समय इनके भी पुत्रोंकी चर्चा भागवतमें है।

श्रीकृष्णके अश्वोंके नाम

१- शैव्य २- सुग्रीव ३- मेघपुष्प ४- बलाहक

श्रीमद्भागवतमें

श्रीकृष्णके व्रज-सखाओंके नाम

श्रीवलरामजी तो अग्रज हैं। उनका संकर्षण नामभी आया है। इसके अतिरिक्त ग्यारह नाम सखाओंके हैं।

१- विशाल २- ऋषभ
३- अर्जुन ४- वरूथप
५- श्रीदाम ६- सुबल
७- भद्रसेन ८- तेजस्वी
९- देवप्रस्थ १०- अंशु
११- तोक कृष्ण

भागवतमें गोपियोंमें कोई नाम नहीं है। माता यशोदा और रोहिणीका नाम है। सखाओंमें बहुप्रचलित मधुमंगलका नाम भी नहीं है। पितृवर्गमें नन्द बाबा और उपनन्दजीका ही नाम है।

श्रीकृष्णके पुत्र-पौत्रोंमें १८ महारथी

१- प्रद्युम्न—ज्येष्ठ एवं सबसे प्रधान
२- अनिरुद्ध प्रद्युम्न के पुत्र तथा प्रसिद्ध महारथी
३- दीप्तिमान
४- भानु ५- साम्ब
६- मधु ७- वृहद्भानु
८- चित्रभानु ९- वृक
१०- अरुण ११- पुष्कर
१२- वेदबाहु १३- श्रुतदेव
१४- सुनन्दन १५- चित्रबाहु
१६- विरूप १७- कवि
१८- न्यग्रोध

अनिरुद्धके पुत्र हुए व्रजनाभ। यदुवंशके क्षय होनेपर यही बचे थे।

श्रीकृष्णके सहोदर भाई

हिरण्यकशिपुके छः पुत्रोंको योगमाया क्रमशः देवकीके गर्भ में पहुँचाती रहीं, उन्हें उत्पन्न होते ही कंस मार देता था। उनका जो नाम वसुदेवजीने रखा वह और जो हिरण्यकशिपुके पुत्र रूपमें था, वह भी इस प्रकार है—

	वसुदेवजीका नाम रखा	हिरण्यकशिपुके यहांका नाम
१.	कीर्तिमन्त	स्मर
२.	सुषेण	उद्‌गीथ
३.	भद्रसेन	परिष्वंग
४.	ऋजु	पतंग
५.	सम्मर्दन	क्षुद्रभृत्
६.	भद्र	घ्रणी

सातवें गर्भमें संकर्षण आये थे, जिन्हें योगमायाने रोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया।

आठवें श्रीकृष्ण स्वयं हैं।

नौवीं सन्तान सुभद्राजी।

—×—

श्रीमद्‌भागवतमें

विष्णुपार्षदोंके नाम

१. सुनन्द	२. नन्द
३. जय	४. विजय
५. कुमुद	६. कुमुदेक्षण
७. बल	८. प्रबल
९. विष्वक्सेन	१०. गरुड़
११. जयन्त	१२. श्रुतदेव
१३. पुष्पदन्त	१४. सात्वत्

देववर्ग

देवताओंके आठ वर्ग हैं। इनमें प्रत्येकमें कितने हैं, यह संख्या साथ दी गयी हैं।

१. आदित्य	१२
२. वसु	८
३. रुद्र	११
४. मरुत्	४९
५. अग्नि	४९
६. अश्विनीकुमार	२
७. ऋभुगण	
८. विश्वेदेवा	

देवगण

यह वर्ग भी आठ प्रकारका है।

१. बिबुध अर्थात् देवता

२. गन्धर्व
३. अप्सरायें
४. पितर
५. साध्यगण
६. सिद्धगण
७. चारण–इनमें किन्नर और किम्पुरुष भी हैं।
८. असुर– इनमें यक्ष, राक्षस, दैत्य दानव हैं।

देवताओंसे असुरोंका द्वेष है, किन्तु हैं वे देवताओंके भाई और उनके समान ही सूक्ष्म शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। वे भी स्थूल देहधारी नहीं हैं।

लोकपालोंकी पुरी

१. इन्द्रकी पुरी अमरावती (स्वर्ग) यह पूर्व दिशामें है। अन्तरिक्षमें हैं।
२. वरुणकी पुरी—विभावरी
यह पश्चिम दिशामें है। जलमें है।
३. कुबेरकी पुरी—अलका
उत्तर दिशामें हिमालयमें है।
४. यमकी पुरी—संयमिनी
दक्षिण दिशामें अन्तरिक्षमें है।

ये सब सूक्ष्म जगतमें हैं। अतः स्थूल जगतमें इन्हें ढूंढ़कर नहीं पाया जा सकता।

लोकपालोंके उद्यान

१. इन्द्रका (स्वर्गका) नन्दनवन
२. वरुणका (जलके भीतर) सुरसन
३. कुबेरका—वैश्रम्भक
इसका दूसरा नाम है सौगन्धिक
४. गन्धर्वोंका—चैत्ररथ्य
५. अप्सराओंका—पुष्पभद्रक

आपके शरीरमें देवताओंका निवास है

१. मुखमें—अग्निका निवास, ये वाणीके देवता हैं।
२. तालुमें—वरुणका वास है। ये रसनेन्द्रियके देवता हैं।
३ नासिकामें—अश्विनीकुमार–घ्राणेन्द्रियके देवता है।
४. नेत्रमें—सूर्य चक्षु इन्द्रियके देवता।
५ चर्ममें—वायु देवता, ये त्वग् (स्पर्श) इन्द्रियके देवता हैं।
६. कर्ण—दिक् ये श्रोत्रेन्द्रियके देवता हैं।
७. उपस्थ—प्रजापतिका वास है।
८. गुदा—लोकपाल मित्रका निवास है।
९. हाथ—देवराज इन्द्र हाथोंके देवता हैं।
१०. पैर—लोकेश भगवान विष्णु गतिके देवता हैं।
११. बुद्धि—ब्रह्माजी इसके देवता हैं।
१२. मन—चन्द्रमा मनके देवता हैं।
१३. अहंकार—रुद्र इसके देवता हैं।
१४. चित्त—यह संस्कारात्मक है। इसके देवता हिरण्य-गर्भ ब्रह्माजी हैं।

जो विराट्में है, वही प्रत्येक देहमें है। विराट्के वर्णनके रूपमें यह भागवतमें आया है। ३।६।१२ से २६

आपके सम्बन्धियोंमें देवता हैं

आचार्य— देवके स्वरूप हैं।
पिता— ब्रह्माके स्वरूप हैं।
बड़े भाई—इन्द्रके स्वरूप हैं।
माता— साक्षात् पृथ्वी (भूदेवी) हैं।
बहिन— दयाकी मूर्ति है।
अभ्यागत—अग्निकी मूर्ति है।

—६-७-२९, ३०

—:०:—

एकादश रुद्र

एकादश रुद्र	महारुद्रके नाम	रुद्र पत्नियाँ	रुद्रके स्थान
१. अज	१. मन्यु	१. धी	१, हृदय
२. एकपाद	२. मनु	२. वृत्ति	२. इन्द्रियाँ
३. अहिर्बुध्न	३. महिनस	३. उशना	३. प्राण
४. कृत्तिवास	४. महान्	४. उमा	४. व्योम
५. अपराजित	५. शिव	५. नियुक्ति	५. वायु
६. त्र्यम्बक	६. ऋतध्वज	६. सर्पि	६. अग्नि
७. महेश्वर	७. उग्ररेता	७. इला	७. जल
८. वृषाकपि	८. भव	८. अम्बिका	८. मही
९. शम्भु	९. काल	९. इरावती	९. सूर्य
१०. कपर्दी	१०. वामदेव	१०. सुधा	१०. चन्द्र
११. नील लोहित	११. धृतव्रत	११. दीक्षा	११. तप

'रुद्राणां शंकरश्चास्मि' (गीता १०।२३) भगवानने कहा, किन्तु रुद्रोंमें किसीका नाम शंकर नहीं है। अतः ढूंढना पड़ेगा कि श्रीकृष्णचन्द्रने किस रुद्रको शंकर कहा।

श्रीमद्भागवत गीताकी व्यासकृत व्याख्या है। श्रीमद्-भागवतमें स्वयं श्रीकृष्ण ही कहते हैं।

रुद्राणां नील लोहितः ११।१६।१३

इससे सिद्ध हुआ कि नील लोहित रुद्रको गीतामें शंकर कहा गया है।

कश्यप पत्नियोंकी सन्तानोंका वर्णन पृथक है। उसमें भूतपत्नी सरूपासे उत्पन्न जो रुद्र हैं, उनके नाम पृथक दिये जा रहे हैं।

रुद्रगण

१. नन्दी यह भगवान शंकरके वृशभका भी नाम है और मुख्य पार्षद भी नन्दीश्वर हैं। नन्दीश्वर नाटे कदके और वानर मुख हैं।

२. वीरभद्र

३ मणिमान

४. चण्डीश इनके अतिरिक्त गणोंका वर्ग है। प्रत्येक वर्गमें बहुत गण हैं। यहाँ केवल वर्गोका नाम दिया जा रहा है।

३. भैरव   ४- विनायक

५. प्रेत   ६. भूत

७. पिशाच ८ प्रमथ
९. उन्माद १०- ब्रह्मरास
११- बैताल १२- यातुधान
१३- यक्ष १४- राक्षस
१५- कूष्माण्ड

१६- मातृकायें (इनमें पूतना, रेवती, ज्येष्ठा, कोटरादि हैं)
१७- पिशाचिनी १८- भूतनी
१९- प्रेतनी २०- यक्षिणी
२१- राक्षसी २२- यातुधानी

—०—

श्रीमद्भागवतमें

देवताओंके नाम

१- भगवान नारायणके अनन्त नाम हैं। उनके विष्णु, हरि आदि नाम श्रीकृष्णके नाममें आ गये हैं।

२- शिव, रुद्र, गिरीश, वामदेव, त्र्यक्ष, धूर्जटि, नीलकण्ठ, मीढुष्ट, आशुतोष, भूतेश, उमामपति।

३- ब्रह्मा, शतधृति, अज परमेष्ठी, धाता, स्वयं भू, विरंचि।

सामान्य देवताओंको सुर, अमर, शुनासीर, देवता अनिमिष कहा गया है।

४- इन्द्र, शक्र, शतक्रतु, बज्री, पुरन्द्रर, महेन्द्र, वासव, शतमन्यु।

५- यम

६- कुबेर, धनाधीश, धनव, वैश्रवण

७- अर्यमा ८- अश्विनीकुमार,नासत्य
९- मित्र १० पूषा
११- भग १२- विभासु, अग्नि
१३- वसु १४- विश्वेदेवा
१५- वरुण-प्रचेता १६- मरुत
१७- निऋति १८- दक्ष
१९- शेष, अनन्त
२०- काम, मदन, मकरध्वज, मन्मथ, रतिपति
२१- सविता २२- त्वष्टा, विश्वकर्मा
२३- गणेश २४- कार्तिक, गुह, कुमार

—:०:—

देवियोंके नाम

कंसके हाथसे छूटकर जानेवाली नन्दात्मजाके रूप

१- दुर्गा (वाराणसी दुर्गाकुण्ड)
२- भद्रकाली (उज्जैन)
३- विजया (उड़ीसा-पुरी)
४- वैष्णवी (कश्मीर)
५- कुमदा (महालक्ष्मी-कोल्हापुर)

६- चण्डिका (कामरूप-आसाम)

७- कृष्णा

८- माधवी

९- कन्या (कन्याकुमारी)

१०- माया

११- नारायणी (विन्ध्याचल अष्टभुजा)

१२- ईशानी (विन्ध्यवासिनी)

१३- शारदा (मैंहरमें पर्वतपर)

१४- अम्बिका (अम्बिकावन-गुजरात)

(१०।२११-१२)

अन्यदेवियोंके नाम

(लोकमाताओंका नाम, वंश पृथक है।)

१- लक्ष्मी, रमा, श्री

२. सरस्वती

३- गिरिजा, भवानी, पार्वती, उमा

४- कात्यायनी

५- भूदेवी, इला, देवमीढा

६- रोदसी

७- सती

८- ह्री

९- रति (मायावती)

—:०:—

ब्रह्मवादीगण

देवर्षि नारदजीने कहा है 'सदन्ता ब्रह्मवादिनः' अर्थात् वेदोंका ठीक-ठीक पूरा तात्पर्य जाननेवाले इतने ही हैं। शेष सबको इनके ग्रन्थोंका ही अनुगमन करना पड़ता है।

इनके नाम हैं—

१. प्रजापतियोंके भी पति ब्रह्माजी

२. भगवान शंकर

३. मनु

४. दक्षादि प्रजापतिगण

५. नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार।

६. महर्षि मरीचि

७. महर्षि अत्रि

८. महर्षि अंगिरा

९. महर्षि पुलस्त्य

१०. महर्षि पुलह

११. महर्षि क्रतु

१२. महर्षि भृगु

१३. महर्षि वशिष्ठ

१४. देवर्षि नारद

—:०:—

नवधा-भक्ति

श्रीमद्भागवतमें वर्णित

१- श्रवण— भगवानकी लीला, गुण, नाम, रूप तथा भगवद्भक्तोंके चरितका।

२- कीर्तन— जिनका श्रवण बताया गया, उनका गायन. परस्पर वर्णन।

३- स्मरण— जब श्रवण सम्भव न हो, कीर्तन भी न हो तो मनमें उसीका स्मरण-ध्यान।

४- पाद-सेवन— भगवद्भक्तोंका।

५- अर्चन— भगवानके श्रीविग्रह (मूर्ति) का या भगवद्भक्तोंका।

६- वन्दन— स्तुति, नमस्कार भगवानके निमित्त, मूर्तिको या भगवद्भक्तोंको।

७- दास्य— अपनेको भगवानका दास मानता। यहां तक साधन भक्ति है। यहीकी जाती है।

८- सख्य— अपनेको भगवानका सखा समझना।

९- आत्मनिवेदन—यह मधुर भाव है। अपनेको सर्वथा अर्पित कर देना।

यह सख्य और आत्म-निवेदन साध्या भक्ति है। ये भाव भगवत्कृपासे प्राप्त हों तभी पूर्ण हैं। (७।५।२३)

द्वादश भागवताचार्य

श्रीधर्मराज (यम) ने भागवत धर्म अर्थात् भक्तिका रहस्य जाननेवाले बारह आचार्य गिनाये हैं।

१- भगवान ब्रह्मा २- देवर्षि नारद
३- भगवान शंकर
४- सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार
५- महर्षि कपिल ६- स्वायम्भुव मनु
७- प्रह्लाद्र ८- जनक (सीरध्वज)जी
९- भीष्म पितामह १०- दैत्यराज बलि
११- श्रीशुकदेवजी १२- यमराजजी

(६-२-२०)

जीवके कर्मसाक्षी

कर्म किये बिना तो कोई कभी रह नहीं सकता और कितना भी एकान्तमें कोई कर्म करे, उस कर्मके एक नहीं, कई साक्षी वहां रहते है। यही साक्षी यमलोकमें धर्म-राजको वहां पहुँचे जीवके कर्मोकी सूचना देते है। ये साक्षी हैं—

१- सूर्य २- चन्द्रमा
३- अग्नि ४- आकाश
५- वायु ६- पृथिवी
७- इन्द्रियां
८- प्रातः और सायं सन्ध्या—इनके देवता
९- दिनका देवता १०- रात्रिका देवता
११- दिशाएं (इनके देवता) १२- प्रजापति
१३- काल १४- धर्म

(६-१-४२)

प्रेमघन कन्हाई

श्रीमद्भागवतमें

योगमायाके ज्ञाता

१- ब्रह्मा
२- देवर्षि नारद
३- सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार
४- महर्षि मरीचि
५- अत्रि
६- अंगिरा
७- पुलस्त्य
८- पुलह
९- क्रतु
१०- भृगु
११- वशिष्ठ
१२- प्रजापति दक्ष
१३- महर्षि कर्दम
१४- भगवान शिव
१५- प्रहलाद
१६- स्वायम्भुव मनु
१७- शतरूपा मनुपत्नी
१८- राजा उत्तानपाद
१९- राजा प्रियव्रत
२०- राजा प्राचीनर्वाहि
२१- ऋभु
२२- अंगराजा
२३- ध्रुव
२४- महाराज इक्ष्वाकु
२५- महाराज पुरूरवा
२६- मुचुकुन्द
२७- विदेह जनक
२८- राजा गाधि
२९- महाराज रघु
३०- महाराज अम्बरीष
३१- राजा सगर
३२- राजा गय
३३- राजा ययाति
३४- राजा मान्धाता
३५- राजा अलर्क
३६- राजा शतधन्वा
३७- राजा रन्तिदेव
३८- भीष्म पितामह
३९- दैत्यराज बलि
४०- राजा अमूर्त्तरय
४१- महाराज दिलीप
४२- सौभरि ऋषि
४३- उत्तंक ऋषि
४४- राजा शिवि
४५- महर्षि देवल
४६- महर्षि पिप्पलाद
४७- महर्षि सारस्वत
४८- उद्धव
४९- महर्षि पराशर
५०- भूरिषेण
५१- विभीषण
५२- हनुमान
५३- उपेन्द्र (जयन्त)
५४- दत्तात्रेय
५५- अर्जुन
५६- आर्ष्टिषेण गन्धर्व
५७- विदुर
५८- श्रुतदेव

ऋषियोंके नाम

ब्रह्माजीके मानसपुत्र

१- मरीचि-- ब्रह्माके मनसे उत्पन्न
२- अत्रि— नेत्रसे उत्पन्न
३- अंगिरा— मुखसे उत्पन्न
४- पुलस्त्य— कण्ठसे उत्पन्न
५- पुलह— नाभिसे उत्पन्न
६- क्रतु— करसे उत्पन्न
७- भृगु— जानुसे उत्पन्न
८- वशिष्ठ— पैरसे उत्पन्न
९- दक्ष— पादांगुष्ठसे उत्पन्न
१०- देवर्षि नारद—उत्संग (गोद) से उत्पन्न
११- कर्दम— छायासे उत्पन्न
१२- सनक; सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार— बुद्धिसे उत्पन्न

ऋषि रूपमें अवतार

१- नर-नारायण
२- कपिल
३- दत्तात्रेय
४- परशुराम
५- कृष्ण द्वैपायन वादरायण, व्यास

सिद्धेश

१- दुर्वासा
२- असित
३- अपान्तरतम
४- मार्कण्डेय
५- गौतम
६- याज्ञवल्क्य
७- जातूकर्ण्य
८- आरुणि
९- लोमश, रोमश
१०- चयवन
११- आसुरि
१२- पतंजलि
१३- वेदशिरा
१४- बोध्य
१५- पंचशिरा
१६- हिरण्यनाभ
१७- कौसल्य
१८- श्रुतदेव
१९- ऋतध्वज

नौ योगेश्वर

१- कवि　　२- हरि
३- अन्तरिक्ष　　४- प्रबुद्ध
५- पिप्पलायन　　६- आविहोत्र
७- द्रुमिल　　८- चमस
९- करभाजन

ये सब ऋषभदेवके पुत्र हैं।

१- शुकदेव, बादरायणि, ब्रह्मरात
२- शौनक　　३- रुचि
४- पराशर　　५- गर्ग
६- शाण्डिल्य　　७- पैल
८- जैमिनी　　९- वैशम्पायन
१०- सुमन्तु　　११- पर्वत
१२- धौम्य　　१३- वृहदश्व
१४- भरद्वाज　　१५- दधीचि
१६- इन्द्रप्रमद　　१७- त्रित
१८- गृत्समिद्　　१९- असित
२०- कक्षीवान
२१- विश्वामित्र, कौशिक　　२२- सुदर्शन
२३- मैत्रेय, कौषारवि　　२४- शरद्वान
२५- अरिष्टनेभि　　२६- पिप्पलाद
२७- उतथ्य　　२८- इध्मवाहु
२९- मेधातिथि　　३०- देवल
३१- आर्ष्टिषेण　　३२- वृहस्पति
३३- कण्व　　३४- वामदेव
३५- सुमति　　३६- अथर्वा
३७- वीतिहोत्र　　३८- मधुच्छन्दा
३९- अकृतव्रण　　४०- और्व
४१- कवष　　४२- अरुण
४३- ऋभु　　४४- माण्डव्य
४५- सांख्यायन　　४६- हंस
४७- यति　　४८- कण्डू
४९- जाजलि　　५०- सौभरि

श्रीमद्भागवतमें

सूर्यव्यूह

आपके और मेरे भी शरीरमें आप हैं, मैं हूँ। अर्थात् आपका और मेरा जीव है। इसके साथ अन्तर्यामी हृषीकेश भी हैं ही। इसी प्रकार सूर्यमण्डल एक शरीर है। उसके अन्तर्यामीं नारायण हैं। उन्हींकी पूजा 'शुक्लाम्बर धरं विष्णु' कहकर की जाती है।

सूर्यमण्डलका अधिदेवता (जीव) कोई एक नहीं है। इस मण्डलके अधिदेवता प्रजापति कश्यपकी पत्नी देवमाता अदितिके बारह पुत्र हैं। इन बारहोंको आदित्य कहा जाता है। इनमें प्रत्येक सूर्यमण्डलमें एक-एक महीने निवास करते हैं। उनके साथ एक विशेष अप्सरा, एक नाग तथा एक राक्षस रहता है। राक्षस उन्हें गति देता हैं। नाग उनका प्राण है जो उनके रथको सम्हालता है। इनके अतिरिक्त एक ऋषि, एक गन्धर्व गायक तथा यक्ष भी प्रतिमास सूर्यके साथ रहते हैं। ऋषि सूर्यका स्तवन करते हैं और यक्ष रथ सजाते हैं। इन सबको मिलाकर सूर्यव्यूह कहा जाता है। किसी महीनेमें कैसा सूर्यव्यूह रहता है, यह तालिका दी जा रही है। सूर्यकी उपासनामें इसकी बड़ी महत्ता है।

महीना	आदित्यका नाम	अप्सरा	गन्धर्व	नाग	यक्ष	राक्षस	ऋषि
१. चैत्र (मधु)	धाता	कृतस्थली	तुम्बरु	वासुकी	रथकृत	हेति	पुलस्त्य
२. वैशाख (माधव)	अर्यमा	पुंजिक स्थली	नारद	कच्छनीर	अथौजा	प्रहेति	पुलह
३. ज्येष्ठ (शुक्र)	मित्र	मेनका	हाहा	तक्षक	रथस्वन	पौरुषेय	अत्रि
४. आषाढ़ (शुचि)	वरुण	रम्भा	हूहू	शुक्र	सहजन्य	चित्रस्वन	वशिष्ठ
५. श्रावण (नभ)	इन्द्र	प्रम्लोचा	विश्वावसु	एलापत्र	श्रोता	वर्य	अंगिरा
६. भाद्रपद (नभस्य)	विवस्वान	अनुम्लोचा	उग्रसेन	शंखपाल	आसारण	व्याघ्र	भृगु
७. आश्विन (ईश)	त्वष्टा	तिलोत्तमा	धृतराष्ट्र	कम्बल	शतजित्	ब्रह्मापेत	जमदग्नि
८. कार्तिक (ऊर्ज)	विष्णु	रम्भा	सूर्यवर्चा	अश्वतर	सत्यजित्	मखापेत्	विश्वामित्र
९. मार्गशीर्ष (सह)	शु	उर्वशी	ऋतसेन	महाशंख	तार्क्ष्य	विद्युच्छत्रु	कश्यप
१०. पौष (पुष्य, रहस्य)	भग	पूर्वचित्ति	अरिष्टनेमि	कर्कोटक	ऊर्ण	स्फूर्ज	आयु
११. माघ (तप)	पूषा	घृताचि	सुषेण	धनंजय	सुरुचि	वात	गौतम
१२. फाल्गुन (तपस्य)	पर्जन्य	सेनजित्	विश्व	ऐरावत	क्रतु	वर्चा	भरद्वाज

ये महीने सूर्यके (संक्रान्तिसे संक्रान्ति तक) हैं। अतः इनके क्रमशः नाम मेष, वृष, मिथुन कर्क, सिंह; कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन हैं। इनके दूसरे पौराणिक नाम कोष्टकमें हैं।

श्रीमद्भागवत्में इनका उल्लेख क्रमशः नहीं है। वहां चैत्रसे प्रारम्भ करके भाद्रपद तक फिर माघ, फाल्गुन, मार्गशीर्ष, पौष, आश्विन और कार्तिक, यह क्रम है। श्लकोंमें भी व्यूहके नामोंका कोई क्रम नहीं है। सूर्यका नाम पहिले ही हो यही नहीं है, कहीं तो पहिले यक्षका नाम है। (१२-११)

—:०:—

श्रीमद्भागवतमें

तीर्थों के नाम

श्रीमद्भागवतमें तीर्थोंकी नामावली किसी क्रमसे नहीं है। श्रीबलरामजीने नैमिषारण्यसे अपनी पैदल तीर्थयात्रा प्रारम्भ की थी, किन्तु उस समयके मार्गका अब अनुमान करना कठिन है। यह भी लगता है वर्णनसे कि उन्हें कई स्थानोंपर पीछे लौटकर या बहुत घूमकर जाना पड़ा है। बहुतसे तीर्थ लुप्त हो गये हैं और कुछके सम्बन्धमें विवाद है कि वे कहाँ हैं। कई स्थान या मन्दिर, उनके नामपर प्रचलित हैं। यहां केवल नाम दिये जा रहे हैं। तीर्थयात्रा करनेके लिए 'हिन्दुओंके तीर्थस्थान' पुस्तकसे सहायता लेना चाहिये।

१- मानस [मानसरोवर] तिव्वतमें
२- कैलास [मानसरोवरके पास भी है]
भागवतके अनुसार नन्दा और अलकन्दाके उद्गमके मध्य हिमालयमें।
३- सरयू उद्गम [सौ धार-बागेश्वरसे आगे]
४- विशाला [बदरीनाथ]
५- शम्याप्रास [व्यासगुफा—बदरीनाथसे आगे]
६- सप्तस्रोत [हरिद्वार] कुशावर्त
७- कुरुक्षेत्र
८- मधुवन [मथुरा]
९- द्वारका, द्वारवती, कुशस्थली
१०- नारायण सर [कच्छमें]
११- प्रभास
१२- सिद्धपुर, बिन्दुसर
१३- पुष्कर [अजमेरके पास]
१४- बर्हिष्मतीपुरी [सोरों-कासगंज]
स्वायंभू मनुकी राजधानी
१५- ब्रह्मावर्त [कानपुरके पास]
१६- नैमिषारण्य
१७- प्रयाग
१८- वाराणसी
१९- गया
२०- गंगासागरसंगम, कपिलाश्रम
२१- पुलहाश्रम [मंदार पर्वत—भागलपुर]
२२- अघमर्षण [विन्ध्यपादमें]
२३- गिरिव्रज [राजगृही]
२४- पृथूदक
२५- त्रितकूप
२६- सुदर्शनतीर्थ
२७- ब्रह्मतीर्थ
२८- चक्रतीर्थ [नैमिषारण्यमें]
२९- गजाह्वय—हस्तिनापुर
३०- प्राची सरस्वती [कुरुक्षेत्रमें]
३१- महेन्द्रगिरि
३२- सप्तगोदावरी
३३- पम्पा
३४- स्कन्दतीर्थ [कुमारगिरि]
३५- श्रीशैल [मल्लिकार्जुन]
३६- वेंकटाचल [तिरुपति]
३७- कामकोष्णीपुरी कांची
३८- श्रीरंग
३९- दक्षिण मथुरा [मदुरा]
४०- सेतुबन्ध [रामेश्वर]
४१- कन्याकुमारी
४२- फाल्गुनतीर्थ [अनन्तपुर-त्रिवेन्द्रम्]
४३- पंचाप्सरस [पश्चिमी घाटपर पाँच नदियोंका संगम]
४४- गोकर्णक्षेत्र
४५- आर्यद्वैपायनी [द्वीपमें देवी]
४६- शूर्पारक

४७- दण्डकवन
४८- माहिष्मतीपुरी [खम्भात]
४९- मनुतीर्थ [भृगुकच्छ-भडोच]

सरिताओं तथा पर्वतोंके नाम पृथक दिये गये हैं।

श्रीमद्भागवतमें आये

भारतीय नदियोंके नाम

१- गंगा, सुरसरि, जाह्नवी, विष्णुपदी
२- यमुना, कालिन्दी
३- नर्मदा
४- कृष्णा
५- गोदावरी
६- रेवा (यह नाम नर्मदासे पृथक है)
७- कावेरी
८- चन्द्रवसा
९- ताम्रपर्णी
१०- अवटोदा
११- कृतमाला
१२- वैहायसी
१३- वेणी
१४- पयस्विनी
१५- शर्करावर्ता
१६- तुंगभद्रा
१७- वेण्या
१८- भीमरथी
१९- निर्विन्ध्या
२०- पयोष्णी
२१- तापी
२२- सुरसा
२३- चर्मण्वती
२४- वेदस्मृति
२५- ऋषिकुल्या
२६- त्रिसामा
२७- कौशिकी
२८- मन्दाकिनी
२९- सरस्वती
३०- दृषद्वती
३१- गोमती
३२- सरयू
३३- रोधस्वती
३४- सप्तवती
३५- सुषोमा
३६- शतद्रू
३७- चन्द्रभागा
३८- मरुद्वृधा
३९- वितस्ता
४०- असिक्नी
४१- विश्वा
४२- महानदी
४३- सिन्धुनद
४४- अन्ध नद (ब्रह्मपुत्र)
४५- शोण [सोन] नद
४६- नन्दा
४७- सत्या
४८- अलकनन्दा
४९- इक्षुमती
५०- गण्डकी
५१- विपाशा

भारतीय पर्वतोंके नाम

१. हिमालय
२. विन्ध्याचल
३. मलय
४. मंगलप्रस्थ
५. मैनाक
६. त्रिकूट
७. ऋषभ
८. कूटक
९. कोल्लक
१०. सह्य
११. देवगिरि
१२. ऋष्यमूक
१३. श्रीशैल
१४. वेंकटाचल
१५. महेन्द्रगिरि
१६. वारिधार
१७. शुक्तिमान
१८. ऋक्षगिरि
१९. पारियात्र
२०. द्रोण
२१. चित्रकूट
२२. गोवर्धन
२३. रैवतक (अर्बुदगिरि)
२४. ककुभ
२५. नीलगिरि
२६. गोकामुख
२७. इन्द्रकील
२८. कामगिरि
२९. मन्दराचल
३०. मेरु

इनके अतिरिक्त सैकड़ों पर्वत।

—:o:—

श्रीमद्भागवतमें

प्रदेशोंके नाम

प्रदेशोंके नाम और सीमायें बदलती रहती है। भागवतमें जिनके नाम आये, वे सबप्रदेश सउ समय थे।

१. कुरु	२. जांगल	२१. मगध	२२ कान्यकुब्ज
३. पांचाल	४. शूरसेन	२३. रमणक द्वीप	२४. मिथिला
५. कुरुक्षेत्र	६. ब्रह्मावर्त	२५. काशी	२६ शोणितपुर
७. मत्स्य	८. सारस्वत	२७. गिरिव्रज	२८, काम्बोज
९. मरुधन्व	१०. सौवीर	२९. कोसल	३०. केरल
११. आभीर	१२. आनर्त	३१. द्रविड़	३२. उशीनर
१३. त्रिगर्त	१४. सैन्धव	३३. विदर्भ	३४. सृंजय
१५. वाह्लीक	१६ भद्राश्व	३५. कैकय	३६. मद्र
१७. केतुमाल	१८. उत्तरकुरु	३७, कुन्ती	३८. कंक
१९. किंपुरुषवर्ष	२०. सौराष्ट्र	३९. अर्ण	४०. मालव

श्रीमद्भागवतमें

सरीसृपोंके नाम

१. सर्प— इसका व्याल, उरग. अहिनाम भी आया है।

२. नाग—अनेक सिरवालोंको जो सर्प समान हों, नाग कहा जाता है। इनमें तक्षक, कर्कोटक, वासुकी. कालिय, शेष आदि नाम आये हैं।

३. कृकलास (गिरगिट) यद्यपि पैरोंसे चलता है, किन्तु इसे भी सरीसृप वर्गमें गिनते हैं।

छुद्र प्राणियोंके नाम

१. भ्रमर, इसका द्विरेफ और सारंग नाम भी आया है।
२. विड्बराह—(गुबरेला)
३. उर्णनाभि (मकड़ी)
४. झिल्ली (झींगुर)
५. दंश (डांस)
६. मसक (मच्छर)
७. मक्षिका (मक्खी)
८. मधुमक्षिका (शहदकी मक्खी)
९. पिपीलिका (चींटी)
१०. गोधा (गोह)
११. आखु, मूषक (चूहा)

पशुओंके नाम

१. मृगेन्द्र, सिंह, केशरी, हरि
२. व्याघ्र (बाघ)
३. गज, इभ. करि, कुंजर, हस्ती (करेणु, करिणी)
४ गौ, सुरभि
५. वृषभ, सौरभेय, वृष
६. अश्व हय, बड़वा (घोड़ी, अश्विनी)
७. अश्वतरी (खच्चर)
८. उष्ट्र (ऊंट)
९. वृक (भेड़िया)
१०. मृग, हिरण (हिरणी) एण, कृष्णसार

११. श्वान, श्व, सारमेय, गृहपाल, ग्रामसिंह, सालावृक
१२. शिवा, शृगाली, गोमायु (शृगाल)
१३. वाराह, शूकर
१४. खर, गर्दभ, रासभ,
१५. अज (बकरा) अजा (बकरी)
१६. महिष
१७. सरु (चितल)
१८. गौर (मृगकी जाति बिशेष)
१९. कृष्ण (साँभर)
२०. क्रोड (बारहसिंघा)
२१. गवय (नीलगाय)
२२. शरभ
२३. चमरी (याक)
२४. अवि (भेड़) उरण (भेड़का बच्चा)
२५. खंगी (गेंड़ा)
२६. अरुण (बकरी, मृगसे मिलता यह पशु अब भी हिमालयमें पाया जाता है।)
२७. शशक (खरगोश)
२८. शल्लक (सेही)
२९. मार्जार, विडाल (बिल्ली)
३०. ऋक्ष (रीछ)
३१. कपि, शाखामृग, बानर, मर्कट
३२. गोपुच्छ (बन्दरोंकी जाति विशेष)
३३. नाभि (कस्तूरीमृग)
३४. नकुल (नेवला)

—:०:—

जलचरोंके नाम

१. नक्र, मकर (मगर)
२. तिमि (सील मछली)
३. तिमिंगल (ह्वेल)
४. मत्स्य
५. कच्छप
६. मण्डूक

विशेष—श्रीमद्भागवतमें हनुमान, द्विविद, मैन्द तथा सुग्रीवका नाम आया है, किन्तु ये बन्दर नहीं, उपदेवता वानर थे।

ऐसे ही जाम्बवन्तका नाम आया है, किन्तु वे रीछ नहीं, उपदेवता ऋक्ष थे।

हाथियोंमें केवल कंसके हाथी कुलवलयापीड़का तथा इन्द्रके ऐरावतका नाम आया है।

—:०:—

पक्षियोंके नाम

१. गरुड़ (सुपर्ण)
२. कपोत, पारावत, कुलिंग
३. मयूर, बर्हि
४. उलूक (उल्लू)
५. प्रत्यलूक (चमगादड़)
६. कंक (कांक-चील जातीय)
७. गृद्ध
८. कुररि (चील)
९. कुक्कुट (मुर्गा)
१०. बट (बटेर)
११. श्येन (बाज)
१२. मास, (भार्दूल) कारण्डव (टिटिहरी) भारद्वाज
१३. भल्लक (शरभ, नाइन पक्षीं-लम्बी चोंच)
१४. कोकिल, अन्यभृत

१५. काक (कौआ)
१६. आत्यूह (पपीहा)
१७. शुक (तोता)
१८. तित्तिर
१९. चकोर
२०, चक्रवाक (चकवा)
२१. जल कुक्कुट
२२. प्लव (पनडुब्बी पक्षी)
२३. सारस, क्रौंच
२४. हंस

———

श्रीमद्भागवतमें

वनस्पति वर्ग

श्रीमद्भागवतमें वनस्पति वर्गको ६ भागोंमें विभाजित किया गया है—

१. वनस्पति—जो विना मौर आये ही फलते हैं जैसे वट. पीपल आदि।

२. औषधि—जो फलके पक जानेपर सूख जाते हैं, जैसे—गेहूँ, चना।

३. लता—जो किसीके सहमारे फैलती हैं, जैसे—मालती, गिलोय।

४. त्वकसार—जिनकी छालही कठोर होती है। छालसे पृथक लकड़ी नहीं होती। जैसे—बाँस।

५. वीरुध—झाड़ियाँ–जैसे तुलसी, झरबेरी आदि।

६. द्रुम—जिनमें पुष्प आकर उनके स्थानमें फल आते हैं, जैसे आम, नीम आदि।

इस वर्गीकरण में तृणों और जलीय पौधोंको छोड़ दिया है।

लताओंके नाम

१- मल्लिका (चमेली)
२- माधवी
३- जाति (कुन्दी)
४- मालती
५- यूथिका (जुही)
६- स्वर्ण यूथिका (सोन जुही)
७- जालक

पुष्प पौधे और पुष्प वृक्ष

१- कुन्द
२- पाठल (गुलाब)
३- मन्दार (आक)
४- कुटज
५- करंज
६- नाग
७- पुन्नाग
८- चम्पक (चम्पा)
९- कुब्जक
१०- कुरबक
११- कर्णिकार, स्वर्णार्ण (पीला कनैर)
१२- अर्ण-कनेर
१३- पारिजात (हरसिंगार)
१४- बकुल (मौलिश्री)
१५- नीप (मौलिश्री का भेद)
१६- कदम्ब

शिशु श्रीराम

१७- तमाल (स्थलपद्म)
१८- अशोक
१९- कोविदार (कचनार)
२०- चन्दन
२१- तुलसी
२२- अगुरु

वृक्षोंके नाम

१- पीपल, अश्वत्थ
२- वट—न्यग्रोध
३- प्लक्ष (पाकर]
४- अर्जुन
५- असन (वड़हल)
६- चूत (जो आम स्वयं टपक जाता है)
७- आम्र (जो आम स्वयं नहीं टपकता)
८- सरल
९- देवदारु
१०- शाल
११- उदुम्बर (गूलर)
१२- पनस (फणस, कटहल)
१३- अरिष्ट
१४- प्रियाल (पयाल)
१५- मधूक (महुआ)
१६- विल्व
१७- कपित्थ
१८- अर्क
१९- शिरीष
२०- इंगुदी
२१- आम्रातक (आमड़ा)
२२- आमलक (आंवला)
२३- अभया (हर्र)
२४- भल्लातक
२५- यक्ष (वहेड़ा)
२६- जम्बू (जामुन)
२७- बदरी (बेर)
२८- जम्बीर (नीबू)
२९- पिचुमंद
३०- रसन
३१- किंशुक (पलाश)
३२- शमी
३३- वीजपूर (विजौरा नीबू)
३४- ताल (ताड़)
३५- नारिकेल (नारियल)
३६- खर्जूर (खजूर)
३७- पूग (सुपारी)
३८- भूर्ज (भोजपत्र)
३९- राजपूग (सुपारीकी जाति)
४०- हिंगु (हींगका वृक्ष)
४१- वेणु सीधा बाँस
४२- कीचक (जंगली बांस)
४३- नल (पोले बांस)
४४- कदली (केला)
४५- इक्षु, रसन (ईख)

तृण

१- शर (कास)
२: कुश
३- शुचि (मूँज)
४- दूर्वा

जलीय पुष्प पौधे

१- वेतस
२: कुमुद
३- नलिनी (कमलिनी)
४- इन्दीवर (नीलकमल)
५- पुण्डरीक, पद्म, सरोज, कंज, अब्ज, खरनाल, अंवुज, अम्बुरूह, जलज, खरदण्ड, पुष्कर, अरविन्द, उत्पल, कह्लार, शतपत्र ये कमलके नाम आये हैं ।
६- कुवलय—श्वेत कमल
७- सौगन्धिक—ब्रह्म कमल

श्रीमद्भागवतमें

प्रयोज्य उपकरणोंके नाम

१. आदर्श (दर्पण)
२. स्रक (माला)
३. ताम्बूल (पान)
४. अंगराग, अनुलेपन
५. कमण्डलु
६. दण्ड
७. वेत्र (बेंत)
८. वल्कल
९. मृगचर्म
१०. स्थाली (पतीले जैसा पकानेका बर्तन)
११. प्रदीप (दीपक)
१२ उल्मुक (मशाल, जलती लकड़ी)
१३. शय्या
१४. आसन
१५. शिविका
१६. तरी, नाव, नौका
१७. अगद (औषधि)
१८. शकट (छकड़ा)
१९. शिक्य (छीका)
२०. रथ
२१. शिचा (पिंजरा पक्षी पालनेका)
२२. पंतग, कन्दुक

रथोंमें एक नाम आया है, पृथुके रथका नाम जैत्र था।

वस्त्राभरण

मनोरंजनके यन्त्रोंमें

१. दारुमयी नारी (कठपुतली)
२. यन्त्रमय मृग (इसका अब कोई प्रचलन नहीं है।)

वस्त्र—

१. उत्तरीय (दुपट्टा)
२. कंचुक (कुर्ता)
३. उष्णीष (पगड़ी)
४. वस्त्र (प्राय: साड़ीके लिए आया है।)
५. हार
६. केयूर (अंगद, बाजूबन्द)
७. मुकुट
८. किंकिणीं, मेखला
९ नूपुर

प्राणी-विभाजन

श्रीमद्भागवतमें प्राणियोंको आठ वर्गमें विभक्त किया है।

१. नग—अचर वृक्षादि
२. तिर्यक्—पशु, आदि
३. द्विज—पक्षी
४. सरीसृप—सर्पादि
५. मर्त्य
६. दैत्य
७. देव
८. स्वेदज घर्मज—खटमल, जूं)

—:०:—

श्रीमद्भागवतमें

मानव-जातियां

चारों वर्ण—

१. ब्राह्मण
२. क्षत्रिय
३. वैश्य
४. शूद्र

मनोरंजन करनेवाली जातियां—

१. सूत
२. नट
३. नर्तक, नर्तकीं
४. मागध
५. गणिका
६. वन्दी

अन्य जातियां—

१. किरात
२. पुलिन्द (भील)
३. निषाद
४. आभीर
५. गोप
६. आन्ध्र
७. कंक
८. हूण
९. यवन
१०. खस (शक)
११. चाण्डाल, श्वपच, श्वपाक
१२. पुल्कस (कसाई)

गोप और आमीर दो जाति थी। अब श्वपच नामक कोई जाति नहीं है। आन्ध्र, कंक, हूण, खस ये भारतके बाहरसे आयी जातियां थीं।

—,o:—

वाद्योंके नाम

१. वीणा. तन्त्री
२. मृदंग
३. मुरज
४. वेणु (वंशी)
५. ताल (झांझ)
६. भेरी
७ पटह (नगाड़ा)
८. पणव
९. गोमुख (सिंगा)
१०. शृंग (गाय सींग)
११. शंख

भोजन

१. संयाव, दधि
२. दूध
३. माखन, नवनीत
४. घृत
५. सूप (पीनेका रस)
६. अपूप (पूआ)
७. शष्कुली (पूड़ी)
८. पायस (खीर)
९. ओदन (भात)

क्षीरसागरसे निकले चौदह रत्न

१. हलाहल विष—इसे भगवान शंकरने पीकर अपने कण्ठमें रख लिया। इससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया। इसी विषके कुछ विखरे अंशसे विषैली औषधियां उत्पन्न हुईं और सर्पादिने भी वही विष ग्रहण किया।

२. कामधेनु— यह ऋषियोंको मिली। कश्यपजी अपने आश्रम ले गये।

३. उच्चैः श्रवा— यह चन्द्रमाके समान श्वेत अश्व दैत्यराज बलिने लिया।

४. ऐरावत— यह चार दातोंवाला श्वेत गज इन्द्रको मिला।

५. कौस्तुभमणि— यह पद्मराग मणि श्रीहरिने अपना कण्ठाभरण बनाया।

६. कल्पवृक्ष— इसे स्वर्गमें स्थापित किया गया।

७. अप्सरायें— इनमें रम्भा मुख्य थी। ये भी स्वर्गमें रहने गयीं।

८. रमा— इन भगवती सिन्धु सुताने नारायणको वरण किया।

९. वारुणी— असुरोंने ली।

१०. पांचजन्य शंख— श्रीहरिने लिया।

११. चन्द्रमा— इसे शंकरजीने शिरोभूषण बनाया।

१२. केला— यह फल धरामें मनुष्योंके लिए रहा। क्षीरसागर मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण यह परम पवित्र है। मंगल कार्योंमें इसके पत्ते भी सजानेके लिए शुभ तथा पवित्र माने जाते हैं।

१३. धन्वन्तरि— ये तो भगवानके अवतार ही हैं। यही अमृत कलश लेकर समुद्रसे निकले थे। पीछे यही मानव रूपमें आये तो इन्होंने आयुर्वेद-शास्त्रका प्रवर्तन किया।

१४. अमृत— धन्वन्तरिके हाथसे अमृत-कलश दैत्योंने छीन लिया था, पर भगवान हरिने मोहिनी रूप लेकर असुरोंसे वह कलश ले लिया। देवताओंको अमृत पिलाया।

श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें अध्याय ६ से ९ तक अमृत-मन्थनकी कथा है। वहां चौदहों रत्नोंका नामोंल्लेख नहीं है, पर अधिकांशका नाम है।

—:०:—

श्रीमद् भागवतमें

सृष्टि-विवरण

१. प्रथम सृष्टि महत्तत्वकी है। प्रकृतिके सत्व, रज, तम गुणोंमें विषमता आती है।

२. दूसरी सृष्टि अहंकार। इसके सात्विक राजस, तामस भेदसे तीन भेद हो गये।

३. पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं।

४. इन्द्रियां उत्पन्न हुईं। पांच ज्ञानेन्द्रियां (श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका) तथा पांच कर्मेन्द्रियां (वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ. गुदा।)

५. अहंकारके सात्विक भागसे इन्द्रियोंकेअधिष्ठाता देवता उत्पन्न हुए।

६. इस अविद्याकी सृष्टिमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह ये पांच ग्रन्थियां हैं। इन्हींसे बुद्धिमें आवरण और विक्षेप होता है।
ये ६ प्राकृत सृष्टि हैं। अब वैकृत (विकारी) सृष्टिका विवरण है—

७, वृक्षोंकी यह सृष्टि है।

८. इसमें सब तिर्यक प्राणी हैं। पशु और पक्षी दोनों इसीमें हैं।

९. मनुष्य अधः स्रोत है।

१०. सनत्कुमार आदि ब्रह्माके मानसिक पुत्रों-ऋषियोंकी सृष्टि प्राकृत-वैकृत उभयात्मक हैं।
इसीप्रकार सृष्टिके दस स्तर हैं। (३।१० पूरा अध्याय)

ब्रह्माजीकी सृष्टिका क्रम

१. ब्रह्माजीने पहिले अपनीं छायासे अविद्याकी सृष्टिकी जो पंचपर्वा है।
(सृष्टि विवरण नं. ६)

२. वह सृष्टि अच्छी नहीं, लगी तो उस तमोमय छाया रूपको ब्रह्माने छोड़ दिया, उसे यक्ष-राक्षसोंने ग्रहण करलिया। यह रूप भूख-प्याससे उत्पन्न था, अतः यक्ष-राक्षस क्षुधा पीड़ित होकर ब्रह्माको ही खाने दौड़े। उनमें जिन्होंने कहा—'इसे खा जाओ, वे यक्ष हुए और जिन्होंने कहा—'रक्षा मत करो' वे राक्षस हुए।

३. ब्रह्माने अपनी कान्तिमय देहके मुखसे मुख्य देवताओंकी सृष्टि करके वह शरीर छोड़ दिया। वही दिन हो गया।

४ अपने जघनसे ब्रह्माने असुरोंको उत्पन्न किया। वे अत्यन्त कामुक थे, क्योंकि उस समय ब्रह्माका रूप नारीका था, वे उसीसे बलात्कार करने दौड़े। ब्रह्मा भयभीत भागे। फिर आकाश वाणी सुनकर वह शरीर छोड़ दिया। वह स्त्री रूपी शरीर सायं सन्ध्या बना। उसे उन असुरोंने ग्रहण किया।

५. अपनी कान्तिसे ब्रह्माने गन्धर्व और अप्सराओंको उत्पन्न किया, उस ज्योत्स्ना रूप देहको त्यागनेपर उसे विश्वावसु आदि गन्धर्वोंने लिया।

६. इतना करके ब्रह्माको तन्द्रा आयी तो उससे भूत-पिशाच उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीका यह जम्हाई लेता रूप उन प्रेतोंने लिया। ये जूठे मुख सोनेवालेपर आक्रमण करते हैं, तब उसे उन्माद हो जाता है।

७. अपनेको तेजोमय मानकर अदृश्य रूपसे स्रष्टाने साध्यगणोको उत्पन्न किया। उस अदृश्य रूपको पितरोंने लिया। अतः उनका रूप अदृश्य है।

८. अपनी तिरोधानी शक्तिसे उन प्रजापतिने सिद्ध-विद्याधरोंको उत्पन्न किया। वह अन्तर्धान देह लेनेसे सिद्धादिमें तिरोहित होनेकी शक्ति है।

९. ब्रह्माने अपना प्रतिबिम्ब देखा उससे किन्नर, किम्पुरुष उत्पन्न हुए । वह प्रतिबिम्ब देह उन किन्नारादिने ले लिया । अतः ये उषःकालमें पत्नियोंके साथ ब्रह्माका गुणगान करते हैं ।

१०. सृष्टिको बढ़ती न देखकर ब्रह्मा लेट गये चिन्तित होकर। फिर उस भोगमय देहको क्रोधसे त्याग दिया। उससे जो केश झड़कर गिरे वे अहि हुए । उनमें सर्प और नाग दो भेद हुए । अनेक सिरवालोंको नाग कहा जाता है । ये दोनों अत्यन्त क्रोधी हैं ।

११. शान्त, प्रसन्नचित्तसे अपनेको कृतकृत्य मानते ब्रह्माने मनसे मनुओंकी सृष्टि की । वे सृष्टिको बढ़ाने-वाले हुए ।

१२. अन्तमें तप और संयमपूर्वक ब्रह्माने योग; विद्या, समाधिका आश्रय लेकर ऋषिगणोंको उत्पन्न किया । उनको योग, समाधि, ऐश्वर्य तप, विद्या, वैराग्यमय अपने देहका अंश दे दिया । —३-१० का पूरा अध्याय ।

ब्रह्माके जैसे शरीरसे जो उत्पन्न हुआ, उसका स्वभाव और शरीर वैसा ही है ।

—:०:—

श्रीमद्भागवतमें

अस्त्र-शस्त्रोंके नाम

१. असि (तलवार) इसके दो भेद दशचन्द्र और शतचन्द्र का उल्लेख है ।
२. खंग (खांड़ा) श्रीकृष्ण और नारायणके खंगका नाम नन्दक है ।
३. परशु (फरसा) यह परशुरामका प्रसिद्ध है ।
४. गदा—श्रीकृष्णकी गदाका नाम कोमोदकी है ।
५. परिध—यह भी एक प्रकारका डण्डा ही है ।
६. दण्ड—यमराजका कालदंड प्रसिद्ध है ।
७. मुद्गर—यह गदाका ही एक भेद है ।
८. शूल—(भाला) इसका भल्ल नाम भी आया है ।
९. त्रिशूल—यह शिवका प्रसिद्ध है ।
१०. अंकुश—गणेशका विशेष शस्त्र है ।
११. प्रास १२. पट्टिश
१३. तोमर १४. भिन्दिपाल
१५. निस्त्रिंश १६. ऋष्टि,
१७. मुशल—श्रीबलरामके मुशलका नाम सुनन्द है ।
१८. पाश—है तो यह बांधनेका फन्दा, पर वरुणका पाश ही विशेष अस्त्र है ।
१९. शक्ति
२०. भुशुण्डी (बन्दूकके समान)
२१. शतघ्नी (तोप जैसा अस्त्र)
२२. धनुष—श्रीकृष्णके धनुषका नाम शांर्ग है । पृथुके धनुषका नाम आजगव था । अर्जुनके धनुषको गाण्डीव कहते हैं ।
२३. धनुषके साथ वाण अनिवार्य है । ये वाण अनेक प्रकारके होते थे । धनुषकी डोरीको ज्या अथवा प्रत्यंचा कहते हैं ।
२४. वाण जिसमें रखे जाते थे, उसे त्रोण (तरकश-भाथा) कहते थे ।
२५. इन्द्रका विशेष अस्त्र वज्र है ।
२६. चक्र अनेकोंके पास थे, किन्तु श्रीकृष्णका सुदर्शन चक्र बहुत प्रसिद्ध है ।
२७. कवच—इसे सुरक्षाके लिए पहिना जाता था । इसका नाम दंश तथा वर्म भी है । इसके साथ शिरस्त्राण तथा अंगुलित्राण भी पहिनते थे ।
२८. चर्म (ढाल)

दिव्यास्त्र

१. आग्नेयास्त्र—अग्नि उत्पन्न करता है।
२. पार्जन्यास्त्र—वर्षा कराता है।
३. वारुणास्त्र—जल धारा प्रकट करता है।
४. वायव्यास्त्र—आंधी चलाता है।
५. पार्वतास्त्र—आंधी रोक देता है।

इन दिव्यास्त्रोके अतिरिक्त कुछ बहुत विशिष्ट दिव्यास्त्र हैं जो किसी-किसीके ही पास थे।

६. ब्रह्मास्त्र ७. ब्रह्मशिरास्त्र
८. नारायणास्त्र ९. पाशुपतास्त्र
१०. नैज (पाशुपतका भी प्रतिकारक)
११. जृम्भणास्त्र—इससे निद्रा आ जाती थी।
१२. सम्मोहनास्त्र—मूर्छित कर देता था।

श्रीमद्भागवतमें

साधु-तपस्वी

१. वैखानस—वानप्रस्थी
२. बालखित्य—नैष्ठिक ब्रह्मचारी
३. औदुम्बर—केवल उदुम्बर (गूलर) पर निर्वाह करनेवाले
४. फेनप—दूधके फेनपर ही रहनेवाले

सन्यासी

१. कुटीचक—कुटिया बनाकर रहने वाले
२. वह्वोद—भिक्षा जीवी
३. हंस—परिव्राजक, घूमते रहनेवाले
४. निष्क्रिय—आजगर वृत्तिवाले

—:o:—

श्रीमद्भागवतमें

ब्रह्म हत्या-वितरण

देवराज इन्द्रने विश्वरूपको मारा तो उन्हें ब्रह्मा हत्या लगी। यह ब्रह्महत्या उन्होंने चार भाग करके चार वर्गको बांट दी और प्रत्येक वर्गको एक-एक वरदान दिया।

किस वर्गमें ब्रह्महत्यासे क्या दूषित है—यह जानकर उसका त्याग करना चाहिये।

१. भूमि —ऊसरके रूपमें भूमिमें ब्रह्महत्याका अंश है। ऊसरमें घास भी नहीं होती। ऐसा स्थान किसी शुभ कार्यके योग्य नहीं होता। भूमि को वरदान मिलाकि गड्ढा समय पाकर स्वयं भर जायगा।

२. वृक्ष —गोंद अथवा मदजल (निमावट जैसा) के रूपमें ब्रह्महत्याका भाग है। यह अशुद्ध तत्व है। वृक्षोंको वरदान मिला कि काटा भाग स्वयं पूर्ण हो जायगा।

३. जल —फेन और बुलबुले हटाकर जल काममें लेना चाहिये।

जल जिस वस्तुमें मिलाया जाय, उसे बढ़ा देगा, यह जलको वरदान मिला।

४. स्त्रियां—महीने-महीने होनेवाला रजोधर्म स्त्रियों में ब्रह्महत्याका अंश है। उस समय वे अपवित्र होती हैं। मानव स्त्रियाको वरदान है कि वे सब दिनों काम सेवन कर सकती हैं। पशुओंकी मादा मौसम विशेषमें ही सहवास सक्षम होती हैं।

—६।९।७ से १०

देवर्षि नारदकी पहेलियां

प्राचेतस प्रजापति दक्षने पंचजनकी पुत्री असिक्नीसे दस हजार पुत्र उत्पन्न किये। इस सबको हर्यश्व कहा जाता है।

पिताकी आज्ञासे सृष्टि करनेमें इन्हें लगना था। उत्तम सन्तान मिले, इसलिए ये सब भाई तपस्या करने, पश्चिम दिशामें नारायण सरोवर पर (कच्छमें) पहुँचे।

यहां इन्हें देवर्षि नारद मिल गये। उन्होंने इनलोगोंको दस पहेलियां सुना दीं।

१. तुमलोगोंने पृथ्वीका अन्त तो देखा नहीं, तब सृष्टि कैसे करोगे ?
२. एक ऐसा देश है, जिसमें एक ही पुरुष है।
३. एक बिल है जिससे निकलनेका मार्गही नहीं है।
४. एक बहुत रूप बनानेवाली स्त्री है।
५. एक पुंश्चली स्त्रीका पति हैं।
६. एक नदी है जो दोनों ओर बहती है।
७. एक घर पच्चीस पदार्थोंसे बना है।
८. एक हंस है जिसकी विचित्र कथा है।
९. एक वज्रसे बना बहुत तीक्ष्ण चक्र अपने आप घूमता रहता है।
१०. अपने पिता का आदेश क्या है ?

देवर्षिका कहना था कि इन पहेलियांका उत्तर जाने बिना सृष्टि कर्ममें लगना मूर्खता है।

हर्यश्व बुद्धिमान थे। तपस्वी थे। संयमी थे। देवर्षि तो पहेलियां सुनाकर चले गये, किन्तु उन भाईयोंने पहेलियोंपर बिचार किया। इनका हल निकाला और तब सृष्टिका संकल्प त्यागकर मोक्षके पथमें लग गये। सब मुक्त हो गये।

उन्होंने जो उत्तर निकाला इन पहेलियोंका क्रमशः दिया जा रहा है।

१. यह लिंग शरीर जिसे जीव कहते हैं, यही भूमि है। इसीमें कर्म-संस्कार पनपते हैं। आत्माका यही अनादि बन्धन है। इसका अन्त देखे बिना सृष्टि करनेसे क्या लाभ।

२. ईश्वर एक ही है। वही सर्वमय सर्वरूप है। उसका दर्शन किये बिना असत् कर्मोंमें लगना व्यर्थ है।

३. वह परमात्मा तो स्वयं प्रकाश है। उसे प्राप्त करके लौटना नहीं होता। जैसे बिलमें जाकर निकलना न हो। उसे प्राप्त करना ही मुख्य पुरुषार्थ है।

४. यह बुद्धि तो अनेक रूपधारिणी स्त्रीके समान है। इसीमें निष्ठा रखकर कर्ममें लगना तो अनर्थ है।

५. यह बुद्धि तो व्यभिचारिणी जैसी है। कभी किसी गुणमें और कभी किसीमें लगती है। पुरुष (जीव) इसीमें आसक्त होकर जन्म-मरणके बन्धनमें पड़ा है।

६. मायारूपी नदीका प्रवाह सृष्टि और प्रलय दोनों ओर हैं। इसमें जो पड़ा रहेगा, वह जन्म-मरणके चक्रमें ही रहेगा।

७. यह शरीर २५ तत्वोंका बना अद्भुत घर है। इसके द्वारा कर्ममें लगना और आत्मतत्वको न जानना तो जीवनको खो देना है।

८. भगवत्स्वरूपका प्रतिपादक शास्त्र हंसके समान है। नीर-क्षीर विवेककी भांति वह सत-असतका विवेचन करता है। अतः उसके वाक्योंका आदर करना उचित है।

९. काल चक्र स्वयं घूम रहा है। सम्पूर्ण जगतको पीसे दे रहा है। इससे सावधान होकर आयुका सदुपयोग करना चाहिये।

१०. सच्चे पिता तो शास्त्र है और उसका आदेश निवृत्ति परक है। उसे समझे बिना प्रवृत्तिके असत मार्गमें लगनेसे क्या लाभ।

—६-५-६ से २०
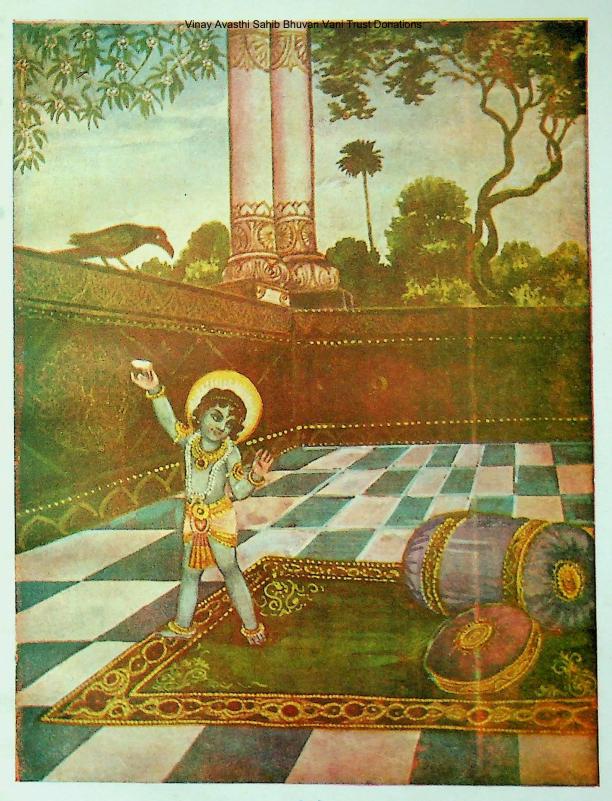
काकभुशुण्डिके आराध्य

श्रीमद्भागवतकी श्लोक संख्या

[गीता प्रेसकी प्रतिके आधार पर]

यह गणना केवल उवाच के आधार पर नहीं है। उवाच के मध्यमें भी कोई बोला है तो उसका वाक्य उसी के नाम गिना गया है।

प्रथम स्कंध ८०६ श्लोक

भगवान व्यासके १४ श्लोक
शौनकादि " ४८ "
सूत " ४०० "
अर्जुन " २९ "
ब्राह्मणों " १२ "
विदुर " ९।। "
भीष्म " २४ "
संजय " २ "
वृषरूप धर्म " १० "
गोरूपी धरा " ११ "
कलि " २ "
देवर्षिनारद " ८८ "
श्रीकृष्ण " ९ "
द्रौपदीं " ५।। "
उत्तरा " २ "
देवी कुन्ती " २६ "
राजा युधिष्ठिर ५० "
राजा परीक्षित ३९।। "
पौरव स्त्रियां " १० "
द्वारिकाकी प्रजा " ४ "
ऋषिगण " २ "
शमीक ऋषि " ७।। "
शमीक पुत्र " ४ "

८०९

अध्याय	श्लोक
१	२३
२	३४
३	४५
४	३३
५	४०
६	३९
७	५८
८	५२
९	४९
१०	३६
११	५९
१२	३६
१३	५९
१४	४४
१५	५१
१६	३६
१७	४५
१८	५०
१९	४०
	८०९

द्वितीय स्कन्ध ३९१ श्लोक

शौनक के १६ श्लोक
सूत " ९ "
श्री शुक " १७५ "
राजा परीक्षित " ३३ "
देवर्षि नारद " ८ "
ब्रह्माजी " १३८ "
श्रीविष्णु भगवान " १२ "

३९१

अध्याय	श्लोक
१	३९
२	३७
३	२५
४	२५
५	४२
६	४५
७	५३
८	२९
९	४५
१०	५१
	३९१

तृतीय स्कंध १४११ श्लोक

शौनक के १० श्लोक
सूतके " १० "
श्रीशुक " ४१ "
राजा परीक्षित " ३ "
ब्रह्मा "१०५ "
भगवान विष्णु " ४७ "
विदुर " ९० "
ऋषि मैत्रेय "५०१ "
भगबान कपिल "३३० "
माता देवहूति " २७ "
महर्षि कर्दम " ३६ "

अध्याय	श्लोक
१	४५
२	३४
३	२८
४	३६
५	५०
६	४०
७	४२
८	३३
९	४४
१०	२९
११	४१

स्वायम्भुव मनु के	१५	श्लोक
ऋषियों "	१५	"
जीव "	१०	"
महर्षि कश्यप "	२४	"
दिति "	११	"
सनकादि "	१८	"
देवताओं "	२२	"
उद्धव "	७६	"
राजा दुर्योधन "	१	"
श्रीकृष्ण "	५	"
विष्णु पार्षदों "	१	"
हिरण्याक्ष "	४	"
लोकपाल वरुण "	२	"
भगवान वाराह "	३	"
असुरों "	४	"
	१४११	

अध्याय	श्लोक
१२	५६
१३	५०
१४	५०
१५	५०
१६	३७
१७	३१
१८	२८
१९	३८
२०	५३
२१	५६
२२	३९
२३	५७
२४	४७
२५	४४
२६	७२
२७	३०
२८	४४
२९	४५
३०	३४
३१	४८
३२	४३
३३	३७
	१४११

चतुर्थ स्कन्ध १४४५ श्लोक

सूत के	३	श्लोक
श्रीशुक "	५	"
ऋषि मैत्रेय "	६२८	"
विदुर "	२६	"
देवर्षि नारद "	२५४	"
भगवान विष्णु "	४४	"
आदिराज प्रथु "	६०	"
भगवान शिव "	६७	"
सती "	२०	"
नन्दीश्वर "	६	"
महर्षि भृगु "	६	"
दक्ष "	१३	"
देवताओं "	४	"
ब्राह्मणों "	१७	"
प्रचेताओं "	२४	"
महर्षि अत्रि "	२	"
रामाः "	१	"
पुरंजन "	१४	"
पुरंजनी "	१०	"
राजा प्राचीनर्वाहि	७	"
देवियों "	४	"
सनत्कुमार "	२३	"
बन्दीगण "	२६	"
प्रजा "	९	"
धरा "	२२	"
वेन "	६	"
सुनन्दनन्द "	५	"
लोकपाल कुबेर	६	"
ध्रुव "	२२	"
मुनिगणों	२५	"
राजा उत्तानपाद "	३	"
रानी सुनीति "	६।।	"
रानी सुरुचि "	३	"
ऋत्विकों "	५	"
सदस्य "	१	"
इन्द्र "	१	"
यज्ञ पत्नियां "	१	"
यज्ञीय ब्रह्मा "	१	"
ब्रह्मा "	२५	"
सिद्धों "	१	"
यजमानी "	१	"
योगेश्वर "	२	"

अध्याय	श्लोक
१	६६
२	३५
३	२५
४	३४
५	२६
६	५३
७	६१
८	८२
९	६७
१०	३०
११	३५
१२	५२
१३	४९
१४	४६
१५	२६
१६	२७
१७	३६
१८	३२
१९	४२
२०	३८
२१	५२
२२	६३
२३	३९
२४	७९
२५	६२
२६	२६
२७	३०
२८	६५
२९	८५
३०	५१
३१	३१
	१४४५

लोकपाल	" १	'	
अग्नि	" १	"	
गन्धर्व	" १	"	
मनु	"२८	"	
विद्याधरों	" १	'	
राजा अंग	" १	"	
सदसस्पति	" ४	"	
जराकाल कन्या	२	"	
यवनेश्वर	" ३	"	
वैदर्भी	" १	"	
	१४४५		

			अध्याय	श्लोक
			१८	३९
			१९	३१
			२०	४६
			२१	१९
			२२	१७
			२३	९
			२४	३१
			२५	१५
			२६	४०
				६६८

पञ्चम स्कन्ध ६६८ श्लोक

			अध्याय	श्लोक
राजा परीक्षितके	११ श्लोक		१	४१
श्रीशुक	' ४२५	'	२	२३
ब्रह्मा	' ९	"	३	२०
राजा आग्नीध्र	" १०	"	४	१९
ऋत्विकों	" १२	"	५	३५
भगवान विष्णु	" २	"	६	१९
ऋषभदेव	" २७	"	७	१४
भरत	" ६५	"	८	३१
राजा रहूगण	" १८	"	९	२०
धरादेवी	" ५	"	१०	२५
देवताओं	" ८	'	११	१७
मनुका	" ४	"	१२	१६
रमा	" ६	"	१३	२६
हनुमान	" ६	"	१४	४६
भद्रश्रवा	" ६	"	१५	१६
प्रह्लाद	" ७	"	१६	२९
भगवान शिव	" ८	"	१७	२४
अर्यमा	" ४	"		
देवर्षि नारद	" ५	"		
	६६८			

षष्ठम स्कन्ध ८५१ श्लोक

			अध्याय	श्लोक
सूत	के	३ श्लोंक	१	६८
राजा परीक्षित	" २६	"	२	४९
श्रीशुक	"४१९	"	३	३५
ब्रह्मा	" ५	"	४	५४
यमदूतो	"४०॥	"	५	४४
विष्णुदूतों	" २०	"	६	४५
अजामिल	" १३	"	७	४०
यमराज	" १९	"	८	४२
दक्ष	" २०	"	९	५५
भगवान विष्णु	" २०	"	१०	३३
हर्यश्वों	" १०	"	११	२७
देवर्षि नारद	" १८	"	१२	३५
देवताओं	" ३१	"	१३	२३
विश्वरूप	' ४०	"	१४	६१
महर्षि दधीचि	" ४	"	१५	२८
वृत्रासुर	'२५॥	"	१६	६५
इन्द्र	" १०	"	१७	४१
ऋषियों	" ३॥	"	१८	७८
महर्षि अंगिरा	" २३	"	१९	२८
				८५१

राजा चित्रकेतु के ३७ श्कोक
रानी कृतद्युति " ५ ,,
जीव ,, ८ ,,
भगवान शेष ,, १५ ,,
पार्वती ,, ५ ,,
महर्षि कश्यप ,, ११।। ,,
दिति ,, १४ ,,
भगवान शिव ,, ६ ,,

८५१

सप्तम स्कंध ७५० श्लोक

		अध्याय	श्लोक
राजा परीक्षित के	३ श्लोक	१	४७
श्रीशुक "	१५ "	२	६१
राजा युधिष्ठिर "	१८ "	३	३८
देवर्षि नारद "	३६३।। "	४	४६
यमराज "	२१ "	५	५७
हिरण्यकशिपु "	५६।। "	६	३०
ब्रह्मा "	११ "	७	५५
देवताओं "	७ "	८	५६
भगवानविष्णु "	४ "	९	५५
प्रह्लाद "	१५५ "	१०	७१
षण्डामर्क "	५ "	११	३५
दैत्यपुत्रों "	२ "	१२	३१
भगवाननृसिंह "	१४ "	१३	४६
अवधूत ब्राह्मण "	२६ "	१४	४२
भगवान शिव "	१ "	१५	८०
इन्द्र "	१ "		
ऋषियों के	१ श्लोक		
पितरों "	१ "		
सिद्धों "	१ "		
विद्याधरों "	१ "		
नागों "	१ "		
मनुओं "	१ "		
प्रजापतिओं "	१ "		
गन्धर्वों "	१ "		
चारणों "	१ "		
यक्षों "	१ "		
किम्पुरुषों "	१ "		
किन्नरों "	१ "		
वैतालिकों "	१ "		
विष्णु पार्षदों "	१ "		
	७५०		७५०

अष्टम स्कन्ध- ६३१ श्लोक

		अध्याय	श्लोक
राजा परीक्षित के	१३ श्लोक	१	३३
श्रीशुक "	५६० "	२	३३
सूत "	३ "	३	३३
स्वयम्भुवमनु "	८ "	४	२६
गजेन्द्र "	३१ "	५	५०
महर्षि अगस्त "	१ "	६	३९
भगवान विष्णु "	३१ "	७	४६
ब्रह्मा "	४३ "	८	४६
भगवान मोहिनी "	२।। "	९	२९
रमा "	३ "	१०	५७
असुरो "	११ "	११	४८
इन्द्र "	९।। "	१२	४७
देवर्षि नारद "	१ "	१३	३६
दैत्यराज वलि "	४३ "	१४	११

देवगुरु वृहस्पति " ४ "		१५	३६
महर्षि कश्यप " ४९॥ "		१६	६२
देवी अदिति " १२ "		१७	२८
भगवान वामन " ४४ "		१८	३२
शुक्राचार्य " १८ "		१९	४३
प्रह्लाद " ५ "		२०	३४
विन्ध्यावली " १ "		२१	३४
भगवान मत्स्य " ११ "		२२	३६
राजा सत्यव्रत " ११ "		२३	३१
		२४	६१
९३१			९३१

नवम स्कन्ध- ९६४ श्लोक

		अध्याय	श्लोक
राजा परीक्षित	के ११ श्लोक	१	४२
सूत	" १ "	२	३६
श्रीशुक	" ८१७॥ "	३	२६
ब्रह्मा	" ५॥ "	४	७१
राजा शर्याति	" ३ "	५	२७
राजा नभग	" ३॥ "	६	५५
ऋषि दुर्वासा	" ११॥ "	७	२७
भगवान शिव	" ५॥ "	८	३१
भगवान विष्णु	" ९ "	९	४९
राजा अम्बरीष	" ९ "	१०	५६
ऋषि सौभरि	" ३ "	११	३६
अंशुमान	" ६ "	१२	१६
भगवान कपिल	" १ "	१३	२७
गंगाजी	" २ "	१४	४९
ब्राह्मणी	" ७॥ "	१५	४१
राजा भागीरथ	" २ "	१६	३७
भगवान श्रीराम	" १ "	१७	१८
समुद्र	" २ "	१८	५१
राक्षसियों	" ३ "	१९	२९
देवताओं	" १ "	२०	३९
राजा निम	" २ "	२१	३६
उर्वशी	" ९ "	२२	४९
राजा पुरूरवा	" ४ "	२३	३९
राजा गाधि	" १ "	२४	६७
ऋषि जमदग्नि	" ४ "		
देवयानी	" ६॥ "		
शर्मिष्ठा	" १ "		
राजा ययाति	" २१॥ "		
यदु	" १ "		
पुरु	" २ "		
राजा रन्तिदेव	" २ "		
राजा दुष्यन्त	" ३ "		
शकुन्तला	" २ "		
	९६४		९६४

दशमस्कन्ध(पूर्वार्ध)-२०१४श्लोक

		अध्याय	श्लोक
राजा परीक्षित	के ३० श्लोक	१	६९
सूत	" ३ "	२	४२
श्रीशुक	" ११५२ "	३	५४
महर्षि गर्ग	" १८ "	४	४६
गोपों	" २२ "	५	३२
श्रीकृष्ण	" १४५॥ "	६	४४
इन्द्र	" १५ "	७	३७
कंस	" २८ "	८	५२
देवर्षि नारद	" ३२॥ "	९	२३
बाबानन्द	" २६॥ "	१०	४३
गोपियों	" १४४॥ "	११	५९
ब्रह्माजी	" ६२॥ "	१२	४४
वसुदेवजी	" ३६ "	१३	६४
भगवान विष्णु	" १२ "	१४	६१
माता देवकी	" ११ "	१५	५२
योगमाया	" १ "	१६	६७
असुर	" १२ "	१७	२५

मैया यशोदा	"	९	"
कुबेरपुत्रों	"	१०	"
उपनन्द	"	७	"
गोपबालकों	"	१९।।	"
अघासुर	"	१।।	"
कालियनाग	"	४	"
नाग पत्नियां	"	२१	"
श्रीबलराम	"	२।।	"
माथुर ब्राह्मण	"	१३	"
ऋषि सौभरि	"	१	"
विप्रपत्नियां	"	२	"
सुरभी	"	३	"
लोकपाल वरुण	"	४	"
विद्याधर सुदर्शन	"	६	"
अक्रूर	"	८१	"
सुदामामाली	"	४	"
रजक	"	२	"
कुब्जा	"	३	"
माथुर स्त्रियां	"	१०	"
कंस पत्नियां	"	४	"
माथुरजन	"	८	"
चाणूर	"	६	"
समुद्र	"	२	"
महर्षि सान्दीपनि	"	२	"
उद्धव	"	२६	"
देवी कुन्ती	"	६	"
धृतराष्ट्र	"	४	"
		२०१४	

१८	३२
१९	१९
२०	४९
२१	२०
२२	३८
२३	५२
२४	३८
२५	३३
२६	२५
२७	२८
२८	१७
२९	४८
३०	४४
३१	१९
३२	२२
३३	४०
३४	३२
३५	२६
३६	४०
३७	३३
३८	४३
३९	५७
४०	३०
४१	५२
४२	३८
४३	४०
४४	५१
४५	५०
४६	४९
४७	६९
४८	३८
४९	३१
२०१४	

दशमस्कन्ध (उत्तरार्ध) १९३३ श्लोक अध्याय श्लोक

राजापरिक्षित	के	२०	श्लोक	५०	५८
सूतके	"	३	"	५१	६४
श्रीकृष्ण	"	१५९	"	५२	४४
उद्धव	"	९	"	५३	५७
राजा युधिष्ठिर	"	११	"	५४	६०
जरासन्ध	"	१२	"	५५	४०
बन्दी नरेशों	"	१०	"	५६	४५
सहदेव	"	६	"	५७	४२
शिशुपाल	"	७	"	५८	५८
प्रद्युम्न	"	३।।	"	५९	४१
प्रद्युम्न सारथी	"	२	"	६०	५९
शाल्व	"	३	"	६१	४०
माया पुरुष	"	१	"	६२	३५
श्री बलराम	"	३५	"	६३	५३
मुनिगण	"	२५	"	६४	४४
दन्तवक्र	"	२।।	"	६५	३२
विप्र सुदामा	"	१३	"	६६	४३
सुदामा पत्नी	"	३	"	६७	२८
श्रीकृष्णकेअन्तः पुरजनके		२	"	६८	५४
महारानी रुक्मिणी	"	३२	"	६९	४५
देवी कुन्ती	"	४	"	७०	४५
महारानी सत्यभामा	"	१	"	७१	४६
" जाम्बवती	"	१	"	७२	४८
" कालिन्दी	"	५	"	७३	३५
" मित्रविन्दा	"	१	"	७४	५४
" सत्या	"	२	"	७५	४०
" भद्रा	"	२	"	७६	३३
" लक्ष्मणा	"	२३	"	७७	३०
श्रीकृष्ण महिषियां	"	१४	"	७८	४०
देवर्षि नारद	"	२१	"	७९	३४
दैत्य राजबलि	"	८	"	८०	४५
मैथिल राजा बहुलाश्वके		६	"	८१	४१
विप्र श्रुतदेव	"	६	"	८२	१९

भगवान शंकर	"	१४	"
भगवान विष्णु	"	८	"
भूमा पुरुष	"	२	"
अर्जुन	"	६	"
ब्राह्मण	"	६॥	"
सनन्दन	"	२	"
श्रुतियां	"	२८	"
ऋषिनारायण	"	६	"
नृपगण	"	३	"
कालयवन	"	२	"
मुचुकुन्द	"	२१	"
देवगण	"	४॥	"
विदर्भ पुरजन	"	२	"
रुक्मी	"	४॥	"
रति	"	४	"
जाम्बवान	"	३	"
सत्राजित	"	२॥	"
द्वारिकाजन	"	३	"
अक्रूर	"	३	"
कृतवर्मा	"	३	"
वृद्धजन	"	२	"
राजा नग्नजित	"	५	"
भूदेवी	"	७	"
वाणासुर	"	३	"
वाणासुरके गृहरक्षकके		१॥	"
उषा	"	२	"
चित्रलेखाके	"	१	"
माहेश्वर ज्वर	"	४	"
यमुना	"	२	"
राजानृग	"	२०	"
पौण्ड्रक	"	२	"
गोप बालक	"	२	"
गोपियां	"	५॥	"
कौरव	"	१२॥	"
वन्दी राजाओंका दूत		१	"
वन्दी राजा	"	६	"
श्री वसुदेव	"	२५	"
माता देवकी	"	७	"
श्रीशुक	"	१२४७॥	"
		१९३३	

८३	४३
८४	७१
८५	५९
८६	५९
८७	५०
८८	४०
८९	६६
९०	५०
	१९३३

एकादश स्कन्ध १३६७ श्लोक				**अध्याय**	**श्लोक**
राजा परीक्षित	के	५	श्लोक	१	२४
श्रीशुक	"	१११	"	२	५५
श्रीकृष्ण	"	७७०	"	३	५५
उद्धव	"	८३	"	४	२३
देवर्षि नारद	"	२६	"	५	५२
वसुदेवजी	"	६	"	६	५०
योगेश्वर कवि	"	११	"	७	७४
" हरि	"	११	"	८	४४
" अन्तरिक्ष	"	१४	"	९	३३
" प्रबुद्ध	"	१६	"	१०	३७
" पिप्पलायन	"	६	"	११	४९
" आविर्होत्र	"	१३	"	१२	२४
" द्रुमिल	"	२२	"	१३	४२
" चमस	"	१७	"	१४	४६
" करभाजन	"	२३	"	१५	३६
ब्रह्मा	"	७	"	१६	४४
देवताओं	"	१३	"	१७	५८
राजा यदु	"	५	"	१८	४८
पिंगला	"	१३	"	१९	४५
कपोत	"	३	"	२०	३७
अवधूत ब्राह्मण	"	१०२	"	२१	४३
भगवान हंस	"	९	"	२२	६०
सनकादि	"	१	"	२३	६२
ब्राह्मण भिक्षु	"	३३	"	२४	२९
राजा पुरुरवा	"	१८	"	२५	३६

			अध्याय	श्लोक
सारथि दारूक	,, १ "		२६	३५
व्याधजरा	,, ४ "		२७	५५
			२८	४४
	१३६७		२९	४६
			३०	५०
			३१	२८
			१३६७	

द्वादश स्कन्ध ५६६ श्लोक		अध्याय	श्लोक
राजा परीक्षित	के ८ श्लोक	१	४३
श्रीशुक	" १९३ "	२	४४
सूत	,, ३०७ "	३	५२
शौनक	,, ११ "	४	४३
ऋषियाज्ञ वल्क्य	,, ६ "	५	१३
ऋत्विकों	,, १ "	६	८०
देवगुरु वृहस्पति	,, ४ "	७	२५
मार्कण्डेय	,, २३ "	८	४९
भगवानशिव	,, ९ "	९	३४
ऋषि नारायण	,, ४ "	१०	४२
		११	५०
	५६६	१२	६८
		१३	२३
		५६६	

यह गणना करते हुए जहाँ किसीका केवल आधा या चौथाई श्लोक किसीके कथनके मध्य आया है, वहाँ उसे पृथक नहीं गिना गया है; किन्तु जहां किसीका एक पूरा या एकाधिक श्लोक है, वहाँ आधा या चौथाई श्लोक भी उसकी संख्या पूरी होनेके पश्चात् है तो उसीके श्लोकोंमें गिना गया है।

कहीं-कहीं सूत या शुकका केवल एक शब्द 'आह' श्लोकके प्रारम्भ में है। ऐसे स्थान पर इस शब्दको भी पूरे श्लोकका अंश मानकर श्लोक जिसका है उसीके नाम गिना गया है।

एक उवाचके मध्य भी दूसरोंके श्लोक हैं। वे जिसके हैं, उसीके नाम से गिने गये हैं।

श्रीशुक उवाच चल रहा है और फिर श्रीशुक उवाच आ गया है। केवल दशम स्कन्ध उत्तार्धमें अध्याय ८६ तथा ८९ में ऐसा हुआ है कि श्रीशुक उवाच चलते हुए विना दूसरेके वोले पुन: श्रीशुक उवाच आ गया है। नहीं तो मध्यमें किसी अन्यके वोलने पर ही पुन: श्रीशुक उवाच आया है।

यह नियम ग्रन्थमें नहीं है कि सर्वत्र श्रीशुक उवाच ही रहे। कहीं ऋषि उवाच, कहीं श्री बादरायणि उवाच भी है। ऐसे ही श्रीभगवानुवाच भी कही भगवान विष्णुके लिए, कहीं शिव या संकर्षणके लिए भी आया है। अत: गणना करते समय एक नामकी एक रूपता रखी गयी है। उसीका कहीं दूसरा नाम आया है तो भी उसके मुख्य नामसे ही वहाँ गणनाकी गयी है।

विशेष

यह गणना छपी हुई श्लोक संख्याके अनुसार है। अनेक स्थानों पर श्लोक तीन पदके हैं। पञ्चम स्कन्धके गद्य भागमें तो बहुधा बहुत लम्बे गद्य पर संख्या पड़ी है।

इसके अतिरिक्त पाठ भेद और अधिक पाठ भी कुछ टीकाकारोंने दिये हैं। परिशिष्टमें कुछ अधिक पाठ दिये जा रहे हैं; किन्तु अधिक पाठ तो और भी हैं।

विद्वानोंका मत है कि पुराणादि शास्त्रोंके सव अक्षर गिनकर कुल अक्षर संख्यामें ३२ (एक अनुष्टुप श्लोककी अक्षर संख्या) का भाग देनेसे जो भागफल आवे ग्रन्थकी उतनी श्लोक संख्या माननी चाहिऐ। इस प्रकार की गणना करने पर श्रीमद्भागवत की श्लोक संख्या १८००० हो जाती है।

बालक श्रीराम

छपे हुए अध्याय एवं श्लोकों की संख्या

[गीता प्रेस की प्रति के अनुसार। क्योंकि उवाच को भी श्लोक गिना जाता है-उनकी संख्या भी है।]

स्कन्ध	अध्याय	श्लोक	उवाच
प्रथम	१९	८०९	७२
द्वितीय	१०	३९१	२४
तृतीय	३३	१४११	१४०
चतुर्थ	३१	१४४५	१६६
पञ्चम	२६	७५०	५१
षष्ठम	१९	८५१	१०४
सप्तम	१५	७५०	८४
अष्टम	२४	९३१	१०१
नवम	२४	९६४	५७
दशम (पूर्वार्ध)	४९	२०१४	१६९
दशम (उत्तरार्ध)	४१	१९३३	१८६
एकादश	३१	१६६७	११९
द्वादश	१३	५६६	४२

कुल अध्याय–३३५–श्लोक–१४१०० उवाच–१३१५

अनेक विद्वान अध्यायों के अन्त में जो 'इति श्रीमद्भागवते ·· ····' आदि पुष्पिका है उसे डेढ़ श्लोक मानते हैं। कुछ उसे एक श्लोक मानते हैं। उसे एक श्लोक भी मानें तो उनकी संख्या भी ३३५ होगी। कुछ विद्वान अध्यायके प्रारम्भ 'अथ प्रथमोऽध्यायः' आदि को भी एक श्लोक मानते हैं।

अध्याय संख्या

श्री वल्लभाचार्यजी ३३१ अध्याय मानते हैं। वे अघासुर-उद्धार, ब्रह्मा का मोह तथा ब्रह्मा की स्तुति के तीन अध्याय प्रक्षिप्त मानते हैं; किन्तु इन पर उन्होंने टीका की है।

सुदर्शनसूरि तथा वीर राघवाचार्य भी ३३२ अध्याय मानते हैं; किन्तु वे प्रक्षिप्त सूचित नहीं करते। सब अध्यायों पर उनकी टीका है।

श्री वोपदेवने 'हरिलीला * में ३३२ अध्याय माने हैं; किन्तु वे किसी अध्याय को प्रक्षिप्त नहीं मानते। विभिन्न तीन अध्यायों को पास के अध्याय के अन्तर्गत मानते हैं।

इस विवाद का आधार श्रीधर स्वामी के भी पूर्ववर्ती आचार्य श्री चित्सुखाचार्यजी की टीका है। उसमें उन्होंने 'पुरार्णव' ** का एक श्लोक उद्धृत किया है—

स्कन्धा द्वादश एवाच कृष्णे नविहिता शुभाः।
द्वात्रिंशत् त्रिशतपूर्णमध्यायाः परिकीर्तिताः॥

इस श्लोक को तो टीकाकारों ने प्रामाणिक माना है; किन्तु इसके 'द्वात्रिंशत् त्रिशत्' का अर्थ कोई ३३५ करते हैं और कोई ३३२। ३३२ माननेवाले भी टीका तो ३३५ अध्यायों की ही करते हैं।

श्लोक संख्या

'दशाष्टौ श्री भागवतम्' और 'पर्णान्यष्टदशेष्टादो' आदि वाक्य १८००० श्लोक संख्या बतलाते हैं।

अन्वितार्थ प्रकाशिका के टीकाकार १४ हजार दो सौ ६४ गद्य-पद्य संख्या कहते हैं। उनके अनुसार श्लोकों की तालिका इस प्रकार है—

प्रथम स्कन्ध	८१३
द्वितीय "	३९६
तृतीय "	१४७६

* श्रीकृष्ण जन्म स्थान से सटीक प्रकाशित।

** यह ग्रन्थ अब कहीं भी प्राप्य नहीं है'

चतुर्थ "	१४८२
पञ्चम "	७३६
षष्ठम "	८५८
सप्तम "	७६०
अष्टम "	९३८
नवम "	९७४
दशम "	३९७३
एकादश "	१३७७
द्वादश "	५६६

गीता प्रेस की प्रति से केवल द्वादश स्कन्ध की श्लोक संख्या मिलती है। अन्य सभी स्कन्धों में श्लोक संख्या अधिक है।

अन्वितार्थ प्रकाशिका के टीकाकार ने उवाचों को एक श्लोक माना है, अध्याय समाप्ति की पुष्पिका को डेढ़ श्लोक माना है। श्लोकों तथा गद्य के अक्षरों को गिनकर उन्हें ३२ से भाग दिया है। इस प्रकार गणना करके उन्होंने लिखा है—

गद्य-पद्याक्षरों से बने अनुष्टुप (३२ के भाग देनेपर भागफल) की संख्या	१६२५९।।।
उवाच संख्या	१३२०
अध्यायान्त पुष्पिका	४१८।।।
कुल	१७९९८।।

इस प्रकार अठारह हजार में केवल डेढ़ श्लोक कम होते हैं।

टीकाकारों में श्री विजयध्वज तीर्थ ने लगभग ४५० श्लोक अधिक माने हैं। इनको गणना में लेने पर अध्यायान्त पुष्पिका को गिनना आवश्यक नहीं रहता है।

किसके कितने श्लोक

[गीता प्रेस की प्रति के आधार पर]

यहाँ उवाच के अनुसार नाम नहीं हैं; क्योंकि राजोवाच कभी परीक्षित के लिए, कभी युधिष्ठिर के लिए, कभी निमिके लिए है। यही दशा ऋषिरुवाच तथा श्रीभगवान-वाच की है। अतः नाम उनके हैं, जो बोले हैं। एक नाम के जो पर्याय हैं, उन्हें भी एक किया गया हैं। जैसे श्रीशुक को अनेक स्थानों पर बादरायणि भी आया है।

कुछ स्थानों पर नाम नहीं है। जैसे परीक्षित ने जिन ऋषि के गले में सर्पडाला, उनका शमीक नाम टीका से प्राप्त हुआ है।

ऋत्विक, ब्राह्मण, देवता, असुर या दैत्य में भेद या नाम निर्देश नही था, अतः इनके वर्गों के नाम दिये गये हैं। नाम अकारादि क्रम से हैं।

१—योगेश्वर अन्तरिक्ष	१४ श्लोक
२—अंशुमान	६
३—राजा अंग	१
४—श्रीकृष्णके अंतःपुरजन	२
५—महर्षि अंगिरा	२३
६—अग्नि	१ श्लोक
७—अर्जुन	३५
८—महर्षि अग्नि	२
९—महर्षि अगस्त	१
१०—अर्यमा	४
११—देवमाता अदिति	१२
१२—राजा अम्बरीष	९ श्लोक
१३—अवधूत ब्राह्मण	१२८ श्लोक
१४—अक्रूर	८४
१५—अघासुर	१।।
१६—असुर	२७
१७—अजामिल	१३
१८—योगेश्वर आविर्होत्र	१३
१९—राजा आग्नीध्र	१०
२०—इन्द्र	३६।।
२१—उपनन्दजी	७
२२—उर्वशी अप्सरा	६
२३—उत्तरा	२

२४—उषा	२ श्लोक	५९—गोपियां	१४९॥ श्लोक
२५—राजा उत्तानपाद	३	६०—गोप बालक	१९॥
२६—उद्धव	१९४	६१—योगेश्वर चमस	१७
२७—ऋषिगण	२१॥	६२—चारणगण	१
२८—ऋत्विकगण	१८	६३—चाणूर	६
२९—ऋषभदेव	२७	६४—राजा चित्रकेतु	३७
३०—योगेश्वर कवि	११	६५—चित्रलेखा	१
३१—योगेश्वर करभाजन	२३	६६—ऋषिजमदग्नि	४
३२—श्रीकृष्ण	१०८८॥	६७—राजा जरासन्ध	१२
३३—भगवान कपिल	३३१	६८—जाम्बवान	३
३४—महर्षि कर्दम	३६	६९—महारानी जाम्बवती	१
३५—महर्षि कश्यप	८५	७०—जीव	१८
३६—कलि	२	७१—दन्तवक्र	२॥
३७—कपोत	२	७२—महर्षि दधीचि	४
३८—कंस	२८	७३—दिति	२१
३९—कालकन्या	२	७४—सारथि दारुक	१
४०—कालिय नाग	४	७५—द्वारका प्रजाजन	४
४१—महारानी कालिन्दी	५	७६—दुर्योधन	१
४२—काल यवन	२	७७—महर्षि दुर्वासा	११॥
४३—कंस पत्नियां	४	७८—राजा दुष्यन्त	३
४४—किंपुरुषगण	१	७९—योगेश्वर द्रुमिल	२२
४५—किन्नरगण	१	८०—माता देवहूति	२७
४६—देवी कुन्ती	३६	८१—देवयानी	६॥
४७—लोकपाल कुबेर	६	८२—माता देवकी	१८
४८—कुबेर पुत्र	१०	८३—दक्ष प्रजापति	३३
४९—कुब्जा	३	८४—देवियां	४
५०—रानी कृतद्युति	५	८५—देवता	९०॥
५१—कृतवर्मा	३	८६—वन्दीनरेश-दूत	٩
५२—कौरव	१२॥	८७—यम-दूत	४०॥
५३—गंगाजी	२	८८—विष्णु दूत	२०
५४—गन्धर्वगण	२	८९—दैत्यपुत्र	२
५५—गजेन्द्र	३१	९०—महारानी द्रौपदी	५॥
५६—महर्षि गर्ग	१८	९१—राजा धृतराष्ट्र	४
५७—राजा गाधि	१	९२—धर्म	१०
५८—गोपगण	२२	९३—धरा देवी	४४

९४—ध्रुव	२२ श्लोक
९५—बाबानन्द	२६।।
९६—नन्दीश्वर	६
९७—राजा नभग	३।।
९८—राजा नग्नजित्	५
९९—देवर्षि नारद	८४७।।
१००—नागगण	१
१०१—नागपत्नियां	२१
१०२—ऋषि नारायण	४
१०३—भगवान नृसिंह	१४
१०४—राजा नृग	२०
१०५—नृपगण	३
१०६—राजा निमि	२
१०७—राजा परीक्षित	२०२
१०८—पौरवस्त्रियां	१०
१०९—विष्णुपार्षद	२
११०—महाराज पृथु	६०
१११—प्रह्लादजी	१६७
११२—भगवती पार्वती	५
११३—प्रद्युम्न	३।।
११४—प्रद्युम्न सारथि	२
११५—विदर्भ पुरजन	२
११६—प्रचेता	२४
११७—पुरंजन	१४
११८—पुरंजनी	१०
११९—राजा प्राचीनर्बर्हि	७
१२०—प्रजाजन	६
१२१—पितर	१
१२२—प्रजापति	१
१२३—राजा पुरुरवा	२२
१२४—पुरु	२
१२५—पौण्ड्रक	३
१२६—योगेश्वर प्रबुद्ध	१६
१२७—योगेश्वर पिप्पलायन	६
१२८—पिंगला	१३
१२९—ब्राह्मणगण	२९ श्लोक
१३०—भगवान व्यास	१४
१३१—विदुर	१२५।।
१३२—ब्रह्मा	२७३
१३३—लोकपाल वरुण	३
१३४—भगवान वाराह	३
१३५—यज्ञीय ब्रह्मा	१
१३६—विद्याधर गण	२
१३७—वैदर्भी	१
१३८—विश्वरूप	४०
१३९—वृत्रासुर	२५।।
१४०—वन्दीनरेश	१०
१४१—मैथिल बहुलाश्व	६
१४२—ब्राह्मण	६।।
१४३—वृद्धजन	२
१४४—भगवान विष्णु	१२१।।
१४५—वन्दीगण	२६
१४६—राजावेन	६
१४७—व्याधजरा	४
१४८—वैतालिकगण	१
१४९—दैत्यराज बलि	५१
१५०—देवगुरु बृहस्पति	८
१५१—भगवान वामन	१४
१५२—श्रीबलराम	३७
१५३—विन्ध्यावली	१
१५४—ब्राह्मणी	७।।
१५५—वसुदेवजी	६७
१५६—माथुर ब्राह्मण	१३
१५७—विप्र पत्नियां	२
१५८—वाणासुर	३
१५९—वाणासुरके गृहपाल	१
१६०—बन्दीराजा	६
१६१—ब्राह्मण भिक्षु	३३
१६२—भीष्म	२४
१६३—भरत (जड़)	९५

१६४—भद्रश्रवा	६ श्लोक	१९९—रजक	२
१६५—महारानी भद्रा	२	२००—रति	४
१६६—भूमा पुरुष	२	२०१—रुक्मी	४
१६७—महर्षि भृगु	६	२०२—महारानी रुक्मिणी	३२
१६८—राजा भगीरथ	२	२०३—महारानी लक्ष्मणा	२३
१६९—मुनिगण	२५	२०४—महारानी सत्य भाभा	१
१७०—माथुर स्त्रियां	१०	२०५—महारानी सत्या	२
१७१—माथुरजन	८	२०६—ऋषिशौनक	७७
१७२—माया पुरुष	१	२०७—ऋषि शमीक	७
१७३—महारानी मित्रविन्दा	१	२०८—शमीक-पुत्र	४
१७४—श्रीकृष्ण महिषियां	१४	२०९—भगवानशिव	११३॥
१७५—मुचुकुन्द	२१	२१०—भगवानशेष	१५
१७६—महर्षि मैत्रेय	११२९	२११—शुक्राचार्य	१८
१७७—स्वायम्भुव मनु	८०	२१२—राजाशर्याति	३
१७८—ऋषि मार्कण्डेय	२३	२१३—शर्मिष्ठा	१
१७९—मनुगण	१	२१४—शकुन्तला	२
१८०—भगवान मोहिनी	२॥	२१५—शिशुपाल	७
१८१—माहेश्वर ज्वर	२	२१६—शाल्व	३
१८२—भगवान मत्स्य	११	२१७—श्रीशुक	५१६१
१८३—राजा युधिष्ठिर	७९	११८—विप्र श्रुतदेव	६
१८४—यवनेश्वर	३	२१९—श्रुतियां	२८
१८५—यमराज	४०	२२०—श्रीसनन्दन	२
१८६—यक्षगण	१	२२१—सनकादिकुमार	१९
१८७—राजाययाति	२१॥	२२२—रानी सुनीति	६॥
१८८—यदु	६	२२३—रानी सुरुचि	३
१८९—योगमाया	१	२२४—सदस्यगण	१
१९०—मैया यशोदा	९	२२५—सिद्धगण	२
१९१—यमुना (सरिताधिदेवी)	२	२२६—सदसस्पतिगण	१
१९२—महर्षि याज्ञवल्क्य	६	२२७—राजा सत्यव्रत	११
१९३—राजा रहूगण	१८	२२८—देवी सती	२०
१९४—भगवती रमा	६	२२९—सञ्जय	२
१९५—रामाः	२	२३०—सूत	७४२
१९६—भगवान श्रीराम	१	२३१—ऋषिसौभरि	४
१९७—राक्षसियां	३	२३२—समुद्र	४
१९८—राजारन्तिदेव	२	२३३—सुरभि	३

२३४—विद्याधर सुदर्शन	६	२४०—हिरण्याक्ष	४
२३५—माली सुदामा	४	२४१—हिरण्यकशिपु	५६॥
२३६—विप्र सुदामा	३	२४२—हर्यश्व	१०
२३७—महर्षि सांदीपनि	२	२४३—योगेश्वरहरि	११
२३८—सहदेव	६	२४४—भगवानहंस	१३
२३९—सत्राजित	२॥	२४५—श्रीहनुमान	६

श्रीमद्भागवतके कुछ विशेष शब्द

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुर वधोपेतं तद्भागवत मुच्यते ॥
मत्स्य पुराण ॥

जिसमें गायत्रीको आधार मानकर भागवत धर्मका विस्तार है और वृत्रासुर वधकी कथा है उसे भागवत कहा जाता है । इसके अनुसार देवी भागवतकी गणना महापुराणमें नहीं रह जाती । श्रीमद्भागवत ही महापुराण है।

१. अम्भोज=चन्द्रमा ।

अम्भोज शब्द सामान्यतः कमलके अर्थमें रूढ़ है। लेकिन भागवतमें यह स्थल विशेष है—

पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्।
१०।१।१३

आपके मुख चन्द्रसे झरते हुए हरिकथा रूपी अमृत को पीते हुए ।

मुखके लिए कमल और चन्द्रमा दोनोंकी उपमा काव्यमें बहुत प्रचलित है। इसलिए प्रायः टीकाकारोंने इस स्थलपर अम्भोजका रूढ़ अर्थ कमल ही किया है।

अम्भ=जल+ओज=सौन्दर्य । अम्भोज शब्दका अर्थ यही हुआ। जलसे उत्पन्न होनेके कारण ही कमल अम्भोज कहा जाता है, किन्तु कमलसे अमृत तो क्या मधुकी बूंद भी टपकती नहीं है, यद्यपि कमलमें मधु होता है, किन्तु वह मधुमक्षिका अथवा भ्रमरको ही प्राप्त होता है। स्वतः कमलसे गिरता नहीं है।

चन्द्रमाकी उत्पत्ति पुराणोंके अनुसार समुद्र-मन्थनसे हुई है। भागवतमें ही आया है—

'ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ।
३।२।८

चन्द्रमा समुद्रमें रहता था, किन्तु मछलियां उसे पहिचान न सकीं (कि यह अमृतमय है।) ऐसे ही अपने मध्य रहते परमपुरुष श्रीकृष्णको यदुवंशी नहीं पहिचान सके।

समुद्रसे उत्पन्न होनेके कारण चन्द्रसा अम्भोज तो है ही और चन्द्रसे अमृतस्रावकी बात भी काव्योंमें है। * चन्द्रको सुधारश्मि कहा गया है। अतः इस स्थलपर अम्भोजका अर्थ चन्द्र किया जाना चाहिये।

* राकेटसे चन्द्रमापर जाकर जो जानकारी मिली है, उसका काव्य-पुराण, परम्परासे कोई सम्बन्ध नहीं है।

आम्र और चूत

कोषोंमें और प्रचलनमें भी आम्र और चूत पर्याय-वाची माने जाते हैं। होली जलनेके दूसरे दिन रंगोत्सवकी तिथि चैत्र कृष्ण प्रतिपादके लिए पंचागोंमें 'चूत कुसुम प्राशन' अथवा 'आम्रकुसुम प्राशन' इनमें-से कोई वाक्य मिल सकता है। लेकिन भागवतमें एक ही श्लोकमें दोनों शब्द आये हैं--

चूतप्रियालपनसासनकोविदार
जम्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः।
(१०।३०।६)

चूत, प्रियाल, पनस (कटहल) असन, कोविदार (कचनार) जम्बू (जामुन) आम, बेल, बकुल, आम, कदम्ब और नीप।

टीकाकारका काम तो इन वृक्षोंके नाम ज्योंके-त्यों देकर चल सकता है अथवा चूतको रसाल और आम्रको आम कहकर काम निकाला जा सकता है, किन्तु इससे ठीक पढ़नेवालेका समाधान तो नहीं होगा।

इसीमें बकुल और नीप भी है। ये दोनों शब्द भी मौलिश्रीके ही नाम हैं।

कथावाचक मान ले सकते हैं कि गोपियां श्रीकृष्ण-विरह-विह्वला हैं, अतः एक ही जातिके वृक्षोंका दो वार नाम ले रही हैं, किन्तु इस प्रकार पुनरुक्ति दोष मानकर उसे सकारण कहा गया।

चूतका अर्थ है चू जानेवाला—स्वयं पककर टपक जानेवाला, वस्तुतः रसदार रसाल आम और आम वह जो रसदार न होकर गूदेदार होता है। ऐसे ही नीप और बकुल मौलिश्रीकी दो जातियां हैं।

कपोत—पारावत

सामान्यतः लोकमें कपोत और पारावत दोनों शब्द कबूतरके लिए हैं, किन्तु भागवतमें कपोत मृत्युदूत कहा गया—

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः।
१।१४।१४

यहां स्पष्ट ही कपोत शब्द पंडुक (पेण्डुकी) के लिए आया है। कबूतर शुभ पक्षी है। उसका वर्णन 'पारावत' कहकर वैकुण्ठके पक्षियोंमें किया गया है—

पारावतान्यभतसारसचक्रवाक—
(३।१५।१८)

यहां ऐसे समस्त शब्दोंका उल्लेख सम्भव नहीं है। तात्पर्य इतना ही है कि भागवतमें शब्दोंके लोक-प्रचलित अर्थसे भिन्न अर्थ जहाँ हैं, उन स्थानोंकी खोज होनी चाहिये।

श्रीमद्भागवतकी टीकाएँ और टीकाकार

भागवतकी टीकाकीकी यह सूची चार सूत्रोंसे मुझे प्राप्त हुई है—

१. गोलोकवासी बाबा कृष्णदासजी (राधाकुण्ड) द्वारा प्रकाशित 'तत्त्व सन्दर्भ' में।

२. सक्षाचार्य डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीजीके द्वारा।

३. डा० गोवर्द्धननाथजी शुक्ल (अलीगढ़)-द्वारा। शुक्लजीने तो बहुत परिश्रम करके, अपने परिचित्तों-मित्रोंके द्वारा पता लगाकर प्रान्तीय भाषाओंकी टीकाओंका नाम दिया है।

४. अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराजने कुछ अत्यन्त नवीन टीकाओंके नाम सूचित किए।

इनमें टीकाओंके कई वर्ग हैं—

१. जिनका केवल नाम दूसरी टीकाओंमें मिलता है। जैसे श्रीधरजीने और जीव गोस्वामीजीने भी अपनी टीकामें श्रीचित्सुखाचार्यजी की टीकाका उल्लेख किया है। उसके पाठ को प्रामाणिक माना है। सबसे प्राचीन लगभग बारहवीं शताब्दीकी उस टीकाका केवल नाम ही प्राप्त है।

२. कुछ टीकाओंका नाम मिलता है; किन्तु टीका-कार का नाम नहीं मिलता।

३. कुछ टीकाकारोंने अपनी टीकाका कोई नाम करण नहीं किया।

४. टीका और टीकाकार दोनोंका नाम मिलता है। जहाँ भाषाका उल्लेख नहीं है, वे सब टीकायें संस्कृतमें हैं, यह मानना चाहिए -

	टीकाका नाम	टीकाकार
१.	अन्वय	अव्यय पण्डित
२.	अन्वय	बुक्कन पण्डित
३.	अन्वय [मध्व]	वेङ्कटकृष्ण
४.	अन्वय बोधिनी	कवि चूड़ामणि चक्रवर्ती
५.	अमृत तरंगिणी	ज्ञानपूर्णयति
६.	अमृत तरंगिणी	लक्ष्मीघर
७.	आतमप्रिया	नारायण
८.	अनुक्रम	बोपदेव*
९.	आनन्द वृन्दावन चम्पू	कवि कर्णपूर [यह टीका न होकर भागवत पर आधारित स्वतन्त्र ग्रन्थ है।]
१०.	एकादश स्कन्धसार	ब्रह्मानन्द भारती
११.	एकादश स्कन्धसार संग्रह	विष्णुपुरी
१२.	एकादश स्कन्ध तात्पर्य चन्द्रिका	
१३.	एकादश स्कन्ध दीपिका दीपन	राधाचरण गोस्वामी
१४.	कान्तिमाला	विष्णुपुरी
१५.	कृष्णपदी	राघवानन्दमुनि

* 'हरि लीला' के अनुसार श्रीबोपदेवजीने श्रीमद्भागवत पर तीन ग्रन्थ लिखे— १. हरि लीला २. मुक्ताफल (ये उपलब्ध हैं) ३. तीसरे ग्रन्थका नाम 'हरि लीला' की भूमिकाके अनुसार मुकुट या भागवत-विमर्श है। इनके अतिरिक्त बोपदेवजीकी एक टीका भी थी सम्पूर्ण भागवत की। उसका नाम परमहंस प्रिया कई विद्वानोंने लिखा है। अनुक्रम सम्भवतः हरि लीलाका ही दूसरा नाम है।

१६. कृष्णवल्लभा — आनन्द भट्ट
१७. केरल भाष्य व्याख्या — केशव भट्ट
१८. क्रोदुप पत्रराज — केशव भट्ट
१९. कृष्ण वल्लभा — आनन्द चट्टोपाध्याय
२०. क्रम सन्दर्भ [गौड़ीय] — जीव गोस्वामी
२१. कृष्णभट्ठ कृत टीका
२२. कौर सांधु कृत टीका
२३. गण दीपिका — कृष्णदास
२४. गोपाल चक्रवर्ती कृत टीका
२५. चित्सुखी — चित्सुखाचार्य
२६. चूर्णिका [मध्व] — माधव
२७. चुर्णिका तात्पर्य — माधव
२८. चैतन्य चन्द्रिका [गौड़ीय] — श्रीनाथ पण्डित
२९. जय मंगला [रामानुजीय] — श्रीनिथसाचार्य
३०. जनार्दनभट्ट कृत टीका
३१. चक्रवर्तिन — नारायण
३२. चतुःश्लोकी भागवत
३३. टीकासार संग्रह — उत्तम बोधमति
३४. तत्त्व प्रदीपिका — नारायण यति
३५. तत्त्व बोधिनी — शंकरनारायण शास्त्री
३६. तत्त्व दीपिका [रामानुजीय) — श्रीनिवास सूरि
३७. तत्त्व बोधिनी तात्पर्य टिप्पणी [मध्व] — जनार्दनभट्ट
३८. तोषिणी सार — शंकरनारायण शास्त्री
३९. तोषिणी सार-संग्रह — काशीनाथ
४०. तात्पर्यचन्द्रिका
४१. तात्पर्य प्रदीपिका
४२. तात्पर्य दीपिका — नृहरि
४३. तत्त्व दीपिका [वल्लभीय] — कल्याणराय
४४- तन्त्र भागवत
४५. दुर्घट भावदीपिका [मध्व] — सत्याभिनव तीर्थ
४६. दशम स्कन्धानुक्रमणिका [वल्लभीय] — वल्लभाचार्य
४७. त्रिविध लीला नामावली
४८. द्राविण टीका
४९. निबन्ध विवृति प्रकाश [वल्लभीय] — विठ्ठल दीक्षित
५०. न्याय मंजरी (वेदस्तुति व्याख्या) — भवदास (भागवतदास)
५१. नरहरि कृत टीका [रामानुजीय] — (वरदाचार्य पुत्र)
५२. पदयोजना [वल्लभीय] — भवदास
५३. पदार्थ सरसी
५४. पदत्रयी — सदानन्द
५५. परमहंस प्रिया — बोपदेव
५५. प्रकाश — श्रीनिवास
५६. प्रति पदार्थ प्रकाशिका — शोभनाद्रि
५७. प्रबोधिनी [वल्लभीय[
५८. प्रहर्षिणी
५९. प्रेम मंजरी — रामकृष्ण मिश्र
६०. पद योजना [वल्लभीय] — बालकृष्ण दीक्षित
६१. पदरत्नावली [मध्व] — विजयध्वज तीर्थ
६२. बाल प्रबोधिनी [वल्लभीय] — गिरिधर
६३. वृहद् वैष्णवतोषिणी [गौड़ीय] — सतातन गोस्वामी
६४. वुधरंजिनी — वासुदेव
६५. बोधिनीसार
६६. वृहद् भागवतामृत [गौड़ीय] — सनातन गोस्वामी
६७. वृहद् भागवत माहात्म्य
६८. भक्त रंजिनी — भागवतप्रसादाचार्य
६९. भक्त रामा — वेंकटाचार्य
७०. भक्ति दीपिका — जातवेद
७१. भक्तिमती
७२. भगवल्लीला चिन्तामणि
७३. भगवत्प्रसादसार — श्रीहरि सूरि
७४. भागवत कौमुदी की टीका — रामकृष्ण
७५. भागवत गूढ़ार्थ दीपिका — धनपत सूरि
७६. भागवत गूढ़ार्थ रहस्य — भागवतानन्द गोस्वामी
७७. भागवत पुराण प्रकाश — प्रियादास
७८. भागवत पुराणार्क प्रभा — हरिभान शुक
७९. भागवत मंजरी — गौतम कुलचन्द्र शर्मा (मुद्रित)
८०. भागवत लीला कल्पद्रुम — (भागवत प्रथम श्लोक व्याख्या)

८१. भागवत विवरण
८२. भागवत व्याख्या लेश गोपाल चक्रवर्ती
८३. भागवतसार गोविन्द विद्याविनोद
८४. भागवत सारोद्धार जयतीर्थ अवधूत
८५. भागताद्यपद्य व्याख्या शतकम वंशीधर शर्मा
८६. भागवतार्थ तत्त्व दीपिका कौण्डिन्य भाष्यकारसूरि
८७. भागवतार्थ दीपिका चक्रपाणि
८८. भागवातार्थ रत्नमाला शुकमुनि
८९. भावना मुकुर शुकमुनि
९०. भाव प्रकाशिका नरसिंहाचार्य
९१. भावार्थ दीपिका श्रीधर स्वामी
९२. भावार्थ दीपिका क्रोड टिप्पणी ब्रह्मानन्द किंकर
९३. भावार्थ दीपिका टीका चैतन्य धन
९४. भावार्थ दीपिका प्रकाश काशीनाथ वन्द्योपाध्याय
९५. भावार्थ दीपिका भाव श्रीशिवराम
९६. भावार्थ दीपिका स्नेहपूरणी केशवदास
९७. भावार्थ प्रदीपिका वंशीधर
९८. भागवत चन्द्रिका [रामानुजीय] वीरराघव
९९ भागवत टिप्पणी [गौड़ीय] लोकनाथ चक्रवर्ती
१००. भागवत तात्पर्य चन्द्रिका [मध्व] वेंकटकृष्ण
१०१. भागवत तात्पर्य दीपिका नृहरि
१०२. भागवत तात्पर्य निर्णय [मध्व] श्रीमध्वाचार्य
१०३. भागवत विवृति [मध्व] यदुपति आचार्य
१०४. भागवत व्याख्या लेश गोपाल चक्रवर्ती
१०५. भाव प्रकाशिनी [गौड़ीय] रामनारायण मिश्र
१०६. भव-भाव-विभाविका [गौड़ीय] ,, ,,
१०७ भाव-भाविका
१०८. भावार्थ दीपिका दीपनी [गौड़ीय]
राधारमण गोस्वामी
१०९. भागवत टीका विष्णु स्वामी
११०. भागवती टीका विठ्ठल
१११. भागवत टीका ब्रजभूषण
११२. भागवत टीका सुदर्शन सूरि
११३. भागवत पद्यत्रयी व्याख्यान (सदानन्द
(प्रारम्भके ३ श्लोकोंकी व्याख्या)
११४. भागवताद्य पद्यत्रय व्याख्या मधुसूदन सरस्वती
११५. भागवत पुराण प्रथम श्लोक टीका जयराम
११६. भागवत तत्त्वदीप निबन्ध [वल्लभीय]
वल्लभाचार्य
११७ भागवत तत्त्वदीप प्रकाशावरण भंग
पीताम्बरजी
११८. भागवत निबन्ध योजना [वल्लभीय] पुरुषोत्तम
११९. भागवत सन्दर्भ जीवगोस्वामी
(इनके षट् सन्दर्भ हैं—तत्त्व, भगवत्, परमात्मन, कृष्ण भक्ति और प्रीति नामोंसे)
१२०. भागवत तत्त्व भास्कर शिवप्रकाशसिंह
१२१. भागवत तत्त्वसार [गौड़ीय]
राधामनोहर शर्मा
१२२. भागवत पुराण तत्त्व संग्रह रामानन्द तीर्थ
१२३. श्रीमद् भागवत एकादश स्कन्ध चतुरदास
१२४. मुनि भाव प्रकाशिका कृष्णगुरु
१२५. मुनि प्रकाशिका [मध्व] वेद गर्भ नारायण
(भागवत तात्पर्य टीकार्थ संग्रह)
१२६. भेदवादि कृत टीका
१२७. मादु पत्य विवृति शेषपूरणी [मध्व]सत्यधर्म तीर्थ
१२८. रस मंजरी
१२९. रास क्रीड़ा व्याख्या पीताम्बर
१३०. रास पंचाध्यायी प्रकाश
१३१. वासना भाष्य |
१३२. विद्वत् कामधेनु |
(उपरोक्त इन दोनों का उल्लेख क्रम सन्दर्भ १।१।१ में है)
१३३. विवरण मणि मंजूषा
१३४. विपद् पद टीका

१३५. बोधसुधा विद्यासागर मुनि
१३६. विशुद्धरस दीपिका [गौड़ीय] किशोरप्रसाद
१३७. विषम पद टीका
१३८. वैष्णवा नन्दिनी [गौड़ीय]
बलदेव विद्याभूषण
१३९. वेद स्तुति व्याख्या
१४०. वामनी टीका
१४१. शुक भाव प्रकाशिका सुन्दराज सूरि
१४२. शुक हृदया (क्रम सन्दर्भ १।१।१ में उल्लेख)
१४३. शुक हृदय रंजिनी नरसिंह सूरि
१४४. श्रुति चन्द्रिका (वेद स्तुति व्याख्या) वेङ्कट
१४५. शुक पक्षीया [रामानुजीय] सुदर्शन सूरि
१४६. शुक पक्षीया प्रबोधिनी [रामानुजीय]
१४७. श्रुत्यदध्याय दीपिका दीपन
राधाचरण गोस्वामी
१४८. सुदर्शिनी
१४९. सज्जनहित वेङ्कटाद्रि
१५०. समर्थ प्रकाशिका शंकर
१५१. सम्बन्धोक्ति
१५२ सर्वार्थ प्रकाशिका
१५३. सर्वोपकारिणी
१५४. सार संग्रह ब्रह्मानन्दी भारती
१५५. शुक तात्पर्य रत्नावली [रामानुजीय]
वीर राघव
१५६. संक्षिप्त वैष्णव तोषिणी [गौड़ीय] जीव गोस्वामी
१५७. सरला [रामानुजीय] योगी रामानुजाचार्य
१५८, सारार्थ दर्शिनी [गौड़ीय] विश्वनाथ चक्रवर्ती
१५९. सुबोधिनी [वल्लभीय] वल्लभाचार्य
१६०. सुबोधिनी प्रकाशन पुरुषोत्तम [वल्लभीय]
१६१. सुबोधिनी ,, बालकृष्ण दीक्षित
१६२. सर्व धर्मोत्तमा पं० ब्रजनाथ मालवीय
१६३. हनुमद् भाष्य (क्रम सन्दर्भ १।१।१ में उल्लेख)
१६४. रसाचार्य की टीका
१६५. पंचम स्कन्ध की टीका [वल्लभीय] वल्लभाचार्य
१६६. अनुक्रमणिका
१६७. अन्वितार्थ प्रकाशिका गंगासहाय
१६८. हरिभक्तिरसायन [हरिसूरि
१६९. राधारमण गोस्वामी की टीका
१७०. वेद स्तुति (निकुंज परक टीका) बालकृष्णाचार्य

(यह अप्रकाशित है—स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के पास है।)

१७१. भागवत व्यंजनम्
१७२. नारायणीय [
१७३. भाव प्रकाशिका श्रीधर

इस सूचीमें भी कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं, पर हैं वे भागवतार्थ स्पष्ट करने वाले।

जो टीका में स्पष्ट रूपसे किसी वैष्णव सम्प्रदायके आचार्य या अनुयायीकी हैं—उनकी संख्याके साथ उस सम्प्रदायका नाम दिया गया है।

— ——

भागवत पर स्वतन्त्र ग्रन्थ

१. जयोल्लास निधि — अप्पय दीक्षित
२. तन्त्रभागवत
३. दुर्जन मुख चपेटिका — काशीनाथ
४. दुर्जन मुख चपेटिका — रामाश्रम
५. पाखण्ड ध्वंसन भास्कर — विश्वनाथ सिंह
६. भक्ति तरंगिणी — वैद्यनाथ
७. भक्ति भागवत — अनन्तदेव
८. भक्ति रत्नावली — श्रीविष्णुपुरी
९. भगवन्नाम कौमुदी — श्रीलक्ष्मीधर कृत
१०. भागवत कथा
११. भागत कथा संग्रह — केशव शर्मा
१२. भागवत चम्पू — अभिनव कालिदास
१३. भागवत तत्व भास्कर — शिवप्रसाद
१४. भागवत निर्णय सिद्धान्त — दामोदर
१५. भागवत पुराण तत्व संग्रह — रामानन्द तीर्थ
१६. भागवत पुराण प्रसंग दृष्टान्तावली
१७. भागवत पुराण प्रामाण्य — विश्वेश्वरनाथ
१८. भागवत पुराण मंजरी — रामानन्द तीर्थ
१९. भागवत पुराण स्वरूप शंकर निरास — पुरुषोत्तम महाराज
२०. भागवत पुराणाशय — रामानन्द तीर्थ
२१. भागवत भूषण — गोपालाचार्य
२२. भागवत रहस्य — वृन्दावन गोस्वामी
२३. भागवत वादितोषिणी — गणेश
२४. भागवत विचार — धरणीधर
२५. भागवत व्यवस्था — काशीराम तथा केशवराम
२६. भागवत शंका निवारण मंजरी — शिवसहाय
२७. भागवत शंका निरासवाद — पुरुषोत्तमजी
२८. भागवत शरणम्
२९. भागवत संग्रह
३०. भागवत सार समुच्चय
३१. भागवत सिद्धान्त विजयवाद — रामकृष्णजी
३२. श्रीभागवतोत्पल
३३. मंगलार्थ शतक
३४. मंगलार्थ शतक — रामनारायण
३५. मुक्ताफल — वोपदेश
३६. मुक्तिरत्न — कृष्णानन्द
३७. हरिचरित्र
३८. हरि भक्ति तरंगिणी — केशव पंचानन भट्टाचार्य
३९. हरि भक्ति मंजरी — वनमाली भट्ट
४०. हरिलीला — वोपदेव
४१. हरिलीला व्याख्या — हेमाद्रि
४२. हरिलीला विवेक — मधुसूदन सरस्वती
४३. आनन्द वृन्दावन चम्पू — कविकर्णपूर गोस्वामी
४४. गोपाल चम्पू — जीव गोस्वामी
४५. गोविन्द मंगल — दुःखी श्यामदास
४६. भागवत रहस्य — वृन्दावन गोस्वामी
४७. श्रुतिस्तुति व्याख्या — श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीजी
४८. संशय शातनी — रघुनन्दन गोस्वामी
४९ भावार्थ मरीचि माला — भक्ति विनोद ठाकुर
५०. विद्वद्विनंदिनी — अनूप नारायणजी
५१. श्रीकृष्ण प्रेम तरंगिणी — भगवताचार्यजी
५२. श्रीकृष्ण मंगल — माधवार्य
५३. श्रीकृष्ण लीलास्तव — सनातन गोस्वामी
५४. विजय — मालाधर वसु
५५. भागवतामृत — श्रीरूपगोस्वामी
५६. दर्पण — बलदेव विद्याभूषण
५७. रसिकाल्हादिनी — महामहिम ब्रजाचार्य श्रीनारायण भट्टजी

५८- रमा श्रीजीवानुगत कृष्णदासजी
५९- सिद्धान्त प्रदीप शुकदेव
६०- संबन्धोक्ति
६१- भागवतसार समुच्चय
६२- भागवत सिद्धान्त संग्रह
६३- भागवत स्त्रोत
६४- भागवतामृत कणिका
६५- भागवताष्टक
६६- भागवतोत्पल
६७- भागवतादितन्त्र
६८- श्रीमद्भागवत प्रथमोऽध्यायः शशि मोहनदत्त
६९- श्रीभागवत चतुःश्लोकी शिवरामकृष्ण शास्त्री
७०- श्रीभागवत चन्द्र-चन्द्रिका
७१- श्रीभागवत एकादश स्कन्ध चतुरदास
७२- सप्ताह चन्द्रिका भोजराज उपाध्याय
७३-श्रीभागवत-रहस्य(हिन्दी)स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
७४- भागवत-दर्शन " " " "
७५- पुरुषोत्तम सहस्रनाम" " " "
७६-त्रिविधलीला नामावली" " " "
७७- भागवत पुराण-प्रसंग दृष्टान्तावली (हिन्दी)
७८- भागवत पुराण प्रामाण्य "
७९- भागत पुराण बन्धः "
८०- भागवत पुराण बृहत्-संग्रह "
८१- भागवतपुराण दीपिका प्रकरणक्रम-संग्रह रामानंदतीर्थ
८२- " " संग्रह "
८३- भागवत पुराण भूषण "
८४- भागवत पुराण मंजरी रामानन्दतीर्थ
८५- भागवत पुराण महाबिवरण "
८६- भागवत पुराण सारार्थ दर्शिनी विश्वनाथ चौबे
८७- भागबत पुराण सूचिका अनूप नारायण
८८- भागवत पुराण स्वरूप विषयक शंकानिरास पुरुषोत्तम
८९- भागवत पुराणानुक्रमणिका "
९०- भागवत पादानुक्रमणिका श्रीकृष्ण जन्मस्थान मथुरा
९१- भागवतपुराणाशय रामानन्दतीर्थ
९२- लघु भागवत माहात्म्य
९३- भागवत रहस्य वृन्दावन गोस्वामी
९४- भागवतादितोषिणी गणेश
९५- भागवत श्रुति गीत
९६- भागवत-संक्षेप-व्याख्या
९७- भागवत-संग्रह
९८- भागवत-सप्ताह चन्द्रिका
९९- भागवतसार गोविन्दविद्या विनोद
१००- भागवत-संग्रह
१०१- हरिलीला बोपदेव
१०२- मुक्ताफल "
१०३- भागवत दशम स्कन्ध कथा-संग्रह केशव शर्मा
१०४- भागगत चम्पू अभिनव कालिदास
१०५- भागवत चम्पू चिदम्बर
१०६- भागवत चम्पू रघुनाथ कवि
१०७- संक्षेप भागवतामृत रूप गोस्वामी
१०८- भक्तिरत्नावलि विष्णुपुरी
१०९- भागवतामृत "
११०- भक्तिरसामृतसिन्धु रूप गोस्वामी
१११- आनन्द वृन्दावन चम्पू कवि कर्णपूर
११२- गोपाल चम्पू जीव गोस्वामी
११३. विदग्ध माधव सनातन गोस्वामी
११४- सुखसागर (हिन्दी)
११५- प्रेमसागर "
११६- भागवती कथा प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
११७- ब्रजविल्लास "

हिन्दी टीकायें

इनकी सूची देपाना बहुत कठिन है। पुराने सटीक भागवत संस्करण अनेक प्रकाशित हुए हैं; किन्तु उनमें टीकाका हिन्दी बहुत प्राचीन हिन्दी या ब्रज-भाषा है। वर्तमानमें प्रचलित टीका—

१- श्रीमुनिलाल(स्वामी सनातनदेव) गीताप्रेस, गोरखपुर
२- स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती " "
(इन्हीं को टीका 'कल्याण' के 'भागवताङ्क' में है।)
३- दौलतराम गौड़ पत्राकार
४- अन्वितार्थ प्रकाशिका में भी हिन्दी टीका है
५- तोषिणीसार (हिन्दी टीका) श्रीकाशीनाथ उपाध्याय
६- भागवत-दर्शन प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
७- श्रीमद्भागवत भाषा वैष्णवदास
८- पद्यात्मक टीका रसजानि
९- " रघुनन्दन प्रसाद (अटल)
१०- भक्तमनोरंजिनी भगवत्प्रसादाचार्य
११- एकादशस्कन्ध चतुरदास
१२- भागवत-रहस्य रामचन्द्र डोंगरे
१३- हिन्दी भागवत कलकत्ते से
१४- बलवन्तराज संस्करण ग्वालियर

वृहत् टीका संकलन

श्रीमद्भागवतके दो विशालटीका संग्रह प्रकाशित हुए। इनमें जो टीकायें संकलित हैं— उनका विवरण

श्रीकृष्ण शंकर शास्त्री-संपादक

१- श्रीधर स्वामी	भावार्थदीपिका
२- श्रीवंशीधर कृत	भावार्थ दीपिका प्रकाश
३- श्रीराधारमणदास गोस्वामी	दीपिका
४- श्रीमद्वीरराघवाचार्य भावित	भागवत चन्द्रिका
५- श्रीविजयध्वजतीर्थ रचित	पद रत्नावली
६- श्रीजीवगोस्वामी प्रणीत	क्रम सन्दर्भ
७- श्रीविश्वनाथ चक्रवती साधित	सारार्थदर्शिनी
८- श्रीशुकदेव निर्मित	सिद्धान्त प्रदीप
९- श्रीवल्लभाचार्य निर्मित	सुबोधिनी
१०- श्री पुरुषोत्तमचरण गोस्वामी रचित	सुबोधिनी प्रकाश
११- श्रीगो० गिरधरलाल निर्मित	बाल प्रबोधनी
१२- श्रीकृष्णशंकर शास्त्री	हिन्दीभाषानुवाद

श्रीनित्यस्वरूप ब्रह्मचारी संपादित

१- श्रीश्रीधर स्वामी कृत	भावार्थ दीपिका
२- श्रीराधारमणदास गोस्वामी	दीपिनी
३- श्रीव रराघवाचार्यकृत	भागवत चन्दिका
४- श्रीविजयध्वज तीर्थकृत	पदरत्नावली
५- श्रीवल्लभाचार्य कृत	सुबोधिनी
६- श्रीजीवगोस्वामी कृत	क्रमसन्दर्भ
७- श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती	सारार्थदर्शिनी
८- निम्बार्क संप्रदायि श्रीशुकदेव	सिद्धान्त प्रदीप
९- श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी	हिन्दी भाषाटीका
१०- श्रीमधुसूदन सरस्वती	
११- श्रीराधामोहन तर्कवागीश	

श्रीमद्भागवत विभिन्न भाषा

वङ्गानुवाद—

१-श्रीमद्भागवत—	(रासविलास) नारायण चट्टराज—		श्रीरामपुर	१८५४ ई०
२-	"	दुर्गाचरन वन्द्योपाध्याय	कलिकाता	१८७० ई०
३-	"	रोहिणीनन्दन सरकार	कलिकाता	१८७७ ई०
४-	"	श्रीधरी—आध्यात्मिक व्याख्या—उपेन्द्र मिस्र	कलिकाता	१८८० ई०
५-	"	सत्यचरण गुप्त	कलिकाता	१८८४ ई०
६-	"	प्रतापचन्द्र राय	कलिकाता	१८८५ ई०
७-	"	कालीप्रपन्न विद्यारत्न	कलिकाता	१८९६ ई०
८-	"	प्यारीमोहन सेन	मुर्शिदावाद	१८९६ ई०
९-	"	११ श स्कन्ध—श्यामलाल गो०	कलिकाता	१९०० ई०

१०-	"	श्रीश्यामसुन्दर-श्रीश्यामलाल गो०	कलिकाता	१६०६ ई
११-	"	महेन्द्रनाथ चक्रवर्ती	कलिकाता	१६१८ ई०
१२-	"	कृष्णचन्द्र स्मृति तीर्थ	कलिकाता	१६२१ ई०
१३-	"	गौड़ीयमठ प्रकाशित	कलिकाता	१६२२-३८ ई०
१४-	"	गोपाल भट्टाचार्य	कलिकाता	१६२५ ई०
१५-	"	बिहारीलाल सरकार	कलिकाता	१६३५ ई०
१६-	"	(१०म) राधानाथ कायाभी—धान्य गुड़ियां	(२४ परगना)	१६४० ई०
१७-	"	चतु:श्लोकी—श्रीहरेप्रपन्न भट्टाचार्य	कलिकाता	१६४६ ई०
१८-	"	संक्षिप्त आख्यान भाग—श्रीगुनदाचरण सेन	कलिकाता	११५३ ई०

१६- श्रीखगेन्द्रनाथ वसु
२०- श्रीमध्वाचार्य भाष्यका गौड़ीय अनुवाद
२१- श्रीराधागोविन्दनाथकी टीका
२२- श्रीरघुनाथ भागवताचार्य (पद्यात्मक टीका)
२३- श्रीधरी टीकाका बंगानुवाद
२४- श्रीनित्यानन्ददास (अपूर्ण-हस्तलिखित)
२५- श्रीराधाविनोद गोस्वीकी टीका

आसामी भाषा

श्रीमद्भागवत—१० म स्कन्ध—शंकरदेव कलिकाता
१८८२-१८६८-१६०६-१६३७ ई०

उत्कल भाषानुवाद

१. १-५-१०-११ स्कन्ध—जगन्नाथदास कृत अनुवाद कलिकता १६१३-२०-४२ ई०
२. २ य ४र्थ—जगन्नाथदास पांचाल १६०२ ई०
३. १२ श स्कन्ध कलिकाता १६१४ ई०
४. टीका भागवत कलिकाता १६१६ ई०
५. भागवत तत्व—अनन्तचरणदास कृत-कटक १६४१ ई०
वृहत् क्रम सन्दर्भ—

गुजराती

१- श्रीरमाशंकर मोहनजी भट्टकी टीका
२. श्रीकृष्ण शंकर शास्त्रीकी टीका

मराठी

१- श्री गंगाधर कृत
२- ज्योतिपंत कृत
३- रमावल्लभदास कृत
४- शिवकल्याण कृत
५- लोलंबिराज कृत (केवल दशम स्कन्ध)
६- एकनाथी भागवत
७- एकादश स्कन्धकी टीका एकनाथजी
८- ,, ,, ,, ,, ज्ञानेश्वर
६- एकादश टीका
१०- चतु: श्लोकी भागवत चन्द्र भट

महानुभाव सम्प्रदायके कवियोंकी कृति

११- रुक्मिणी स्वयंवर नरेन्द्र (ओवी छन्द)
१२- शिशुपालवध भास्कर
१३- दशम स्कन्ध पर भैरवी टीक—बहिरा जातवेद ३०-४० हजार ओवी छन्दोंमें।

वारकरी-सम्प्रदाय

१४- द्वितीय स्कन्ध ६ अध्यायों पर श्री एकनाथ १ हजार ओवी छन्द
१५- एकादश स्कन्ध पर २० हजार ,, ओवी छन्द।
१६- दशम स्कन्ध पर १ लाख ओवी छन्द शिवकल्याण

१७- श्लोंक वद्ध भागवत प्रकरण वामन पंडित

१८- हरिवरदा—दशमस्कन्ध पर ४२ हजार ओवी छन्द श्रीकृष्णदयार्णव

१९- हरिविजय श्रीधरनाझरेकर

२०- मंन्त्र भागवत (३५९२ पद) मोरोपंत

२१- कृष्ण विजय (३६६९ पद) ,,

भागवती प्रकरण ,,

२२- महाभागवत (सम्पूर्ण भागवत पर टीका) ज्योति पंत-दादा।

२३- सार्थ श्रीमद्भागवत–११ भागोंमें–दामोदर सावल्हाण आणिमंडली

२४- श्रीमद्भागवतादर्श–४ व्यकोल हट करका का विवेचन

२५- श्रींमद्भागवत (मराठी-अंग्रेजी अनुवाद) आर. के. शास्त्री।

२६- श्रीमद्भागवत (प्रस्तावना अंग्रेजीमें)

२७- प्रकाश (भागवतकी टीका) पुरुषोत्तम महाराज

२८- भागवत टीका श्री पंदे

अंग्रेजी अनुवाद

श्रीमद्भागवत—महेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय कृतानुवाद शशिमोहन प्रकाशित कलि. १८९५ ई०

श्रीमद्भागवत—अंग्रेजी अनुवाद एम एन. दत्त कलिकाता १९०१ ई०

,, अंग्रेजी अनु० मि. एल. पानसीकार मुंबई १९२० ई०

,, ,, स्वामी विद्यानन्द इलाहाबाद १९२१ ई०

,, ,, एम. सूब्बाराव तिरुपति १९२८ ई०

,, ,, इंदराजीते अनु० जे एम. सान्याल (असम्पूर्ण) दमदम १९३०-३६ ई०

श्रीमद्भागवत संल्लाप—विभिन्न सं० मूल अंग्रेजी अनुवाद सह

श्रीमद् भक्ति प्रदीपतीर्थ महाराज सम्पादित गौडीय मठ कलिकाता १९५२ ई०

भागवतके अनुवाद

भागवतके ज्ञानके लिए भारतके कोने-कोनेसे भक्तोंकी आवाज गूंज रही थी। फलतः प्रत्येक भाषामें इसके अनुवाद हुए।

देशकी आधुनिक भाषाओंका विकास ९वीं शताब्दीके पश्चात् है। १

१. ब्रजभाषामें - श्रीवल्लभाचार्यके वंशजोंने भागवतानुसारी साहित्य सृजन किया। सूर सागरका उल्लेखनीय स्थान है।

२. तेलगु भाषामें—मडिकिंसिगलने १४ वीं शताब्दीमें दशम स्कन्धका अनुवाद किया।

३. तमिल—में आलवार साहित्य भागवतसे अनुप्राणित है।

४ मलयालम—में रसपूर्ण कृष्ण सम्बन्धी रचनाएंकी गयीं। एलतुच्छनका भागवतम् आज भी जनताका हृदयहार बना हुआ है।

५ कन्नड—में वेंकटदासने दशमका अनुवाद किया। विट्ठनाथने कन्नडमें १६वीं शताव्दीके पूर्वार्द्धमें भागवतका अनुवाद किया।

६. मराठी—कवीश्वर भास्करका एकादश स्कन्ध प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। ज्ञानेश्वरके अभंगोंमें भागवतका प्रभाव स्पष्ट है।

१५वीं शताब्दीमें एकनाथने चतुःश्लोकीसे ही अपना साहित्य प्रारम्भ किया। ज्योतिपंत दादाने-सम्पूर्ण भागवतकी टीकाकी।

१६५६ शाकेमें कृष्ण दयार्णव कविने टीका की। श्रीधर स्वामी तथा मारोपंतकी अधिकांश रचनाओंका आधार भी भागवत है।

---

१ भागवत दर्शन—हरवंशलाल–भारत प्रकाशन, अलीगढ

श्रीब्रजराजकुमार
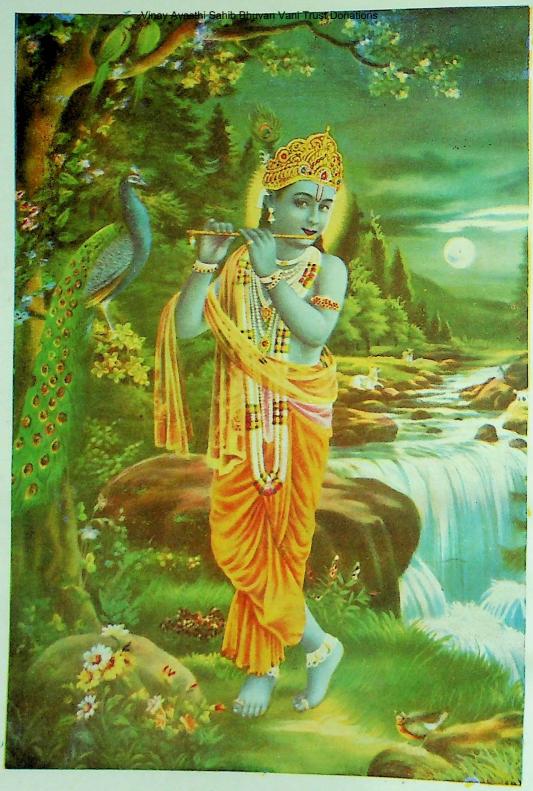
गुजराती—में नरसिंह मेहता-वीरसिंह-केशवदेव-लक्ष्मी-दास आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रेमानन्द (गुजरातके सूर) का दशम स्कन्धकी रचना प्रसिद्ध है।

बंगाली—में राधाको मान्यता मिली-१५वीं शताब्दीका मालाधार वसुका भागवतानुवाद प्रसिद्ध है। १६वीं शताब्दीमें-माधवाचार्य रघुनाथ पण्डित, श्यामदास आदिने अनुवाद किये।

असमियां—भाषामें भागवतका पदोंमें अनुवाद है। बड़मीत भागवतसे ही प्रभावित है। अनन्त कंदलीने-भागवतके कई स्कन्धोंका अनुवाद किया। तथा भट्टदेव, केशवशरण, गोपाल-शरण आदिके नाम भी अनुवादकोंमें प्रसिद्ध हैं।

उड़िया—जगन्नाथदासने उड़िया भागवत लिखी।

—:o:—

श्रीमद्भागवत-स्तुति-संकलन

सूर्य-उपासना	५।२०।५	देवोंकृत देवकी गर्भ स्तुति	१०।२।२६-४१
चन्द्र उपासना	५।२०।१२	वसुदेवकृत श्रीकृष्ण स्तुति	१०।३।१३-२२
अग्निस्वरूप श्रीहरिकी उपासना	५।२०।१७	देवकीकृत "	१०।३।२४-३१
आपोदेवताकी उपासना	५।२०।२३	यमलार्जुनकृत श्रीकृष्णस्तुति	१०।१०।२९-३८
वायुरूप श्रीहरिकी उपासना	५।२०।२८	ब्रह्माकृत "	१०।१४।१-४०
ब्रह्मरूप श्रीहरिकी उपासना	५।२०।३३	नागपत्नीकृत "	१०।१६।३३-५३
दक्षप्रजापतिकृत श्री विष्णुस्तुति	६।४।२३-३४	कालियकृत "	१०।१६।५६-५९
देवोंकृत श्रीविष्णुस्तुति	६।९।२१-२७	दावानल पीड़ित गोपादिकृत	
" " (गद्य)	६।९।३१-४५	श्रीकृष्णस्तुति	१०।१९।९,१०
वृत्रासुरकृत भगवत्स्तुति	६।११।२४-२७	इन्द्रकृत "	१०।२७।४-१३
चित्रकेतुकृत शेष भगवान् स्तुति	६।१६।३४-३८	वरुणकृत "	१०।२८।५-८
हिरण्यकशिपुकृत ब्रह्मास्तुति	७।३।२६-३४	गोपी गीत	१०।३१।१-१९
ब्रह्मादिकृत श्रीनृसिंहस्तुति	७।८।४०-५६	नारदकृत श्रीकृष्णस्तुति	१०।३७।११-२४
प्रह्लादकृत "	७।९।८-५०	अक्रूरकृत "	१०।४०।१-३०
ब्रह्माकृत श्रीनृसिंहस्तुति	७।१०।२६-२९	उद्धवकृत गोपी स्तुति	१०।४७।५८-६३
मनुकृत श्रीविष्णुस्तुति	८।१।९-१६	अक्रूरकृत श्रीकृष्ण-बलराम स्तुति	१०।४८।१७-२७
गजेन्द्रकृत भगवत्स्तुति	८।३।२-२९	कुन्तीकृत श्रीकृष्ण स्तुति	१०।४९।११-१३
ब्रह्माकृत विष्णुस्तुति	८।५।२६-५०	मुचकुन्दकृत "	१०।५१।४६-५८
" "	८।६।८-१५	जाम्बवन्तकृत श्रीकृष्ण स्तुति	१०।५६।२६-२८
प्रजापतिकृत शिवस्तुति	८।७।२१-३५	भूमिकृत श्रीकृष्णस्तुति	१०।५९।२५-३१
महादेवकृत मोहिनी रूप दर्शन प्रार्थना	८।१२।४-१३	माहेश्वरज्वरकृत "	१०।६३।२५-२८
श्रीशुककृत भगवत्-नमस्कार	८।१२।४७	श्रीरुद्रकृत "	१०।६३।३४-४५
अदितिकृत विष्णुस्तुति	८।१७।८-१०	राजानृगकृत "	१०।६४।२६-२९
ब्रह्माकृत अदिति गर्भ स्तुति	८।१७।२५-२८	यमुनाकृत श्रीबलरामस्तुति	१०।६५।२६-२७
बलिकृत श्रीवामनस्तुति	८।२२।२-११	हस्तिनापुरवासीकृत "	१०।६८।४४-४६
प्रह्लादकृत "	८।२२।१६-१७	नारदकृत श्रीकृष्णस्तुति	१०।६९।१७-१८
विन्ध्यावलीकृत "	८।२२।२०	जरासन्धके वन्दी राजाओंकीस्तुति	१०।७०।२५-३०
ब्रह्माकृत "	८।२२।२१-२३	जरासन्धके कारागारमुक्त	
बलिकृत "	८।२३।२	राजागणकृत श्रीकृष्णस्तुति	१०।७३।८-१६
प्रह्लादकृत "	८।२३।६-८	युधिष्ठिरकृत "	१०।७४।२-५
राजासत्यव्रतकृत मत्स्यस्तुति	८।२४।४६-५३	मुनिगणकृत "	१०।८४।१६-२६
अम्बरीषकृत सुदर्शन चक्र स्तुति	९।५।३-११	वसुदेवकृत "	१०।८५।३-२०
अंशुमानकृत कपिलमुनि स्तुति	९।८।२२-२७	देवकीकृत "	१०।८५।२९-३३
समुद्रकृत श्रीरामस्तुति	९।१०।१४-१५	बलिकृत श्रीकृष्ण-बलराम स्तुति	१०।८५।३९-४६
श्रीशुककृत श्रीरामस्तुति	९।११।२०-२१	राजाबहुलाश्वकृत श्रीकृष्णस्तुति	१०।८६।३१-३६

श्रीमद्भागततमें पञ्च प्रेम गीत

श्रीमद्भागवतके अन्य गीत

गीतलक्षण—धातुमातु समायुक्तं गीतमित्युच्यते बुधैः।
तत्र नादात्मको धातुर्मातुरक्षर सञ्चय॥
गीयतेऽइति गीत—गै गाने धातोर्भावेक्तः प्रत्ययः
गीतं द्विविधं प्रोक्तं यन्त्र गायत्र विभागतः।
यन्त्रं स्याद् वेणुवीणादि गात्रन्तु मुखजं स्मृतम्॥

श्रीमद्भागवतमें गीता

गीतालक्षण—गीयते स्म-इति गीता—

आत्मविद्योपदेशात्मिका-ब्रह्मतत्वोपदेशमयी कथा यत्र सा गीता भवति—

पञ्चाध्यायी

अष्टाध्यायी

श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि तथा विनियोग, न्यास एवं ध्यान

प्रातःकाल स्नानके पश्चात् अपना नित्य नियम समाप्त करके पहले भगवत्सम्बन्धी स्तोत्रों एवं पदोंके द्वारा मङ्गलाचरण और वन्दना करे। इसके बाद आचमन और प्राणायाम करके—

ॐ भद्रं, कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

—इत्यादि मन्त्रोंसे शान्तिपाठ करे। इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीव्यासजी, शुकदेवजी तथा श्रीमद्भागवत ग्रन्थकी षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। यहाँ श्रीमद्भागवत पुस्तकके षोडशोपचार पूजनकी मन्त्रसहित विधि दी जा रही है; इसीके अनुसार श्रीकृष्ण आदिकी भी पूजा करनी चाहिये। निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर पूजनके लिये संकल्प करना चाहिये। संकल्पके समय दाहिने हाथकी अनामिका अङ्गुलिमें कुशकी पवित्री पहने और हाथमें जल लिये रहे। संकल्पवाक्य इस प्रकार है—

ॐ तत्सत् । ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः । ओमद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यस्थाने कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकयोगवारांशकलग्नमुहूर्तकरणान्वितायां शुभपुण्यतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुकशर्मणः (वर्मणः गुप्तस्य वा) मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य श्रीगोवर्धनधरणचरणारविन्दप्रसादात् सर्वसमृद्धिप्राप्त्यर्थं भगवदनुग्रहपूर्वकभगवदीयप्रेमोपलब्धये च श्रीभगवन्नामात्मकभगवत्स्वरूपश्रीभागवतस्य पाठेऽधिकारसिद्ध्यर्थं श्रीमद्भागवतस्य प्रतिष्ठां पूजनं चाहं करिष्ये ।

इस प्रकार संकल्प करके—

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने
शंयोऽस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां
नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ *

—यह मन्त्र पढ़कर श्रीमद्भागवतकी सिंहासन या अन्य किसी आसनपर स्थापना करे। तत्पश्चात् पुरुषसूक्तके एक-एक मन्त्रद्वारा क्रमशः षोडश उपचार अर्पण करते हुए पूजन करे।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

---

* परमात्मन् ! आप सबके मित्र—हितकारी होनेके कारण 'मित्र' नामसे पुकारे जाते हैं, सबसे वर—श्रेष्ठ होनेसे आप वरुण हैं, सबको ग्रहण करनेवाले होनेके कारण अग्नि हैं। हम आपको इन 'मित्र', 'वरुण' एवं 'अग्नि' नामोंसे सम्बोधित करके प्रार्थना करते हैं कि यह सूक्त (आपके सुयशसे पूर्ण यह श्रीमद्भागवतरूप सुन्दर उक्ति) अत्यन्त प्रशस्त हो—सर्वोत्तम होनेके साथ ही इसकी ख्याति एवं प्रसार हो। तथा यह सूक्त हमलोगोंके लिये ऐसा सुख, ऐसी शान्ति प्रदान करे, जिसमें दुःख या अशान्तिका मेल न हो; अर्थात् इससे नित्य सुख, नित्य शान्ति प्राप्त हो। हम चाहते हैं अविचल स्थिति, हम चाहते हैं शाश्वत प्रतिष्ठा; इसे इस सूक्तके द्वारा हम प्राप्त कर सकें। देवदेव ! यह जो आपका अत्यन्त प्रकाशमान परम महान् समस्त लोकोंका आश्रयभूत 'सूर्य' नामक स्वरूप है, इसे हम सदा ही नमस्कार करते हैं।

१—सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्माण्डकी भूमिको सब ओरसे व्याप्त करके स्थित हैं और इससे दस अंगुल ऊपर भी हैं। अर्थात् ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए वे इससे परे भी हैं। उन परमात्माके मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और चरण आदि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं—असंख्य हैं।

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। आवाहयामि।

—इस मन्त्रसे भगवान्‌के नामस्वरूप श्रीमद्भागवतको नमस्कार करके आवाहन करे।

ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। आसनं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे आसन समर्पण करे।

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। पाद्यं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे पैर पखारनेके लिये जल समर्पण करे।

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। अर्घ्यं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे अर्घ निवेदन करे।

ॐ तस्माद् विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। आचमनीयं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे आचमनके लिये जल या गङ्गाजल अर्पण करे।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

२—यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्माका ही स्वरूप है; भूत और भविष्य जगत् भी परमात्मा ही है। इतना ही नहीं, वह परमात्मा मुक्तिका स्वामी है; तथा ये जो अन्नसे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं, उन सबका भी शासक—सबको नियमके अन्दर रखनेवाला वह परमात्मा ही है।

३—भूत, भविष्य और वर्तमान कालसे सम्बन्ध रखनेवाला जितना भी जगत् है—यह सब इस पुरुषकी महिमा है, इस परमात्माका विभूति-विस्तार है। उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्डमय विराट् स्वरूपसे भी बहुत बड़ा है। यह सारा विश्व—ये तीनों लोक तो उसके एक पादमें हैं, उसकी एक चौथाईमें समाप्त हो जाते हैं। अभी उसके तीन पाद और शेष हैं; यह त्रिपादस्वरूप अमृत है—अविनाशी है और परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूप में ही स्थित है।

४—वह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात् वह परमात्मा अज्ञानके कार्यभूत इस संसारसे पृथक् तथा यहाँके गुण-दोषोंसे अछूता रहकर ऊँची स्थितिमें विराजमान है। उसका एक अंशमात्र मायाके सम्पर्कमें आकर यहाँ जगत्‌के रूपमें उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जड़-चेतनमयी नाना प्रकारकी सृष्टिके रूपमें स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया।

५—उस आदिपुरुष परमात्मासे विराट्‌की उत्पत्ति हुई—यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। इस ब्रह्माण्डके ऊपर इसका अभिमानी एक पुरुष प्रकट हुआ। तात्पर्य यह कि परमात्मा अपनी मायासे विराट् ब्रह्माण्डकी रचना कर स्वयं ही उसमें जीवरूपसे प्रवेश किया। वही जीव ब्रह्माण्डका अभिमानी देवता (हिरण्यगर्भ) हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होकर वह विराट्पुरुष पुनः देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदि अनेकों रूपोंमें प्रकट हुआ। इसके बाद उसने भूमिको उत्पन्न किया, फिर जीवोंके शरीरों की रचना की

६—उस समय देवताओंने यज्ञ करना चाहा, परन्तु यज्ञ की कोई सामग्री उपलब्ध न हुई; तब उन्होंने पुरुषके स्वरूपमें

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। स्नानीयं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे स्नानके लिये जल अर्पण करे।

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। वस्त्रं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे वस्त्र समर्पण करे।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥८॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत अर्पण करे।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। चन्दनं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे चन्दन चढ़ाये।

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। पुष्पं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये।

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का उरू पादा उच्येते ॥११॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। धूपमाघ्रापयामि।

—इस मन्त्रसे धूप सुँघाये।

ही हविष्यकी भावना की। जब पुरुषरूप हविष्यसे ही देवताओंने यज्ञका विस्तार किया, उस समय उनके सङ्कल्पानुसार बसन्तऋतु घी हुई, ग्रीष्मऋतुने समिधाका काम दिया और शरदृऋतुसे विशेष प्रकारके चरु-पुरोडाशादि हविष्यकी आवश्यकता पूर्ण हुई।

७—सबसे पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उस समय यज्ञका साधन था, देवताओंने उसे सङ्कल्पद्वारा यूपमें बँधा हुआ पशु माना और उस मानसिक यज्ञमें उस सङ्कल्पित पशुका भावनाद्वारा ही प्रोक्षण आदि संस्कार भी किया। इस प्रकार संस्कार किये हुए उस पुरुषरूपी पशुके द्वारा देवताओं, साध्यों और ऋषियोंने उस मानसिक यज्ञको पूर्ण किया।

८—जिसमें सब कुछ हवन किया गया, उस पुरुषरूप यज्ञसे दही-घी आदि सामग्री सम्पन्न हुई। पुरुषने वनमें उत्पन्न होनेवाले हिरन आदि और गाँवोंमें होनेवाले गाय, घोड़े आदि वायुदेवतासम्बन्धी प्रसिद्ध पशुओंको भी उत्पन्न किया।

९—जिसमें सब कुछ हवन किया गया, उस यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद और सामवेद प्रकट हुए, उसीसे गायत्री आदि छन्दोंकी भी उत्पत्ति हुई तथा उसीसे यजुर्वेदका भी प्रादुर्भाव हुआ।

१०—उस यज्ञपुरुषसे ही घोड़े उत्पन्न हुए; इनके अतिरिक्त भी जो नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँत रखनेवाले खच्चर-गदहे आदि प्राणी हैं, वे भी उत्पन्न हुए। उसीसे गौएँ उत्पन्न हुईं और उसीसे भेड़ों तथा बकरोंकी उत्पत्ति हुई।

११—जब प्राणमय देवताओंने इस यज्ञपुरुष (प्रजापति) को प्रकट किया, उस समय इसके अवयवोंके रूपमें कितने विभाग किये? इस पुरुषका मुँह क्या था, दोनों बाँहें क्या थीं? दोनों जाँघें और दोनों पैर कौन थे?

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । दीपं दर्शयामि ।

—इस मन्त्रसे घीका दीप जलाकर दिखाये और उसके बाद हाथ धोले ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥१३॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । नैवेद्यं निवेदयामि ।

—इस मन्त्रसे नैवेद्य अर्पण करे ।

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् । तथा लोकाँ अकल्पयन् १४

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । एलालवङ्गपूगीफलकर्पूरसहितं ताम्बूलं समर्पयामि ।

इस मन्त्रसे पानका बीड़ा अर्पण करे ।

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । दक्षिणां समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे दक्षिणा समर्पण करे ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसस्तु पारे ।
सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो
नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते ॥१६॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । नमस्करोमि ।

—इस मन्त्रसे नमस्कार करे ।

धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार
शक्रः प्रविद्वान् प्रदिशश्चतस्रः ।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति
नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥१७॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा करे ।

१२—ब्राह्मण इसका मुख था, अर्थात् मुखसे ब्राह्मणकी उत्पत्ति हुई । दोनों भुजाएँ क्षत्रिय-जाति थीं, अर्थात् उनसे क्षत्रियोंका प्राकट्य हुआ । इस पुरुषकी दोनों जंघाएँ वैश्य हुईं—जँघाओंसे वैश्य जातिकी उत्पत्ति हुई और दोनों पैरोंसे शूद्र-जाति प्रकट हुई ।

१३—इसके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रोंसे सूर्यकी उत्पत्ति हुई । मुखसे इन्द्र और अग्नि प्रकट हुए तथा प्राणसे वायुका प्रादुर्भाव हुआ ।

१४—नाभिसे अन्तरिक्ष लोककी उत्पत्ति हुई, मस्तकसे स्वर्गलोक प्रकट हुआ, पैरोंसे पृथ्वी हुई और कानसे दिशाएँ प्रकट हुईं । इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकोंकी कल्पना की ।

१५—प्रजापतिके प्राणरूपी देवताओंने जब मानसिक यज्ञका अनुष्ठान करते समय सङ्कल्पद्वारा पुरुषरूपी पशुका बन्धन किया था, उस समय सात समुद्र इस यज्ञकी परिधि थे और इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी समिधा हुई । (गायत्री आदि ७, अतिजगती आदि ७ और कृत आदि ७—ये ही इक्कीस छन्द हैं) ।

१६—धीर पुरुष समग्र रूपोंको परमात्माके ही स्वरूप विचार कर, उनके भिन्न-भिन्न नाम रखकर जिस एक तत्त्वका ही उच्चारण और अभिवन्दन करता रहता है, उसको ज्ञानी पुरुष इस प्रकार जानते हैं—अविद्यारूपी अन्धकारसे परे आदित्यके समान स्वप्रकाश इस महान् पुरुषको मैं अपने 'आत्मा' रूपसे जानता हूँ ।

१७—ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिसका स्तवन किया था, इन्द्रने सब दिशा-विदिशाओंमें जिसे व्याप्त जाना था, उस परमात्माको जो इस प्रकार जानता है, वह इस जीवनमें ही अमृत (मुक्त) हो जाता है । मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्तिके लिये इसके सिवा दूसरा मार्ग नहीं है ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१८॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । मन्त्रपुष्पं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे मन्त्रपाठपूर्वक पुष्पाञ्जलि अर्पण करे ।

प्रार्थना

वन्दे श्रीकृष्णदेवं मुरनरकभिदं वेदवेदान्तवेद्यं
लोके भक्तिप्रसिद्धं यदुकुलजलधौ प्रादुरासीदपारे ।
यस्यासीद् रूपमेवं त्रिभुवनतरणे भक्तिवच्च स्वतन्त्रं
शास्त्रं रूपं च लोके प्रकटयति मुदायः स नो भूतिहेतुः॥

जो इस जगत्‌में भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं, जिनका तत्त्व वेद और वेदान्तके द्वारा ही जानने योग्य है, जो अपार यादवरूपी समुद्रमें प्रकट हुए थे, मुर और नरकासुरको मारनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं सादर सप्रेम प्रणाम करता हूँ । जो इस संसारमें अपने स्वरूप तथा शास्त्रको प्रसन्नतापूर्वक प्रकट किया करते हैं तथा सचमुच ही जिनका स्वरूप इस त्रिभुवनको तारनेके लिये भक्तिके समान स्वतन्त्र नौकारूप है, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंका कल्याण करें ।

नमः कृष्णपदाब्जाय भक्ताभीष्टप्रदायिने ।
आरक्तं रोचयेच्छश्वन्मामके हृदयाम्बुजे ॥

कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए श्रीकृष्णका जो चरण-कमल मेरे हृदयकमलमें सदा दिव्य प्रकाश फैलाता रहता है और भक्तजनोंकी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण किया करता है, उसे मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ।

श्रीभागवतरूपं तत् पूजयेद् भक्तिपूर्वकम् ।
अर्चकायाखिलान् कामान् प्रयच्छति न संशयः ॥

श्रीमद्भागवत भगवान्‌का स्वरूप है, इसका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए । यह पूजन करनेवालेकी सारी कामनाएँ पूर्ण करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।

विनियोग

दाहिने हाथकी अनामिकामें कुशकी पवित्री पहन ले । फिर हाथमें जल लेकर नीचे लिखे वाक्यको पढ़कर भूमिपर गिरा दे—

ॐ अस्य श्रीमद्भागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः । बृहती छन्दः । श्रीकृष्णः परमात्मा देवता । ब्रह्म बीजम् । भक्तिः शक्तिः । ज्ञानवैराग्ये कीलकम् । मम श्रीमद्भागवतप्रसादसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः ।

'इस श्रीमद्भागवतस्तोत्र-मन्त्रके देवर्षि नारदजी ऋषि हैं, बृहती छन्द है, परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र देवता हैं, ब्रह्म बीज है, भक्ति शक्ति है, ज्ञान और वैराग्य कीलक हैं । अपने ऊपर भगवान्‌की प्रसन्नता हो, उनकी कृपा बराबर बनी रहे—इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पाठ करनेमें इस भागवतका विनियोग (उपयोग) किया जाता है ।'

न्यास

विनियोगमें आये हुए ऋषि आदिका तथा प्रधान देवताके मन्त्राक्षरोंका अपने शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें जो स्थापन किया जाता है, उसे 'न्यास' कहते हैं । मन्त्रका एक-एक अक्षर चिन्मय होता है, उसे मूर्तिमान् देवताके रूपमें देखना चाहिए । इन अक्षरोंके स्थापनसे साधक

१८—देवताओंने पूर्वोक्त मानसिक यज्ञके द्वारा यज्ञस्वरूप पुरुष—प्रजापतिकी आराधना की । इस आराधनासे समस्त जगत्‌को धारण करनेवाले वे पृथ्वी आदि मुख्य भूत प्रकट हुए । इस यज्ञकी उपासना करनेवाले महात्मालोग उस स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, जहाँ प्राचीन साध्यदेवता निवास करते हैं ।

परमध्येय नारायण

स्वयं मन्त्रमय हो जाता है, उसके हृदयमें दिव्य चेतनाका प्रकाश फैलता है, मन्त्रके देवता उसके स्वरूप होकर उसकी सर्वथा रक्षा करते हैं। इस प्रकार वह 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' इस श्रुतिके अनुसार स्वयं देवस्वरूप होकर देवताओंका पूजन करता है। ऋषि आदिका न्यास सिर आदि कतिपय अङ्गोंमें होता है। मन्त्रपदों अथवा अक्षरोंका न्यास प्रायः हाथकी अँगुलियों और हृदयादि अङ्गोंमें होता है। इन्हें क्रमशः 'करन्यास' और 'अङ्गन्यास' कहते हैं, किन्हीं-किन्हीं मन्त्रोंका न्यास सर्वाङ्गमें होता है। न्याससे बाहर-भीतरकी शुद्धि, दिव्य बलकी प्राप्ति और साधनाकी निर्विघ्न पूर्ति होती है। यहां क्रमशः ऋष्यादिन्यास, करन्यास और अङ्गन्यास दिये जा रहे हैं—

ऋष्यादिन्यास

नारदर्षये नमः शिरसि ॥ १ ॥ बृहतीच्छन्दसे नमो मुखे ॥ ॥ श्रीकृष्णपरमात्मादेवतायै नमो हृदये ॥ ३ ॥ ब्रह्मबीजाय नमो गुह्ये ॥ ४ ॥ भक्तिशक्तये नमः पादयोः ॥ ५ ॥ ज्ञानवैराग्यकीलकाय नमो नाभौ ॥ ६ ॥ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ॥ ७ ॥

ऊपर न्यासके सात वाक्य उद्धृत किये गये हैं। इनमें पहला वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे सिरका स्पर्श करे. दूसरा वाक्य पढ़कर मुखका, तीसरे वाक्यसे हृदयका, चौथेसे गुदाका, पांचवेंसे दोनों पैरोंका, छठेसे नाभिका और सातवें वाक्यसे सम्पूर्ण अङ्गोंका स्पर्श करना चाहिए।

करन्यास

इसमें 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर-मन्त्रके एक-एक अक्षरको प्रणवसे सम्पुटित करके दोनों हाथोंकी अंगुलियोंमें स्थापित करना है। मन्त्र नीचे दिये जा रहे हैं—

'ॐ ॐ ॐ नमो दक्षिणतर्जन्याम् ऐसा उच्चारण कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी तर्जनीका स्पर्श करे। ॐ नं ॐ नमो दक्षिणमध्यमायाम्—यह उच्चारण कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी मध्यमा अंगुलिका स्पष्ट करे। ॐ मों ॐ नमो दक्षिणानामिकायाम्—यह पढ़कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी अनामिका अंगुलिका स्पर्श करे। ॐ भं ॐ नमो दक्षिणकनिष्ठिकायाम्—इससे दाहिने हाथके अंगूठेसे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका अंगुलिका स्पर्श करे। ॐ गं ॐ नमो वामकनिष्ठाकायाम्—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी कनिष्ठिका अंगुलिका स्पर्श करे, ॐ वं ॐ नमो वामनामिकायाम्—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी अनामिका अंगुलिका स्पर्श करे। ॐ तें ॐ नमो वाममध्यमायाम्—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी मध्यमा अंगुलिका स्पर्श करे। ॐ वां ॐ नमो वामतर्जन्याम्—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी तर्जनी अंगुलिका स्पर्श करे। ॐ सुं ॐ नमः ॐ दें ॐ नमो दक्षिणाङ्गुष्ठपर्वणोः—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी तर्जनी अंगुलिसे दाहिने हाथके अंगूठेकी दोनों गाँठोंका स्पर्श करे। ॐ वां ॐ नमः ॐ यं ॐ नमो वामाङ्गुष्ठपर्वणोः—इसका उच्चारण कर बायें हाथकी तर्जनी अंगुलिसे बायें हाथके अँगूठेकी दोनों गाठोंका स्पर्श करे।

अङ्गन्यास

यहाँ द्वादशाक्षर मन्त्रके पदोंका हृदयादि अङ्गोंमें न्यास करना है—

ॐ नमो नमो हृदयाय नमः—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी पाँचों अंगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। ॐ भगवते नमः शिरसे स्वाहा—इसका उच्चारण कर दाहिने हाथकी सभी अंगुलियोंसे सिरका स्पर्श करे। ॐ वासुदेवाय नमः शिखायै वषट्—इसके द्वारा दाहिने हाथसे शिखाका स्पर्श करे। ॐ नमो नमः कवचाय हुम्—इसको पढ़कर दायें हाथकी अंगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अंगुलियोंसे दायें कंधेका स्पर्श करे। ॐ भगवते नमः नेत्रत्रयाय वौषट्—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी अंगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागमें गुप्तरूपसे स्थित

तृतीय नेत्र (ज्ञानचक्षु) का स्पर्श करे। ॐ वासुदेवाय नमः अस्त्राय फट्—इसका उच्चारण कर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे उल्टा अर्थात् बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये।

अङ्गन्यासमें आये हुए 'स्वाहा', 'वषट्', 'हुं', 'वौषट्' और 'फट्'—ये पाँच शब्द देवताओंके उद्देश्यसे किये जानेवाले हवनसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। यहाँ इनका आत्मशुद्धिके लिये ही उच्चारण किया जाता है।

ध्यान

इस प्रकार न्यास करके बाहर-भीतरसे शुद्ध हो, मनको सब ओरसे हटाकर एकाग्र भावसे भगवान्‌का ध्यान करे—

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
मंण्युत्तमालंकृतसर्वगात्रम् ।
पीताम्बरं काञ्चनचित्रनद्ध-
मालाधरं केशवमभ्युपैमि ॥

जिनके मस्तकपर किरीट, बाहुओंमें भुजबंध और गलेमें सुन्दर हार शोभा पा रहे हैं, मणियोंके सुन्दर गहनोंसे सारे अंग सुशोभित हो रहे हैं और शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा है—सोनेके तारद्वारा विचित्र रीतिसे बँधी हुई वनमाला धारण किये, उन भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।

('कल्याणके 'श्रीमद्भागवताङ्क' से)

श्रीमद्भागवतकी अनुष्ठान-बिधि

(संग्रहकर्ता—वेदरत्न पं० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र, वेद- धर्मशास्त्र-शास्त्री)

भागवत-महिमा

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतं पठेत् ।
यः पुमान् सोऽपि संसारान्मुच्यते किमुताखिलात् ॥

आधा श्लोक या चौथाई श्लोकका भी नित्यजो मनुष्य पाठ करता है, उसकी भी संसारसे मुक्ति हो जाती है; फिर सम्पूर्ण पाठ करनेवालेकी तो बात ही क्या है।

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्यद् भागवतमादरात् ।
नित्यं पठेद् यथाशक्ति यतः स्यात् संसृतिक्षयः ॥

बुद्धिमानोंकी बुद्धिमत्ता यही है कि संसार भयनाशक श्रीमद्भागवतका आदरपूर्वक यथाशक्ति पाठ करे।

अशक्तो नित्यपठने मासे वर्षेऽपि वैकदा ।
पालयन् नियमान् भक्त्या श्रीमद्भागवतं पठेत् ॥

यदि नित्य पाठ न कर सकता हो, तो महीने या वर्षमें एक बार नियमपूर्वक भक्तिसहित भागवतका पाठ अवश्य करना चाहिये।

एकाहे नैव शक्तस्तु द्व्यहेनाथ त्र्यहेण वा ।
पञ्चभिर्दिवसैः षड्भिः सप्तभिर्वा पठेत् पुमान् ॥
दशाहेनाथ पक्षेण मासेन ऋतुनापिवा ।
पठेद् भागवतं यस्तु भुक्ति मुक्ति स विन्दते ॥

जो एक दिनमें पाठ न कर सकता हो वह दो, तीन, पाँच, छः, सात, दस, पंद्रह, तीस, साठ दिनमें श्रीमद्भागवतका पाठ करे। इससे भोग एवं मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है।

एष अप्युत्तमः पक्षः सप्ताहो बुधसम्मतः।
श्रीवासुदेवप्रीत्यर्थं पठतः पुंस सादरात॥
सर्वे पक्षाः सन्ति तुल्या विशेषो नास्ति कञ्चन।
विशेषोऽस्ति सकामानां कामनाफलभेदतः॥

बहुत-से ऋषियोंने सप्ताहपारायणका भी उत्तम पक्ष माना है। केवल भगवान्‌की प्रीतिके लिये सम्पूर्ण पक्ष बराबर हैं। फल चाहनेवालोंके लिये फलभेदसे पारायणभेद कहा गया है।

भागवत पुरश्चरण

पारायणानां शतकं प्रोक्तमष्टोत्तरं नृप।
सामान्यतो मुनिवरः पुरश्चरणकर्मणि॥

'सामान्य पुरश्चरणके लिये ऋषियोंने १०८ पारायण का विधान किया है।' आगे पुरश्चरणमुहूर्त लेखविस्तारभयसे हिन्दीमें ही लिखा जाता है।

मास—पौषको छोड़कर सब महीने शुभ हैं।

तिथि—१, ४, ८, १४, को छोड़कर सब तिथियां।

वार—मङ्गल, शनिको छोड़कर सब वार।

ग्राह्यनक्षत्र—अश्विनी, रोहणी, मृगशिर, पुनर्वसु पुष्य, पूर्वा ३, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, अभिजित्, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती।

नीचे श्रीमद्भागवतके कामनाके अनुसार पृथक्-पृथक् प्रयोग लिखे गये हैं। ये प्रयोग हमें प्राचीन एवं प्रख्यात पौराणिक-वंशज, श्रीश्यामधाम खाटू (जयपुर) निवासी, वेद एवं पुराणके प्रकाण्ड पण्डित श्रीभगवत्-प्रसादमिश्रजी वेदाचार्य, प्रोफेसर गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारससे परिज्ञात हुए हैं।

(४१) सप्ताहपारायणके प्रयोग

बान्धवपीडानिवृत्ति और सङ्कटनाशके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ४, पारायण-संख्या १९६

विशेषनियम—प्रतिदिन पाठके आरम्भ एवं समाप्तिमें षष्ठ स्कन्धकी देवस्तुति (अ० ९ श्लो० ३.—४५) का पाठ करना चाहिये। पाठ विधि—

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	१० *	२६
२	४	३१ *	६४
३	६	१९ *	४५
४	८	२४ *	३६
५	१०	४९ ÷	७३
६	११	३१ *	७२
७	१२	१३ *	१३

(२) प्रारब्ध कार्यमें विघ्ननाशके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ९, पारायण-संख्या १४०

विशेष नियम-प्रतिदिन चतुर्थ स्कन्धके उन्नीसवें अध्याय (पृथुविजय) का पाठ, पाठके आरम्भ एवं समाप्तिमें करना चाहिये।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१९	४८
२	५	६	५१
३	७	१०	४९
४	९	२४ *	५३
५	१०	४९ ÷	४९
६	१०	९० *	४१
७	१२	१३ *	४४

(३) कैदसे छुड़ानेके लिये

* यह चिह्न स्कन्ध की समाप्ति और ÷ यह चिह्न दशम स्कन्धके पूर्वार्धकी समाप्तिका है।

पाठकर्ता ब्राह्मण ७, पारायण-संख्या १४३

विशेष नियम—प्रतिदिन पाठके आरम्भ एवं अन्तमें दशम स्कन्धके १० । २६; १६ । ६; २५ । १३; २७ । १६; ४६ । ११ और ७० । २५—इन ६ श्लोकोंका पाठ करना चाहिये ।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	३ *	६२
२	५	१६ *	५७
३	७	१५ *	३४
४	६	२४ *	४८
५	१०	६० *	६०
६	११	३१ *	३१
७	१२	१३ *	१३

(४) शत्रुपराजयके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ६, पारायण-संख्या १६४

विशेष नियम—प्रतिदिन पाठके प्रारम्भ एवं समाप्तिमें अष्टम स्कन्धके 'यज्ञ एष यज्ञपुरुष' (अ० १७ श्लोक ८) आदि ३ श्लोकों पाठ करे ।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१६	४८
२	५	१५	६०
३	७	१५ *	४५
४	१०	१२	६०
५	१०	८४	७२
६	११	३१ *	३७
७	१२	१३ *	१३

(५) रोगमुक्तिके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ३, पारायण-संख्या १५७

विशेष नियम—प्रतिदिन प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें पञ्चम स्कन्धके नारसिंह मन्त्र (अ० १८ श्लोक ८) का पाठ करे ।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४६
२	५	६	५०
३	६	१६ *	३६
४	६	२०	५६
५	१०	३५	३६
६	१०	८५	५०
७	१२	१३ *	४६

(६) पुत्र और स्त्रीप्राप्तिके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ५, पारायण-संख्या १४५

विशेष नियम—प्रतिदिन प्रत्येक अध्यायके आरम्भ एवं अन्तमें पञ्चम स्कन्धके काममन्त्र (अ० १८ श्लोक १८)-का पाठ करे ।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२४	५३
२	५	३	४३
३	७	८	५०
४	१०	४	५०
५	१०	५५	५१
६	११	६	४१
७	१२	१३ *	३८

(७) निष्कण्टक राज्यके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण १०, पारायण-संख्या १९८

विशेष नियम—प्रतिदिन पाठके आरम्भ में एवं समाप्तिमें चतुर्थ स्कन्धकी ध्रुवस्तुति (अ० ९) का पाठ करे ।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	९	७१
२	६	१३	६१
३	९	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	७३	३९
६	१०	९० *	१७
७	१२	१३ *	४४

(८) निष्काम पारायण

पाठकर्ता ब्राह्मण १या५. पारायण-संख्या१००या१०८

विशेष नियम—करानेवाला फलाहार या हविष्य-भोजन करे।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४६
२	५	२३	६७
३	७	१५ *	३७
४	९	२४	४८
५	१०	१२	१२
६	१०	८२	७०
७	१२	१३ *	५२

(९) षडहपारायण

धनलाभ, कृत्यानाश,उत्पातशान्तिके लिए

पाठकर्ता ब्राह्मण ४, परायण-संख्या १४४

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	३२	६१
२	५	१४	४६
३	८	२४ *	७०
४	१०	४९ ÷	७३
५	११	२९	७०
६	१२	१३ *	१५

(१०) पञ्चाहपारायण

सकलकामनाप्राप्तिके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ९, पारायण-संख्या २४२

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	७	९९
२	६	१९ *	९९
३	९	२४ *	६३
४	१०	९९	९९
५	१२	१३ *	६५

(११) त्र्यहपारायण

संसार-बन्धन-मुक्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	७	१५ *	१५३
२	१०	९० *	१३८
३	१२	१३ *	४४

(१२) द्व्यहपारायण

पराभक्ति-प्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	९	१३	१९०
२	१२	१३ *	१४५

(१३) एकाहपारायण

हरिप्रेमप्राप्ति

दिन	विश्रमस्थल—स्कन्ध	योग	अध्याय
१	१२	१३ *	३३५

(१४) दशाहपारायण

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	७	३४
३	५	९	३३
४	६	१९ *	३६
५	८	२४ *	३९
६	१०	११	३५
७	१०	४५	३४
८	१०	७९	३४
९	११	२३	३४
१०	१२	१३ *	२१

(१५) पक्षपारायण

पक्ष. मास और ऋतुपारायण प्रतिपद् तिथिसे ही प्रारम्भ किया जाय—यह नियम नही है। केवल दिन-संख्याका नियम है।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय	दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	४	२३	१६	८	२४ *	१२
२	३	१९	२५	१७	९	१३	१३
३	४	२२	३६	१८	९	२४ *	११
४	५	१६	२५	१९	१०	११	११
५	६	१३	२३	२०	१०	२१	१०
६	८	२	२३	२१	१०	३३	१२
७	८	२४ *	२२	२२	१०	४५	१२
८	९	२३	२३	२३	१०	५७	१२
९	१०	२४	२५	२४	१०	६९	१२
१०	१०	४८	२४	२५	१०	७९	१०
११	१०	६८	२०	२६	१०	९० *	११
१२	१०	८९	२१	२७	११	१३	१३
१३	११	६	७	२८	११	२६	१३
१४	१२	५	३०	२९	१२	५	१०
१५	१२	१३ *	८	३०	१२	१३ *	८

(१६) **मासपारायण**

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	१	१९	८
३	२	१० *	१०
४	३	१२	१२
५	३	२४	१२
६	३	३३ *	९
७	४	१२	१२
८	४	२३	११
९	४	३१ *	८
१०	५	१४	१४
११	५	२६ *	१२
१२	६	१२	१२
१३	७	५	२
१४	७	१५ *	१०
१५	८	१२	१२

(१७) **ऋतुपारायण** (दो महीनेका)

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	६	६
२	१	११	५
३	१	१५	४
४	१	१९ *	४
५	२	६	६
६	२	१० *	४
७	३	६	६
८	३	११	५
९	३	१६	५
१०	३	२०	४
११	३	२४	४
१२	३	२८	४
१३	३	३३ *	५
१४	४	७	७
१५	४	१२	५

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१६	४	१८	६
१७	४	२४	६
१८	४	३१ *	७
१९	५	६	६
२०	५	११	५
२१	५	१५	४
२२	५	२०	५
२३	५	२६ *	६
२४	६	७	७
२५	६	१३	६
२६	६	१९ *	६
२७	७	५	५
२८	७	१०	५
२९	७	१५ *	५
३०	८	४	४
३१	८	९	५
३२	८	१४	५
३३	८	१८	४
३४	८	२४ *	६
३५	९	५	५
३६	९	१२	७
३७	९	१७	५
३८	९	२४ *	७
३९	१०	६	६
४०	१०	११	५
४१	१०	१७	६
४२	१०	२३	६
४३	१०	२८	५
४४	१०	३३	५
४५	१०	३८	५
४६	१०	४४	६
४७	१०	४९ *	५
४८	१०	५५	६
४९	१०	६१	६
५०	१०	६८	७
५१	१०	७५	७
५२	१०	८१	६
५३	१०	८८	७
५४	११	५	७
५५	११	११	६
५६	११	१८	७
५७	११	२३	५
५८	११	२९	६
५९	१२	५	७
६०	१२	१३ *	८

(२)

(लेखक-संग्रहकर्ता श्रीरामजीवनशरणजी ब्रह्मचारी)

श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें कुछ लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। जो लोग इधर-उधरके अनुष्ठानोंमें अपना समय नष्ट करते हैं और भाँति-भाँतिकी भूतादिकी मलिन सिद्धियोंके पीछे भटकते हुए अपना जीवन बरबाद करते हैं, उन लोगोंको शास्त्रीय मार्गपर लानेके लिये तथा विश्वासी सज्जनोंके कल्याणके लिये हमारे प्राचीन ऋषि मुनियोंके अनुभवसिद्ध कुछ श्रीमद्भागवतके प्रयोग लिखता हूँ। आशा है, इनसे सज्जन महानुभाव लाभ उठायेंगे।

प्रयोग

(१) सप्ताहपारायण

निष्कामपारायण

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४०
२	५	२३	६७
३	७	१५*	३७
४	९	२४*	४८
५	१०	४२	४२
६	१०	९०*	४८
७	१२	१३*	४४

(२) सप्ताहपारायण

धनप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	६	७१
२	६	१३	६१
३	६	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	७३	३६
६	१०	६०*	१७
७	१२	१३*	४४

(३) सप्ताहपारायण

विघ्ननाशके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१६	४६
२	५	१६	६१
३	७	१०	३६
४	६	२४*	५३
५	१०	४६	४६
६	१०	६०*	४१
७	१२	१३*	४४

(४) सप्ताहपारायण

मोक्षप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१८	४७
२	५	८	५४
३	८	७	५६
४	१०	३	४४
५	१०	५३	५०
६	११	६	४६
७	१२	१३	३५

(५) द्वयाहपारायण

योगसिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	७	१५*	१५३
२	१२	१३*	१८२

(६) द्वयहपारायण

चित्त निवृत्ति के लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	८	१६	१६६
१	१२	१३	१६६

(७) त्र्यहपारायण

मोक्षप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	५	८	१०१
२	१०	१२	११२
३	१२	१३*	१२२

(८) चतुरहपारायण

सङ्कट-निवारणके लिये

दिन	विश्रामस्सल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१८	८०
२	६	१६*	५८
३	१०	५१	११४
४	१२	१३*	८३

(९) चतुरहपारायण

सब प्रकारकी कामनाओं की सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१८	८०
२	८	७	८०
३	१०	५२	६३
४	१२	१३*	८२

(१०) चतुरहपारायण

पापनाशके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	२६	८८
२	८	१६	८४
३	१०	५३	८२
४	१२	१३*	८१

सम्राज्ञी सीता के बडे पुत्र श्रीहनुमानजी

(११) चतुरहपारायण

सद्धर्मकी प्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१९	८१
२	८	१४	८६
३	१०	५१	८५
४	१२	१३*	८३

(१२) पञ्चाहपारायण

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	४	६६
२	६	१५	६८
३	९	२१	६४
४	१०	६४	६७
५	१२	१३*	७०

(१३) षडहपारायण

धनप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	९	७१
२	६	१३	६१
३	९	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	९०*	५६
६	१२	१३*	४४

(१४) अष्टाहपारायण

दरिद्रता नष्ट करनेके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१५	४४
२	४	२१	३९
३	६	७	४३
४	८	२१	४८
५	१०	२३	५०
६	१०	५१	२८
७	११	३	४२
८	१२	१३*	४१

(१५) अष्टाहपारायण

रोगसे छुटकारा पानेके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४९
२	५	६	५०
३	६	१९*	३९
४	९	२०	५९
५	१०	३५	३९
६	१०	८५	५०
७	११	६	११
८	१२	१३*	३८

(१६) अष्टाहपारायण

भयनिवृत्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	९	३८
२	४	१६	४०
३	६	१	४२
४	८	१०	४३
५	१०	१	३९
६	१०	४२	४१
७	१०	९०*	४८
८	१२	१३*	४४

(१७) अष्टाहपारायण

अकालमृत्युसे बचनेके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	८	३७
२	४	८	३३

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
३	५	२४	४७
४	८	६	४५
५	१०	१०	४६
६	१०	५६	४६
७	११	६	४३
८	१२	१३*	३५

(१८) नवाहपारायण

सुयशप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१०	३६
२	४	२	२५
३	५	२०	४६
४	७	१२	३७
५	६	८	३५
६	१०	२०	३६
७	१०	६०	४०
८	११	८	३८
६	१२	१३*	३६

(१६) नवाहपारायण

कन्याप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	११	३८
३	५	१६	३६
४	७	११	४०
५	६	६	३४
६	१०	२१	३६
७	१०	५८	३७
८	११	६	४१
६	१२	१३*	३५

(२०) दशाहपारायण

ज्ञानप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	७	३४
३	५	६	३३
४	६	१६*	३६
५	८	२४*	३६
६	१०	११	३५
७	१०	४५	३४
८	१०	७६	३४
६	११	२३	३४
१०	१२	१३*	२१

(२१) एकादशाहपारायण

मनःकामनाकी सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१८	१८
२	३	२२	३३
३	४	२१	३२
४	५	२१	३१
५	७	८	३२
६	६	३	३४
७	१०	११	३२
८	१०	४८	३७
६	१०	८१	३३
१०	११	२३	३२
११	१२	१३*	२१

(२२) द्वादशाहपारायण

शान्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	३	२२
२	३	२२	२६
३	४	१६	२७

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
४	५	९	२४
५	६	१८	३५
६	८	१७	३३
७	९	२१	२८
८	१०	२३	२६
९	१०	१८	२५
१०	१०	८०	३२
११	११	२५	३५
१२	१२	३*	१९

(२३) त्रयोदशाहपारायण

ऋणसे छुटकारा पानेके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	२	२१
२	३	२०	२८
३	४	१३	२६
४	५	५	२३
५	६	१३	३४
६	८	११	३२
७	९	१४	२७
८	१०	१५	२५
९	१०	३९	२४
१०	१०	७०	३१
११	११	१४	३४
१२	१२	१	१८
१३	१२	१३*	१२

(२४) चतुर्दशाहपारायण

सब प्रकारकी आपत्तियोंसे छुटकारा पानेके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	६	२५
२	३	२०	२४
३	४	१२	९५
४	५	५	२४
५	६	२	२३
६	७	९	२६
७	८	१८	२४
८	९	१६	२२
९	१०	१८	२६
१०	१०	४१	२३
११	१०	६७	२६
१२	११	२	२५
१३	११	२३	२१
१४	१२	१३*	२१

(२५) पञ्चदशाहपारायण

सब प्रकारकी कामनाकी सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	२	२१
२	३	१५	२३
३	४	४	२२
४	४	२७	२३
५	५	१८	२२
६	६	१५	२३
७	८	५	२४
८	९	६	२५
९	१०	४	२२
१०	१०	२६	२२
११	१०	४९÷	२३
१२	१०	७०	२१
१३	११	२	२२
१४	११	२५	२३
१५	१२	१३*	१९

(२६) षोडशाहपारायण

बाधाओंकी शान्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१८	१८
२	३	१३	२४

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
३	३	२९	१६
४	४	१९	२३
५	५	५	१७
६	६	५	२६
७	७	८	२२
८	८	१८	२५
९	९	१४	२०
१०	१०	१७	२७
११	१०	३८	२१
१२	१०	५२	१४
१३	१०	८१	२९
१४	११	१०	१९
१५	१२	१	२२
१६	१२	१३*	१२

(२७) सप्तदशाहपारायण

आनन्दवृद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	४	२३
२	३	११	१७
३	३	२६	१५
४	४	१५	२२
५	४	३१*	१६
६	५	२५	२५
७	७	१	२१
८	८	१०	२४
९	९	५	१९
१०	१०	७	२६
११	१०	२७	२०
१२	१०	४०	१३
१३	१०	६८	२८
१४	१०	८६	१८
१५	११	१७	२१
१६	१२	२	१६
१७	१२	१३*	११

(२८) अष्टादशाहपारायण

भगवान्की प्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१६	१६
२	३	८	२१
३	३	२१	१३
४	४	८	२०
५	४	२३	१४
६	५	१३	२१
७	६	१	१४
८	७	२	२०
९	८	६	१९
१०	९	४	२२
११	९	२४	२०
१२	१०	१८	१८
१३	१०	४०	२२
१४	१०	५९	१९
१५	१०	७३	१४
१६	११	७	२४
१७	११	२५	१८
१८	१२	१३*	१९

(२९) ऊनविंशत्यहपारायण

विजयप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१५	१५
२	३	५	१९
३	३	१७	१२
४	४	४	२०
५	४	२३	१९
६	५	६	१४
७	५	२६*	२०
८	६	१३	१३
९	७	१३	१९
१०	८	१६	१८
११	९	१३	२१

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१२	१०	८	१६
१३	१०	२५	१७
१४	१०	४६	२१
१५	१०	६४	१८
१६	१०	७७	१३
१७	११	१०	२३
१८	११	२८	१८
१९	१२	१३*	१६

(३०) विंशाहपारायण

इष्ट सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१३	१३
२	३	३	१९
३	३	१४	११
४	३	३२	१८
५	४	११	१२
६	५	१	२१
७	५	१८	१७
८	६	१२	२०
९	७	८	१५
१०	८	१४	२२
११	९	७	१६
१२	९	१६	९
१३	१०	१६	२४
१४	१०	३०	१४
१५	१०	४०	१०
१६	१०	६३	२३
१७	१०	८८	२५
१८	११	६	८
१९	१२	२	२७
२०	१२	१३*	११

(३१) एकविंशत्यहपारायण

सब प्रकारके उपद्रवोंकी शान्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१२	१२
२	३	१	१८
३	३	११	१०
४	३	२८	१७
५	४	६	११
६	४	२६	२०
७	५	११	१६
८	६	४	१९
९	६	१८	१४
१०	८	५	२१
११	८	२०	१५
१२	९	४	८
१३	१०	१३	२३
१४	१०	१६	१३
१५	१०	२५	९
१६	१०	४७	२२
१७	१०	७१	२४
१८	११	२	२१
१९	११	२७	२५
२०	१२	३	७
२१	१२	१३*	१०

(३२) द्वाविंशत्यहपारायण

ज्ञानप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	२	९	१७
३	३	९	१०
४	३	२५	१६
५	४	१०	१८
६	४	१८	८

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
७	५	३	१६
८	५	१६	१३
९	६	९	१९
१०	७	४	१४
११	८	१०	२१
१२	८	२२	१२
१३	९	१८	२०
१४	१०	१	७
१५	१०	२४	२३
१६	१०	३३	९
१७	१०	५४	२१
१८	१०	७८	२४
१९	११	८	२०
२०	११	१७	९
२१	१२	२	१६
२२	१२	१३*	११

(३३) त्रयोविंशत्यहपारायण

पापनाशके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१०	१०
२	२	७	१६
३	३	५	८
४	३	२०	१५
५	३	२९	९
६	४	१४	१८
७	४	२८	१४
८	५	१४	१७
९	५	२५	११
१०	६	१८	१९
११	७	१२	१३
१२	८	६	९
१३	९	३	२१
१४	९	१४	११
१५	९	२१	७
१६	१०	१७	२०
१७	१०	३९	२२
१८	१०	५९	१९
१९	१०	८१	२३
२०	१०	८९	८
२१	११	९	१०
२२	११	२४	१५
२३	१२	१३*	२०

(३४) पञ्चविंशत्यहपारायण

सब प्रकारकी बाधाओंकी शान्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	८	८
२	१	१९	११
३	३	४	१४
४	३	११	७
५	३	२४	१३
६	४	१०	१९
७	४	२५	१५
८	५	११	१७
९	५	२०	९
१०	६	२	८
११	६	१३	११
१२	७	१३	१९
१३	८	९	११
१४	८	१८	९
१५	९	९	१५
१६	९	१६	७
१७	१०	४	१२
१८	१०	२२	१८
१९	१०	३७	१५
२०	१०	५४	१७
२१	१०	६२	८

२२	१०	७५	१३
२३	११	३	१८
२४	११	२०	१७
२५	१२	१३*	२४

(३५) षड्विंशत्यपारायण

त्रिलोकीके मङ्गलके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१५	१५
२	२	७	११
३	३	१३	१६
४	३	२५	१२
५	३	३२	७
६	४	१२	१३
७	५	१	२०
८	५	१२	११
९	५	२५	१३
१०	६	९	१०
११	७	४	१४
१२	७	१३	९
१३	८	११	१३
१४	८	२२	११
१५	९	१६	१८
१६	१०	७	२५
१७	१०	१९	१२
१८	१०	३५	१६
१९	१०	४८	१३
२०	१०	५९	११
२१	१०	७२	१३
२२	१०	८४	१२
२३	११	१०	१६
२४	११	२१	११
२५	१२	२	१२
२६	१२	१३*	११

(३६) सप्तविंशत्यहपारायण

सबमें एकीभावकी प्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१८	१८
२	२	९	१०
३	३	१३	१४
४	३	२०	७
५	३	३३*	१३
६	४	१६	१६
७	४	२८	१२
८	५	१२	१५
९	५	२३	११
१०	६	६	९
११	६	१७	११
१२	७	८	१०
१३	८	५	१२
१४	८	२२	१७
१५	९	८	१०
१६	९	२४*	१६
१७	१०	९	९
१८	१०	२२	१३
१९	१०	३८	१६
२०	१०	४६	८
२१	१०	६५	१९
२२	१०	८०	१५
२३	१०	९०*	१०
२४	११	८	८
२५	११	२३	१५
२६	१२	२	१०
२७	१२	१३*	११

(३७) ऊनत्रिंशदहपारायण

विद्या प्राप्तिके लिए

दिन	विश्रामस्थल.स्कंध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१	५
२	१	१६	११
३	२	१०*	१३
४	३	१२	१२
५	३	२३	११
६	३	३०	७
७	४	८	११
८	४	२२	१४
९	५	१	१०
१०	५	१२	११
११	५	१८	६
१२	६	६	१४
१३	६	१८	१२
१४	७	१०	११
१५	८	८	१३
१६	८	१७	९
१७	९	५	१२
१८	९	१६	११
१९	१०	४	१२
२०	१०	१५	११
२१	१०	२८	१३
२२	१०	४४	१६
२३	१०	५६	१२
२४	१०	६६	१०
२५	१०	७७	११
२६	११	१	१४
२७	११	१४	१३
२८	११	३०	१६
२९	१२	१३※	१४

(३८) मासपारायण

भक्तिप्रद

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	५	५
२	१	१६	११
३	२	९	१२
४	३	१०	११
५	३	२३	१३
६	४	१	११
७	४	८	७
८	४	२२	१४
९	५	१	१०
१०	५	१२	११
११	५	२१	९
१२	६	६	११
१३	६	१८	१२
१४	७	१०	११
१५	८	८	१३
१६	८	१७	९
१७	९	५	२१
१८	९	१६	११
१९	१०	३	११
२०	१०	१५	१२
२१	१०	२८	१३
२२	१०	४४	१६
२३	१०	५६	१२
२४	१०	७०	१४
२५	१०	८१	११
२६	११	१	१०
२७	११	१४	१३
२८	११	२८	१४
२९	१२	७	१०
३०	१२	१३※	६

ब्रज–सौभाग्य

(३९) मासपारायण

समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिए

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	२	२	१०
३	३	२	१०
४	३	१२	१०
५	३	२३	११
६	४	९	१९
७	४	२०	१
८	४	२२	१२
९	५	१	१०
१०	५	१०	९
११	५	२०	१०
१२	६	९	१५
१३	६	१६	७
१४	७	७	१०
१५	८	१	९
१६	८	१५	१४
१७	९	४	१३
१८	९	१०	६
१९	१०	६	२०
२०	१०	१७	११
२१	१०	३०	१३
२२	१०	४२	१२
२३	१०	५४	१२
२४	१०	६५	११
२५	१०	७८	१३
२६	१०	८७	९
२७	११	९	१२
२८	११	२१	१२
२९	१२	२	१२
३०	१२	१३*	११

(कल्याण के श्रीमद्भागवताङ्क से)

—:०:—

श्रीमद्भागवत पुरश्चरण विधि

श्रीभागवताचार्य गोस्वामि श्रीसुन्दरलालजी महाराज कृत [आचार्य श्रीअनन्तलालजी गो० द्वारा प्राप्त]

(१)

सर्व कामनासिद्धिके लिये एकाहपारायण-श्रावण कृष्णपक्ष में

दिन	अध्याय	स्कंध
१	३३५	१२

(२)

पुत्र प्राप्तिके लिए—श्रावण शुल्क पक्ष में

दिन	अध्याय	स्कन्ध	अ० तक
१	१९०	९	१३ ,,
२	१४५	१२	१३ ,,

(३)

मुक्ति के लिये—आश्विन शुल्क पक्ष में

दिन	अध्याय	स्कन्ध	अ० तक
१	१५२	७	१४ ,,
२	१३९	१०	९० ,,
३	४४	१२	१३ ,,

(४)

सङ्कल्प सिद्धि के लिये—भाद्रपद शुल्क पक्ष में

दिन	अध्याय	स्कन्ध	अ० तक
१	८१	४	८३ ,,
२	८९	९	१७ ,,
३	६३	१०	५२ ,,
४	८२	१२	१३ ,,

(५)

धन प्राप्ति के लिये—भाद्रपद शुल्क पक्ष में

दिन	अध्याय	स्कन्ध	अ० तक
१	६६	४	७ ,,
२	६९	६	१९ ,,
३	६३	९	२४ ,,
४	६६	१०	८९ ,,
५	६५	१२	१३ ,,

(६)

लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये—भाद्रपद कृष्ण पक्ष में

दिन	अध्याय	स्कन्ध	अ० तक
१	६१	३	३२ ,,
२	६६	५	१४ ,,
३	७०	८	२४ ,,
४	६३	१०	३९ ,,
५	६०	११	२९ ,,
६	१५	१२	१३ ,,

(७)

भक्ति प्राप्तिके लिये—वैशाख मास में

दिन	अध्याय	स्कन्ध	अ० तक
१	५३	३	२४ ;,
२	४३	५	३ ,,
३	५०	७	९ ,,
४	५९	१०	४ ,.
५	५१	१०	५५ ,,
६	४१	११	६ ,,
७	३८	१२	१३ .,

—'श्रेय' के भागवताङ्क से

भागवत पाठमें विश्राम-वर्जितस्थल

आप यदि भागवत पाठका कोई अनुष्ठान कर रहे हैं, अथवा प्रतिदिन एक ही अध्यायके पाठका नियम नहीं है तो श्रीमद्भागवतके पारायणमें विश्राम किसी जगह नहीं करना चाहिए।

स्कन्ध	अध्याय
१	१, ७, ८, १०, १३, १४, १६, १८
३	१७, १८, २३
४	३, ४, ५, ८, १०, १३, १४, १७ २५, २६, २७
५	५, ८
६	१, ६, १०, १४
७	१, ४, ८
८	२, ८, १०. १९, २१
९	१, ४५, १५
१०	१, ४, ९, १०, २२, २९, ३०, ३१, ३६, ४३, ४४, ४६, ५८, ६२, ७६, ७७
११	१, ३०
१२	१, २

श्रीमद्भागवतके वृत्तों (छन्दों) का परिचय

श्रीमद्भागवत पुराण जिस प्रकार अनेक रसोंकी खान है, इसी प्रकार इसमें वृतों (छन्दों) के माधुर्य्यका समावेश भी बड़ा बिलक्षण है, कई वृत्त तो इसमें ऐसे हैं, जो और किसी काव्य में भी देखने में नही आते, जैसे राजहंसिका, नर्कुटक आदि अति प्राचीन होनेसे इसमें छन्दोंका बन्धन कहीं-कहीं आधुनिक रीतिके अनुसार नहीं हैं, पर उससे इसकी सुन्दरतामें कोई बाधा नहीं पड़ती। वैदिक प्रयोगोंमें जैसे 'छन्दसि बहुलम्' आदिसे निर्वाह किया जाता है, उसी प्रकार वृत्तोंके सम्बन्धमें भी 'शेष गाथा' इससे निर्वाह सम्प्रदायानुसार होता चला आरहा है। अन्य पुराणोंमें, महाभारतमें भी, ऐसे पद्योंकी कमी नहीं है, जो वृत्त बंधनसे बंधे नहीं हैं। यह कुछ प्राचीन परिपाटी ही ऐसी थी कि ऐसे पद्योंकी भी रचनाकी जाती थी। इसलिये श्रीमद्भागवतमें भी कोई ऐसे पद्य हों जो वृत्त बंधनसे बंधे न हों तो आश्चर्य या दोष नहीं है। अनुष्टुप् छन्द तो इसमें प्रायः हैं हीं जैसे नैमिषे ऽनिमिषे क्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः' इत्यादि अन्य छन्द भी बहुत हैं, जिनका निर्देश आगे किया जाता है—

(१) 'तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थम्'
इन्द्रवज्रा

(२) सर्वैभवान्वेद समस्तगुह्यन्'
उपेन्द्र वज्रा

(३) 'नमन्ति यत्पाद निकेतमात्मनः'
वंशस्थ

(४) 'नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्'
इन्द्रवंशा

(५) 'स वा इदं विश्वममोघ लीलः'
इन्द्र वज्रोपेन्द्रवज्रा

(६) 'शिवाय लोकस्य भवाय भूतये'
वंशस्थेन्द्रवंशा

(७) 'त्वंपर्य्यटन्नर्क इवत्रिलोकीम्'
इन्द्र वज्रा वंशस्थ

(८) 'तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे'
इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रेन्द्र वंशा

(अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पदौ यदीयावुपजातयस्ताः। एवं किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेवनाम) इसके अनुसार ये दो दो तीन-तीन छन्दोके चरणोंके श्लोक हैं।

(९) 'यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेत कृत्यम्'
वसन्त तिलका

ये सब छन्द तो बहुत प्रसिद्ध हैं और श्रीमद्-भागवतमें भी बहुत स्थलोंमें हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक छन्द हैं। जैसे—

(१०) 'हरे तवांघ्रि पङ्कजं भवापवर्गमाश्रितं'
प्रमाणिका

(११) 'एवं राजाविन्दुरणानुजेन'
शालिनी

(१२) 'दृष्टः किन्नोदृग्भिगेसद्ग्रहेस्त्वम्'
वात्तोर्मी

(१३) 'जयति तेऽधिकं जन्मनाव्रजः इसको राजहंसी राजहंसिका अथवा ललित भी कहते हैं। इसमें कई प्रकार की विलक्षणतायें हैं। (१) दूसरा अक्षर चारों चरणोंमें एकसा हैं। जैसे जय, १, श्रय २, दयि ३, त्वयि ४, (२) पहिला अक्षर और सातवां अक्षर चारों चरणोंमें एकसा है। जैसे जयति का और ज जन्मना का ज और (३) इसमें विराम, एक तो छठे अक्षर पर है, दूसरा ग्यारहवें अक्षर पर है। इसका उच्चारण पहिले अक्षरसे

ग्यारहवें अक्षर तक कर लिया जाय, तब भी छन्दो-भङ्ग नहीं होता और सातवें अक्षरसे ग्यारहवें अक्षर तक करके फिर पहिले अक्षरसे छठे अक्षर तक उच्चारण किया जाय, तब भी छन्दोभङ्ग न होगा, यति भङ्ग भी न होगा। जैसे 'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः' जन्मना व्रजो जयति तेऽधिकं इत्यादि और यह अनेक राग-रागिनियोंमें गाया भी जा सकता है।

(१४) 'वाम बाहु कृत वाम कपोलो'
स्वागता

यह भी कई राग-रागिनियोंमें गाया जाता है।

(१५) 'निगम कल्पतरोर्गलितं फलम्'
द्रुतविलम्बित

(१६) 'अयं त्वत्कथामृष्ट पीयूष नद्याम्'
भुजङ्ग प्रयात

(१७) 'स्वागतन्ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः'
स्त्राविणी

(१८) 'पिबन्ति ये भगवत् आत्मनः सताम्'
रुचिरा

(१९) 'यज्ञोयं तव यजनायकेन सृष्टो'
प्रहर्षिणी

(२०) 'जगदुद्भवे स्थिति लयेषु'
मञ्जुभाषिणी

(२१) 'अंशाशास्ते देवमरीच्यादय एते'
मत्तमयूर

(२२) 'तव वरवरदांघ्रा वाशिषेहाखिलार्थे'
मालिनी

(२३) 'उत्पत्यध्वन्यशरण उरु क्लेश दुर्गान्तकोग्रे',
मन्दाक्रान्ता

(२४) 'पुरा कल्पापाये स्वकृत मुदरीकृत्यविकृतम्'
शिखरिणी

(२५) 'जय जय जह्यजामजितदोष गृभीत गुणाम्'
नर्कुटक

(२६) 'जन्माद्यस्य यतोन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः-स्वराट्
शार्दूल विक्रीडित

यह श्लोक प्रारम्भ का है। प्रारम्भमें शार्दूल विक्रीड़ित का होना, एक तो मगणसे प्रारम्भ होनेके कारण मङ्गलार्थक है। दूसरे जीवोंके पाप रूप मत्तगजेन्द्रोंके लिये श्रीमद्भागवत शार्दूल विक्रीड़ित है। इसकी सूचना करता है।

(२७) 'गुवर्थेत्यक्त राज्योव्यचरदनुवनं पद्म पद्भ्यां प्रियायाः'
स्रग्धरा

(२८) 'प्रियरावपदानिभाषसे' (वैतालीय)

(२९) 'इदमप्यच्युत विश्वभावनम्'
औपच्छन्दसिक

(३०) 'इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
पुष्पिताग्रा

(३१) 'अजित जितः सममतिभिः'
आर्या

यद्यपि इसमें पूर्ण लक्षणका समावेश नहीं है, परन्तु है आर्या जाति ही। इस प्रकार अनुष्टुप् सहित बत्तीस वृत्तोंमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है।

'श्रेय' के 'श्रीमद्भागवताङ्क' से

—:o:—

जीवगोस्वामीके अधिक पाठ

(श्रीजीवगोस्वामीजी ने भी अधिक पाठ माना है। उनकी वैष्णव तोषिणी टीकासे नमूनेकी भाँति यह अधिक पाठ उद्धृत है।

ततस्तद्वारुणं छत्रं स्वयमुत्क्षिप्य माधवः।
हिरण्यवर्ष कुर्वन्तमांरुरोह विहङ्गमम्॥
कि चाग्रे—
तस्य पर्वतराजस्य श्रृंङ्ग यत्परमाचितम्।
विमलार्केन्दुसङ्काशं मणिकाञ्चनतोरणम्॥
सपक्षिगणमातङ्ग समृतव्यालपादपम्।
शाखामृगगणाककीर्ण सुप्रस्तरशिलातलम्॥
न्यङ्कुभिश्च वराहैश्च रुरुभिश्च निषेवितम्॥
सप्रपातमहासानु विचित्रांशेखरद्रुमम्॥
अत्यद्भुतमचिन्त्य च मृगवृन्दविलोडितम्॥
जीव जीवकसङ्घैश्च बर्हिभिश्च निषेवितम्॥
तदप्यतिबलो विष्णुर्दोर्भ्यामुत्पाट्यभास्वरम्।
आरोपयामास बली गरुडे पक्षिणांवरे॥
मणिपर्वतश्रृङ्ग च सभार्यश्च जनार्दनम्।
उवाह लीलया पक्षी गरुडः पततां वरः॥
इति॥३७॥

— — —

विजयध्वजतीर्थीय पाठः

(अध्याय ५९ में यह अतिरिक्त पाठ हैं)

श्रीशुक उवाच।

हत्वा नरकमत्युग्रं दानवं दानवान्तकः।
आरुह्य गरुडं प्रायात्प्राग्ज्योतिषपुरान्नृप॥१॥
स गच्छन् गगने विष्णुः वन्दितुं देवमातरम्।
जगाम त्रिदशावासं सहितः सत्यभामया॥२॥
स्यर्गद्वारं गतो विष्णुर्दध्मौ शङ्ख महास्वनम्।
उपाजग्मुस्तदाकर्ण्य साध्यपाद्या दिवौकसः॥३॥
पूजितस्तैः सुरैः कृष्णः भक्तिन म्रैगतज्वरैः।
सुरेन्द्रभवनं दिव्यं प्रविवेश मनोरमम्॥४॥
तत्र शक्रः समं शच्या पूजयामास केशवम्।
रत्नैराभरणैर्दिव्यगन्धमाल्यैश्च शोभनैः॥५॥
ततः प्रायात्पुरीं मातुरदित्याः सह भार्यया।
दृष्ट्वोपतस्थे तं देवी पुत्रमायान्तमच्युतम्॥६॥
ववन्दे तां हरिस्तं सा पूजयामास भामिनी।
आशीर्भिः परमप्रीता चिरं दृष्टं यदूत्तम॥७॥
सत्यभामापि कौरव्य श्वश्वाः कृष्णेन चोदिता।
पादयोः कुण्डले तस्या निधाय प्रणनाम वै॥८॥
स्नुषामाश्लिष्य सन्तुष्टा सा पुनर्लब्धकुण्डला।
आनन्दबाष्पप्रचुरा प्राहेदं कश्यपप्रिया॥९॥
न ते जरा न वैरूप्यं कान्तेन सह विप्रियम्।
भूयात्कल्याणि सुव्यक्तं मत्प्रसादात्कदाचन॥१०
ततोऽनुज्ञाप्य तां देवीं त्रिदशानपि केशवः।
आरुह्य प्रययौ तांर्क्ष्य सहितः सत्यमामया॥११॥
महात्मना गगने देव देव्यौ गरुत्मता नीयमानौ विचित्रम्।
अपश्यतां नन्दनं चारुगुप्तं शचीभर्तुर्दयितं हृद्यगन्धम्॥१२॥
वनं दृष्ट्वा दिव्यगन्धं सुपुष्पं कृष्णं सत्या प्राह पाणौ गृहीत्वा।
प्रविश्यास्मिन् साधु चित्रं विहर्तुं मुहूर्तं मे काम्यते केशवेति।१३।

अथावरुह्य गरुडात्तस्या वचनगौरवात् ।
प्रविवेश वनं कृष्णः पालितं शक्रकिङ्करैः ॥१४॥

तत्रापश्यतरून् दिव्यान् मत्तसारङ्गनादितान् ।
फलभारनतान् भूरि प्रसूनरजसावृतान् ॥१५॥

चलत्किसलयोपेतान् विहङ्गध्वनिशोभितान् ।
विचरन्ती तथा तत्र पारिजातं महाद्रुमम् ॥१६॥

दृष्ट्वा पप्रच्छ गोविन्दं विस्मयाकुल-लोचना ।
को नामायं तरुर्देव विचित्रो भुवनत्रये ॥१७॥

सत्यमेतस्य वृक्षस्य कृतार्थाः फलभागिनः ।
प्रवालमूलो विपुलो जातरूपमहातनुः ॥१८॥

इन्द्रनीलच्छदच्छन्नो लसद्वैदूर्यवेदिकः ।
माणिक्यपुष्पोविविधमुक्ताफलफलान्वितः ॥१९॥

गोमेदपवकप्रकरो वज्रकिंजल्करंजितः ।
स्फुरन्मरकतस्थूलशाखाशतविराजितः ॥२०॥

तरुरेषजगन्नाथ मनो मे हरते भृशम् ।
नेतव्योयं पुरीं वृक्षो यद्यार्हं ते प्रिया प्रभो ॥२१॥

छायायामुपविष्टां मामन्यपत्न्यस्तवानघ ।
दृष्ट्वा मंस्यन्ति दयितां सर्वाश्यो मां तवाच्युत ॥२२॥

इत्युक्तो देवकीपुत्रः सत्यया प्रियकान्तया ।
प्राह नायं तरुर्भद्रे नेतव्यो नन्दनाद्वनात् ॥२३॥

पुरा क्षीराम्बुधेर्जातो मथ्यमानात्सुरासुरैः ।
शक्राय दत्तः सकलैः सदा तृत्फलभोक्तृभिः ॥२४॥

नीयमाने च वृक्षे स्मिन् पारिजाते शुचिस्मिते ।
सङ्ग्रामो जायते घोरस्त्रिदशैर्जयकाङ्क्षिभिः ॥२५॥

इत्युक्ता देवदेवेन सत्यभामा पुनर्हरिम् ।
प्राह भीषयसे किं मां व्यलीकैः कंसमर्दन ॥२६॥

नाश्यनन्ददुराचारा शची मां गृहमागता ।
हेतुर्हि वृक्षस्तस्यायं भर्तृपौरुषगर्विता ॥२७॥

नेतव्यः सर्वथा वृक्षः पारिजातोयमच्युत ।
प्रियाहं तव चेनाथ नोचेद्विरम साम्प्रतम् ॥२८॥

इत्युक्तः सत्यया कृष्णस्ताननादृत्य रक्षकान् ।
उत्पाट्यारोपयामास पारिजातं गरुत्मति ॥२९॥

ततो निवारयामासुर्गोविन्दं वनपालकाः ।
केचिद्द्रुततरं जग्मुर्देवेन्द्राय निवेदितुम् ॥३०॥

कृष्ण कृष्ण न हर्तव्यस्तरुरेषोऽमरार्चितः ।
हरसे यदि तस्य त्वं फलं सद्योऽनुभोक्ष्यसि ॥३१॥

प्राप्नोषि न पुरीं कृष्ण सहानेन महीरुहा ।
सद्यः पश्यसि देवेन्द्रं पृष्ठतोऽस्युद्यतायुधम् ॥३२॥

सुरेन्द्रान्तिकमासाद्य द्रुतं ते वनरक्षकाः ।
उपविष्टं समं शच्या शक्रं दृष्ट्वा ब्रुवनृप ॥३३॥

वनरक्षका ऊचुः ।

अवज्ञायाखिलान् देवानिन्द्राणीं च त्वया सह ।
जहार कृष्णदयिता पारिजातं महाद्रुमम् ॥३४॥

ऊक्ता स्मामिभृशं देव वारयद्भिर्हरिप्रिया ।
उपालभ्याहरद्वृक्षं भर्तृपौरुषगर्विता ॥३५॥

श्रीशुक उवाच ।

इत्याकर्ण्याप्रियं शक्रो दण्डाहत इवोरगः ॥
शचीं विलोक्य पार्श्वस्थां नामृष्यत्तत्पराभवम् ॥३६॥

सन्नाहोद्योगमावोप्य सन्निपात्य च सैनिकान् ।
लोकपालान् समाहूय निश्चक्राम सुरेश्वरः ॥३७॥

ऐरावतं चतुर्दन्तमारुह्य वरवारणम् ।
गृहीतवज्रं गच्छन्तमनुजग्मुर्दिवौकसः ॥३८॥

वैश्वानरस्तु तुरगमारुह्य दृढदंशितः ।
घोरां शतघ्नीमादाय स्रुवपुच्छां ययौ रणम् ॥३९॥

यमस्त्वारुह्य महिषं दण्डमादाय वीर्यवान् ।
मृत्युकालादिभिर्युक्तो युद्धार्थी शक्रमन्वगात् ॥४०॥

निर्ऋतिश्च महातेजा घोरमारुह्य पौरुषम् ।
असिहस्तौ महाबाहुर्युद्धाय प्रययौ नृप ॥४१॥

मकरं भीषणाकारमारुह्य वरुणस्त्वरन् ।
पाशोद्यतकरः प्रायाद्युद्धायानुशचीपतिम् ॥४२॥

वायुः कृष्णमृगारूढो दंशितस्तोमरायुधः ।
सुरेश्वरमनुप्रायाद्योद्धुं चक्रभृता सह ॥४३॥

ऊढां चतुर्भिः पुरुषैः शिबिकां नरवाहनः ।
योद्धुकामस्त्वरन् प्रायाद्विष्णुना मुद्गरायुधः ॥४४॥

ईशानो वृषभं तुङ्गमारुह्य शितशूलभृत् ।
वासवेन समं प्रायाद्भूतकोटिसमन्वितः ॥४५॥
भेरीशङ्खमृदङ्गैश्च पणवानकगोमुखैः ।
सुवर्णसुषिरैर्दिव्यैः कांस्यतालैश्च भूरिभिः ॥४६॥
रथनेमिनिनादैश्च हयानां खरनिःस्वनैः ।
क्ष्वेलितास्फोटितैर्घोरैः संग्रामाह्वानगर्जनैः ॥४७॥
तिष्ठ तिष्ठेति मा याहि क्व सीति पुनःपुनः ।
प्रवदद्भिः सुरगणैः शतशोथ सहस्रशः ॥४८॥
कम्पयद्भिश्च शस्त्रौघैः प्रेषयद्भिश्च वाहनम् ।
पुरोहमितिगच्छद्भिः शतशश्च सहस्रशः ॥४९॥
घोरैर्ज्याघातनिर्घोषैः सिंहनादैश्च भूरिभिः ।
अभिदुद्रुवुरुद्धताः सिंहं गोमायवो यथा ॥५०॥

श्रीशुक उवाच

सुरानभिद्रुतान् दृष्ट्वा सत्यमाह जगत्पतिः ।
इमे प्राहुणिकाः प्राप्तास्तव वृन्दारका इति ॥१॥
तथा ब्रुवाणे देवेशे प्रेषिता देवसैनिकाः ।
नदन्तो मुमुचुः कृष्णे शरवृष्टिं कुरूद्वह ॥२॥
ततः शाङ्‌र्गं समादाय सत्या व्यसनविक्लवा ।
मुक्तांश्चिच्छेद बाणौघैस्ताः च्छरान्देवसैनिकैः ॥३॥
ततो वैश्रवणः श्रीमान् बहुभिर्गुह्यकैर्वृतः
विष्फारयंस्तालमात्रं कार्मुकं कनकाटवि ॥४॥
स्वर्णपुङ्खान् शरान्मुचन् सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ।
अभिदुद्राव समरे तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥५॥
तैः पञ्चभिः शरैः सत्या निशितैर्मर्मभेदभिः ।
अर्पयामास वेगेन विशाले जठरे नृप ॥६॥
सोतिविद्धो रणे बाणैस्त्रिमिर्भल्लैर्हरिप्रियाम् ।
अयोधयद्धनपतिः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥७॥
तानप्राप्तानर्धचन्द्रैस्त्रिभिश्चिच्छेद सा शरैः ।
भूयोष्टभिः शरैर्देवी वत्सदन्तैर्मनोजवैः ॥८॥
विव्याध गुह्यकपतेर्ललाटे कुरुपुङ्गव ।
पीडितस्तैर्भृशं बाणैः पौलस्त्यः क्रोधविह्वलः ॥९॥
सन्दधे निशितान् बाणानेकविंशति संयुगे ।
तानन्तरे सत्यभामा सायकैः सप्तभिर्नृप ॥१०॥
चिच्छेद निमिषार्धेन त्रिवैकैकं हरिप्रिया ।
सत्यभामा ततः क्रुद्धा पौलस्त्यस्य महद्धनुः ॥११॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद मुष्टिदेशे द्विधा नृप ।
ततोन्यच्चापमादाय सज्यं कृत्वा धनेश्वरः ॥१२॥
ववर्ष शरजालानि क्रोधात्सर्प इव श्वसन् ।
संर्वास्तान् सायकान् सङ्ख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१३॥
चिच्छेद लीलया देवी तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततः क्रुद्धो वैश्रवणः सत्यभामां विलोक्य च ॥१४॥
प्राह पश्य हनिष्यामि त्वामद्य मम पौरुषम् ।
इत्युक्त्वा तालमात्रे तु चापे गुह्यकसत्तमः ॥१५॥
पश्यतां सर्वदेवानां मार्गुकामः पराभवम् ।
सन्दधे सूदितुं देवीमर्धचन्द्रं शरोत्तमम् ॥१६॥
तदवेत्य मनस्तस्य क्षुरप्रेण हरिप्रिया ।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य मुष्टिदेशे कुरूद्वह ॥१७॥
ततो मुद्गरमादाय घोरं दानवभीषणम् ।
भ्रामयित्वा शतगुणं देव्यै चिक्षेप वित्तपः ॥१८॥
तं मुद्गरं महाघोरमायान्तं कुरुपुङ्गव ।
वामेन पाणिना कृष्णो जग्राहोच्चैर्जहास च ॥१९॥
ततो निवृत्तसङ्ग्रामो विदुद्राव धनेश्वरः ।
शशंस देवीं कृष्णश्च समाश्लिष्याभिपूजयन् ॥२०॥
पलायिते धनपतौ सङ्ग्रामे कंसवैरिणा ।
वरुणोभ्यद्रवत्कृष्णं पाशमुद्यम्य संयुगे ॥२१॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तार्क्ष्यो मकरवाहनम् ।
अभ्यद्रवन्महासत्वः शार्दूल इव गोवृषम् ॥२२॥
तयोः समभवद्युद्धं घोरं तार्क्ष्यजलेशयोः ।
यथादेवासुर युद्धे बलिवासवयोरिव ॥२३॥
तत्र काश्यपपुत्रस्य कण्ठे पाशं जलेश्वरः ।
क्रुद्धश्चकर्ष विन्यस्य सिंहः सिंहमिवौजसा ॥२४॥
तं पक्षकोट्या गरुडः समुद्धत्य जलेश्वरम् ।
पद्भ्यां गृहीत्वा मकरं चिक्षेप वरुणालये ॥२५॥
कृच्छ्राद्गृहीतपाशस्तु वरुणो गतवाहनः ।
पदातिरेव सङ्ग्रामाद्विदुद्राव यथागतम् ॥२६॥
तथा गते वार्धिपतौ सङ्ग्रामे वायुपावकौ ।
सममेवाभ्यवर्तेतां गोविन्दं कुरुसत्तम् ॥२७॥
पावकः पञ्चभिर्बाणैर्मारुतश्च तथा त्रिभिः ।
आयोधयद्धृषीकेशं तदद्भुतमिवाभवत् ॥२८॥

ततः प्रहस्य गोविन्दो वाणेनैकेन पावकम् ।
विव्याध सप्तभिश्चैव समीरणमरिन्दमः ॥२६॥
एकेनाग्निः क्षुरप्रेण गाढं वक्षसि ताडितः ।
तमसाधारणं मत्वा विदुद्राव रणाद्द्रुतम् ॥३०॥

दृष्ट्वा समीरणो युद्धादपातं हुताशनन् ।
सायकाचितसर्वाङ्गमात्मानं चातिविह्वलः ॥३१॥

विदित्वा पुण्डरीकाक्षं संग्रामे प्रत्युपस्थितन् ।
न्यवर्तत कुरुश्रेष्ठ प्राणत्राणपरायणः ॥३२॥

ततो महिषमारुह्य दण्डमुद्यम्य भास्वरम् ।
कृष्णमभ्यद्रवद्युद्धे यमः क्रोधारुणेक्षणः ॥३३॥

तमुद्यतमहादण्डं दृष्ट्वा कमललोचनः ।
गदां विसृज्य तद्धस्तात्पातयामास भूतले ॥३४॥

गदया ताडितो दण्डे त्रस्तहस्तः परेतराट् ।
विदुद्राव परावृत्य महिषेण कुरूद्वह ॥३५॥

वैवस्वत गतं दृष्ट्वा निर्ऋतिर्भयविह्वलः ।
नाभ्यवर्तत गोविन्दं योद्धुं विदिततद्बलः ॥३६॥

शङ्करस्तु महातेजास्त्रिशूली वृषवाहनः ।
अनेकभूतसङ्घातैः कृष्णमभ्यद्रवद्रणे ॥३७॥

तावुभौ लोकविख्यातौ बलिनौ वीर्यशालिनौ ।
चक्राते कदनं घोरं परस्परजयैषिणौ ॥३८॥

ईशानो दशभिर्बाणैः कृष्णं तार्क्ष्यं च पञ्चभिः ।
विव्याध समरे राजन् तिष्ठतिष्ठेति चावदत् ॥३६॥

ततः शाङ्र्ग समादाय कृष्णः परपुरंजयः ।
त्रिंशद्भिर्युगपद्बाणैर्विव्याध वृषवाहनन् ॥४०॥

गरुडः पन्नगरिपुः पद्भ्यां द्वाभ्यां च संयुगे ।
पक्षाभ्यां च चुकोट्या च मर्दयामास तं वृषन् ॥४१॥

भूयोपि कृष्णो नाराचैः पञ्चाशत्प्रमितैर्नृप ।
योधयामास समरे शङ्करं लोकशङ्करन् ॥४२॥

ततस्त्रिशूलमाविध्य निशितं घोरदर्शनम् ।
प्राहिणोद्वासुदेवाय कुपितो धूर्जटिर्नृप ॥४३॥

दृष्ट्वा त्रिशूलमायातं केशवस्तं निवारितुम् ।
गदां कौमोदकीं गुर्वी प्राहिणोद्दैत्यमर्दनीम् ॥४४॥

ते वै कौमीदकी शूले कृत्वा नभसि सङ्गरम् ।
ज्वलमाने महाघोरे पेततुः सममम्बुधौ ॥४५॥

निपात्याब्धौ त्रिशूलं तद्गदा कौमोदकी पुनः ।
आससाद करं विष्णोस्त्रिशूलमपि शूलिनः ॥४६॥

तत उद्यम्य निशितं खड्गं पन्नगभूषणः ।
कृष्णमभ्यद्रवत्सङ्ख्ये पार्ष्णिभ्यां चोदयन् वृषम् ॥४७॥

तूर्ण गृहीत्वा बाहुभ्यां विषाणे तस्य नन्दिनः ।
स शूलपाणिं चिक्षेप वैनतेयो धनुः शतन् ॥४८॥

ततो विसृज्य सङ्ग्रामं त्रिशूली वृषवाहनः ।
प्रमथैः सहितः प्रायात्कुरुश्रेष्ठ यथागतन् ॥४६॥

इति श्रीभागवतेमहपुराणेदशमस्कन्धेषष्टितमो ध्याय ।

श्रीशुक उवाच

ततः स्वयं देवपतिस्तुङ्गमारुह्य वारणम् ।
किरीटी बद्धतूणीरः प्रगृहीतशरासनः ॥१॥

अभ्यद्रवद्रणे कृष्णं गजः केसरिणं यथा ।
पारिजातकृते राजन् पौलौभ्यां वचनं स्मरन् ॥२॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य हरिः परपुरंजयः ।
शङ्ख दध्मौ महानादं दिशः समभिपूरयन् ॥३॥

तमभिद्रुत्य देवेन्द्रो महद्विस्फारयन् धनुः ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कृष्णं विव्याध सङ्गरे ॥४॥

हरिर्विद्धः क्षुरप्रेण देवराजेन वक्षसि ।
प्रहस्य साधु शक्रोसि युक्तं त इति चाब्रवीत् ॥५॥

भूयोपि बाणान् दश देवराजः सन्धाय चापे भुजगेन्द्रकल्पे ।
आकर्णपूर्णं विनिकृष्य कृष्णे मुमोच चक्रे सह सिंहनादन् ॥६॥

तानन्तरे कंसरिपुर्महात्मा छित्वा त्रिधैकेन शरेण बाणन् ।
विव्याध बाणैर्दशभिः सुधौतैः पुरन्दरं भारत लीलयैव ॥७॥

ते शरा देवराजस्य गात्रं निर्भिद्य सावृति ।
शोणिताक्ताः प्रदृश्यंते भूयो वेगेन निर्गताः ॥८॥
पुनश्च शक्रः कोदण्डे शरान् सन्धाय षोडश ।
मुमोचाकृष्य गोविन्दस्तांश्चकर्त शरैस्त्रिभिः ॥६॥

भूयोपि बाणैस्त्रिशद्भिः सुरराजानमाहवे ।
आयोधयद्धरिस्ते च ममज्जुः शक्रवक्षसि ॥१०॥
ततश्चुकोप देवेन्द्रो दण्डाहत इवोरगः ।
प्रेषयामास तोत्रेण तार्क्ष्यं प्रति महागजम् ॥११॥
स गजः प्राप्य गरुडं पाकशासनचोदितः ।
चतुर्भिर्घटयामास दन्तैर्बाहुयुगान्तरे ॥१२॥
ततस्तुण्डेन गरुडः पक्षाभ्यां च तथा नखैः ।
अर्दयामास कौरव्य गजमैरावताह्वयम् ॥१३॥
शक्रस्तु वज्रमुद्यम्य घोरं दानवभीषणम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां प्रजहार वृषाकपिम् ॥१४॥
तमागतं मधुरिपुर्वज्रं दुश्च्यवनायुधम् ।
वामेन पाणिना विष्णुर्जग्राह प्रजहास च ॥१५॥
निरायुधः सुरपतिर्गरुडार्दितवाहनः ।
व्यावर्तत रणाद्राजन् व्रीडावनतकन्धरः ॥१६॥
तं दृष्ट्वा भ्रष्टसङ्कल्पं पलायनपरायणम् ।
सत्यभामा सुरपतिं प्रहसन्तीदमब्रवीत् ॥१७॥

सत्यभामोवाच ।

एहि शक्र निवर्तस्व मा याहि कुलिशायुध
पलायनमयुक्तं हि पौलोम्या वल्लभस्य ते ॥१८॥
ऐश्वर्यमत्ता पौलोमी भर्तृपौरुषगर्विता ।
अवमंस्यति सद्यस्त्वां भार्यां रणपराजितम् ॥१९॥
इत्थं देव्या गिरं शक्रः सोपालम्भमुदीरिताम् ।
निशम्याभिमुखोभूत्वा प्राह देवीं शुचिस्मिताम् ॥२०॥

इन्द्र उवाच ।

येनामरासुरमहोरगयक्षसिद्धागन्धर्वकिन्नरपिशाचनिशाचराद्या ।
सृष्टास्त्रिलोकगुरुणा रणमूर्ध्नि तेन को वा न याति परिभूतिमलं विरुध्य ॥२ ॥
वत्सो यथा तनुबलः सकृदेत्य मातर्यूथस्य पानसमये कुरुते विरोधम् ।
तद्वद्वयं च निजशैशवमप्रमेये नाथे विरुध्य पिशिताशनि दर्शयाम ॥२२॥
इति सत्राजितः पुत्रीमुक्त्वा भगवतसन्तम् ।
कृताञ्जलिः प्रणम्याह वासुदेवं पुरन्दरः ॥२ ॥

नमस्ते देवदेवेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
क्षमस्व मत्कृतं विश्वमपराधं जगत्पते ॥२४॥
न मां त्वदेकशरणं शरणागतवत्सल ।
भूरिबालिशमक्षान्तं परित्यक्तुं त्वमर्हसि ॥२५॥
ऐरावतश्च कुलिशं पारिजातश्च पादप. ।
देवराज्यश्च भगवन्निय चाप्यमरावती ॥२६॥
त्वदधीनमिदम्विश्वमहमाज्ञाकरस्त्वत ।
अत्र यद्रोचते नेतुं नीयतां तद्यथेच्छया ॥२७॥
किन्तु वक्ष्यामि गोविन्द मूलं त्वयि विरुध्यतः ।
रमसे मानुषे लोके भगवंस्त्वमनन्यधीः ॥२८॥
तत्र नीते पारिजाते भवता कल्पपादपे ।
तेन सा जायते स्वर्गान्निर्विशेषा वसुन्धरा ॥२९॥
तेनाहं यदुशार्दूल विरोधं कृतवांस्त्वयि ।
तत्क्षन्तव्यं त्वया देव कार्याकार्यं विजानता ॥३०॥

श्रीशुक उवाच ।

इत्युक्तो देवराजेन देवदेवो जनार्दनः ।
पुरंदरं कुरुश्रेष्ठ प्राह प्रहसिताननः ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच ।

अपराधस्त्वया शक्र न कश्चिदपि चेष्टितः ।
यत्कृतं तन्मयैवागस्त्वभेदादावयोः परम् ॥३२॥
यत्वयाद्य सहस्राक्ष चेष्टितं साध्वसाधुवा ।
मयैव यत्कृतं सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।-३३॥
पारिजातस्तरुश्रेष्ठो मय्यारूढे तर्हदिवम् ।
मन्निर्देशात्सहस्राक्ष स्वयमेष्यति नन्दनम् ॥३४॥
यत्युक्तो वासुदेवेन देवराजः कुरूद्वह ।
गोविन्दं सत्यभामा च प्रसाद्य गरुडं तथा ॥३५॥
पुत्रो मे रक्षितव्य ते श्यालो बीभत्सुरित्यपि ।
भूयोभूयः प्रार्थयित्वा कृतानुज्ञः पुरन्दरः ॥३६॥
सार्धं सकलदिक्पालैर्लब्धवज्रः पुरं ययौ ॥
पुरन्दरं सदिक्पालं विसृज्य यदुनन्दनः ॥३७॥
गरुडं प्राह कौरव्य यास्यामो द्वारकामिति ।
गोविन्दं सत्यभा च पारिजातं च पादपम् ॥३८॥
गरुडः पन्नगरिपुर्लीलयैव वहन् ययौ ।
सम्प्रविश्य पुरीं रम्यां द्वारतोरणभूषिताम् ॥३९॥

पताकमालिनीं दिव्यां सिक्तसम्मृष्टभूतलाम् ।
ऊढोपायनताम्बूलस्रग्गन्धकलयाक्षतैः ॥४०॥

उपस्थितैर्यदुश्रेष्ठैः पूजितश्चाभिवन्दितः ।
तूर्यमङ्गलनिर्घोषैर्वेदस्वाध्यायनिःस्वनैः ॥४१॥

प्रविवेश सभां दिव्यां सुधर्मां वृद्धसेविताम् ।
आहुकं वसुदेवं च बलभद्रं तथाग्रजम् ॥४२॥

अभिवाद्य यथान्यायं पूजितस्तैर्यथोचितम् ।
उपविष्टः सभामध्ये काञ्चने परमासने ॥४३॥

रराज राजशार्दूल वृहस्पतिपुरागमैः ।
लोकपालैरुपासीनैर्दिवि वज्रधरो यथा ॥४४॥

प्राङ्गणे सत्यभामायाः पारिजातं महाद्रुमम् ।
स्थापयामास गोविन्दः सर्वतो मणिकुट्टिमे ॥४५॥

आयान्तं देवकीपुत्रं योषित्सार्धेन भूरिणा ।
श्रुत्वा द्रष्टुमुपाजग्मुः सकला यादवस्त्रियः ॥४६॥

वसुदेवस्तु कौरव्य रोहिण्याद्याः स्त्रियोखिलाः ।
आजग्मुः केशवं द्रष्टुं जितशत्रुमनामयम् ॥४७॥

स दृष्ट्वा मातरो विष्णुर्देववचा सह सङ्गताः ।
चक्रे प्रणाममासीभिस्ताश्च तं प्रत्यपूजयन् ॥४८॥

रुक्मिण्याद्यास्तथा सप्त महिष्यः कृष्णवल्लभाः ।
प्रणेमुर्देवमभ्येत्य दिव्यरूपाः स्वलङ्कृताः ॥४९॥

रेवती रामदयिता त्रिवक्रा च यशस्विनी ।
एकानङ्गा च तन्वङ्गी चित्रा च वरवर्णिनी ॥५०॥

अन्याश्च कुरुशार्दूल भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रियः ।
आनीतप्रमदासार्धं जितशत्रुमनामयम् ॥५१॥

गोविन्दं सत्यभामां चाप्यानीतममरद्रुमम् ।
प्रीत्युत्फुल्लमुखाः सर्वे कौतुकाद्द्रष्टुमीययुः ॥५२॥

तं समेता यथाजोषं लाजप्रसवतण्डुलैः ।
स्पृष्ट्वा मूर्ध्नि मुकुन्दस्य जग्मुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥५३॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥६७॥

(दशम स्कन्ध उत्तरार्ध अ० ६५ के बाद ६६ का यह रूप है)

राजोवाच ।

कश्चासौ पौण्ड्रको नाम कस्मिन् देशे महीपतिः ।
कस्य वा तनयो ब्रह्मन् सर्वमेतद्वदस्व मे ॥४॥

श्रीशुक उवाच

अपुत्रः काशिराजो वै कन्यां सुतनुसंज्ञिताम् ।
प्रायच्छद्वसुदेवाय राज्यशुल्कां कुरूद्वह ॥५॥

तत्र जज्ञे महाबाहुर्दिवाकरसमद्युतिः ।
कुमारः पौण्ड्रको नाम बलवीर्यमदान्वितः ॥६॥

वसुदेवसुतत्वाच्च वासुदेवेतिशब्दितः ।
जाते तस्मिन् महाराजो वसुदेवो महाद्युतिः ॥७॥

राज्यं तस्मिन् समारोप्य सकोशबलवाहनम् ।
उवाह कंसावरजां देवकीं देवतोपमाम् ॥८॥

निरुद्धो भोजराजेन कंसेनानकदुन्दुभिः ।
कदाचिदपि न प्रायात्करवीरपुरीमपि ॥९॥

असह्यं मातृसापत्न्यमभ्रातृत्वं तथात्मनः ।
स्मरमाणः स काशीशो यदनुद्विजते निशम् ॥१०॥

स कृष्णरहितां श्रुत्वा समेत्य द्वारकां निशि ।
विमृद्य बलभद्रेण शैनेयेनापि निर्जितः ॥११॥

निहतानेकसाहस्रहयकुंजरसैनिकः ।
जगाम परशर्वर्यां पुरीं वाराणसीं नृप ॥१२॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां हरिर्बदरिकाश्रमात् ।
आययौ तार्क्ष्यमारुह्य द्वारकां रामपालिताम् ॥१३॥

सपताकैः सार्ध्यपाद्यैर्यदुवृषायन्धकादिभिः ।
अभिवर्णितवृत्तान्तः प्राविशत्केशवः सभाम् ॥१४॥

कदाचित्यपौण्ड्रकौनाम काशिराजः प्रतापवान् ।
वासुदेवोहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥१५॥

त्वं वासुदेवो भगवानत्तीर्णो जगत्पतिः ।
इति प्रस्तोभितो बालैर्मेने स्वात्मानमच्युतम् ॥१६॥

दूतस्तुद्वारकामेत्य सभायामास्थितं हरिम् ।
कृष्णंकमलपत्राक्षंराजसन्देशमब्रवीत् ॥१७॥

वासुदेवोवतीर्णोहमेकएवनचापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थंत्वंतुमिथ्याभिधांत्यज ॥१८॥

यानित्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्ष्यभीतवत् ।
त्यक्त्वैहिमांत्वंशरणन्नोचेद्देहिममाहवम् ॥१६॥

कत्थनंतदुपाकर्ण्यपौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ।
उच्चकैरुग्रसेनाद्याः सभ्याः जहसतुस्तदा ॥२०॥

उवाचदूतम्भगवान्परिहासकथामनु ।
उत्स्रक्ष्येमूढचिह्नानियैस्त्वमेवंविकत्थसे ॥२१॥

मुखन्तवपिधायाङ्गकङ्कगृध्रवकैर्वृतम् ।
शयिष्यसेहतस्तत्रभविताशरणंशुनाम् ॥२२॥

इतिदूतस्तदाक्षेपंस्वामिनेसर्वमाहरत् ।
कृष्णोपिरथमारुह्यप्रायात्काशींससैनिकः ॥२३॥

पौण्ड्रकोपितदुद्योगमुपलभ्यमहारथः ।
अक्षौहिणीभिः सहितोनिश्चक्रामपुराद्द्रुतम् ॥२४॥

× × ×

दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदन्तकठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन् सृविकणी रक्ते विधुन्वन् त्रिशिखं ज्वलत् ॥४७॥
पद्भ्यां तालप्रमाणभ्यां कम्पयन् धरणीतलम् ।
सौभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥४८॥
तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे बनदाहे यथा मृगाः ॥४६॥
अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ।
त्राहि त्राहीति लोकेशं वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥५०॥

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानांच साध्वसम् ।
धरणीशः प्रहस्याह माभैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥५१॥

सर्वस्यान्तर्बहिः सोथ कृत्वां माहेश्वरीं विभुः ।
विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥५२॥

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं–
जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी–
चक्रं मुकुन्दस्य झटित्यपूरयत् ॥५३॥

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणे
रस्त्रोजसा नृप विभग्नमुखो निवृत्तः ।
वाराणसीं प्रति समेत्य सुदक्षिणं तं
सन्निर्जितं समदहत्स्वकृतोभिचारः ॥५४॥

चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम्।
सगोपुराट्टालककोष्ठतोरणां सकोशहस्त्यश्वरूथमन्दिराम्॥५५

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वा विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥५६॥

य एतच्छ्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५७॥

तावुभौ सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्नृप ।
विमुच्य देहावसाने विष्णुलोकं प्रयास्यतः ॥

——— – —

श्रीमद्भागवतगीताका पाठभेद

(श्रीमद्भागवतको गीताका व्यास-भाष्य कहा जाता है। अतः गीताके पाठके सम्बन्धमें भी विचार किया जाना चाहिए)

अनेक लोगोंने गीतामें पाठ भेद माने हैं। आर्य-सामाजके विद्वानोंने गीताके कई संक्षिप्त संस्करण निकाले हैं; किन्तु इस संक्षिप्ती करणके पीछे पुष्ट प्रमाण नहीं हैं, मताग्रह है, अतः ऐसे संस्करणोंको महत्ता नहीं प्राप्त हुई, होनी भी नहीं चाहिये।

गीताका जो पाठ प्रचलित है, उसका आधार श्री-शंकराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, प्रभृति सम्प्रदायाचार्योंके भाष्य तथा सैकड़ों प्राचीन—अर्वाचीन विद्वानोंकी टीकएँ हैं। अतः गीताका प्रचलित पाठ वहुत पुष्ट और प्राचीन है। भगवान शंकराचार्य मुसलमान शासकोंसे वहुत पहिले हुए हैं। उनके भाष्य पर अनेक टीका हैं। श्रीभुवनेश्वरी पीठ गोंडल (सौराष्ट्र) के आचार्य श्रीचरणतीर्थ जी महा-राजने अत्यधिक श्रम करके गीताका एक पाठ प्रकाशित किया है। इसके प्रथम भागमें प्रथम अध्याय तथा द्वितीय अध्यायके श्लोक ३४ तकवी श्रीमहाराजकृत चन्द्रघण्टा टीका तथा श्लोकोंका अंग्रेजीमें अर्थ है। यह टीका संस्कृतमें है।

इस ग्रन्थमें प्रारम्भमें ही सम्पूर्ण गीता मूल दी गयी है। यह प्रति सन् १६७२के संस्करणकी है।

दो और विशेषतायें हैं गोंडलकी प्रति में—

१—अध्याय १, २, ३, ४, ५, १५, १६, १७, १८ के अध्याय शीर्षकके नीचे दिया गया है कि 'प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकाधारेण संशोधिता' लेकिन ६, ७, ८, १० ११, १२, १३, अध्यायोंके नीचे यह टिप्पणी नहीं है। अध्याय ६ के नीचे है 'कश्मीराय पाठेनोपवृंहिता सौराष्ट्र गोंडल नगरे आविष्कृताच।'

२—अध्यायोंके अन्तमें जो 'इति श्रीमद्भगवद्-गीता·····' दिया होता है, उसमें गोंडलकी प्रतिमें प्रायः प्रचलित प्रतिसे भिन्न अध्यायोंके नाम हैं और ये नाम लम्वे भी हैं।

इसमें अन्य गीताओंके अतिरिक्त १६॥ श्लोक अधिक हैं जिनकी तालिका संलग्न है, कुल श्लोक संख्या ७४५ होनी चाहिये जिसके प्रमाणमें उन्होंने महाभारतका एक श्लोक भी उद्धृत किया है। इसमें भूमिकामें पृष्ठ १८ पर ऐसा उल्लेख है कि मुस्लिम बादशाहके पुस्तकालयमें परसियन अनुवादकी एक प्रति थी जिसमें ७४५ श्लोक थे। श्रीयुत् मुंशीप्रसादजीने अरबिक और परसियन भाषामें यह लिखा है कि उन्होंने मालती सदन पुस्तका-लयमें ऐसी गीता देखी और अव्दुल फजलने बादशाहके हुक्मसे इसका ७४५ श्लोकोंका अनुवाद किया है और वह गीता दिल्लीमें भी कहीं है। इंडिया आफिस लाइब्रेरी, लंदनमें परसियन गीताकी हस्तलित पांडुलिपि है जिसका अव्दुल फजलके अनुवादका नं॰ १६४६ है और फैजीका नम्बर ५० है। यह भी कहा जाता है कि शाह अली दस्तगीरका अनुवाद भी इतने ही श्लोकोंका है जो काशी महाराजके पुस्तकालयमें है जिसका नम्बर १६३-६५ है। भुवनेश्वरीपीठ, गोंडलवाले इस सम्बन्धमें और भी छान-बीन कर रहे हैं।

श्लोक संख्या

अध्याय	साधारण संस्करण	भुवनेश्वरीपीठ संस्करण
१	४७	४७
२	७२	७४

(भुवनेश्वरी पीठ संस्करणके संबंधमें)

टिप्पणी

२० वां और २६वां श्लोक तीन-तीन पंक्तिका है। श्लोक संख्या ११ व ४६ अतिरिक्त है।

३	४३	४८	,, ,, ३७ से ४१ ,, ,, ।
४	४२	४२	,, ,, — ,, ,, ।
५	२६	३०	,, ,, १८ ,, ,, ।
६	४७	४८	,, ,, ३८ ,, ,, ।
७	३०	३०॥	,, ,, २४ ,, ,, ।
८	२८	२८॥	,, ,, २२ ,, ,, ।
९	३४	३५	,, ,, ७ ,, ,, ।
१०	४२	४१॥	,, ,, — ,, ,, ।
११	५५	६१	श्लोक संख्या २८, २९, ४१ (दूसरी पंक्ति), ४३ (पहली पंक्ति), ४८, ४९ व ५० अतिरिक्त हैं।
१२	२०	२०	
१३	४	३६	श्लोक संख्या १ व २ अतिरिक्त हैं।
१४	२७	२७	
१५	२०	२०	
१६	२४	२४	
१७	२८	२८	
१८	७८	७८॥	श्लोक सं० ४७ (दूसरी पंक्ति) अतिरिक्त है।
	७००	७१९	

भुवनेश्वरी पीठ, गौडलकी गीतामें १९० श्लोक अतिरिक्त हैं। गीतामे कुल ७४५ श्लोकोंके प्रमाणमें निम्न श्लोक बतलाया गया—

षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।
अर्जुनः सप्त-पञ्चाशत सप्त-षष्ठि तु संजय।
धृतराष्ट्र श्लोकमेकं गीताया मानमुच्येत।

(गीताप्रेस संस्करण) (म. भा. भीष्म ४३. ४)

(टिप्पणी—गीताप्रेस संस्करणमें प्रथम ५ श्लोक कितनी ही प्रतियोंमें नहीं हैं और कितनी ही प्रतियोंमें हैं)

श्लोक संख्या

श्रीकृष्ण द्वारा उच्चारित	६२०
अर्जुन ,, ,,	५७
संजय ,, ,,	६७
धृतराष्ट्र ,, ,,	१
	७४५

पाठ-भेद

प्रथम अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोक सख्या	प्रचलित प्रति
सर्वक्षत्रसमागमे	१	समवेता युयुत्सवः ।
पश्यतां	३	पश्यैतां
नायकान्मम	७	नायका मम
सौमदत्तिश्चवीर्यवान्	२८	सौमदत्तिस्तथैव च ॥
कृपः शल्योजयद्रथः	८	कृपश्च समितिंजयः
नाना युद्ध विशारदा;	९	सर्वे युद्ध विशारदाः ॥
पांचालश्च महेष्वासो द्रौपदेयाश्च पंचच	१८	द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते
उभयोः सेनयोर्मध्ये	२१	सेनयोरुभयोर्मध्ये
धृतराष्ट्रस्य	२३	धार्तराष्ट्रस्य
उभयोः सेनयोर्मध्ये	२४	सेनयोरुभयोः
सीदमानोऽब्रवीदिदम् ॥	२७	विषीदन्निदमब्रवीत् ॥
दृष्ट्वमान्स्वजनान् कृष्ण युयुत्सून्समवस्थितान्	२८	दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।
सीदन्ति सर्वं	३०	सीदन्ति मम
हत्वाऽऽहवे स्वबान्धवान्	३१	हत्वा स्वजनमाहवे ।
त एवेमे स्थिता योद्धुं प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान्	३३	त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च
किमु	३५	किन्नु
स्वबान्धवान्। स्वजनान्(३६)	३७	सबान्धवान् । स्वजनं
संपश्यद्भिः (३८)	३९	प्रपश्यद्भिः
स्वजनान् हन्तुमुद्यताः(४४)	४५	हन्तुं स्वजनमुद्यताः ।

नोट—गोंडल की प्रति में इस अध्याय में श्लोकांक ४६ हैं; किन्तु तीन चरण के श्लोक २० और २६ माने हैं । अतः वर्तमान प्रतियों का पूरा पाठ आगया है । गोंडल की प्रति में जहाँ श्लोकांक का अन्तर है—कोष्ठक में उनके श्लोकांक दे दिये गये हैं ।

द्वितीय अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोक संख्या	प्रचलित प्रति
सीदमानमिदं	१	विषीदन्तमिदं
माक्लैब्यं गच्छ कौन्तेय (३)	२	क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ
श्रेयस्करंभोक्ष्य····नवर्त्थ	५	श्रेयो भोक्तुं····। हत्वार्थ कामांस्तु गुरूनिहैव
कामांस्तु गुरून्निहत्य ते नः स्थिता	६	तेऽव्यस्थिताः
सीदमानमिदं	१०	विषीदन्तमिदं
	११	(त्वं मानुष्येण····' यह श्लोक नहीं है ।)
ननुशोचस्त्वं	११	नन्वशोचस्त्वं
न त्वां नामी····वयमितः	१२	त्वं नेमे ··· । वयमतः
हन्यते हन्ति वा कथम्	२१	कंघातयति हन्ति कम् ।
अथवैनं····नैवं····	२६	अथन्वैनं···· । नैनं····
ध्रुवं	२७	ध्रुवो
नात्र	३०	नत्वं
न दृश्यते	४०	····न विद्यते ।
वेदवादपराः	४२	वेदवादरताः
कर्मफलेप्सवः····गतीःप्रति	४३	कर्मफलप्रदां। वहुलां ··· गतिं प्रति ॥
कर्मण्यस्त्वधिकारस्ते	४७	कर्मण्येवाधिकारस्ते
	४९	(यस्य सर्वे····सचबुद्धि-मान् ॥) नहीं है ।
जहातीमे (५१)	५०	जहातीह
कर्मबन्ध (५२)	५१	जन्मबन्ध
स्थिर प्रज्ञस्य····	५४	स्थित प्रज्ञस्य····स्थित धीः····व्रजेत किम् । दूसरे स्थानों पर भी गोंडल की प्रतिमें 'स्थित'

		के स्थान पर 'स्थिर' है।
स्थिर प्रज्ञस्तदोच्यते (५८)	५७	तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। यह पाठ भेद ५८, ६१ ६८ में भी है।
यत्तस्यापि	६६	यततोह्यपि
तानि संयम्य मनसा (६२)	६१	तानि सर्वाणि संयम्य
रागद्वेषवियुक्तस्तु (६५)	६४	रागद्वेष वियुक्तस्य
सा रात्रिः (७०)	६९	सानिशा

तृतीय अध्याय

गोंडलकी प्रति	श्लोक संख्या	प्रचलित प्रति
व्यामिश्रेणैव	२	व्यामिश्रेणेव
इष्टान् कामान्हि	१२	इष्टान्भोगान् हि
योजयेत्	२६	जोषयेत्
कर्माणिभागशः	२७	कर्माणिसर्वशः
गुणागुणोर्थे	२८	गुणागुणेषु
नित्यमनुवर्तन्ति····मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः	३१	नितमनुतिष्ठन्ति····मुच्यन्ते तेऽपिकर्मभिः
विनष्टान् विद्धयचेतसः	३२	विद्धिनष्टानचेतसः।
परधर्मोदयादपि	३५	परधर्मो भयावहः॥
अनिच्छमानोऽपिवलादाक्रम्ये-वनियोजितः	३६	अनिच्छन्नपि कौन्तेय वलादिव, यहाँ से आगे ५ श्लोक 'भवत्येष कथ ····आदि गोंडल प्रतिमें अधिक हैं।
पाप्मानं प्रजहीह्येनं	४१	पाप्मानं प्रजहि ह्येनं

चतुर्थ अध्याय

गोंडलकी प्रति	श्लोक संख्या	प्रचलित प्रति
एवं विवस्वते	१	इम विवस्वते
एवं परंपराख्यात	२	एवं परम्पराप्राप्त
मद्व्यपाश्रयाः	१०	मामुपाश्रिताः
नमेकामः फलेष्वपि	१४	नमेकर्मफलेस्पृहा।
कर्मणोपि हि बोधव्यं	१७	कर्मणो ह्यपि बोधव्यं
सचोक्तः	१८	सयुक्तः कृत्स्न
यज्ञायाचारतः	२३	यज्ञायाचरतः
योगिनः समुपासते	२५	योगिनः पर्युपासते
चेदसि पापिभ्यः	३६	चेदसि पापेभ्यः
छित्त्वैवं	४२	छित्त्वैनं

पञ्चम अध्याय

पञ्चम अध्याय	श्लोक संख्या	प्रचलित प्रति
विनिश्चितम्।	१	सुनिश्चितम्।
विमुच्यते।	३	प्रमुच्यते।
तद्यौगैरनुगम्यते	५	तद्योगैरपि गम्यते।
प्रलपन्विलपन्	९	प्रलपन् विसृजन्।
संगंत्यकत्वाऽऽत्मसिद्धये	११	संगंत्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये।
	१८	यहाँ 'स्मरन्तोऽपि' यह श्लोक गोंडलकी प्रतिमें अधिक है'
यःसुखम्। सुखमक्षय्यमश्नुते	२१	यत्सुखम्। सुखमक्षयमश्नुते॥
	२२	ये हि संस्पर्शजा
अन्तःसुखो·······सपार्थ(२५) परमंयोगं	२४	योऽन्तः सुखो···सयोगी ब्रह्मनिर्वाणं
कामक्रोधविमुक्तानां	२६	कामक्रोधवियुक्तानां

षष्ठम अध्याय

गोंडलकी प्रति	श्लोक संख्या	प्रचलित प्रति
परमात्मासुसमामतिः तथा मानवमानयोः	७	परमात्मा समाहित···· तथा मानापमानयोः
धारयन्नचलः स्थितः। संपश्य नासिकाग्रं	१३	धारयन्नचलंस्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं
मद्भक्तो नान्यमानस	१५	योगी नियतमानसः।
योगोऽस्ति नैवात्यश्नतो···· नातिजागरतोऽर्जुन।	१६	नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति···· जाग्रतोनैव चार्जुन॥
युंजतो योगमात्मनि	१९	युंजतो योगमात्मनः॥
निरुद्धं योगसेवनात्।	२०	निरुद्धं योगसेवया।
यत्रवुद्धिग्राह्य······· स्थितश्च्यवति	२१	यत्तद् बुद्धि ग्राह्य······· स्थितश्चलति
योगोनिर्विण्ण	२३	योगोऽनिर्विण्ण
योगी नियतमानसः ब्रह्म संयोगमत्यन्तमधिगच्छति	२८	योगीविगत कल्मषः···· ब्रह्मसंस्पर्शमश्नुते॥

(उत्तरार्ध) लिप्समानः	३७	अयतिः 'अनेक चित्तो····
सतांमार्ग प्रमूढो ब्रह्मणः पथि।		यह श्लोक गोंडलकी प्रतिमें अधिक है।
दुर्गतिंजातुगच्छति (४१)	४०	दुर्गतिं तात गच्छति।
जायते धीमतां कुले (४३)	४२	कुले भवति धीमताम्।
ततोभूयोपियततेसिद्धये	४३	यतते चततः भूयः
कुरुनन्दन (४४)		संसिद्धौ
ह्रियतेह्यवशोऽपि सन् (४५)	४४	ह्रियते ह्यवशोऽपि सः

सप्तम अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोक संख्या	प्रचलित प्रति
मदाश्रितः	१	मदाश्रयः
न पुनः किञ्चिज्ञातव्य	२	नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्य
पुण्यः पृथिव्यांगन्धोऽसि	९	पुण्योगन्धः पृथिव्यांच
मत्त एवेह	१२	मत्त एवेति
मेमतः	१८	मे मतम्।
	२३	'सिद्धान्यान्ति सिद्धव्रतः' यह एक पाद गोंडल की प्रति में अधिक हैं।
केवल श्लोकांक २६ लगा है	२७	भविष्याणि च
येषांत्वन्तंगतं	२८	येषां त्वन्तगतं

अष्टम अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोक संख्या	प्रचलित प्रति
प्रयाण कालेऽपि कथं	२	प्रयाण काले च कथम्
मामेवैष्यस्यसंशयन्।	७	मामेवैष्यस्यसंशयः।
भक्त्या युतो	१०	भक्त्या युक्तो
संग्रहेणाभिधास्ये।	११	संग्रहेण प्रवक्ष्ये।
नित्ययुक्तस्य देहिनः।	१४	नित्ययुक्तस्य योगिनः।
अहर्ये	१७	अहर्यद्
भावोऽन्यो व्यक्ताव्यक्तः	२०	भावोऽन्योऽव्यक्तोऽ व्यक्तात्
यत्र सर्व प्रतिष्ठितम् (२३)	२२	येन सर्वमिदं ततम् ('यं प्राप्य न पुनर्जन्म लभन्ते योगिनोऽर्जुन यह अंश गोंडल की प्रति में अधिक है।
अनयोर्यात्यनावृत्तिमेकयाऽऽ वर्ततेऽन्यया (२७)	२६	एकयायात्यनावृत्ति-मन्ययाऽऽवर्ततेपुनः

नवम अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
		—श्लोक ६ और ७ के बीच में गोंडल की प्रति में 'एवं हि' यह श्लोक अधिक है।
यान्ति मामकीम् (८)	७	यान्ति मामिकां।
	८	भूतग्राममिमं
तनुमास्थितम् (१२)	११	तनुमाश्रितम्····ममभूत महेश्वरम्
आसुरी राक्षसीं चैव (१३)	१३	राक्षसीमासुरीं चैव'
ओंकारोऽथर्व ऋक् सामवैयजुः	१७	ओंकार ऋक् सामयजुरेवच
अनन्याश्चविरक्ता मां(२३)	१२	अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
यजन्ते विधिपूर्वकम् (२४)	२३	यजन्त्यविधिपूर्वकम्'
त मद्भक्त.	३१	न मे भक्तः

दशम अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
इतः	८	मत्तः
ब्रवीषिमान्।	१३	ब्रवीषिमे।
विदुर्देवा महर्षयः।	१४	विदुर्देवा न दानवाः।
विभूतीरात्मनः शुभाः।	१६	दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
त्वामहं	१७	त्वा सदा
	१९	१६ वें श्लोक के समान ही पाठ भेद।
सामवेदोऽहं	२२	सामवेदोऽस्मि
ऐरावणं	२७	ऐरावतं

एकादश अध्याय

गोडलकी प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
योगीश्वर ततो	४	योगेश्वर ततो
महायोगीश्वरो हरि	९	महायोगेश्वरो हरिः

विशेश्वेश्वर विश्वरूपन्	१६	विश्वेश्वर विश्वरूप
रूपमुग्र तवेदृग्	२०	रूपमुग्रं तवेदम् ।
त्वासुरसंघा	२१	त्वाऽसुरसंघा ।
स्वस्तीतिचोक्त्वैव		स्वस्तीत्युक्त्वा
अमी सर्वे····अवनिपालसंघै	२६	अमी चत्वा····सर्वे···· अवनिपालमुख्यैः ।
	२७	यहां गोंडलकी प्रतिमें 'नानारूपैः' यह डेढ़ श्लोक अधिक है'
वक्त्राण्यभितो ज्वलन्ति(३०)	२८	वक्त्राण्यभि विज्वलन्ति ।
वीरयोधान् (३६)	३४	योधवीरान ।
नमेयुर्महात्मन् (३६)	३७	नमेरन्महात्मन् ।
वेद्यं परमं च धाम (४०)	३८	वेद्यं च परं च धाम।
	३६	गोंडलकी प्रतिमें यहाँ 'अनादिमान प्रतिम' यह श्लोक और 'नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्वेके पश्चात् 'नहि त्वदन्य' यह श्लोक अधिक है ।
व्याप्तोषि सर्वं च ततोऽसि सर्वः (४३)	४०	सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।
महिमानं तवेमं (४४)	४३	महिमानं तवेदन्।
विश्वस्य गुरुर्गरीयान्: (४६)	४५	पूज्यश्च गुरुर्गरीयान।
	४६	'प्रियार्हसि' इसके पश्चात 'दिव्यानि कर्माणि' आदि तीन श्लोक गोंडलकी प्रति में अधिक हैं ।
रूपेण भुजद्वयेन (५२)	४७	रूपेण चतुर्भुजेन ।
एवंरूपं शक्यमहं (५४)	४६	एवं रूपः शक्य अहं
शक्तेह्यहमेवं (६०)	५५	शक्य अहमेवं

द्वादश अध्याय

गोंडलकी प्रति	श्लोकांक	प्रचिलित प्रति
भामुपासते	३	पर्युपासते ।
सर्वत्राव्यक्तचेतसाम	४	अव्यक्तासक्त चेतसाम्
योगमुत्तममास्थितः	८	अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥
अथावेशयितुं चित्तं	६	अथ चित्तं समाधातुं ।
मद्योगमास्थितः	११	मद्योगमाश्रितः ।
शान्ति निरन्तराः	१२	शान्ति निरन्तरन् ।
हर्ष मन्युभय क्रोधैः	१५	हर्षामर्षभयोद्वेगैः ।
सर्वारंभफलत्यागी	१६	सर्वारम्भ परित्यागी
शुभाशुभ फलत्यागी	१७	शुभाशुभपरित्यागी

त्रयोदश अध्याय

गोंडलकी प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
		एक श्लोक गोंडल प्रतिमें प्रारम्भमें ही अधिक है ।
क्षेत्र समिति तद्विदः	३	क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।
हेतुमद्भिर्विनिश्चितम्	४	हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।
अध्यात्मज्ञाननिष्ठत्वं	१३	अध्यात्मज्ञान नित्यत्वम् ।
सर्वतः पाणिपादान्तं	१५	सर्वतः पाणिपादं तत्
सर्वस्य हृदि वेष्ठितन्	१६	सर्वस्य हृदि धिष्ठितम्
उपदेष्टाऽनुमन्ता च कर्ता	२४	उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता
अनादित्वान्निर्मलत्वात्	२३	अनादित्वान्निर्गुणत्वात्

चतुर्थदश अध्याय

गोंडलकी प्रति	श्लोककांक	प्रचलित प्रति
सत्वं भारत वर्धते	१०	सत्वं भवति भारत ।
तथा तमसि लीनस्तु	१४	तथा प्रलीनस्तमसि
प्रमादमोहौ जायेते	१७	प्रमादमोहौ तमसो
तमसोऽज्ञानमेवच		भवतोऽज्ञानमेवच ।
योऽज्ञस्तिष्ठति	२३	योऽवतिष्ठति
समदुखसुखः स्वप्नः	२४	समदुखसुखः स्वस्थः

मानावमानयोः ''	२५	मानापमानयोः....
सर्वारम्भफलत्यागी		सर्वारम्भपरित्यागी

पञ्चदश अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
छन्दांसि यस्य पर्णानि	१	छन्दांसि तस्य पर्णानि
शितेन छित्वा	३	दृढेन छित्वा
ततः पदं तत्पद मार्गितव्यं यस्मिन् गते न निवर्तंत भूयः।	४	ततः पदंतत् परिमार्गितव्यं यस्मिन् गतान निवर्तन्ति भूयः।
अध्यात्मनिष्ठा	५	अध्यात्मनित्या
गृहीत्वा तानि	८	गृहीत्वैतानि
देहमास्थितः	१४	देहमाश्रितः
वेदकृदेव	१५	वेदविदेव
शास्त्रं मयाप्रोक्तं	२०	शास्त्रमिदमुक्तं मया

षोडष अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
भूतेष्वलौल्यंच	२	भूतेष्वलोलुप्त्वं
धृतिस्तुष्टिरद्रोहो नाभिमानिता	३	धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानित।
असत्यमप्रतिष्ठंच	८	असत्यमप्रतिष्ठते....
असद्ग्रहाश्रिता. क्रूराः प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः	१०	मोह गृहीत्वासद्ग्राहन्
कामलोभार्थं	१२	कामभोगार्थं
अहंयोगी	१३	अहंभोगी
मोहस्यैव वशंगताः	१६	मोहजाल समावृताः।
अशुभास्वासुरीष्वेव	१९	अशुभानासुरीष्वेव

सप्तदश अध्याय

गोंडल की प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
वर्तन्ते श्रद्धया	१	यजन्ते श्रद्धया
भूतप्रेतपिशाचांश्च	४	प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये
इज्यते विद्धितं यज्ञं राजसं चलध्रुवं	१२	इज्यते भरत श्रेष्ठ-तं यज्ञं विद्धि राजसम्।
विधीहीनममृष्टान्नं	१३	विधिहीनमसृष्टांन्नं
ब्रह्नणातेन	२३	ब्राह्मणास्तेन

अष्टादश अध्याय

गोंलड की प्रति	श्लोकांक	प्रचलित प्रति
नियतस्य च	७	नियतस्यतु
दुःखमित्येव यः कर्म	८	दुःखमित्येव यत्कर्म
मनोभिर्हियत्कर्मारभतेऽर्जुन।	१५	मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः'
यदकृस्न '' महेतुकम्'	२२	यत्तुकृत्स्न....महैतुकम्'
क्लेश बहुलंतद्राजसमिति स्मृतम्	२४	बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।
यत्तदात्वे	३७	यतदग्रे
यत्तदात्वे	३८	यत्तदग्रे
पर्युत्थानात्मकं	४४	परिचर्यात्मकं
यथा ब्रह्म प्राप्नोति तन्निबोधमे। समासेनतु	५१	तथाप्नोति समासेनैव
न शोचति न तृप्यति	५५	न शोचति न कांक्षति।
योऽहंयश्चास्मि	५६	यावान् यश्चास्मि
बुद्धियोग समाश्रित्यमद्भक्तः सततंमव (५८)	५७	बुद्धियोग मुपाश्रित्यमच्चित्तः सततंभव।
मिथ्यैवाध्यवसायस्ते	६०	मिथ्यैष व्यवसायस्ते
करिष्यस्यवशोऽपिसन्	६१	करिष्यस्यवशोऽपि तत्
हृद्देश वसतेऽर्जुन	६२	हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'
यदिच्छसि	६४	यथेच्छसि
स मामेष्यत्यसंशयः	६९	मामेवैश्यत्यसंशयः।
गुह्यतरं महत् (७६)	७५	गुह्यमहं परं॥
महाराज प्रहृष्ये (७८)	७७	महान् राजन् हृष्यामि
ध्रुवा इतिमतिर्मम॥(७९)	७८	ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

इनके अतिरिक्त अध्यायों के नामों में भी कहीं कुछ अन्तर है।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा-२८१००१
के अपने, नये व अन्य प्रकाशन

राज-संस्करण : मैपलिथो कागज पर एवं गत्ते की जिल्द सहित
साधा-संस्करण : साधारण कागज पर एवं गत्ते की जिल्द सहित

आकार डिमाई/८

श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' की पुस्तकें—

क्र० सं०	नाम	पृष्ठ सं०	संस्करण	मूल्य	संस्करण	मूल्य
१.	भगवान् वासुदेव (मथुरा चरित)	४०८	सजिल्द, रेक्सीन	१५-००	अजिल्द रेक्सीन	१३-५०
२.	श्री द्वारिकाधीश	४०४	सजिल्द रेक्सीन	१८-००	पेपरबैक	१२-५०
३.	पार्थ-सारथि	४४४	सजिल्द रेक्सीन	२०-००	पेपर बैक	१४-००
४.	नन्द-नन्दन	६९६	राज-संस्करण	३२-००	साधा संस्करण	३०-००
५	सखाओं का कन्हैया (सचित्र)	१७२	पेपर बैक	६-००		
६.	कन्हाई	२०२	"	५-५०		
७.	वे मिलेंगे	३०४	सजिल्द रेक्सीन	१७-००	पैपर बैक	११-००
८.	पलक-झपकते	९९	पैपर बैक	४ ००		
९.	अमृत-पुत्र	२७८	"	१०-००		
१०.	श्रीरामचरित प्रथम खण्ड	३८८	सजिल्द	१०-००	अजिल्द रेक्सीन	९-००
११.	श्रीरामचरित द्वितीय खण्ड	२८०	सजिल्द	८-२५		
१२.	श्रीरामचरित तृतीय खण्ड	३९८	राज-संस्करण	१४-००	साधा-संस्करण	१२-००
१३.	श्रीरामचरित चतुर्थ खण्ड	३४८	"	१४-००	"	१२-००
१४.	शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा	२१४	पेपरबैक	७-५०		
१५.	आंजनेयकी आत्मकथा	३१२	सजिल्द	९-००		
१६.	प्रभु-आवत	२३६	पेपर बैक	८-००		
१७.	शिवचरित	४३६	"	११-२५		
१८.	हमारी संस्कृति	२७२	सजिल्द	८-००		
१९.	साध्य और साधन	३९२	"	१०-००		
२०.	मजेदार कहानियाँ (सचित्र)	६८	पेपर बैक	२-५०		
२१.	कल्कि अवतार या कलयुगका अन्त	२००	"	८-००		

डा० किशोर काबराकी पुस्तकें—

१.	बाल-रामायण (सचित्र)	१२८	पेपर बैक	७-००
२.	बाल-कृष्णायन	६८	"	२-००

अन्य लेखकोंकी पुस्तकें—

१.	रसिया-भागवत, ले० बालमुकन्द चतुर्वेदी	७२	पेपर बैक	१-२५
२.	नरसीजी रौ माहेरौ (राजस्थानी लोकगीत)	८२	"	३-५०
३.	शिक्षाष्टक	१४४	राज-संस्करण	१०-००
	(श्री चैतन्य-चरितामृतकी	१५५	पेपर बैक	५-००
	डा० राधागोविन्दनाथकी टीकासे अनूदित			

लेखक-हरिदास गोस्वामी (बंगलासे अनूदित)

१.	आत्माराम आकर्षक हरिके गुण	२८४	सजिल्द	७-७५
२.	श्रीरूप-शिक्षा	१३९	पेपरबैक	३-२५
३.	वैष्णव-स्मृति	७१	"	०-७५
४.	श्रीविष्णुप्रिया चरित	५३२	सजिल्द	१२-५०
५.	श्रीविष्णुप्रिया नाटक	२७८	"	७-५०
६.	श्रीलक्ष्मीप्रिया चरित	२२६	"	६-५०

अन्य पुस्तकें—

१.	हरिलीला	४८	पेपर बेक	२-००
	(विदद्वर बोपदेव कृतका हिन्दी अनुवाद)			
२.	The philosophy of Low	३०३	Royal-adition	१८-००
	(नित्यलीलालीन श्रीहनुप्रसादजी पोद्दार		Paper Back	१२-००
	कृत नारदभक्ति-सूत्रकी टीकाका अँग्रेजी अनुवाद)			

आकार-फुलस्कैप/८ (पाकेट)

श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' की पुस्तकें—

क्र० सं०	नाम	पृष्ठ सं०	संस्करण	मूल्य
१.	राम-श्यामकी झाँकी (भाग—१)	१६८	पेपरबैक	२-००
२.	राम-श्यामकी झाँकी (भाग—२)	१३६	"	१-७५
३.	श्यामका स्वभाव	१०४	"	१-५०
४.	व्रजका एक दिन	११६	"	१-७५
५.	उन्मादिनी यशोदा	१६४	"	२-५०
६.	शिव-स्मरण	९०	"	१-२५
७.	हमारे धर्मग्रन्थ	७१	"	१-००

क्र० सं०	नाम	पृष्ठ सं०	संस्करण	मूल्य
८.	हमारे अवतार एवं देवी-देवता	१०८	"	१-५०
९.	हिन्दुओंके तीर्थस्थान	२८२	"	४-५०
१०.	ज्ञान-गंगा (कहानियाँ)	२८८	"	४-५०
११.	भक्ति-भागीरथी (कहानियाँ)	२४८	"	४-००
१२.	नवधा-भक्ति (कहानियाँ)	१८०	"	३-००
१३.	दस-महाव्रत (कहानियाँ)	७२	"	१-६०
१४.	मानस-मन्दाकिनी भाग–१ (कहानियाँ)	२१३	"	३-७५
१५.	मानस-मन्दाकिनी भाग–२ कहानियाँ	१८३	"	३-५०
१६.	साँस्कृतिक कहाँनियाँ, कुल १२ भाग			
	प्रत्येक भाग पृष्ठ लगभग १६४, मूल्य प्रत्येक भाग			२-००
१७.	प्रेरक-प्रसंग	९६	"	१-५०
१८.	मधुबिन्दु एवं ज्योतिकण	६७	"	१-६०
१९.	कर्म-रहस्य	२२८	साधारण	५-००

डा० अवधबिहारीलाल कपूरकी पुस्तकें—

१.	विरहिणी-राधा (नाट्य-काव्य)	१६८	"	४-००
२.	व्रजके भक्त			
	पाँच भागोंमें, पृष्ठ लगभग २३०, मूल्य प्रत्येक भाग			५-००

अन्य लेखकोंकी पुस्तकें—

१.	दो आध्यात्मिक महाविभूतियोंके प्रेरक-प्रसंग (सेठजी श्री जयदयालजी गोयन्दका एवं भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके प्रेरक-प्रसंग	१८०	"	२-५०
२.	दो महापुरुषोंका जीवन-सौरभ् (महामना श्रीमदनमोहनमालवीय एवं श्रीजुगल-किशोरजी बिरलाके प्रेरक-संस्मरण)	१३०	"	३-२५
३.	आरतीमाला, लेखक-श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार	३२	"	१-५०
४.	श्रीराधाकृपाकटाक्ष स्तवराज (हिन्दी-अँग्रेजी पद्यानुवाद-श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव एम० ए०, एल-एल० बी० उर्दू पद्यानुवाद–श्रीव्रजमोहनजी 'मधुर')	३५	"	१-००
५.	श्रीचैतन्य-महाप्रभुके परिकर	२००	"	४-००
६.	श्रीश्रीनिताई-गौर-श्रीविग्रहकी अद्भुत लीलाकथा	४८	"	१-००
७.	गाँधी-आख्यानमालाकी १० पुस्तकें पृष्ठ संख्या	११२	प्रत्येक भाग	३-००

क्र० सं०	नाम	पृष्ठ सं०	संस्करण	मूल्य
	प्रत्येककी बँधाई साधारण, मूल्य प्रति पुस्तक १-प्रभु ही मेरा रक्षक है, १-संगठनमें ही शक्ति है, ३-यदि मैं तानाशाह वना, ४-त्याग हृदयकी वृत्ति है, ५-मेरा पेट भारतका पेट है, ६-मैं महात्मा नहीं हूँ, ७-यह तो सार्वजनिक पैसा है, ८-हम कभी दम्मी न बनें, ९-मेरा धर्म सेवा करना है, १०-हे राम ! हे राम !			३-००

आकार क्राउन/८

क्र० सं०	नाम	पृष्ठ सं०	संस्करण	मूल्य
१.	श्रीमद्भगवद्गीता	४६८	राज-संस्कण	१०-००
	(पदच्छेद अन्वय, अर्थ सहित)		साधा-संस्करण	८-००
२.	प्रबोध-सुधाकर (श्रीशंकराचार्य)	८०	पेपरबैक	१-५०
३.	आर्या या आर्यदृष्टि	३८४	राज-संस्करण	१६-००
	(लेखक—स्वामी श्रीऋषिकुमार)	३८४	साधा-संस्करण	१२-००
४.	श्रीश्रीविष्णुप्रियासहस्रनाम स्तोत्रम्	६२	भाव सहित प्रतिदिनपाठ	

आकार क्राउन/४

क्र० सं०	नाम	पृष्ठ सं०	संस्करण	मूल्य
१.	श्रीमद्भागवत पादानुक्रमणिका	६०४	राज-संस्करण	१००-००
२.	श्रीसनातन-शिक्षा (श्रीचैतन्य-चरितामृतमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रीसनातन गोस्वामीको दी गयी शिक्षा, डा० राधागोविन्दनाथकी टीकासे अनूदित)	६१०	सजिल्द	३०-००
३.	श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी नवद्वीप-लीला(बँगला)	६४०	सजि० रेक्सीन	५०-००
४.	श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी नीलाचल-लीला(बँगला)	६१४	प्लास्टिक जॉकेट	५०-००
५.	श्रीचैतन्य महाप्रभुकी नवद्वीप-लीला(हिन्दी)	६४४	,,	५०-००
६.	श्रीचैतन्य महाप्रभुकी नीलाचल-लीला (हिन्दी)	६१६	,,	५०-००
७.	भक्ति-रसामृत सिंधु (बँगला)	६४४	सजिल्द रेक्सीन	५०-००

आकार फुलस्केप/१६

क्र० सं०	नाम	पृष्ठ सं०	संस्करण	मूल्य
१.	चेतावनी	१६	भावसहित पठन	मनन

* समाप्त *